दीनदयाल उपाध्याय

संपूर्ण वाङ्मय

खंड दो

एकात्म मानवदर्शन
अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान

क्या बाजारवाद (पूँजीवाद) तथा राज्यवाद (साम्यवाद) विचारधाराएँ आधुनिक मानव को भीतरी सुख दिला सकती हैं? क्या इस देश के करोड़ों लोग पश्चिमी अवधारणाओं के अनुसार ही जीवन जीने को अभिशप्त हैं? क्या भारत की प्रजा के पास इसका कोई समाधान नहीं है? भारत के एक युगऋषि पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने इन सवालों, इन खतरों को दशकों पहले ही भाँप लिया था और भारतीय परंपराओं के खजाने में ही इनके उत्तर भी खोज लिये थे। उन्होंने व्यष्टि बनाम समष्टि के पाश्चात्य समीकरण को अमानवीय बताया था तथा व्यष्टि एवं समष्टि की एकात्मता से ही मानव की पहचान की थी। उन्होंने इस पहचान के लिए 'एकात्म मानवदर्शन' के रूप में एक दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की थी।

पर विडंबना, उनकी यह खोज, उनका यह दर्शन आगे न बढ़ सका। प्रयास कुछ अधूरे रहे। दोष शायद परिस्थितियों का रहा। लेकिन इस शताब्दी के प्रारंभ में कुछ सामाजिक व अकादमिक कार्यकर्ताओं ने इस धारा को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया। इस समूह का अनुभव रहा कि गहन अनुसंधान एवं व्यावहारिक परियोजनाओं का सूत्रपात करने से ही इसे आगे बढ़ाया जा सकता है। उसी विचार व अनुभव में से उत्पत्ति हुई 'एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान' की। इसके विभिन्न आयामों व पहलुओं पर नियमित परिचर्चाओं व प्रकाशनों के माध्यम से जो वातावरण बना, उसके परिणाम सामने आने लगे हैं। 'एकात्म मानवदर्शन' देश में वैचारिक बहस की मुख्यधारा का अहम हिस्सा बन गया है। प्रतिष्ठान के सामने अब लक्ष्य है, उसे वैश्विक स्तर पर ले जाने का।

दीनदयाल उपाध्याय
संपूर्ण वाङ्मय

संपादक मंडल

दीनदयाल उपाध्याय
संपूर्ण वाङ्मय

खंड दो

संपादक

डॉ. महेश चंद्र शर्मा

अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
ekatmrdvf@yahoo.co.in

प्रकाशक • **प्रभात प्रकाशन**
4/19 आसफ अली रोड,
नई दिल्ली–110002

संकलन व संपादन • **डॉ. महेश चंद्र शर्मा**
अध्यक्ष, एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान
एवं विकास प्रतिष्ठान, एकात्म भवन,
37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग,
नई दिल्ली–110002

संस्करण • प्रथम, 2016
लेआउट व आवरण • दीपा सूद
मूल्य • चार सौ रुपए (प्रति खंड)
छह हजार रुपए
(पंद्रह खंडों का सैट)
मुद्रक • आर–टेक ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

DEENDAYAL UPADHYAYA SAMPOORNA VANGMAYA (VOL. II)
(Complete Works of Pandit Deendayal Upadhyaya)
Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road, New Delhi-2
e-mail: prabhatbooks@gmail.com
in association with
Research and Development Foundation for Integral Humanism,
Ekatm Bhawan, 37, Deendayal Upadhyaya Marg, New Delhi-2

Vol. II ₹ 400.00 ISBN 978-93-86231-17-8
Set of Fifteen Vols. ₹ 6000.00 ISBN 978-93-86231-31-4

समर्पण
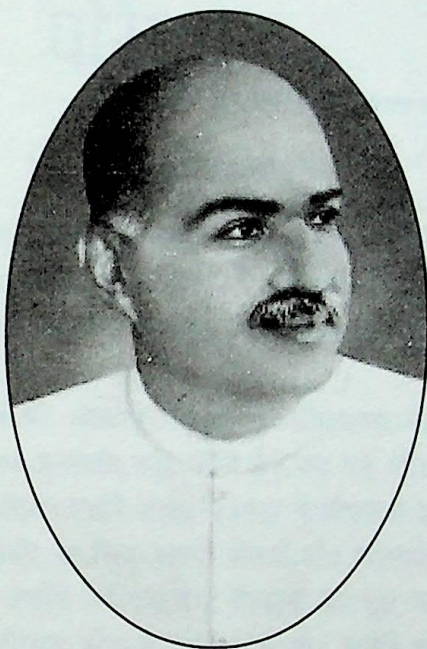
डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी
संस्थापक अध्यक्ष भारतीय जनसंघ
को समर्पित
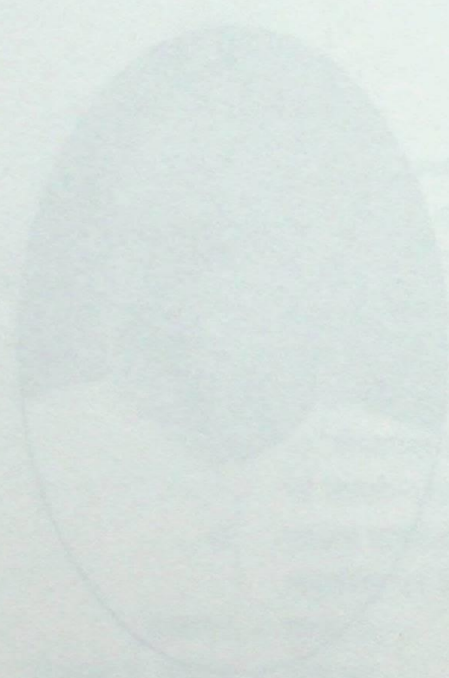
परिचय

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी

अपने 52 साल के संक्षिप्त जीवनकाल (1901-1953) में डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने एक राजनीतिज्ञ, शिक्षाविद्, काबिल मंत्री और भारत में एक वैकल्पिक राजनीतिक विमर्श एवं विचार-प्रवाह का जनक बनकर अपने विविधायामी व्यक्तित्व का परिचय दिया।

वे केवल 33 वर्ष की अल्पायु में एक विश्वविद्यालय के उपकुलपति (Vice Chancellor, जिन्हें अब कुलपति कहा जाता है) बन गए और उस संस्थान में एक नवजीवन का संचार कर दिया। उन्होंने 1933 से 1937 के दौरान दो बार उस विश्वविद्यालय को दो-दो वर्ष की अवधि के लिए अपनी सेवाएँ दीं। कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति के रूप में उन्होंने उन राष्ट्रवादी विद्वानों को पूरा समर्थन दिया, जिनकी भारतीय दृष्टिकोण से इतिहास शोध में गहरी रुचि थी। उन्होंने शोधपरक उत्खनन को खूब बढ़ावा दिया और भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व से संबंधित पहला संग्रहालय विश्वविद्यालय में स्थापित किया।

उन्होंने विदेशी विश्वविद्यालयों को भी आमंत्रित किया कि वे अपने शोधार्थियों को भारतीय सभ्यता, संस्कृति और संस्कृत भाषा का अध्ययन करने के लिए यहाँ भेजें। उन्होंने भारतीय भाषाओं को खूब बढ़ावा दिया और गुरुदेव रवींद्र नाथ टैगोर को विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में बांग्ला भाषा में उद्बोधन के लिए निमंत्रित किया। यह पहला अवसर था, जब किसी विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में किसी भारतीय भाषा में भाषण किया गया।

हिंदुओं के लिए ऐसे कठिन समय में, जब बंगाल में मुसलिम लीग का शासन था, डॉ. मुखर्जी ने अकादमिक एकांतिकता को त्यागकर राजनीति-क्षेत्र में प्रवेश करने का निर्णय लिया। उन्होंने हिंदू महासभा में प्रवेश लिया और इस तरह वे सीधे राजनीति में आ

गए। राजनीति में उनके इस प्रवेश का स्वागत ख़ुद महात्मा गांधी ने किया, क्योंकि वे डॉ. मुखर्जी के सर्वथा राष्ट्रीय विचारों से बहुत प्रभावित थे और उन्होंने कहा, 'मालवीयजी (पंडित मदन मोहन मालवीय) के बाद हिंदुओं को नेतृत्व देने वाला कोई चाहिए था।' डॉ. मुखर्जी ने इसके जवाब में कहा, 'लेकिन आप मुझे सांप्रदायिक कहेंगे।' इस पर गांधीजी ने कहा, 'जिस तरह समुद्र मंथन के बाद भगवान् शिव ने विषपान किया था, उसी तरह भारतीय राजनीति के विष का पान करने वाला भी कोई होना चाहिए। वो आप हो सकते हैं।'

वर्ष 1941 में डॉ. मुखर्जी ने फजलुल हक की कृषक प्रजा पार्टी की मदद से बंगाल में सरकार बनाने में सफलता हासिल की और मुसलिम लीग को सत्ता से दूर कर दिया। इस सरकार के वित्तमंत्री के रूप में डॉ. मुखर्जी का काम अद्वितीय था, लेकिन जब उन्होंने देखा कि औपनिवेशिक प्रशासन स्वतंत्रता आंदोलनकारियों का, ख़ासकर मिदनापुर के बाढ़ पीड़ितों का दमन कर रहा है तो उन्होंने 1942 में इस सरकार से इस्तीफ़ा दे दिया। यह उनका आत्मबल ही था, जिसने व्यक्तिगत जोखिम और क्षति की परवाह किए बिना उन्हें सच्चाई और सद्‌कर्म का चैंपियन बनाए रखा।

महात्मा गांधी और सरदार पटेल की पहल पर स्वतंत्र भारत के पहले मंत्रिमंडल में शामिल होने के लिए डॉ. मुखर्जी को आमंत्रित किया गया। संविधान सभा में अपनी मज़बूत उपस्थिति और संविधान निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका के साथ-साथ डॉ. मुखर्जी ने स्वतंत्र भारत के पुनः औद्योगीकरण के लिए दूरदर्शिता और बुद्धिमत्तापूर्ण दृष्टिकोण का परिचय दिया। चाहे वह रक्षा उत्पादों का स्वदेशीकरण हो या भारत को सैन्य शक्तिसंपन्न बनाना हो, या फिर प्रौद्योगिकी उन्नयन हो या कौशल विकास हो, डॉ. मुखर्जी इसके प्रारंभिक प्रस्तोता रहे। उन्होंने भारतीय उद्योग को बढ़ावा दिया और कृषि संबंधी ज्ञान पर भी ख़ूब ज़ोर दिया।

इस दौरान डॉ. मुखर्जी ने महाबोधि सोसाइटी ऑफ इंडिया के अध्यक्ष होने के नाते दक्षिण-पूर्व एशिया के बौद्ध देशों में, जिनमें मुख्य रूप से बर्मा (अब म्याँमार), सीलोन (अब श्रीलंका), कंबोडिया और तिब्बत के साथ संबंध स्थापित करने में प्रमुख भूमिका निभाई। इस संबंध को और प्रगाढ़ बनाने के लिए डॉ. मुखर्जी ने गौतम बुद्ध के दो शिष्यों महामोग्गलन और सारिपुत्त के पवित्र अवशेष इंग्लैंड से मँगवाए और दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों के निमंत्रण पर दोनों परंपराओं के अवशेषों को वहाँ लेकर गए। इन देशों में डॉ. मुखर्जी का शाही स्वागत किया गया।

कंबोडिया राज परिवार के युवराज नरोत्तम सिंहानुक ने डॉ. मुखर्जी को अवशेषों के साथ कंबोडिया आने का विशेष निमंत्रण दिया, जहाँ 50 हज़ार से अधिक लोग डॉ. मुखर्जी को सुनने आए। उन्होंने बुद्ध का संदेश सुनाते हुए यह बताया कि किस तरह

भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया के देश एक साथ आकर एशिया में एक नए युग का प्रारंभ कर सकते हैं। यह डॉ. मुखर्जी के अनथक प्रयत्नों का ही परिणाम था कि भारत सरकार की ओर से उस पवित्र अवशेष का कुछ हिस्सा बर्मा के लोगों को भेंट के रूप में दिया गया। यह एक स्थायी ऋण था। इस अवशेष को तब के यांगून के बाहरी क्षेत्र काबा ये पागोडा में स्थापित किया गया। तब बर्मा के प्रधानमंत्री यू नूने ने डॉ. मुखर्जी को पत्र लिखकर कहा था कि उनके लोग मित्रता के इस पवित्र उपहार के प्रति हमेशा कृतज्ञ रहेंगे। यहाँ भोपाल के निकट साँची में भी उस पवित्र अवशेष की प्रतिस्थापना डॉ. मुखर्जी के कारण ही हुई।

पुनः यह उनकी सिद्धांतवादिता एवं निष्ठा का ही परिणाम था कि पूर्वी पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थियों की दुर्दशा देखकर उन्होंने केंद्रीय मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया तथा एक वैकल्पिक राजनीतिक आंदोलन एवं संवाद का पथ प्रशस्त किया। अक्तूबर 1951 में जनसंघ की स्थापना के समय उन्होंने नई पार्टी की भविष्य की दिशा तय करते हुए कहा था कि नई पार्टी इस प्रकार से राजनीति एवं कार्य करेगी, जिससे भारतीय संदर्भ प्रदर्शित हो। उनके उस समय कहे हुए वे शब्द निरंतर मार्गदर्शक सिद्धांत-स्तंभ के रूप में सबको ऊर्जस्वित कर रहे हैं। उन्होंने कहा, "भारतीय जनसंघ का उदय अखिल भारतीय राजनीतिक पार्टी के रूप में हुआ है, जो प्रमुख विपक्षी दल के रूप में काम करेगी। हमने जाति, पंथ या समुदाय में भेद किए बिना इस पार्टी को सभी भारतीय नागरिकों के लिए खुला रखा है। जबकि हम यह मानते हैं कि परंपरा, रिवाज, मज़हब और भाषा के आधार पर भारत विविधताओं वाला देश है, मातृभूमि के प्रति गहरा समर्पण एवं निष्ठा से संप्रेरित होकर समझदारी एवं बंधुभाव के साथ लोग एकजुट हों। जबकि जाति और मज़हब के आधार पर राजनीतिक अल्पसंख्यकों को बढ़ावा देना ख़तरनाक होगा, फिर भी भारत के बहुसंख्यकों की ज़िम्मेदारी बनती है कि अपनी मातृभूमि के प्रति पूर्ण समर्पित और निष्ठावान सभी लोगों को आश्वस्त करें कि क़ानून के तहत उन्हें पूरी सुरक्षा प्रदान की जाएगी और सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक मामले में उनके साथ समानता का व्यवहार किया जाएगा। हमारी पार्टी यह आश्वासन बिना किसी पूर्वग्रह के देती है। हमारी पार्टी यह भी मानती है कि भारत का भविष्य भारतीय संस्कृति और मर्यादा के पालन तथा प्रोत्साहन में ही निहित है।"

वर्ष 1951-52 के प्रथम आम चुनाव के बाद डॉ. मुखर्जी भारत की पहली संसद् में विपक्षी राजनीति को संगठित करने वाले विराट् नेता के रूप में उभरकर सामने आए। सभी विपक्षी दल विशाल और एकछत्र कांग्रेस को झुकाने के लिए नेतृत्व एवं दिशा-निर्देश हेतु डॉ. मुखर्जी की तरफ़ ही देखा करते थे। यह उन्हीं की जिजीविषा, भिड़ने की इच्छाशक्ति और सदन समन्वय पटुता थी कि उन दिनों भी भारतीय लोकतंत्र बराबरी के

आधार पर चलता रहा। एक अघोषित विपक्ष के नेता की तरह डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी सरकार के कामकाज पर गहरी नज़र रखते थे और सरकार की जवाबदेही, कामकाज के तरीक़े और निष्पक्षता पर बोलते थे।

उन्होंने कभी अवसरवादी समझौते एवं निजी नफ़ा-नुक़सान का गणित नहीं किया। डॉ. मुखर्जी का अंतिम संघर्ष भारत के एकीकरण के लिए रहा, जब उन्होंने भारतीय गणराज्य के साथ जम्मू-कश्मीर के पूर्ण विलय को अपना ध्येय बनाया। इस चुनौती को उन्होंने एक महानायक के रूप में स्वीकारा और स्वतंत्र भारत के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू की सरकार द्वारा गिरफ़्तारी को भी झेला। बात जब भारत की एकता और इसकी संप्रभुता को बरकरार रखने की हो तो दुनिया की कोई ताक़त डॉ. मुखर्जी को पीछे नहीं धकेल सकती थी। उन्होंने इसके लिए अपना बलिदान दे दिया, ताकि इस महत्त्वपूर्ण भूभाग को बचाया जा सके, भारत अपनी एकता और भविष्य को सुरक्षित कर सके। उनके संघर्षपूर्ण एवं अनोखे जीवन का हर पहलू भारत माँ की सेवा और उसका कीर्तिमान बनाए रखने की अपेक्षा व इच्छा से जुड़ा है।

गांधीजी के शब्द सच साबित हुए। डॉ. मुखर्जी ने भारतीय राजनीति के विष को पी लिया, ताकि भारत स्वतंत्र व अखंड बना रहे।

—अनिर्बाण गांगुली

"भारतीय जनसंघ का जन्म केवल आनेवाले चुनावों को दृष्टिगत रखकर नहीं हुआ है। चुनावों का निस्संदेह अपना महत्त्व है और जहाँ भी संभव होगा, हम अपने उम्मीदवार खड़े करेंगे, किंतु चुनाव हमारे लिए एक अवसर मात्र होगा, अपनी विचारधारा को जनता तक पहुँचाने का और एक अखिल भारतीय दल के नाते जनसंघ की दृढ नींव डालने का। चुनावों के परिणाम कुछ भी हों, हमारा दल आशा और सद्भाव का संदेश जन-जन तक पहुँचाता रहेगा और उन्हें प्रेरित करता रहेगा कि एक सुखी और संपन्न भारत के निर्माण में योगदान दें।"

—डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी

संस्थापक अध्यक्ष, भारतीय जनसंघ

स्थापना दिवस, अध्यक्षीय भाषण

21 अक्तूबर, 1951, दिल्ली

जनसंघ के उद्देश्य

जनसंघ के संविधान के परिशिष्ट-2 पर सदस्यता रसीद के पृष्ठभाग पर अंकित

"भारतीय संस्कृति और मर्यादा के आधार पर देश का राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक निर्माण। एकात्मक शासन की प्रतिष्ठापना तथा राजनीतिक एवं आर्थिक सत्ता का विकेंद्रीकरण। व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की रक्षा तथा सामाजिक हितों का पोषण। अखंड भारत की स्थापना। कश्मीर का पूर्ण विलय। चीन एवं पाकिस्तान द्वारा अधिकृत भू-भाग की मुक्ति। देश के उदात्त हितों पर आधारित विदेश नीति। आधुनिकतम सैन्य-सज्जा। आजीविका के मूल अधिकार की आश्वस्ति। भूमि पर कृषक के पूर्ण स्वामित्व की स्थापना और रक्षा। जोत की हदबंदी एवं भूमि का पुनर्वितरण। छोटे यंत्रचालित तथा ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन। आधारभूत उद्योगों का राष्ट्रीयकरण। आर्थिक क्षेत्र में एकाधिकार की प्रवृत्तियों पर अंकुश। न्यूनतम एवं अधिकतम व्यय योग्य आय का निर्धारण। मज़दूरों का उद्योग के लाभ तथा प्रबंध में साझा। मूल्यों का सुस्थिरीकरण। गोरक्षा तथा संवर्धन। अस्पृश्यता निवारण, भ्रष्टाचार उन्मूलन। हिंदी एवं प्रादेशिक भाषाओं का अपने क्षेत्र में राजभाषा के रूप में उपयोग। निःशुल्क माध्यमिक शिक्षा। चिकित्सा एवं सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था। न्याय पद्धति को भारतीय प्रकृति और परिस्थिति के अनुरूप बनाना।"

भारतीय जनसंघ घोषणाएँ व प्रस्ताव 1957-72,
भाग-1, सिद्धांत और नीतियाँ, घोषणा-पत्र संविधान;
भारतीय जनसंघ, 1973, पृष्ठ, 204

संपादकीय

दीनदयाल संपूर्ण वाङ्मय का यह द्वितीय खंड दीनदयालजी के सन् 1951, 1952 तथा 1953 के आलेखों, बौद्धिक वर्गों, वक्तव्यों एवं अन्य प्रतिवेदनों की सामग्री को संकलित किए हुए है।

यह काल दीनदयालजी के जीवन का संक्रमण काल भी है। तीव्र गति से चलने वाले राष्ट्रीय घटनाचक्र में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से प्रतिबंध हटने एवं जनसंघ की स्थापना होने के लिए संघ में हुआ आंतरिक मंथन इस संक्रमण के लिए कारणीभूत है। 21 अक्तूबर, 1951 को डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में 'अखिल भारतीय जनसंघ' की स्थापना हुई। इसके लगभग 50 दिन पूर्व ही लखनऊ में जनसंघ की उत्तर प्रदेश इकाई का गठन 2 सितंबर, 1951 को हुआ था। दीनदयाल उपाध्याय, जो अभी तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सहप्रांत प्रचारक थे, उन्हें उत्तर प्रदेश जनसंघ का महामंत्री बना दिया गया। दीनदयाल उपाध्याय का राजनीति में प्रवेश हो गया।

29, 30 व 31 दिसंबर, 1952 को भारतीय जनसंघ का प्रथम अधिवेशन कानपुर में हुआ। श्री नानाजी देशमुख इसके संयोजक थे। पं. दीनदयाल उपाध्याय को अखिल भारतीय महामंत्री बनाया गया। दीनदयालजी के जीवन का नया अध्याय प्रारंभ हुआ। दीनदयाल उपाध्याय ने एक ऐसी पार्टी विकसित की, जिसका लक्ष्य वोट बटोरना नहीं वरन् वोटर्स (मतदाता) को राष्ट्रीय एकात्मता व भारतीयता के संदर्भ में शिक्षित करना था। उन्होंने जो लिखा, बोला या आंदोलन किया, वोट पाना उसका लक्ष्य नहीं था। वे 'लोकमत परिष्कार' के पुरोधा थे। मतदाता के समक्ष 'ठकुरसुहाती' बातें करना वे ग़लत मानते थे तथा इसे लोकतंत्र का अपमान भी समझते थे। अपने विचार के प्रति वे निरंतर एक शिक्षक की भूमिका में रहे। राजनीति को उन्होंने एक नवीन आयाम देने का प्रयास किया। इस प्रयत्न को उनके द्वारा किए गए 'भारतीयकरण' के प्रयत्न के रूप में देखा जा सकता है।

उस समय का साहित्य प्राप्त करना एक चुनौती थी, फिर भी काफ़ी कुछ खोजा जा सका। पश्चिमी ज्ञान परंपरा के वर्चस्व को वे निरंतर चुनौती देते रहे। भारतीय ज्ञान परंपरा का वे निरंतर युगीन भाष्य करते रहे। भारत की पाश्चात्यपरक राजनीति के समक्ष वे पौर्वात्य के प्रयोग निष्ठा, साहस व आत्मविश्वास के साथ करते रहे। जनसंघ स्थापना के तुरंत बाद प्रथम महानिर्वाचन हुआ। इस पहले ही निर्वाचन में भारतीय जनसंघ को अखिल भारतीय दल की मान्यता प्राप्त हो गई। यह एक बड़ी उपलब्धि थी।

'पाञ्चजन्य' व 'ऑर्गनाइज़र' की पुरानी फाइलें ही हमारे साहित्य संकलन का मुख्य स्रोत थीं। फाइलें मिलीं लेकिन खंडित एवं जर्जर अवस्था में। आधुनिक तकनीक के सहयोग से उनका संपादन योग्य संकलन हुआ। केशव कुंज, झंडेवालान, संस्कृति भवन, भारत प्रकाशन का कार्यालय तथा नेहरू स्मृति पुस्तकालय में उपलब्ध फाइलों के मेल से सामग्री जुट पाई। इसमें दीनदयालजी की दो पुस्तकें भी शामिल हैं। इनमें एक तो 1952 में प्रकाशित 'अखंड भारत क्यों' और दूसरी 'हमारा काश्मीर' है। काश्मीर वस्तुतः पहले कश्मीर को ही बोलते थे, लेकिन अब इसे पूरे भारत में कश्मीर नाम से ही जाना जाता है। इस बात को ध्यान में ऱखते हुए हमने इसमें पुस्तक का शीर्षक तो नहीं बदला, लेकिन बाक़ी पूरी पुस्तक में 'कश्मीर' ही लिखा है। दीनदयालजी ने कश्मीर की एकात्मता के संदर्भ में एक पुस्तक प्रकाशित करवाई थी। उसमें मुखर्जी, नेहरू एवं शेख़ अब्दुल्ला का पत्राचार है। उसे भी परिशिष्ट में प्रकाशित कर रहे हैं।

उपलब्ध सामग्री का संपादन करते हुए ध्यान में आया कि 1951, 1952 तथा 1953 की उपलब्ध सामग्री का संपादन लगभग 300 पृष्ठ में होगा, अतः तीन वर्षों का यह द्वितीय खंड है। आगे के वर्षों में साम्रगी बढ़ेगी, तब अगला खंड दो ही वर्षों का बनेगा तथा उसके आगे के खंड एक-एक वर्ष के ही बनेंगे। इस प्रकार लगभग 15 खंडों की योजना बनाकर यह कार्य संपादित हो रहा है। इस खंड की भूमिका के लिए श्री लालकृष्ण आडवाणी को निवेदन किया था, लेकिन उनकी भूमिका लेखन की मानसिकता नहीं बन सकी। इस खंड की भूमिका के लिए योग्य व्यक्ति मिलना आसान नहीं था। आ. देवेंद्र स्वरूपजी भयानक रुग्णता के शिकार हो गए, उनके स्वास्थ्य में किंचित् सुधार हुआ तो उनसे निवेदन किया। रुग्णावस्था में भी उन्होंने भूमिका लेखन किया, उनका अध्यवसायी तपस्वी जीवन हमारी श्रद्धा का अधिकारी है। उन्हें प्रणाम।

'वह काल' के लिए श्री जवाहर लाल कौल से आग्रह किया। उन्होंने लिखा। इसी दौरान वे पद्मश्री से अलंकृत हुए। उन्हें बधाई!

—**डॉ. महेश चंद्र शर्मा**

भूमिका

दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय के द्वितीय खंड में संपादकीय प्रस्तावना के अनुसार दीनदयालजी के 1951, 1952 और 1953 के लेखन को यथासंभव संकलित किया गया है। यह काल खंड दीनदयालजी और भारत के जीवन में संतुलन लेकर आया। इस काल खंड को दीनदयालजी और भारत के सार्वजनिक जीवन में संक्रमण का काल भी कहा जा सकता है। देश विभाजन का रक्तरंजित आघात झेलकर सार्वजनिक जीवन देश-विभाजन द्वारा उत्पन्न समस्याओं से जूझ रहा था। देश-विभाजन की वेदना से उत्पन्न विस्थापन और रक्तपात की वेदना से प्रत्येक अंत:करण आहत था।

गांधीजी की दुर्भाग्यपूर्ण हत्या और उसके बहाने से प्रखर राष्ट्रभक्त संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर अन्यायपूर्ण प्रतिबंध के कारण भारतीय राजनीति में सांस्कृतिक मूल्यों और मर्यादाओं पर अधिष्ठित राजनीतिक दल की आवश्यकता सब ओर अनुभव की जा रही थी। इस रिक्तता को भरने के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर अंतर्बाह्य दबाव बढ़ रहा था। इसी अंतर्द्वंद्व में से अक्तूबर 1951 में भारतीय जनसंघ नामक अखिल भारतीय दल की विधिवत् स्थापना हुई।

सरसंघचालक श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर भारी बौद्धिक एवं आध्यात्मिक क्षमता से संपन्न थे। उनके तेजस्वी एवं दृढ निश्चयी व्यक्तित्व के सामने सब नतमस्तक थे। वे राजनीति में जाने के विरुद्ध थे। इस विषय में उनका चिंतन जिन दो भाषणमालाओं में उद्‌गारित हुआ, वह 'गुरुजी समग्र' के खंड 2 में उपलब्ध हैं। उस लंबे विचार-मंथन में से डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में भारतीय जनसंघ विधिवत् अस्तित्व में आया। लोगों को आश्चर्य हुआ, यह देखकर कि श्रीगुरुजी ने राजनीति के क्षेत्र में भारतीय जीवन मूल्यों के आधार पर वैचारिक और व्यावहारिक कार्यक्रम तैयार करने के लिए दीनदयाल उपाध्याय को चुना। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि संघ के भीतर जो लोग

राजनीतिक दल बनाने का अभियान चला रहे थे, सरसंघचालक माधवराव सदाशिव गोलवलकर ने उनके बजाय दीनदयालजी को राजनीति में भेजने का निर्णय लिया। उस विचार-मंथन से दीनदयालजी लगभग तटस्थ रहे थे। संघ की आधारभूमि में से उपजा होने के कारण यह नया दल जन्म लेते ही अखिल भारतीय मान्यता प्राप्त कर गया।

दीनदयालजी उस समय उत्तर प्रदेश में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह-प्रांत प्रचारक के नाते भाऊराव देवरस के सहायक थे। उनका यह निर्णय सबको चमत्कृत करने वाला था और वहीं से सबकी दृष्टि दीनदयालजी पर केंद्रित हो गई। वे मूलत: बौद्धिक प्राणी थे। राजनीति के प्रति उनकी तनिक भी ललक नहीं थी। कुछ राजनीतिक धुरंधरों ने तो इस निर्णय को आत्मघाती घोषित कर दिया। यह निर्णय लेने वालों को मूर्ख तक कह दिया। संघ के उस अंतर्द्वंद्व का मैं साक्षी रहा और कुछ अंशों में सहभागी भी।

दीनदयालजी से पहली बार वाराणसी में संपन्न ओ.टी.सी. (अधिकारी शिक्षा वर्ग) में मिला था। उनकी बौद्धिक तीक्ष्णता और सौम्य प्रस्तुति ने हल्की सी छाप छोड़ी थी किंतु उसके बाद 'राष्ट्रधर्म' मासिक में उनके लेखों की वैचारिक गहराइयों और उनकी लेखन क्षमता ने प्रभावित किया था। उन्हीं दिनों उनकी लिखी 'सम्राट् चंद्रगुप्त' एवं 'जगद्गुरु शंकराचार्य' नामक पुस्तकों को पढ़ने का अवसर मिला। विभाजन को नेहरूजी ने भी अस्थायी कहा था, इसलिए अखंड भारत का सपना सभी की आँखों में नाच रहा था। उसी सपने को शब्द रूप देने के लिए दीनदयालजी ने 'अखंड भारत' पुस्तिका लिखी। संघ पर लगे पहले प्रतिबंध काल (1948-1949) में दीनदयालजी के निकट आने का अवसर मिला और चुपचाप उन्होंने मुझे भी अपनी मंडली में शामिल कर लिया। दीनदयालजी पूरी संघ निष्ठा को बनाए रखकर भी राजनीति के प्रवाह में पहुँच गए। 1968 में वे शक्तिशाली राजनीतिक दल भारतीय जनसंघ के अखिल भारतीय अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित किए गए।

दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय के द्वितीय खंड में प्रस्तुत लेख और परिशिष्ट विभाजन पर राजनीति, दीनदयालजी के अपने जीवन में उत्पन्न उथल-पुथल और संक्रमणकालीन समस्याओं को दीनदयालजी के अपने शब्दों में प्रस्तुत करते हैं, अत: उनका भारी ऐतिहासिक महत्त्व है। डॉ. महेश चंद्र शर्मा ने बहुत परिश्रमपूर्वक उन अमूल्य दस्तावेज़ों को खोजकर हम तक पहुँचाया है, इसलिए वे हम सभी के साधुवाद के पात्र हैं।

—देवेंद्र स्वरूप

वह काल

(1951–1953)

भ्रम और भटकाव के साल

वह समय राष्ट्र के नवनिर्माण का स्वरूप और उसकी दिशा पर राष्ट्रीय मंथन का था। तब विचारधाराओं का द्वंद्व था। सिद्धांतों की टकराहट थी। और थी अपनी-अपनी समझ पर नया भारत बनाने की जद्दोज़ेहद। घोषित और अघोषित रूप से कई स्तरों पर वह मंथन की प्रक्रिया चल रही थी। उसकी शुरुआत तो 1946 में ही हो गई थी। एक तरीक़े से संविधान बन गया था। उस पर अमल होने से 'भारत संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य' पहली बार बना। इस अर्थ में वह युगांतरकारी घटना थी। लेकिन संसद् अंतरकालीन (प्रोविज़नल) ही बनी हुई थी। इस प्रकार अतीत से नाता टूटा नहीं था, बना हुआ था। वह नाता औपनिवेशिक था।

कांग्रेस भी उथल-पुथल से गुज़र रही थी। जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री अवश्य थे, पर कांग्रेस पर अमिट प्रभाव सरदार वल्लभभाई पटेल का था। जब 1950 में कांग्रेस के अध्यक्ष का चुनाव हुआ, तब पुरुषोत्तम दास टंडन भारी मतों से जीते। उनकी जीत बड़े राजनीतिक मायने रखती थी। वे बड़े कांग्रेसी नेता थे। इलाहाबाद के थे, जहाँ के जवाहरलाल नेहरू भी थे। उन्हें नेहरू 'सांप्रदायिक' समझते थे और अपने बयान में बताते भी थे। पुरुषोत्तम दास टंडन ने बार-बार लिखकर पूछा कि सांप्रदायिकता उनमें उन्हें कहाँ, कब और किस आधार पर दिखती है। जिसका नेहरू जवाब नहीं दे सके। ज़ाहिर है कि उस

समय कांग्रेस में इस विषय पर मात्र वैचारिक बहस ही नहीं चली, एक राजनीतिक मुठभेड़ भी हुई। उसी में नेहरू हारे, क्योंकि उनका उम्मीदवार हारा। सरदार पटेल जीते, क्योंकि उनके ही उम्मीदवार पुरुषोत्तम दास टंडन विजयी हुए। सरदार पटेल के विचारों की कांग्रेस में जीत अगर टिक जाती तो संभवत: भारतीय जनसंघ का उस समय जन्म भी टल जाता। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने लिखा भी है कि 'यदि पुरुषोत्तम दास टंडन कांग्रेस के अध्यक्ष बने रहते तथा कांग्रेस उनके द्वारा प्रतिपादित विचारों को स्वीकार कर लेती तो संभवत: जनसंघ स्थापना की आवश्यकता न रहती।'

उस राजनीतिक पराजय से जवाहरलाल नेहरू किस कदर विचलित थे, यह जानना हो तो उनका चक्रवर्ती राजगोपालाचारी को लिखा पत्र पढ़ना चाहिए। वे लिखते हैं कि टंडन की जीत के दो सीधे अर्थ हैं। एक कि सरकार और पार्टी में मेरे बने रहने का महत्त्व बहुत कम हो गया है। दो कि सरकार और पार्टी में मेरी उपयोगिता ख़त्म हो गई है। इसी क्रम में नेहरू का दूसरा पत्र भी है। वह जितना बोलता है, उससे ज़्यादा भविष्य का संकेत देता है। नेहरू ने लिखा कि 'मैं नहीं समझता कि संतोष और सार्थक भाव से भविष्य में काम कर सकूँगा।' राजगोपालाचारी ने मेल-मिलाप के प्रयास किए। सरदार पटेल राजी हुए। एक साझा बयान जारी होने का निर्णय हुआ। नेहरू इतने क्षुब्ध थे कि उन्होंने अकेले और अपने मन का बयान दिया। 13 सितंबर, 1950 को प्रेस में दिया उनका बयान है, 'अफ़सोस है कि सांप्रदायिकता और पुनरुत्थानवाद की ताक़तों ने कांग्रेस पर धावा बोल दिया है। इससे सरकार की नीति भी प्रभावित हो रही है।'

नेहरू के उस बयान से कांग्रेस का कायापलट हुआ। पुरुषोत्तम दास टंडन को इस्तीफ़ा देना पड़ा। उससे भारतीय राजनीति भी प्रभावित हुई। वह घटना निर्णायक बन गई। उस पर पंडित दीनदयाल उपाध्याय का कथन कई सवालों को हल करता है। 'पुरुषोत्तम दास टंडन निश्चित रूप से कांग्रेस में अंतिम विचारवान व्यक्ति थे। वे पार्टी में भारतीय तत्त्व का प्रतिनिधित्व करते थे।'

ऐसे परस्पर विरोध और द्वंद्व से कांग्रेस तब गुज़र रही थी। देशज और गांधी धारा के राष्ट्रवादियों के लिए वह समय जय का था। पश्चिमपरस्त और सोवियत मॉडल के राजनीतिकों के लिए वह पराजय का समय था। इस जय-पराजय का राजनीतिक आनंद और उसकी पीड़ा भी अल्पकालिक रही। कारण कि सरदार पटेल का चार महीने बाद दिसंबर 1950 में निधन हो गया। उससे नेहरू कांग्रेस के एकमात्र शिखर नेता बन बैठे। पार्टी में सत्ता का दूसरा केंद्र विलुप्त हो गया। कांग्रेस नेहरू नीति पर चल पड़ी। नेहरू नीति में धर्म, समाज, संस्कृति, इतिहास और भविष्य की गहरी नासमझी थी। जिसे पंडित दीनदयाल उपाध्याय के चिंतन में गहरे उतरकर अनुभव किया जा सकता है। कांग्रेस में अपनी विजय से पहले नेहरू ने अपने लिए दूसरे राजनीतिक मंच की खोज शुरू कर दी थी। उस खोज के राजनीतिक भटकाव में बड़े-बड़े धुरंधर भी शामिल हो

गए थे। उस विवरण का एक इतिहास है।

कांग्रेस पर वर्चस्व स्थापित करने से पहले ही नेहरू चाहते थे कि लोकसभा का आम चुनाव जल्दी करा लें। इसके लिए उन्होंने मार्च 1950 में सुकुमार सेन को मुख्य चुनाव आयुक्त बनाया। उसके महीने भर बाद ही जन-प्रतिनिधित्व क़ानून बना। सेन आइ.सी.एस. अफ़सर थे। मुख्य चुनाव आयुक्त बनने से पहले पश्चिम बंगाल के मुख्य सचिव थे। जवाहरलाल नेहरू आनन-फानन में चुनाव करा लेने के लिए आतुर थे। सेन अपने विद्यार्थी जीवन में गणित के छात्र थे। जिन्हें गोल्ड मेडल मिला था। संभवत: गणितज्ञ सेन ने नेहरू को रोका। धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कराई। कहा कि तैयारी में जितना वक़्त लगेगा, उतना उन्हें इंतज़ार करना पड़ सकता है। सेन को पहले चुनावी महासमर की पूरी तैयारी करनी थी। तैयारी का विवरण रोचक तो है, पर यहाँ अनावश्यक है।

लेकिन यह बताना अत्यावश्यक है कि जवाहरलाल नेहरू का वश चलता तो वे कांग्रेस में अपने विरोधियों और दूसरे विरोधी दलों को बिना चुनावी तैयारी का अवसर दिए आम चुनाव करवा लेते। इस जल्दबाज़ी में उनकी अकुलाहट प्रकट होती है। उस समय की चुनौतियों के सामने वे अपनी विजय के प्रति आश्वस्त नहीं लगते थे। इसके अनेक कारण थे, जैसे उनके जैसे ही बड़े राष्ट्रीय नेता विपक्ष का नेतृत्व कर रहे थे। उनका त्याग कहीं से कम नहीं था। जनता उन विपक्षी नेताओं को नेहरू से कम मान नहीं देती थी। नेहरू 1950 के ही किसी महीने में चुनाव चाहते थे। चुनाव हुआ 1952 में। लोकसभा की क़रीब 497 सीटों सहित विधान सभा के 4500 क्षेत्रों के लिए देशव्यापी चुनाव प्रबंध में दो साल लगे। 1937 और 1945 में अंग्रेज़ों ने चुनाव करवाए थे। तब आबादी का क़रीब 12 फ़ीसद ही मतदाता होता था। इस बार हर बालिग मतदाता था। जिसकी संख्या तब क़रीब 18 करोड़ थी। दुनिया के ज्ञात इतिहास में मतदाता और क्षेत्र की व्यापकता की दृष्टि से इतने विशाल पैमाने पर वह पहला चुनाव हो रहा था। जिन्हें अपने प्रतिनिधि चुनने थे, वे सभी साक्षर भी नहीं थे। कठिनाई कितनी बड़ी रही होगी, इसे समझने में यह सूचना सहायक हो सकती है कि 85 फ़ीसद मतदाता तब अक्षर ज्ञान से रहित थे। पर वे सहज बुद्धि के मालिक भी थे। इस कारण सुकुमार सेन ने राजनीतिक दलों को ऐसे चुनाव चिह्न आवंटित किए, जिसे कोई भी पहचान ले।

उस चुनाव में परस्पर विरोध की विचारधाराएँ थीं। हर एक के अपने सपने थे। निजी महत्त्वाकाक्षाएँ अपनी भूमिका भी निभा रही थीं। अगर महात्मा गांधी के सुझाव को कांग्रेस मान लेती और अपना विघटन कर देती तो उस चुनाव की राजनीति वैसी नहीं होती जैसी बनी। आज़ादी के सफल संघर्ष की कथित वारिस बनकर कांग्रेस ने उस चुनाव में फ़सल काटी। कांग्रेस से ही निकलकर समाजवादी अपना एक दल बना चुके थे। उसके नेता जयप्रकाश नारायण और डॉ. लोहिया सरीखे लोग थे। जून 1951 में आचार्य जे.बी. कृपलानी ने कांग्रेस से निकलकर किसान मज़दूर प्रजा पार्टी बनाई। उनके रग-रग में

राजनीतिक गांधी का साफ़-सुथरा रक्त प्रवाहित होता था। वही नई पार्टी में प्रकट हुआ। इस नए राजनीतिक दल के नाम से ही यह ध्वनि निकलती है कि कांग्रेस किसान मज़दूर और ग़रीबों की विरोधी हो गई है। वह बड़े घरानों और सामंती किसानों की पार्टी बनकर रह गई है। किसान मज़दूर प्रजा पार्टी के गठन का बहाना बनाकर नेहरू ने कांग्रेस को मजबूर कर दिया कि वह उन्हें अध्यक्ष चुने। पुरुषोत्तम दास टंडन को हटाए। यही हुआ। उस दिन से ही भारतीय राजनीति में विचार नहीं, वोट खींचने वाला व्यक्तित्व स्थापित हो गया। दूसरी बात भी तभी तय हो गई। सरकार के इशारे पर पार्टी को चलना है। इस सवाल को पूरी ईमानदारी से आचार्य जे.बी. कृपलानी ने कांग्रेस अध्यक्ष रहते हुए नेहरू सरकार के सामने 1947 में ही उठाया था। जब उन्हें अनसुना कर दिया गया, तब महात्मा गांधी की सहमति से उन्होंने अध्यक्ष पद छोड़ दिया। वह सवाल आज भी भारतीय राजनीति का 'यक्ष प्रश्न' बना हुआ है। हमारी राजनीति किसी योग्य 'युधिष्ठिर' को अब तक खोज नहीं पाई है। 'युधिष्ठिर' तो हैं, सिर्फ़ उनकी खोज ही होनी है।

वह साल हर प्रकार से बहुत तूफ़ानी था। 1951 में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को कांग्रेस अध्यक्ष पद पर बैठाने के लिए एक विशेष अधिवेशन दिल्ली में हुआ। उससे सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी की दशा-दिशा निर्धारित हुई। वह साल सिर्फ़ इस बात के लिए ही याद करने लायक नहीं है, और भी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ उस समय घटीं। जो याद रखने लायक हैं। उस साल को विदेशों में तीन राजनीतिक हत्याओं के लिए जाना जाएगा। जॉर्डन के राजा, ईरान के प्रधानमंत्री और तीसरी हत्या पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाक़त अली ख़ान की है।

उस साल को भारत के इतिहास में इसलिए स्मरणीय माना जाएगा, क्योंकि पहले आम चुनाव के अलावा पंचवर्षीय योजना शुरू हुई और उसी साल आज़ाद भारत की पहली जनगणना आई। आर. गोपालास्वामी रजिस्ट्रार थे। जन्म दर के नियंत्रण की ज़रूरत उन्होंने एक चेतावनी के साथ बताई। परिवार नियोजन उसी से शुरू हुआ। जिसकी घोषणा भर हुई। कम लोग जानते हैं कि जवाहरलाल नेहरू ने जिस सामुदायिक विकास कार्यक्रम को तब बड़े धूमधाम से शुरू करवाया, उसके सूत्रधार अमरीकी टाउन प्लानर अलबर्ट मेयर थे। मेयर की भारत यात्रा उन दिनों सत्ता के गलियारे में चर्चित थी। उन्हीं की योजना में इटावा के 97 गाँव सामाजिक विकास के लिए चुने गए थे। उस कार्यक्रम को फोर्ड फाउंडेशन ने डगलस एनजाइमर और चेस्टर बाउल्स के निर्देश पर फंड के अलावा तकनीकी मदद की थी। वहाँ से ही सामुदायिक विकास ने देशव्यापी रूप लिया। वर्ल्ड बैंक की योजना में भाखड़ा बाँध और अन्य कार्यक्रम तभी शुरू हुए। सोवियत रूस से प्रेरित होकर नेहरू ने योजना आयोग गठित किया। लक्ष्य था, नियोजित विकास। रूस की मदद से ही सार्वजनिक क्षेत्र के अनेक उपक्रम शुरू हुए।

जिन दिनों भारत में आम चुनाव शुरू होने जा रहे थे, उससे कुछ दिन पहले ही

पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाक़त अली ख़ान को वहाँ गोली मार दी गई। यह भी एक रोचक संयोग है कि उसी समय ब्रिटेन में भी आम चुनाव हो रहे थे। ब्रिटेन में दो पार्टियों कंज़रवेटिव और लेबर के बीच मुक़ाबला था। भारत में राजनीतिक दलों की भरमार थी। उन्हें तीन श्रेणी में बाँटा जा सकता है। पहली श्रेणी में वे पार्टियाँ थीं, जो आज़ादी के आंदोलन का खुद को वारिस मानती थीं। कांग्रेस, किसान मज़दूर प्रजा पार्टी और सोशलिस्ट पार्टी। इसे दूसरी तरह से भी कहा जा सकता है कि कांग्रेस के सूर्यमंडल का एक राजनीतिक समूह बना था। जो परस्पर लड़ रहा था। दूसरी श्रेणी में कम्युनिस्ट पार्टी थी। जो संविधान से बने लोकतंत्र को मानने के लिए तैयार ही नहीं थी। उसकी प्रेरणा चीन की क्रांति थी। इसीलिए कम्युनिस्ट पार्टी ने विद्रोह का रास्ता चुना। विफल हुए तो नेहरू से नाता जोड़ा। रूस से इसके लिए हिदायत मिली। फिर कम्युनिस्टों ने सामूहिक रूप से सरकार से क्षमा माँगी। तब कहीं जाकर वे चुनाव में उतरे।

तीसरी श्रेणी में भारतीय जनसंघ को रख सकते हैं। उस समय की राजनीतिक बहस के समानांतर विचार से इस नए दल का जन्म हुआ। यह पहला राजनीतिक दल था, जो राज्यों में पहले बना और राष्ट्रीय स्तर पर बाद में। 21 अक्तूबर, 1951 को डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में भारतीय जनसंघ का राष्ट्रीय स्तर पर गठन हुआ। कांग्रेस के वैचारिक अँधेरे को चीरते हुए एक नए ध्रुव तारे का वह उदय था। इस उद्धरण से जनसंघ की विचार यात्रा प्रारंभ होती है। 'कांग्रेस ने देश में तीन भयंकर भूलें की हैं। पहली, बिना किसी आदर्श के कार्य किया है। दूसरी, केवल अपनी पार्टी की स्वार्थसिद्धि की है। तीसरी, यदि आदर्श सम्मुख रखा भी तो वह विदेशी।' इसी तरह यह कथन नेहरू के विरोध का कारण समझाता है। 'पंडित नेहरू का विरोध भी हम इसलिए करते हैं कि वे अंग्रेज़ियत को बनाए रखना चाहते हैं, जो देश के लिए हितकर नहीं है। संस्कृति किसी मज़हब की नहीं होती। देश की होती है।'

हर राजनीतिक दल से भिन्न थी जनसंघ की दृष्टि। उसके कुछ सूत्र शुरू में ही प्रकट हुए। जनसंघ की दृष्टि को समझने के लिए स्थापना समारोह के प्रतीक सहायक हैं। वंदेमातरम् से समारोह का प्रारंभ हुआ। मंच पर डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के साथ अनेक ऐसे नेता थे, जो नई संभावनाओं को अपने आप में समेटे हुए थे। मंच के परदे पर शिवाजी, अर्जुन को धनुष उठाने के लिए समझाते भगवान् कृष्ण, राणा प्रताप और दीपक के चित्र थे। साफ़ है कि मंच के वे चित्र प्रतीक के रूप में दिखाए गए। दीपक भले ही दो क़दम की रोशनी देता हो, पर उस रोशनी से धैर्यपूर्वक हज़ारों किलोमीटर की यात्रा की जा सकती है। यही उस दिन दीपक ने उपस्थित प्रतिनिधियों को समझाया होगा। भगवान् कृष्ण के समझाने को इतिहास में देखें तो जनसंघ उस समय अनीतियों के प्रतीक कांग्रेस के विरुद्ध महाभारत की घोषणा थी।

जिस तरह डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने नेहरू मंत्रिमंडल से इस्तीफ़ा देकर भारतीय

जनसंघ बनवाया, उसी तरह डॉ. भीमराव अंबेडकर ने इस्तीफ़ा देकर आल इंडिया शिड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन नामक राजनीतिक दल बनाया। अपने भाषणों में वे कहते थे कि कांग्रेस ने निचली जातियों के लिए कुछ नहीं किया। पुराना शोषण जारी है। भेदभाव बना हुआ है। वे कांग्रेस को धर्मशाला कहते थे, जिसमें विचारों की एकता नहीं है। क्या अजब संयोग है कि डॉ. अंबेडकर की पार्टी को हाथी चुनाव चिह्न मिला था, जो इस समय बसपा का है। पहले आम चुनाव की मतदान प्रक्रिया फरवरी 1952 में समाप्त हुई। मतगणना से परिणाम सामने आए। लोकसभा की 497 सीटों में कांग्रेस को 362 मिलीं। पूरे विपक्ष को 135 सीटें मिलीं। लोकसभा में कम्युनिस्ट पार्टी विपक्ष की सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी। राज्यों में 3280 विधानसभा सीटों में उसे 2247 मिलीं। परिणाम पर विपक्ष की प्रतिक्रिया थी कि यह जनमत का सही प्रतिनिधित्व नहीं करता। आधे से अधिक मतदाताओं ने कांग्रेस के विरोध में वोट दिया था। कांग्रेस को लोकसभा के चुनाव में 45 फ़ीसद मत मिले और सीटें मिलीं क़रीब 75 फ़ीसद। चुनाव प्रणाली की यह विसंगति अब तक बनी हुई है। सबसे बुरी पराजय बी.आर. अंबेडकर की हुई।

भारतीय जनसंघ ने उस चुनाव में 93 सीटों पर उम्मीदवार खड़े किए थे। जीतकर आए तीन। समाजवादी पार्टी के नेता लोकप्रिय थे। पर उस पार्टी को वैसी सफलता नहीं मिली, जिसकी वे आशा करते थे। उन्हें 12 सीटें ही मिल पाईं । किसान मज़दूर प्रजा पार्टी को 9 सीटें मिली थीं। आचार्य जे.बी. कृपलानी खुद चुनाव हार गए थे। लेकिन उनकी पत्नी सुचेता कृपलानी नई दिल्ली से चुनाव जीत गई थीं। उस चुनाव में कांग्रेस पर सत्ता के दुरुपयोग और धाँधली के आरोप लगे। वहीं यह भी साबित हुआ कि मतदाताओं ने कांग्रेस को अपनाया। उसे आज़ादी की लड़ाई का वारिस माना। उस चुनाव में 59 राजनीतिक दल मैदान में थे। 17 अप्रैल, 1952 को पहली निर्वाचित लोकसभा का गठन हुआ। पहली लोकसभा के आरंभिक काल में डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी का निर्माण किया। वह गठबंधन का पहला प्रयोग था। उसमें जनसंघ, हिंदू महासभा, अकाली दल और गणतंत्र परिषद् जैसे दल शामिल थे। कुछ निर्दलीय सांसद भी इस गठबंधन में शामिल हो गए। 1952 के मध्य काल में इस दल के सदस्यों की संख्या 32 हो गई थी।

आम चुनाव के बाद भारतीय जनसंघ का पहला अधिवेशन 29, 30, 31 दिसंबर, 1952 को कानपुर में हुआ। दीनदयाल उपाध्याय महामंत्री निर्वाचित हुए। अधिवेशन में उनकी प्रतिभा प्रकट हुई। जिससे प्रभावित होकर डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने कहा कि 'अगर मुझे दो दीनदयाल मिल जाएँ तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूँगा।' कानपुर अधिवेशन में जम्मू-कश्मीर की विस्फोटक स्थिति पर विचार हुआ। जिस समय अधिवेशन हो रहा था, उस समय तकलीफ़देह ख़बरें वहाँ से आ रही थीं। राम बन में गोली चलने और लोगों के घायल होने की सूचनाओं को समस्या की समग्रता में जनसंघ ने देखा।

नेहरू सरकार को सुझाया कि 'भारतीय जनसंघ का मत है कि यदि सरकार झूठे सम्मान एवं ग़लत नीतियों को छोड़कर वास्तविकता को समझे तो अभी भी समस्या का शांति एवं सम्मानपूर्वक हल निकाला जा सकता है।' इसके लिए जनसंघ की ओर से निश्चित सुझाव भी रखे गए। एक, 'प्रजा परिषद् एवं अब्दुल्ला सरकार के प्रतिनिधियों की शीघ्र ही एक गोलमेज़ परिषद् बुलाई जाए। पारस्परिक विश्वास एवं सद्भावना का वातावरण पैदा करने का यत्न किया जाए।' दो, 'शेख़ अब्दुल्ला को समझाया जाए कि जिस भारतीय विधान के बनाने में उनका हाथ रहा है, उसे वे स्वीकार करें, ताकि जम्मू व लद्दाख के निवासियों की भविष्य के संबंध की आशंका निर्मूल हो जाए तथा एक संयुक्त दल बनाकर पाकिस्तानी दुष्प्रयत्नों का मुक़ाबला एवं उसके द्वारा अधिकृत भूभाग को मुक्त कराने का प्रयत्न किया जाए।' तीन, 'यदि भारत सरकार शेख़ अब्दुल्ला को भारत का संविधान पूर्णतया स्वीकार करने के लिए राजी नहीं कर सकती तो जम्मू और लद्दाख के लोगों को भारतीय संविधान की सुविधाओं से वंचित न रखा जाए।' चार, 'जम्मू कश्मीर के अधिकतम भूभाग पर एक संविधान को लागू करना है। वह अधिकतम संपूर्ण जम्मू और कश्मीर राज्य सहित हो।' इन सुझावों पर अमल के लिए जनसंघ ने जनजागरण का मार्ग चुना। प्रजा परिषद् के आंदोलन को समर्थन देने का वहाँ निर्णय हुआ।

बात यह थी कि शेख़ अब्दुल्ला की नीतियों के विरुद्ध जम्मू में आक्रोश भड़क उठा। यों तो प्रजा परिषद् का गठन 1947 में ही हुआ था, लेकिन आंदोलन के मार्ग पर चलने की विवशता उसके सामने शेख़ के अलगाववादी रुझान के सार्वजनिक हो जाने के बाद ही पैदा हुई। जैसा प्राय: होता है, यह आंदोलन भी छात्रों के असंतोष के कारण ही आरंभ हुआ। जम्मू के गांधी मेमोरियल कॉलेज के एक समारोह में नेशनल कॉन्फ्रेंस का झंडा फहराने के विरोध में छात्रों ने प्रदर्शन किया। इस समारोह में शेख़ अब्दुल्ला विशेष मेहमान थे। उनके इशारे पर दमनचक्र आरंभ हुआ। लेकिन इससे छात्र आंदोलन दबने के बदले और तीव्र हो गया। छात्रों की आपत्ति थी कि कश्मीर सरकार नेशनल कॉन्फ्रेंस के झंडे को ही राज्य का झंडा बनाने का प्रयास कर रही है। पुलिस और छात्रों में आमने-सामने के टकराव के पश्चात् स्थिति गंभीर हो गई, क्योंकि अब तक नगर के सभी कॉलेजों और विद्यालयों के छात्र आंदोलन में कूद पड़े थे। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए प्रजा परिषद् निरपेक्ष नहीं रह सकी। सरकार ने नगर में कर्फ़्यू के दौरान ही प्रेमनाथ डोगरा समेत प्रजा परिषद् के नेताओं की धरपकड़ आरंभ कर दी। फिर लोगों पर दमन और गोलियाँ चलाने का एक लंबा सिलसिला आरंभ हो गया, जिसने देश का ध्यान खींचा। आगरा की एक जनसभा में जनसंघ के महामंत्री के रूप में दीनदयाल ने स्पष्ट किया—'शेख़ अब्दुल्ला ने भारत के साथ विश्वासघात किया है, कश्मीर को भारत का अविभाज्य अंग बनाना ही होगा। इसके लिए अगर हमें आंदोलन भी करना पड़े तो हम करेंगे।'

उस समय प्रजा परिषद् के प्रधान पंडित प्रेमनाथ डोगरा और दुर्गा दास वर्मा ने पूरे

देश का दौरा कर लोगों को वस्तुस्थिति से अवगत कराया। उसी समय हैदराबाद में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था, जहाँ शेख़ अब्दुल्ला उपस्थित थे। शेख़ अब्दुल्ला ने अपने भाषण से कांग्रेस को भ्रमित कर लिया। शेख़ अब्दुल्ला की चालाकी काम कर गई। कांग्रेस अधिवेशन से जो उम्मीदें की जा रही थीं, उन पर पानी फिर गया। हैदराबाद अधिवेशन से लौटने के बाद शेख़ अब्दुल्ला ने जम्मू की जनता पर जुल्म ढाने की रफ़्तार तेज़ कर दी। दूसरी तरफ़ 9 जनवरी, 1953 को डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने प्रधानमंत्री नेहरू और शेख़ अब्दुल्ला को पत्र लिखा। माँग की कि प्रजा परिषद् की न्यायपूर्ण माँगों को सरकार माने। चेतावनी भी दी कि अगर ऐसा नहीं हुआ तो वे सत्याग्रह का मार्ग अपनाएँगे। नेहरू का जवाब उन्हें 11 दिन बाद मिला। डॉ. मुखर्जी समझ गए कि नेहरू अपना हठ छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। नेहरू का जवाब पाकर डॉ. मुखर्जी ने जनसंघ के महासचिव दीनदयाल उपाध्याय को लिखा कि 'आंदोलन अवश्य करना पड़ेगा। ऐसी उम्मीद नहीं दिखती कि नेहरू अपना ग़लत हठ छोड़ेंगे।'

इसके बावजूद डॉ. मुखर्जी ने पत्र-व्यवहार जारी रखा। वह पत्र व्यवहार 9 जनवरी से 23 फरवरी तक चलता रहा। डॉ. मुखर्जी ने नेहरू को 11 पत्र और शेख़ अब्दुल्ला को 6 पत्र लिखे थे। शेख़ अब्दुल्ला के असली मंसूबों का वे पर्दाफ़ाश करते रहे। नेहरू की नीति से होने वाले संकटों की चेतावनी देते रहे। डॉ. मुखर्जी के पत्र आख़िरकार 3 मार्च को अख़बारों में प्रकाशित कर दिए गए। हर पत्र में उन्होंने नेहरू से मिलने का समय माँगा। उलटे नेहरू डॉ. मुखर्जी को सलाह देते रहे कि वे जम्मू आंदोलन को ख़त्म कराएँ। डॉ. मुखर्जी इसके लिए तैयार थे, बशर्ते प्रधानमंत्री इसके लिए उचित वातावरण बनवाएँ। दूसरी तरफ़ दिसंबर, जनवरी और फरवरी में जम्मू आंदोलन के कार्यकर्ताओं पर बर्बर अत्याचार होते रहे। हर सीमा टूट चुकी थी। उसी समय 6 फरवरी को जनसंघ की कार्य समिति बैठी। पंडित दीनदयाल उपाध्याय अनेक राज्यों का दौरा कर लौटे थे। निर्णय हुआ कि 5 मार्च को जम्मू दिवस मनाया जाएगा। दिल्ली में पुरानी दिल्ली स्टेशन के सामने दंगल मैदान में सभा हुई। स्वामी करपात्री ने अध्यक्षता की। डॉ. मुखर्जी वहाँ ज़िंदाबाद के नारों के बीच बोले। जम्मू आंदोलन पर हो रहे अत्याचारों से लोगों को अवगत कराया। उस समय वह नारा खूब चला—'नेहरू ज्यों-ज्यों गरजेगा, जनसंघ त्यों-त्यों बरसेगा।'

महीनों के आंदोलन के बाद डॉ. मुखर्जी ने जम्मू में सत्याग्रह का फ़ैसला किया। 8 मई, 1953 की सुबह उन्हें दिल्ली की जनता ने विदाई दी। वे जम्मू चलो के नारे को साकार करने जा रहे थे। प्रस्थान से पहले उन्होंने एक बयान दिया, 'जम्मू में सत्याग्रह 6 मास से चल रहा है। वहाँ 2600 व्यक्ति गिरफ़्तार हो चुके हैं। तीस सत्याग्रहियों को गोली का शिकार बनाया गया है। दिल्ली और पंजाब में इस आंदोलन को चले दो माह से भी अधिक हो गए हैं और उन दोनों तथा अन्य निकटवर्ती प्रदेशों में 1600 से अधिक सत्याग्रही गिरफ़्तार हो चुके हैं। उत्तेजनापूर्ण दमनचक्र आतंक और ब्रिटिश शासन का स्मरण कराने

वाले अत्याचारों के बावजूद यह आंदोलन हिंसा तथा अन्य किसी भी सांप्रदायिक आधार से पृथक् रहा है।' उन्होंने अपने बयान में यह जोड़ा कि 'यद्यपि यह आंदोलन दिल्ली और पंजाब के कुछ हिस्सों तक सीमित रहा है, तथापि इसे अखिल भारतीय स्तर पर लाने के लिए राजधानी में देश के विभिन्न भागों से बड़ी भारी संख्या में सत्याग्रही धड़ाधड़ आ रहे हैं। वे अपने-अपने क्षेत्रों से लोगों की शुभकामनाएँ और सहयोग ला रहे हैं, और जम्मू में जुल्म के बावजूद लोग निर्भीक हैं और अधिकारियों के कोप तथा दमन नीति का सामना करने को तैयार हैं।' वस्तुस्थिति को बताकर उन्होंने अपनी यात्रा के बारे में कहा कि 'मेरा जम्मू जाने का उद्देश्य यही है कि मैं वहाँ की स्थिति का सच्चा हाल जान सकूँ। मैं वहाँ प्रजा परिषद् के बाहर के लोगों से भी मिलूँगा। जम्मू की जनता की इच्छाओं को समझने का प्रयत्न करूँगा और यदि संभव हो सका तो आंदोलन को शांतिपूर्ण और आदरयुक्त ढंग से बंद करवाने का भी यत्न करूँगा। जो कि न केवल कश्मीर बल्कि संपूर्ण भारत के लिए न्यायपूर्ण व हित का होगा। यदि मुझे जम्मू जाने दिया गया तो मैं अपनी ओर से शेख़ अब्दुल्ला से व्यक्तिगत बातचीत करने का यत्न करूँगा।'

डॉ. मुखर्जी जम्मू पहुँचे। पठानकोट पहुँचने पर गुरदासपुर के डिप्टी कमिश्नर ने उनसे भेंट की और कहा, 'मुझे आदेश हुआ है कि आप और आपके साथियों को बिना परमिट ही जाने दूँ।' उस समय जम्मू-कश्मीर में प्रवेश के लिए एक परमिट की ज़रूरत होती थी। डिप्टी कमिश्नर की इस सूचना पर डॉ. मुखर्जी चिंतित हो उठे। यह बात प्रोफेसर बलराज मधोक ने उनकी जीवनी में लिखी है। चिंतित होने का कारण यह था कि उसी अफ़सर ने उन्हें जालंधर में ठीक उल्टी सूचना दी थी। इसलिए संदेहवश डॉ. मुखर्जी को चिंता हुई। जैसे ही डॉ. मुखर्जी रावी के पुल पर माधोपुर के चेक पोस्ट पहुँचे, कश्मीर की पुलिस ने उन्हें रोका। उन्हें गिरफ्तार किया गया। इस पर उनकी प्रतिक्रिया थी कि 'मुझे लगता है कि यह भारत तथा जम्मू-कश्मीर सरकार का सम्मिलित षड्यंत्र है।' उन्होंने देशवासियों को अटल बिहारी वाजपेयी के ज़रिए संदेश भिजवाया कि 'मैंने जम्मू-कश्मीर राज्य में प्रवेश कर लिया है, किंतु क़ैदी के रूप में।' 13 मई को एन.सी. चटर्जी ने लोकसभा में इस षड्यंत्र को उजागर किया। आश्चर्य तो तब हुआ जब पंडित नेहरू इस बात से साफ़ मुकर गए कि डिप्टी कमिश्नर ने डॉ. मुखर्जी से भेंट की थी। डॉ. मुखर्जी श्रीनगर की जेल में रखे गए। वहाँ 23 जून, 1953 को उनके शरीर का अंत हुआ। आज़ाद भारत में एक राजनीतिक जीवन की वह पहली रहस्यमय मृत्यु थी।

डॉ. मुखर्जी के देहावसान पर जम्मू के परेड ग्राउंड में विशाल शोक सभा अगले दिन यानी 24 जून को हुई। उसमें ही आंदोलन 13 दिनों के लिए स्थगित करने की घोषणा हुई। वह आंदोलन न्यायसंगत था। वह आंदोलन जम्मू और कश्मीर को भारत में विलय कराने के लिए था। जनसंघ ने दिल्ली को केंद्र बनाकर जो देशव्यापी सत्याग्रह चलाया, उसका संचालन दीनदयाल उपाध्याय कर रहे थे। डॉ. मुखर्जी ने जो-जो बातें

उठाई थीं, उन पर नेहरू को तब यक़ीन नहीं था, लेकिन उनके निधन के बाद वे सब सच साबित हुईं। नेहरू आरंभ में तो जम्मू के आंदोलन को कुछ असामाजिक तत्त्वों की गड़बड़ी ही कहते रहे, लेकिन खुफ़िया ब्यूरो की रिपोर्ट पर नेहरू की नींद टूटी। उन्हें शेख़ अब्दुल्ला को देशद्रोह के आरोप में गिरफ्तार करना पड़ा।

उस घटनाक्रम में अनेक नाटकीय मोड़ आए। डॉ. मुखर्जी की मृत्यु की ख़बर नेहरू को यूरोप में मिली। वहीं से उन्होंने संदेश भेजा कि 'मेरे दिल्ली आने पर वे मिलें।' शेख़ अब्दुल्ला दिल्ली आने से कतराते रहे। कहते रहे कि आ रहा हूँ। कुछ समय बाद आऊँगा। लेकिन वे आए नहीं। 3 जुलाई, 1953 को नेहरू ने शेख़ अब्दुल्ला को दिल्ली बुलाया। शेख़ ने आने से इनकार कर दिया। तब नेहरू का माथा ठनका। शेख़ अब्दुल्ला अमरीका और ब्रिटेन की मदद से 'स्वतंत्र कश्मीर के सपने बुनने लगे थे।' इसके प्रमाण और तथ्य नेहरू को नेशनल कॉन्फ्रेंस के ही एक धड़े ने दिए। लिहाजा 8 अगस्त, 1953 को शेख़ अब्दुल्ला हटाए गए।

1953 तक नेहरू शेख़ अब्दुल्ला के राजनीतिक चक्रव्यूह में फँस चुके थे और शेख़ के बारे में मोहभंग होने पर भी वे अपनी और भारत सरकार की नीतियों में कोई महत्त्वपूर्ण बदलाव नहीं ला सके। वे कई ऐसे क़दम उठा चुके थे कि उनके पाँव गहरे दलदल में फँस गए थे। वे जितना भी पाँव निकालने की कोशिश करते, उतने ही वे अंदर धँस जाते थे। वे माउंटबेटन की सलाह पर कश्मीर का मामला संयुक्त राष्ट्र ले जा चुके थे, जिसमें उस समय सोवियत विरोधी देशों का ही दबदबा था। न केवल शीतयुद्ध में अमरीका और सोवियत संघ आमने-सामने थे अपितु भारत को नेहरू के राजनीतिक झुकाव के कारण सोवियत समर्थक माना जाता था। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि कश्मीर में जो विवाद खड़ा किया गया था, उसके पीछे पश्चिम का अपना उद्देश्य था। कश्मीर पर आक्रमण ब्रिटिश कमांडरों की देखरेख में हुआ था। संयुक्त राष्ट्र ने पड़ोसी देश के विरुद्ध आक्रमण की अरजी को दो देशों के सीमा विवाद में बदलकर उसे स्थायी विवाद में परिवर्तित कर दिया। नेहरू ने आक्रमणकारियों को खदेड़ने के भारतीय सेना के सफल प्रयास को ब्रिटिश सरकार की धमकी पर बीच में ही रोककर युद्ध विराम कर दिया था। शेख़ अब्दुल्ला को राज्य के तीन क्षेत्रों—जम्मू, कश्मीर और लद्दाख के बीच स्थायी दुराव पैदा करने का मौक़ा दे दिया था। जम्मू-कश्मीर राज्य अंतरराष्ट्रीय राजनीति का मोहरा बन गया था। 'भारत की खोज' लिखने वाले नेहरू इस बात को नहीं समझ पाए कि जो ख़तरे अंग्रेज़ी साम्राज्य को थे, उन्हीं ख़तरों को स्वतंत्र भारत ने भी विरासत में प्राप्त किया है। उनको नकारने से वे लुप्त तो नहीं हो सकते। जो 'गिलगित गेम' अंग्रेज़ों के समय आरंभ हुआ था, उसमें केवल खिलाड़ी बदल गए हैं या उनकी वरीयता में बदलाव आया है, खेल तो वही है और उसके ख़तरे भी वही हैं।

—जवाहरलाल कौल

वाङ्मय संरचना

'एकात्म मानवदर्शन' के प्रणेता पं. दीनदयाल उपाध्याय के आलेखों, भाषणों, बौद्धिक वर्गों, वक्तव्यों एवं विविध संवादों ने भारतीयता के अधिष्ठान पर तात्कालिक समस्याओं का विवेचन, विश्लेषण एवं समाधान प्रस्तुत किया। इन सबसे भी कालजयी साहित्य का निर्माण हुआ। उनके जाने के पाँच दशकों बाद उनका संपूर्ण वाङ्मय प्रकाशित हुआ है। विलंब से ही सही, लेकिन उनके शताब्दी वर्ष पर उसका प्रकाशन एक ऐतिहासिक अवसर है। 15 खंडों में संपादित हुए उनके संपूर्ण साहित्य का यथासंभव संकलन हुआ है। आइए, हम उनका परिचय प्राप्त करें।

खंड एक : वर्ष 1940 से 1950 की सामग्री इस खंड में है। संघ प्रचारक के रूप में एक दशक में उनके द्वारा सृजित साहित्य का इसमें संकलन है। यह 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' के द्वितीय सरसंघचालक श्री मा.स. गोलवलकर परमपूजनीय श्रीगुरुजी को समर्पित है। श्रीगुरुजी का परिचय संघ के वरिष्ठ प्रचारक श्री रंगाहरि ने लिखा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के ही वर्तमान सरसंघचालक श्री मोहन भागवत इस खंड के भूमिका-लेखक हैं। सभी खंडों में उस काल के संदर्भ में एक अध्याय है 'वह काल'। इस खंड में इसका लेखन वरिष्ठ पत्रकार पद्मश्री श्री रामबहादुर राय ने किया है।

खंड दो : यह दो वर्षों का है—1951 तथा 1952। यह 'भारतीय जनसंघ' की स्थापना, प्रथम आम चुनाव तथा पंचवर्षीय योजना का काल है। यह डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी को समर्पित है। 'डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी शोध अधिष्ठान' के निदेशक श्री अनिर्बान गांगुली ने डॉ. मुखर्जी का परिचय लिखा है। इस खंड की भूमिका विख्यात इतिहासवेत्ता श्री देवेंद्र स्वरूप ने लिखी है। 'वह काल' अध्याय का आलेखन पद्मश्री श्री जवाहरलाल कौल ने किया है।

खंड तीन : वर्ष 1954-1955 का है। यह 'गोवा मुक्ति-संग्राम' का काल है। यह गोवा मुक्ति के लिए सत्याग्रह का नेतृत्व करनेवाले श्री जगन्नाथ राव जोशी को समर्पित है; उनका परिचय भाजपा के पूर्व राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री बलवीर पुंज ने लिखा है तथा इसकी भूमिका के लेखक जनसंघ के जन्मकाल से कार्यकर्ता रहे वरिष्ठ नेता डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा हैं। 'वह काल' के लेखक हैं—राजा राम मोहनराय पुस्तकालय प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री ब्रजकिशोर शर्मा।

खंड चार : वर्ष 1956-1957 का है। यह संघात्मक संविधान के अनुसार राज्य पुनर्गठन का काल है। यह 'भारतीय जनसंघ' के अध्यक्ष एवं जम्मू-कश्मीर में 'प्रजापरिषद्' के संस्थापक पं. प्रेमनाथ डोगरा को समर्पित है। उनका परिचय जम्मू-कश्मीर के उपमुख्यमंत्री श्री निर्मल सिंह ने लिखा है, भूमिका श्री रंगाहरि ने। 'वह काल' का आलेखन माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति श्री अच्युतानंद मिश्र ने किया है।

खंड पाँच : एक ही वर्ष सन् 1958 के दो खंड हैं पाँच व छह। दीनदयालजी के आर्थिक विचारों के परिपक्व होने का यह काल है। महान् गणितज्ञ एवं भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष रहे आचार्य देवा प्रसाद घोष को खंड पाँच समर्पित है। ऑर्गनाइजर के संपादक श्री प्रफुल्ल केतकर ने उनका परिचय लिखा है। हिमाचल प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री शांता कुमार ने भूमिका-आलेखन किया है। प्रसिद्ध विचारक श्री के.एन. गोविंदाचार्य ने 'वह काल' लिखा है।

खंड छह : इसमें दीनदयालजी की पुस्तक 'टू प्लांस : प्रोमिसेज : परफोर्मेंस : परस्पेक्टिव' संयोजित है तथा डॉ. भाई महावीर के द्वारा लिखी पुस्तक की समीक्षा का समाहन किया गया है। रा.स्व. संघ के उत्तर क्षेत्र के संघचालक एवं अर्थवेत्ता डॉ. बजरंगलाल गुप्त ने भूमिका लिखी है। इस खंड में 'वह काल' अध्याय नहीं है। यह खंड महान् अर्थचिंतक श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी को समर्पित किया गया है। उनका परिचय अ.भा. विद्यार्थी परिषद् के पूर्व अध्यक्ष श्री राजकुमार भाटिया ने लिखा है।

खंड सात : वर्ष 1959 का है। चीन द्वारा तिब्बत का अधिग्रहण कर भारत की सीमा का अतिक्रमण किया गया। यह दीनदयालजी को संघ प्रचारक बनानेवाले रा.स्व. संघ के पूर्व सह-सरकार्यवाह श्री भाऊराव देवरस को समर्पित है। उनका परिचय श्री अच्युतानंद मिश्र ने लिखा है। भूमिका-लेखन का कार्य 'विश्व हिंदू परिषद्' के राष्ट्रीय महामंत्री श्री चंपतराय ने किया है। वरिष्ठ पत्रकार डॉ. नंद किशोर त्रिखा ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड आठ : वर्ष 1960 का है। 'हमार ध्येय दर्शन' लेखमाला एवं 'जनसंघ ही क्यों' आलेख इसमें शामिल हैं। उत्तर प्रदेश की पहली महिला उपाध्यक्ष एवं जम्मू-कश्मीर सत्याग्रही श्रीमती हीराबाई अय्यर को यह खंड समर्पित है। श्री ब्रजकिशोर शर्मा ने उनका परिचय लिखा है। रा.स्व. संघ के पूर्व सह-सरकार्यवाह श्री मदनदास इसके भूमिका-लेखक तथा 'दीनदयाल शोध संस्थान' के प्रधान सचिव श्री अतुल जैन 'वह काल' के लेखक हैं।

खंड नौ : वर्ष 1961 का है। लोकमत परिष्कार का आलेखन, दलों की आचार संहिता के मुद्दे इसमें प्रमुख हैं। दीनदयालजी के साथी रहे तथा उनके बाद महामंत्री बने श्री सुंदर सिंह भंडारी को यह खंड समर्पित है। जयपुर के श्री इंदुशेखर 'तत्पुरुष' ने उनका परिचय लिखा है। रा.स्व. संघ के वर्तमान सरकार्यवाह श्री सुरेश (भय्याजी) जोशी ने इसकी भूमिका लिखी है तथा 'वह काल' का आलेखन श्री बलबीर पुंज ने किया है।

खंड दस : वर्ष 1962 का है। भारत चीन के आक्रमण से आक्रांत हुआ था। यह खंड लब्धप्रतिष्ठ राजनेता डॉ. संपूर्णानंद को समर्पित है, उन्होंने दीनदयालजी की 'पोलिटिकल डायरी' की भूमिका लिखी थी। इनका परिचय 'पाञ्चजन्य' के संपादक श्री हितेश शंकर ने लिखा है। भूमिका आलेखन का कार्य सह-सरकार्यवाह डॉ. कृष्ण गोपाल ने किया है। लब्धप्रतिष्ठ भारतविद् श्री बनवारी ने 'वह काल' लिखा है।

खंड ग्यारह : वर्ष 1963-64 का है। यह वही काल है, जब दीनदयालजी ने 'एकात्म मानववाद' का व्याख्यान किया था। यह खंड महान् भाषा एवं भारतविद् आचार्य रघुवीर को समर्पित है। उनका परिचय दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी प्राध्यापक डॉ. राजीव रंजन गिरि ने लिखा है। भारतमाता मंदिर के संस्थापक स्वामी सत्यमित्रानंद गिरि के विद्वान् शिष्य गोविंद गिरि महाराज ने इसकी भूमिका लिखी है। भाजपा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष एवं राज्यसभा सांसद डॉ. विनय सहस्रबुद्धे ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड बारह : वर्ष 1965 का है। कच्छ समझौता, पाकिस्तान से युद्ध, भारत की विजय एवं ताशकंद समझौते का यह काल है। संघ के तत्कालीन सरकार्यवाह श्री प्रभाकर बलवंत (भैयाजी) दाणी को यह खंड समर्पित है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के दिल्ली प्रांत सहसंघचालक अधिवक्ता श्री आलोक कुमार ने इनका परिचय लिखा है। बिहार राज्य के राज्यपाल श्री रामनाथ कोविंद ने इसकी भूमिका तथा प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. सीतेश आलोक ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड तेरह : वर्ष 1966 का है। स्वातंत्र्य वीर सावरकर का निधन, गोहत्या के

ख़िलाफ आंदोलन। दीनदयालजी के सहयोगी तथा ग्रामोदय प्रकल्पों के नियोजक दीनदयाल शोध संस्थान के संस्थापक श्री नानाजी देशमुख को यह खंड समर्पित है। उनका परिचय श्री देवेंद्र स्वरूप ने लिखा है। इस खंड की भूमिका उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री राम नाईक ने लिखी है। वरिष्ठ पत्रकार श्री राहुल देव 'वह काल' के लेखक हैं।

खंड चौदह : वर्ष 1967-68 का है। भारतीय राजनीति में एकदलीय एकाधिकार टूटने का यह काल है। दीनदयालजी अध्यक्ष चुने गए तथा जघन्य हत्या के शिकार हुए। इस खंड की भूमिका गुजरात के राज्यपाल प्रो. ओमप्रकाश कोहली ने लिखी है। 'वह काल' का आलेखन श्री जगदीश उपासने ने किया है। यह खंड दक्षिण भारत में 'जनसंघ' के कार्य को प्रारंभ करनेवाले तथा 'भारतीय जनता पार्टी' के राष्ट्रीय अध्यक्ष रहे श्री जना कृष्णमूर्ति को समर्पित है। उनका परिचय श्री ला. गणेशन ने लिखा है।

खंड पंद्रह : यह अंतिम खंड है। जिसकी तिथि ज्ञात नहीं, ऐसा साहित्य, इसमें संकलित है। महान् गांधीवादी एवं भारतविद् श्री धर्मपाल को यह खंड समर्पित है। डॉ. जितेंद्र कुमार बजाज ने उनका परिचय लिखा है। संघ के वरिष्ठ कार्यकर्ता तथा प्रख्यात पत्रकार श्री मा.गो. वैद्य ने इसकी भूमिका लिखी है। इस खंड में 'वह काल' नहीं है। दीनदयालजी संदर्भित 'अवसान' अध्याय का इसमें संयोजन किया गया है, जिसका आलेखन श्री रामबहादुर राय ने किया है।

—डॉ. महेश चंद्र शर्मा

अनुक्रमणिका

परिशिष्ट—

1

आसुरी जीवन का आदर्श ही पतन का कारण*

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह-प्रांत प्रचारक दीनदयालजी का बहराइच की सार्वजनिक सभा में भाषण।

अपने परंपरागत मूलभूत सिद्धांतों को भूल जाने तथा प्राकृतिक जीवन को न समझने के कारण ही समाज में चारों ओर कठिनाइयाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। जिन लोगों को हम सर्वशक्तिमान समझते थे, त्यागी जानते थे तथा जिन पर हमने अपनी सारी श्रद्धा उड़ेल दी—उन नेताओं के हाथ में शासन की बागडोर होने के बाद हम बाहर तथा अंदर सभी ओर से असफल हो रहे हैं। आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ गई हैं तथा दिनोदिन बड़े वेग के साथ बढ़ती जा रही हैं। इतना होने पर भी दलबंदी का ज़ोर बढ़ता जा रहा है, वर्ग-विद्वेष उभारा जा रहा है। हम मिट्टी को सोना बनाने की सोच रहे थे, किंतु उसके स्थान पर सोने को हाथ लगाते ही वह मिट्टी हो रहा है।

इसके लिए जब तक हम पचास वर्ष पूर्व का इतिहास नहीं देखते कि स्वराज्य किस चीज़ के लिए लाया गया, तब तक समस्या हल नहीं हो सकती। मूल कारण को दूर किए बिना इच्छाओं की पूर्ति तथा सुख संभव नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए बबूल के पेड़ को चाहे शरबत और चाहे पानी से सींचा जाए, उसे दुष्ट या सज्जन कोई भी सींचे, अंततः उसमें काँटे ही मिलेंगे। आम के लिए तो आम के पेड़ की आवश्यकता है। जिस आधार को लेकर हमारे नेता आज चल रहे हैं, उसे बदले बिना हमारा तथा देश का कल्याण संभव नहीं। अभारतीय विदेशी तथा भिखारी मनोवृत्ति को लेकर स्वराज्य की कल्पना महाराणा प्रताप का स्वराज्य नहीं हो सकती, उसके द्वारा गो-ब्राह्मण प्रतिपालन तथा

---

* देखें परिशिष्ट VIII, पृष्ठ 292।

स्वधर्म की रक्षा नहीं की जा सकती।

हमने तो आर्थिक आधार पर रोटी और कपड़े के लिए स्वराज्य का आंदोलन किया। हमने सोचा कि मैनचेस्टर की मिलें तथा लंकाशायर के कारख़ाने ही हमारे पतन के कारण हैं। हमारी ग़ुलामी आर्थिक ग़ुलामी है। हमारे स्वराज्य की कल्पना भोगप्रधान होने के कारण यहाँ से अंग्रेज़ों के जाते ही रोटी का बँटवारा शुरू हो गया। राजनीतिक पीड़ितों का एक वर्ग विशेष सुविधाएँ प्राप्त करने के प्रयत्न में लग गया। अपनी परंपरा तथा अपने इतिहास से स्फूर्ति न ग्रहण करते हुए, अमरीका एवं फ्रांस की राज्य क्रांतियों को आदर्श मानकर उनसे प्रेरणा ली गई। इसी कारण अंग्रेज़ों के चले जाने के बाद भी आज अंग्रेज़ियत विद्यमान है। आज हमारे दिमाग़ के ऊपर मार्क्स तथा रूस के सिद्धांतों का आधिपत्य है।

अत्यंत प्राचीन काल से भारतवर्ष अखंड; अविभाज्य एवं एक दृढ राष्ट्र रहा है। किंतु इस सिद्धांत को भुलाकर कश्मीर के भाग्य निर्णय का अधिकार वहाँ के 40 लाख निवासियों को दिए जाने की ग़लत घोषणा की जा रही है। कश्मीर भारतवर्ष का एक महत्त्वपूर्ण अंग सदैव से रहा है, उसे आत्मनिर्णय का कोई अधिकार नहीं हो सकता। कश्मीर भारतवर्ष का नंदनवन है। श्री स्वामी शंकराचार्य ने बौद्ध धर्म का मूलोच्छेदन करने के लिए कश्मीर में प्रवेश किया था तथा सनातन धर्म की प्रतिष्ठापना करते हुए उसके प्रतीक स्वरूप मंदिर का निर्माण किया था। 12 ज्योतिर्लिंगों के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण अमरनाथ कश्मीर में है, यह सर्वविदित है। कश्मीर भारत का अंग है, उसके विषय में निर्णय करने का अधिकार भारतवर्ष को होना चाहिए, न कि कश्मीर को। एक उदाहरण के तौर पर शरीर में अंगुली के फोड़े का ऑपरेशन करने का निर्णय अंगुली नहीं करती वरन् संपूर्ण शरीर तथा सत्-असत् का ज्ञान रखने वाली बुद्धि ही करती है। इस प्रकार कश्मीर भारतवर्ष के साथ रहेगा अथवा नहीं, इसका अधिकार कश्मीर को नहीं वरन् समूचे देश को है। जब तक हम कश्मीर के आक्रमण का प्रतिकार नहीं करते तथा एक आक्रमणकारी को अपनी पवित्र मातृभूमि से खदेड़कर बाहर नहीं निकाल देते, तब तक कश्मीर की समस्या हल नहीं हो सकती। हम पर आक्रमण हों और हम स्वार्थी दुनिया के समक्ष खड़े होकर न्याय की याचना करें, इससे बढ़कर अपमान का जीवन और क्या हो सकता है? जो अपनी रक्षा अपने आप नहीं कर सकता, उसको न्याय की अपेक्षा भी नहीं करनी चाहिए। आज कश्मीर के भाग्य का निर्णय स्वार्थों के आधार पर बने हुए साम्राज्यवादी आकांक्षाओं से परिपूर्ण संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा नहीं हो सकता। कश्मीर में हमारी सेनाएँ साम्राज्य निर्माण करने अथवा दया दिखाने के निमित्त नहीं गई थीं। आज वहाँ का जनमत भी यदि अराष्ट्रीय विचारधाराओं से प्रभावित होकर भारत की सेनाएँ हटाने के लिए कहे तो हम कभी स्वीकार नहीं करेंगे।

भारत के विधान में ग़लत सिद्धांतों को आधार बनाने के कारण ही हमने विधान में प्रांतों को स्वतंत्र राज्य तथा भारत को राज्यों का संघ घोषित किया है। यह अभारतीय विचार है। भारत एक और अखंड है। हाथ, पैर, आँख मिलाकर शरीर नहीं बना करता। शरीर में चैतन्य जीवन होने से ही सभी अंगों का अस्तित्व रहता है। आज जबकि एक ही दल सभी प्रांतों में सत्तारूढ़ है, तब तो दलबंदी का इतना तांडव दिखाई पड़ता है, किंतु जब अलग-अलग प्रांतों में सभी दलों के मंत्रिमंडल बनेंगे, तब देश की क्या दशा होगी, कहा नहीं जा सकता। इस प्रकार हमारी राजनीति ग़लत दिशा की ओर चल रही है। भारत की आत्मा धर्म है। यह देश सदैव से धर्म प्रधान देश रहा है। दुर्योधन का राज्य अधार्मिक था, इसलिए युधिष्ठिर ने धर्मराज्य की स्थापना के लिए संघर्ष किया। अधार्मिक राज्य में सदैव दुःख ही हुआ करते हैं। रावण के अधार्मिक राज्य में लंका तो सोने की हो सकती है, लेकिन राम राज्य नहीं बन सकता। इसके कारण ही आज सभी ओर दुःख-दैन्य दिखाई दे रहा है।

आज समाज में वर्ग-विद्वेष के आधार पर साम्य निर्माण करने का अच्छा प्रयत्न चल रहा है, किंतु उनको यह पता नहीं कि सच्चा साम्य तो आत्मीयता ही है। आज जीवन के स्तर को ऊँचा करने की बात कही जाती है अर्थात् अपनी आवश्यकताओं को अधिक-से-अधिक बढ़ाते हुए विषय वासनाओं के निमित्त सुखोपभोग के साधन इकट्ठा करना जीवन के स्तर को ऊँचा करना समझा जाता है।

भारतीय जीवन तो त्याग प्रधान जीवन रहा है। एक साधु के सम्मुख जो कि केवल लँगोट लगाकर निकलता है, हम श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते हैं। हमारे जीवन का आधार भोग-स्वार्थ न होकर प्रेम-त्याग तथा आत्मीयता रहा है। आज असुरों का जीवन ही हमारा आदर्श हो गया है, इसी कारण देश में दुःख-दैन्य का साम्राज्य दिखाई दे रहा है। नहीं तो जिस भारत ने आज तक दुनिया को भोजन दिया था, उसी को रोटी के लिए दूसरों के सामने हाथ फैलाना न पड़ता।

अतएव आज हम दृढ निश्चय के साथ अपनी शिक्षा नीति, आर्थिक नीति तथा राजनीति को भारतीय भावनाओं से ओतप्रोत करें, तभी हमारा तथा देश का कल्याण संभव है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इसी अभाव की पूर्ति में प्रयत्नशील है तथा भारत के कण-कण में प्रेम, आत्मीयता तथा सहानुभूति निर्माण करने का कार्य कर रहा है। हमको यह विश्वास है कि दुनिया के लोग पथभ्रष्ट हो गए हैं, किंतु इसकी चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। लोग गिरते रहते हैं और वृद्ध मरते ही रहते हैं, परंतु बच्चे जीवित रहते हैं। हमने इस समाज को जीवित रखने की इच्छा की है और जीवित ही रखेंगे।

हम शरीर के प्रत्येक अंग बाहु, आँख, कान तथा दिमाग़ को बलिष्ठ बनाते हुए जीवित रहने की इच्छा करें। हमें कोई मार नहीं सकता। जो चलते हैं, वही अपने ध्येय को

प्राप्त करते हैं। आज हम चलने का निश्चय करें, इस प्रकार सभी समस्याएँ सुलझ जाएँगी। हम और शीघ्र गति से चलें, हमें सभी वस्तुएँ प्राप्त होंगी। इसमें चिंता करने का कोई कारण नहीं है। महाराणा प्रताप ने 25 वर्षों तक जंगलों की खाक छानी, रोटी की चिंता नहीं की, यदि चिंता की तो अपने ध्येय पर दृढतर होकर चलने की। इस प्रकार हम देखेंगे कि उस परमवीर ने अपने बाहुबल से रोटी ही नहीं, अपने गत वैभव को प्राप्त कर लिया। स्वर्णिम भविष्य का निर्माण करके ही रहेंगे, इसे कोई रोक नहीं सकता। हमारा भारत फिर से जगद्गुरु बनेगा, बनेगा–बनेगा। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

—पाञ्चजन्य, वैशाख कृष्ण 13, 2008, (मई 3, 1951)

□

2

प्रयत्नों की दिशा भ्रामक होने के कारण ही असफलता

12 जून को 'कल्याण' के प्रधान संपादक श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार की अध्यक्षता में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्राथमिक प्रशिक्षण वर्ग (10 से 12 जून, 1951) का समारोप कार्यक्रम संपन्न हुआ। देवरिया में संपन्न इस वर्ग में गोरखपुर, बस्ती तथा आज़मगढ़ ज़िले के प्रशिक्षार्थी स्वयंसेवकों ने भी भाग लिया था। इस अवसर पर दीनदयालजी का संबोधन।

आज की समस्त अंतर्बाह्य कठिनाइयों का एकमेव कारण 'स्व' की स्पष्ट कल्पना का अभाव ही है, जिसके कारण आज तमाम नेताओं के प्रयत्नों के होते हुए भी स्वराज, स्वदेश तथा स्वधर्म की छीछालेदर हो रही है। अंतःकरण चाहे जितना भी शुद्ध क्यों न हो, किंतु प्रयत्नों की दिशा भ्रामक होने के कारण ही असफलता प्राप्त होती है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ लोगों में परानुकरण की प्रवृत्ति नष्ट कर 'स्व' की स्पष्ट कल्पना प्रदान करने में संलग्न है। वह लोगों में राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण द्वारा ही स्वदेश तथा स्वराज के समस्त अभावों एवं रोगों का निदान करना चाहता है, जिससे देश अपना पूर्ण गौरव प्राप्त कर सके।

—पाञ्चजन्य, जून 15, 1951

□

3

शिवाजी के स्वप्न को पूर्ण करने का संकल्प करें

लखनऊ में 'हिंदू साम्राज्य दिवस' (छत्रपति शिवाजी राज्याभिषेक दिवस) पर उत्तर प्रदेश के सह प्रांत प्रचारक दीनदयालजी का बौद्धिक वर्ग।

'छत्रपति शिवाजी' ने हिंदू राष्ट्र की आत्मा का साक्षात्कार किया था और अपने जीवनकाल में जब चारों ओर परकीयों के अत्याचार से देशवासी त्रस्त थे, एक हिंदू साम्राज्य का निर्माण कर उन्होंने सारे देश की जनता के सम्मुख आदर्श उपस्थित किया तथा उसको हिंदू राष्ट्र के ऐतिहासिक सत्य का साक्षात्कार कराया। बाद की घटनाओं के कारण यद्यपि उनका स्वप्न अधूरा ही रह गया, किंतु हम उस भग्न स्वप्न को पूर्ण करने के लिए ध्रुव संकल्प करें। यही देश के सारे वर्तमान दु:खों और कष्टों को दूर करने का एकमेव मार्ग है।

आज देश का नेतृत्व 60-60 या 70-70 वर्ष के बूढ़े नेताओं के हाथ में है। उनके कर्तृत्व, शक्ति, साहस और उत्साह के दिन पीछे छूट चुके हैं। देश के सम्मुख बड़ी समस्याओं के पहाड़ खड़े हैं। 60 वर्ष का बूढ़ा पहाड़ को सामने देखकर भयभीत हो जाता है। उसे लगता है, इस पर चढ़ने से कहीं लुढ़ककर मैं नीचे खड्डे में न गिर जाऊँ। उसके पैरों में चढ़ने की शक्ति नहीं होती और हृदय में आत्मविश्वास का अभाव रहता है। इसके

---

1. हिंदू साम्राज्य दिवस, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा अपनी सभी शाखाओं में मनाए जाने के लिए सुनिश्चित किए गए छह उत्सवों में से एक है। यह उत्सव ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी को मनाया जाता है। 1674 में शिवाजी ने हिंदू पद-पादशाही की स्थापना की थी।

विपरीत 15-20 वर्ष का तरुण हँसते-हँसते पहाड़ पर चढ़ सकता है। उसके पैरों में शक्ति और हृदय में साहस तथा आत्मविश्वास रहता है। यदि कोई कहे कि 60 वर्ष का अनुभव रखने वाले 20 वर्ष के तरुण के पैरों से अधिक पहाड़ पर चढ़ने की क्षमता रखते हैं तो ऐसा कहना हास्यास्पद ही होगा।

विजिगीषु अथवा कुछ भी क्यों न हो, अपने कार्य में सफल होने की दुर्दम्य महत्त्वाकांक्षा होनी चाहिए। हम लोगों के कहने की चिंता न करते हुए अपना कार्य करते चलें। लोगों ने शिवाजी को डरपोक, लुटेरा आदि सभी कुछ कहा, किंतु उनके हृदय में अपनी सफलता का विश्वास था। उसी के बल पर उन्होंने सारे शत्रुओं को नष्ट कर गो-ब्राह्मण प्रतिपालन करने वाले धर्म-राज्य की स्थापना की। आजकल के समान अपनी प्रभुता बढ़ाने के लिए राज्य प्राप्ति उनका उद्देश्य न था। हरिश्चंद्र आदि प्राचीन भारतीय राजाओं की परंपरा का पालन करते हुए उन्होंने स्वधर्म और स्वदेश की रक्षा के लिए राज्य किया, अपने स्वार्थ के लिए नहीं। इसी कृति के कारण उन्होंने अपने पुरुषार्थ से अर्जित किया हुआ राज्य अपने गुरु स्वामी रामदास[2] की झोली में दान-स्वरूप दे डाला। अत्याचारी, धर्म-विहीन राज्य को नष्ट करना ही हमारे देश का चिरंतन आदर्श है। आज सेक्युलर राज्य का नारा लगाया जा रहा है। किंतु देश की राष्ट्रीय परंपराओं और सांस्कृतिक जीवन पद्धति की अवमानना करना 'सेक्युलरिज़्म' नहीं है। भौतिकवाद पर आधारित सेक्युलरिज़्म का सिद्धांत हमारे देशवासियों के स्वभाव के अनुकूल नहीं हो सकता।

—पाञ्चजन्य, जून 17, 1951

□

2. समर्थ गुरु स्वामी रामदास (1608-1681) : अद्वैत वेदांत मत के प्रमुख संत व कवि तथा छत्रपति शिवाजी के गुरु थे।

4

गुरु पूजन कैसे करें?

संभवतः गुरु पूर्णिमा[1] के उत्सव पर यह दीनदयालजी का संघ शाखा में दिया गया बौद्धिक वर्ग है। पाञ्चजन्य में इसका उल्लेख नहीं है।

गुरु पूजा प्रतिवर्ष आती है तथा भारत के करोड़ों नर-नारी किसी-न-किसी रूप में इस उत्सव को मनाते हैं। हाँ, करोड़ों ऐसे भी हैं, जो इस उत्सव के महत्त्व को भूल गए। उनके लिए यह एक साधारण दिन है। वे न तो इसके महत्त्व को जानते हैं और न इसे किसी भी रूप में मनाते ही हैं। ऐसे भी लोग हैं, जो गुरुपूजा की अवहेलना करते हैं, 'गुरु पूजा' शब्द को लेकर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। दूसरों को गुरुपूजा करते देखकर वे 'गुरुडम फैला रहे हैं', यह कहकर शिष्ट शब्दों में अपने मन की ग्लानिप्रद भावना को व्यक्त करते हैं। वे मानें चाहे न मानें, गुरु तो उनके भी हैं और वे उसकी पूजा भी करते हैं। साक्षात् पूजा चाहे न करते हों, किंतु आत्मिक पूजा अवश्य करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि 'गुरु बिनु होइ न ज्ञान' और उनका समर्थन आज का मनोविज्ञान भी कर रहा है। मनुष्य जीवन में अनुकरण, संवेदना और सहानुभूति की प्रवृत्ति तथा शक्ति ही तो उसके ज्ञान का कारण होती है। अनुकरण उसी का किया जाता है, जिसको मनुष्य अपने से श्रेष्ठ समझता हो।

यदा यदा चरति श्रेष्ठस्तत्तदेवोत्तरोजनः
सः यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।

---

1. गुरु पूर्णिमा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा अपनी सभी शाखाओं में मनाए जाने के लिए सुनिश्चित किए गए छह उत्सवों में से एक है, यह पर्व प्रतिवर्ष आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को मनाया जाता है।

यह गीता में भी कहा है कि भौतिक क्षेत्र के समान ज्ञान के क्षेत्र में भी गुरुत्वाकर्षण का नियम लागू होता है। जिसको बड़ा माना, उसी की ओर हमारा मन आकर्षित होता है और उसकी क्रियाओं का अनुकरण, विचारों में संवेदना और भावनाओं के साथ सहानुभूति का भाव लेकर अपने जीवन पर उसकी छाप बैठा देता है। बस यह श्रेष्ठ पुरुष ही उसका गुरु है। उसके प्रति बरबस आदर की भावना हो जाती है। इतना ही नहीं, गुरु के समान बनने के प्रयत्न में पार्थिव पूजा चाहे न हो, 'शिवो भूत्वा शिवं यजेत' के अनुसार सच्चे अर्थों में पूजा अवश्य होती है। इस प्रकार इस जीवमान जगत् में, विशेषकर तर्कयुक्त कहे जाने वाले मानव में ऐसा कोई नहीं जो गुरु की सृष्टि न करता हो। हाँ, कबीर के अनुसार 'औरन को काफ़िर कहे अपना कुफ्र न सूझ', दूसरों को गुरुपूजा के लिए कुछ लोग भला-बुरा चाहे कह दें।

गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत

गुरुपूजा जब सर्वव्यापक है तो प्रश्न उठता है कि कौन से गुरु की पूजा की जाए? आज तो यह प्रश्न और भी महत्त्वपूर्ण हो गया है, क्योंकि आज के भारतीय जीवन की असंगति का यही कारण है। हम स्वतंत्र तो हो गए हैं किंतु हमारे राष्ट्र का गुरु अभी भी हमारे राष्ट्र के बाहर ही है। गुरुत्वाकर्षण केंद्र बाहर होने से किसी भी वस्तु की जो दशा होती है, वही दशा हमारे राष्ट्र की हो रही है। हम अनुकरण तो करते हैं किंतु अपने महापुरुषों का नहीं, बल्कि परायों का। हमारे प्रमाण और आप्त वाक्य, वेद, स्मृति, गीता और पुराण नहीं बल्कि मिल, हेगल, एडम स्मिथ, मार्क्स और एंजेल्स हो गए हैं। हमारा खान-पान, रहन-सहन और बोल-चाल सभी बाहरी प्रदेशों से प्रभावित हैं। बड़े वेग से हम उनके आदर्शों की ओर दौड़ रहे हैं और गुरुपूजा का मखौल भी उड़ाते हैं।

स्वतंत्रता और स्वधर्म

परतंत्रता और स्वतंत्रता का भेद शासन के सूत्रों का विदेशियों या स्वदेशियों के हाथ में रहना मात्र नहीं है। मानव मानव में भला भेद क्यों? माउंटबेटन से पंडित नेहरू भावना के क्षेत्र में चाहे अधिक प्रिय हों, किंतु सच्चे तर्कसम्मत वेदांती के लिए उनमें कोई अंतर नहीं। फिर क्या वेदांती स्वतंत्रता का पुजारी नहीं होता? देखने में तो आया है कि राष्ट्र ही नहीं, मानव और पशु, यहाँ तक कि विश्व के सभी पदार्थों में एक ही सत्य का दर्शन करने वाला वेदांती अधिक स्वतंत्रताप्रिय होता है। स्वामी विवेकानंद और रामतीर्थ[2] के जीवन में वेदांत के परमज्ञान और ईश्वर के साक्षात्कार के उपरांत भी उन्हें देश किसी भी अन्य

---

2. स्वामी रामतीर्थ (1873-1906) वेदांत परंपरा के संन्यासी व दार्शनिक। सन् 1900 में अमरीका और जापान प्रवास के दौरान सनातन धर्म का प्रचार किया।

देशभक्त से कम प्रिय नहीं था। विश्व कवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने अपनी मातृभूमि के लिए जिस स्वर्ग की कल्पना की है, उसमें यद्यपि एक ओर कहा है, *'Where the world has not been broken into fragments by narrow domestic walls'.* यानी जहाँ दुनिया संकीर्ण सोच की दीवारों से टुकड़ों में बँटी हुई नहीं है, किंतु दूसरी ओर प्रार्थना की है, *'into that heaven of freedom Oh Lord, let my country awake'.* अर्थात् हे प्रभु! स्वातंत्र्य के उसी स्वर्ग में मेरे देश को चैतन्य दो। यहाँ उन्होंने *'Let the world awake'* नहीं कहा, यह स्वर्ग भी उन्होंने अपने ही देश के लिए माँगा है, अर्थात् मानव मानव में भेद न करके भी स्वतंत्रता की कल्पना और आराधना के पीछे केवल सत्ताधीश व्यक्तियों का परिवर्तन मात्र नहीं है, बल्कि इससे कुछ अधिक है।

गीता में इसी स्वतंत्रता के भाव को दूसरे शब्दों में प्रकट किया गया है। भगवान् ने कहा है—

श्रेयान्स्वधर्मो विगुण:
परधर्मात्स्वनुतिष्ठतात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेय:
परधर्मो भयावह:॥

अपने धर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करना ही स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता में स्वधर्म सदैव अंतर्गत रहता है। स्वधर्म का अर्थ आज के पढ़े-लिखे लोग रिलीजन समझ लेते हैं किंतु इसका सच्चा अर्थ उपासना विधि नहीं अपितु हमारी धारणा करने वाली शक्ति है। पाश्चात्यों की भाषा में स्वधर्म पालन के अर्थ होंगे—विकास के लिए अवसर। स्वधर्म में ही विकास संभव है, परधर्म में नहीं। मछली का स्वधर्म पानी में रहना है तथा कुत्ते का भूमि पर। यदि हम मछली को ज़मीन पर रखें तथा कुत्ते को पानी में, तो दोनों ही मर जाएँगे। कारण, उन्होंने अपने धर्म को छोड़ दिया।

परतंत्रता में जब शासन सूत्र पराए हाथों में चले जाते हैं तो स्वधर्म पालन में अनेक प्रकार की बाधाएँ डाली जाती हैं। राष्ट्र के घटकों को धर्मभ्रष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है। इन बाधाओं और प्रयत्नों के सम्मुख जो झुक जाते हैं, वे तो राष्ट्र जीवन से पतित हो भौतिक रूप से ही नहीं, मानसिक और आत्मिक रूप से भी ग़ुलाम बन जाते हैं। जो बाधाओं से टक्कर लेते हैं, वे अपने शुद्ध स्वरूप को अधिकाधिक निखारते हुए एक दिन स्वतंत्रता देवी का साक्षात्कार करने में सफल होते हैं। अपने धर्म पालन के मार्ग में आई हुई बाधा को दूर करने के प्रयत्नों से प्राप्त स्वतंत्रता सदा स्वधर्म की पुजारी रहती है और ऐसा राष्ट्र अपनी ईश्वर-प्रदत्त बुद्धि और शक्ति का विकास करता हुआ अपना और विश्व दोनों का कल्याण करता है।

आज के शासक

आज भारत की शासन सत्ता देशज लोगों के हाथ में तो आ गई है, किंतु वे स्वधर्म भ्रष्ट हैं। उन्हें भारतीयता से प्रेम नहीं, वे भारतीय आदर्शों के अनुगामी नहीं। फलतः उनका शासन भारतीय विज्ञान का विकास नहीं कर पा रहा है। स्वतंत्रता की हमारी प्यास बुझी नहीं और न उसके अमृतफल ही चखने को मिले हैं। प्रत्येक परकीय शासक कुछ देशज लोगों को अपने धर्म में दीक्षित करने का प्रयत्न करता है, उनका प्रत्येक क्षेत्र में गुरु बन जाता है और इस प्रकार उनके बलबूते अपना शासन चलाता रहता है। मुसलिम शासकों ने यही किया। करोड़ों लोगों को भारतीय धर्म से भ्रष्ट कर अपने मजहब में और उसके द्वारा अपने धर्म में दीक्षित किया। फलतः मुसलिम उपासना-विधि को स्वीकार करने वाला हिंदू स्वधर्म भ्रष्ट होकर भारतीयता का विरोधी हो गया। उसने भारत की भूमि को दारुल हरब[3], भारत के निवासियों को काफ़िर और भारत की संस्कृति को बेगानी समझना शुरू किया। ऐसे लोगों ने जिस परंपरा का विकास किया, वह भारत की न होकर फारस और अरब की परंपरा थी और इसीलिए उनका विरोध हरेक स्वतंत्रता प्रेमी को करना पड़ा। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगज़ेब सभी देशज थे, किंतु उनका राज्य स्वराज्य नहीं था। केवल इसीलिए कि उसमें स्वधर्म पालन की सुविधा नहीं थी।

मुसलमानों के समान अंग्रेज़ों ने भी भारतीयों को धर्मभ्रष्ट किया। किंतु उन्होंने मज़हब परिवर्तन की बीच की कड़ी पर विशेष बल नहीं दिया। फलस्वरूप हमारे लिए इन धर्मभ्रष्टों को पहचानना भी कठिन हो गया। इतना ही नहीं, मुसलिम काल में धर्मभ्रष्टों का बहिष्कार करके जहाँ हमने अपनी विशुद्ध राष्ट्रीय परंपरा की संख्या बल में कुछ कमी होने पर भी रक्षा की थी, वहाँ अंग्रेज़ी काल में ये धर्मभ्रष्ट व्यक्ति उलटे हमारे नेता बनकर हमें भी पतन की ओर खींचने लगे। आज देश की बागडोर इन नेताओं के ही हाथ में है जो कि देशज होते हुए भी कुतुबुद्दीन, अलाउद्दीन, मुहम्मद तुगलक, फ़िरोजशाह तुगलक, शेरशाह, अकबर और औरंगज़ेब से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं। जैसे उनका गुरुत्वाकर्षण केंद्र भारतीय जीवन में नहीं था, वैसे इन नेताओं का भी नहीं है।

अंग्रेज़ों की पद्धति

अंग्रेज़ों ने धर्म परिवर्तन कैसे प्रयत्नपूर्वक किया, यह केवल लॉर्ड मैकाले के बहनोई सर चार्ल्स ट्रेवेलियन[4] के एक उद्धरण से स्पष्ट हो जाएगा। 23 जून, 1853 को हाउस ऑफ लॉर्ड्स की सेलेक्ट कमेटी के सम्मुख गवाही देते समय कहा था—

---

3. दारुल हरब : इसलामिक समाजशास्त्र के अनुसार युद्ध का क्षेत्र, ग़ैर मुसलमानों का देश।
4. चार्ल्स ट्रेवेलियन : (1807-1886), ब्रिटिश सिविल सेवक व ब्रिटिश उपनिवेशों में प्रशासक थे। कलकत्ता में कई वर्षों तक ब्रिटिश शासन के लिए काम किया।

"According to the unmitigated native system the Mahomedans regard us as Kafirs, as infidels, usurpers of some of the finest realms of Islam; for it is a tenet of that dominant and warlike religion constantly to strive for political supremacy, and to hold all other races in subjection. According to the same original native views, the Hindoos regard us as 'mlechhas' that is impure, outcasts, with whom no communion ought to be held; and, they, all of them, both Hindoo and Mahomeden regard us as usurping foreigners, who have taken their country from them, and exclude them from the avenues to wealth and distinction. The effect of a training in European learning is to give an entirely new turn to the native mind. The youngmen educated in this way cease to strive often independence according to the original native model, and aim at improving the institutions of the country according to the English model, with the ultimate result of establishing constitutional Self-Government. They Cease to regard us as enemies and usurpers, and they look upon us as friends and patrons, and powerful beneficent persons, under whose protection all they have most at heart for the regeneration of their country, will gradually be worked out. According to the original native view of political change, we might be swept off the face of India in a day and as a matter of fact, those who look for the improvement of India according to this model are continually meditating on plots and conspiracies with that object. Whereas according to the new improved system, the object must be worked out by very gradual steps and ages may elapse before the ultimate will be attained, and in the meantime the minority, who already regard us with respect, and aim at regenerating their country with our assistance, will receive continual accessions, until in the course of time they become the majority. But when that will be none can say; nor can anyone say how long we may continue to be plastically connected with India even after the whole of civic employments have been transferred to the natives. Supposing our connection with India to cease according to the native views, it will cease suddenly–it will cease by violent convulsion–it will cease with most irritated feelings on both sides, and we shall leave a hostile country. Whereas if the connection ceases according to the other course of circumstances we shall leave a grateful country and a highly improved country."

[अपनी परंपरा से मिली मूल सोच के अनुसार, मुसलमान हमें काफ़िर, नास्तिक, इसलाम के दायरे की कुछ बेहतरीन चीज़ों को नाजायज ढंग से हड़प लेने वाला समझते हैं; क्योंकि इस वर्चस्ववादी और युद्धप्रेमी संप्रदाय का सिद्धांत है कि वह राजनीतिक वर्चस्व हासिल करने और अन्य नस्लों को अपनी अधीनता में लाने के लिए लगातार संघर्ष करता रहता है। इन्हीं मूल देसी विचारों के अनुसार हिंदू हमें

'म्लेच्छ' समझते हैं, जो अशुद्ध है, जाति से बहिष्कृत है, जिसके साथ किसी तरह का मेलजोल नहीं किया जाना चाहिए; और वे सभी, हिंदू और मुसलमान दोनों, हमें ऐसा कब्जा करने वाला विदेशी समझते हैं, जिसने उनसे उनका देश छीन लिया है, तथा धन और गौरव को उनकी पहुँच से दूर कर दिया है। यूरोपीय शिक्षा शैली में प्रशिक्षण का प्रभाव देसी मन को पूरी तरह से एक नया मोड़ दे देना है। इस शैली में शिक्षित युवा प्रायः मूल देशी मॉडल के अनुसार स्वतंत्रता प्राप्त करने का संघर्ष छोड़ देते हैं, और अंग्रेजी मॉडल के अनुसार देश की संस्थाओं में ऐसा सुधार लाने का प्रयास करते हैं, जिसका अंतिम परिणाम संवैधानिक स्वशासन की स्थापना हो। वे हमें दुश्मन और अनधिकृत क़ब्ज़ा करने वाला मानना छोड़ देते हैं और हमारी ओर मित्र व संरक्षक, शक्तिशाली परोपकारी व्यक्तियों के रूप में देखते हैं, जिनके संरक्षण में वे अपनी हार्दिक इच्छा के तौर पर, चाहते हैं कि उनके देश के उत्थान पर धीरे-धीरे काम किया जाए। राजनीतिक परिवर्तन के मूल देसी दृष्टिकोण के अनुसार, हमें भारत की धरती से एक दिन में उखाड़कर बाहर किया जा सकता है और वास्तविकता यह है कि जो लोग इस मॉडल के अनुसार भारत में सुधार की परिकल्पना करते हैं, वे लगातार इस लक्ष्य की रूपरेखा और षड्यंत्रों पर मनन कर रहे हैं। जबकि नई सुधरी हुई प्रणाली के अनुसार, इस उद्‌देश्य की दिशा में बहुत धीरे-धीरे क़दमों से बढ़ना होगा तथा अंतिम लक्ष्य तक पहुँचने में कई युग बीत सकते हैं, और इस दौरान वे थोड़े से लोग, जो पहले ही हमें सम्मान की दृष्टि से देखते हैं, और जिनका लक्ष्य अपने देश को हमारी मदद से नया जीवन प्रदान करना है, उन्हें लगातार उच्च पद दिए जाएँगे, जब तक कि वे समय के साथ-साथ बहुसंख्यक नहीं हो जाते। लेकिन यह कहा नहीं जा सकता कि ऐसा कब होगा; और न ही कोई यह कह सकता है कि जब सभी नागरिक रोज़गार पूरी तरह मूल निवासियों को सौंप दिए जा चुके होंगे, उसके बाद हम कितनी देर तक भारत के साथ कृत्रिम रूप से जुड़े रह सकते हैं। मान लें कि भारत के साथ हमारे संबंध देसी विचारों के अनुसार समाप्त होंगे, तो यह अचानक समाप्त हो जाएँगे—यह हिंसक संघर्षों द्वारा समाप्त होंगे—यह दोनों पक्षों में अत्यंत घृणास्पद भावनाओं के साथ समाप्त होंगे, और हम एक शत्रुतापूर्ण देश छोड़कर जाएँगे। जबकि अगर संबंधों का समापन परिस्थितियों की दूसरी धारा के अनुरूप होता है, तो हम एक कृतज्ञ देश और एक बेहद सुधरा हुआ देश छोड़कर जाएँगे।]

उद्धरण लंबा है किंतु यह अंग्रेज़ों के प्रयत्नों, उनकी शिक्षा पद्धति, शासन तंत्र, वैधानिक सुधारों, हमारे नेताओं की लड़ाइयों और अंत में स्वतंत्रता के नाम से प्राप्त देशज व्यक्तियों की शासन सत्ता पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। उपर्युक्त से हम यह

भी भली-भाँति समझ जाएँगे कि क्यों अपना संविधान पाश्चात्य आधार पर बना है, क्यों हम ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के सदस्य बने हुए हैं और क्यों धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक, सभी क्षेत्रों में भारतीय परंपराओं की अवहेलना करके पाश्चात्य आदर्शों की सृष्टि करना चाहते हैं। यूरोप आज तक हमारा गुरु रहा है और आज भी हम उसी की गुरुपूजा कर रहे हैं।

सच्चे गुरु की पूजा

इस प्रकार की गुरुपूजा भयावह है। इसलिए महर्षि दयानंद शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् जब स्वामी विरजानंद[5] के पास लौटकर पहुँचे तो उन्होंने गुरु दक्षिणा में वही माँग की कि सच्चे वैदिक धर्म और राष्ट्रीय परंपराओं का प्रचार करो। यही माँग स्वामी विवेकानंद से रामकृष्ण परमहंस ने की। वे सभी महापुरुष अपनी नहीं, बल्कि भारत के सच्चे गुरु की पूजा कराना चाहते थे। उसके लिए उन्होंने प्रयत्न किया। उसी की पूजा करने के लिए परम पूजनीय डॉक्टर हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की नींव डाली। आज हम पूजा करते समय प्रतिज्ञा करें कि भारतीय जीवन में पाश्चात्य गुरुओं की पूजा के कारण जो परानुकरण की ग़ुलामी की प्रवृत्ति हममें समा गई है, उसे समाप्त करेंगे। शुद्धि का रास्ता खुल गया है हमारा कर्तव्य है कि हम सभी धर्मभ्रष्टों को शुद्ध कर उन्हें पुन: भारतीय धर्म में दीक्षित कर उसके पुजारी बनाएँ। जिस दिन भारत का बच्चा-बच्चा अपने राष्ट्रगुरु की पूजा को ही अपने जीवन में स्थान देकर 'भारतीय भूत्वा भारतं यजेत्' के सिद्धांत को जीवन में क्रियान्वित करने का प्रयत्न करेगा, उसी दिन हमारी सच्ची गुरुपूजा होगी। आज गुरु से यही आशीर्वाद माँगें कि वह सौभाग्य का दिन शीघ्र ही देखने को मिले।

—पाञ्चजन्य, जुलाई 19, 1951

□

5. स्वामी विरजानंद (1873-1951) संस्कृत के विद्वान् व वैदिक गुरु। इन्होंने गुरु दक्षिणा के रूप में स्वामी दयानंद सरस्वती से समाज में व्याप्त कुरीतियों और अंधविश्वास को समाप्त करने की माँग की थी।

5

देश के भविष्य का निर्माण हम करेंगे

18 अगस्त, 1951 को कानपुर की संघ शाखा (गुरु नारायण खत्री कॉलेज का क्रीडांगन) में रक्षाबंधन[1] पर्व पर दीनदयालजी का बौद्धिक वर्ग।

आज मदोन्मत्त विश्व को शांति का मार्ग दिखाने का कार्य हमें करना है। यह तभी संभव हो सकता है, जबकि देश भारतीय संस्कृति के आधार पर परानुकरण वृत्ति का परित्याग कर व्यापार, सैन्य तथा शिक्षा की दृष्टि से पूर्णरूपेण समुन्नत हो और जनता अनीश्वरवाद एवं सांसारिक सुखोपभोग से अलिप्त अध्यात्मवाद के आधार पर चलने वाले भारतीय आदर्शों का अनुकरण पुन: आरंभ करे। भविष्य का निर्माण हम करेंगे, यह दृढ निश्चय इस पुण्य पर्व रक्षाबंधन के शुभ अवसर पर हम भारतीयों को करना है।

जिन शर्तों को मनवाकर जनता के प्रतिनिधि वामन भगवान् ने परकीय राजा बलि द्वारा शासित भारतभूमि का उद्धार किया था, उसी त्रिसूत्री योजना को कार्यान्वित करने की आवश्यकता आज भी है। प्राचीनकाल में जब चार्वाक तथा विरोचन[2] के अनात्मवादी 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' सिद्धांत का प्रभाव बढ़ रहा था, उस समय बलि से शासन सत्ता को अपने हाथ में लेकर व्यापार, शिक्षा तथा सैन्य का पूर्णरूपेण भारतीयकरण किया गया, जिससे भारत की उन्नति हो सकी। यद्यपि आज भारत सरकार ने सैन्य-विभाग में बहुत कुछ अंशों में भारतीयकरण किया है, परंतु जहाँ तक व्यापार और शिक्षा का संबंध है, इन

1. रक्षाबंधन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा अपनी सभी शाखाओं में मनाए जाने के लिए सुनिश्चित किए गए छह राष्ट्रीय उत्सवों में से एक है। यह श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को मनाया जाता है।
2. विरोचन : भारतीय पौराणिक गाथाओं के अनुसार भक्त प्रह्लाद के पुत्र, एक असुर राजा।

दोनों विभागों में ब्रिटिश शासनकाल से भी अधिक पतनावस्था है। धर्म-निरपेक्षता की रक्षा के भय से कांग्रेस सरकार कई ऐसी आवश्यक कुरीतियों को दूर करने में असमर्थ है, जिनको उनके नेताओं ने अपने गत वर्षों के जीवन में दूर करने का दृढ निश्चय किया था। विदेशी के बहिष्कार का प्रश्न, जिसके द्वारा करोड़ों रुपए का कपड़ा आग में जला दिया गया था, आज लगभग भुला दिया गया है। आजकल विदेशी माल बाज़ारों में भरा पड़ा है। जनता बड़े चाव से उनका उपभोग कर रही है और स्वदेशी के भक्त भी विदेशी वस्तुओं को अपना रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी, अंग्रेज़ों के आगमन से पहले भारत में 92 प्रतिशत शिक्षा थी, परंतु अंग्रेज़ों के समय में शिक्षा का औसत 12 प्रतिशत रह गया। परतंत्र भारत के प्रसिद्ध स्वामी विवेकानंद ने सन् 1895 में शिकागो में अध्यात्म तथा दर्शन आदि के तत्त्वों का सुंदर विवेचन किया था। परंतु स्वतंत्र भारत के प्रतिनिधि पं. जवाहरलाल नेहरू को अमरीका जाकर विचार करना पड़ा कि क्या बोलें। वस्तुत: हमारा स्वाभिमान विनष्ट हो गया है। अपने मन से हमने भारत की अखंडता का सिद्धांत, स्वत्व का अभिमान तथा भविष्य निर्माण का विचार त्याग दिया है। इंद्रिय लोलुपता के आधार पर कोड बिल पास करने का प्रयत्न किया जा रहा है। गोवध इसलिए बंद करना उचित नहीं समझा जा रहा है, क्योंकि सरकार को पाँच-सात करोड़ रुपए प्रतिवर्ष का घाटा हो जाएगा। कृषि-प्रधान देश भारत को अमरीका से गेहूँ माँगना पड़ रहा है। यहाँ का शिक्षित नवयुवक नौकरी के पीछे अपमान की ठोकरें खाता फिरता है। यह सब हमारी दुर्बलता का परिणाम है। यदि हम स्वयं निश्चय करें कि हम उत्पादक बनेंगे, चाहे सुई के ही क्यों न बनें तो हमारे बाज़ार स्वदेशी तथा स्वनिर्मित माल से भरे रह सकते हैं। एक समय इंग्लैंड भी आर्थिक दृष्टि से क्षत-विक्षत हो गया था, परंतु अपना सुधार उसने स्वयं किया।

नवयुवकों को भविष्य निर्माण के लिए चिंतन करना होगा। हमको आध्यात्मिक ज्ञान की परंपरा का अध्ययन करना होगा, जिससे हम सभी प्रकार के संकटों को हल करने में समर्थ सिद्ध हो सकें। आज रूस, चीन, इंग्लैंड, अमरीका आदि देशों के आदर्शों का अनुकरण न करते हुए हम भारतीय आदर्शों की उपासना करें, तभी हम विश्व को शांति का संदेश दे सकेंगे। इस मदोन्मत्त विश्व पर हावी होने की शक्ति प्राप्त किए बिना विश्व को शांति की ओर ले आना संभव नहीं। संभव है, ग़ुलामी की पीढ़ियों में पले व्यक्ति सफलतापूर्वक कार्य न कर पाएँ, परंतु कल के भारत के निर्माण का, 19 करोड़ डालर के विदेशी ऋण को चुकाने का तथा तमाम बुराइयों को समाप्त करने का दायित्व हमारे ऊपर है, इसलिए एकात्मकता तथा संगठन के महान् आदर्शों का अनुकरण हम सफलतापूर्वक करें। यही आज के दिन का संदेश है।

—पाञ्चजन्य, अगस्त 23, 1951

□

6

इन नेताओं ने देश की एकता स्थिर रखने का कभी प्रयत्न नहीं किया

यह भारतीय जनसंघ के प्रादेशिक महामंत्री (उत्तर प्रदेश) के नाते दीनदयालजी का प्रथम भाषण था। दीनदयालजी ने यह भाषण भारतीय जनसंघ की शाहजहाँपुर की शाखा के उद्‌घाटन के दौरान 20 सितंबर, 1951 को दिया। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री हरिनारायण वकील ने की थी।

विश्व को पालने वाला देश आज विदेशों से अन्न मँगाता है, जिस भारत के खेतों में सोने की बालियाँ लगती थीं, वह अन्न की भीख माँग रहा है। हमारे उत्थान और पतन का इतिहास बताता है कि हमने कभी इस प्रकार अन्न की भीख नहीं माँगी, अंग्रेज़ों के समय में हम नौकर थे, लेकिन आज फ़कीर बन गए हैं। इसके अतिरिक्त आज हिंदुस्थान की सीमा अरक्षित है, जिसके लिए करोड़ों रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा है। विभाजन दूर होने पर देश की समस्याएँ हल हो सकती हैं। हम पुनः सुख-शांति से रहकर अपने पूर्वजों का तर्पण सिंधु नदी के तट पर पूर्ववत् कर सकेंगे, ग़लत क़दम उठा कर भी ग़लती का समाधान कर उठाया गया क़दम पीछे हटा लेना ही बुद्धिमत्ता है, किंतु लगता है कि जिस कांग्रेस ने पाकिस्तान बन जाने दिया, वह अब उसे मिटाने का प्रयत्न करने के लिए तैयार नहीं है।

यह ठीक है कि आज के जनतंत्र के युग में विरोधी दल की महती आवश्यकता है, किंतु दल का निर्माण केवल विरोध के लिए नहीं होना चाहिए। जनसंघ कांग्रेस सरकार का विरोध करने के लिए नहीं अपितु राष्ट्र हितकारी मूलभूत तत्त्वों को संपूर्ण समाज के

समक्ष रखने के लिए तथा उसे उन तत्त्वों का अभ्यास कराने के हेतु स्थापित किया गया है। गत चार वर्षों से कांग्रेस के हाथ में शासन रहा। त्यागी समझकर जिनके प्रति जनता ने अपनी श्रद्धा प्रकट कर आदर प्रदर्शन किया, वे समय आने पर देश के नेता और फिर एक दिन शासक बन गए। पर देश की स्थिति कुरसियाँ बदल जाने से सुधरी् नहीं अपितु वह दिन-पर-दिन बिगड़ती ही गई और तब यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि कांग्रेस का निर्माण केवल अंग्रेज़ों का विरोध करने मात्र के लिए ही हुआ था, अपेक्षित रचनात्मक कार्य की पूर्ति उसके द्वारा संभव न हो सकी, विरोध में अनेकों मित्र मिल जाते हैं। हिटलर द्वारा विरोध करने के समय पश्चिम के सब राष्ट्र जर्मनी का दम भरने लग गए थे किंतु आज उसकी क्या स्थिति है? यही दशा आज अपने देश की दिखती है। हमें किसी का केवल विरोध करने के लिए नई पार्टी की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है कि जनता के समक्ष हम अपने विचारों की महत्ता रख सकें, क्योंकि आज सरकार बदल देने से काम नहीं चल सकता, सरकार बदलने से केवल टोपियाँ बदल जाएँगी, मंत्री बदल जाएँगे, सड़कों पर नए मंत्रियों की कारें दौड़-धूप मचाती दिखेंगी, पर इतने से ग़रीब जनता की समस्याएँ नहीं हल हो सकतीं।

भारतीय जनसंघ अपने मौलिक आधारभूत तत्त्वों को आपके सामने लाता है तथा उसे पूर्ण भरोसा है कि उनको अपनाकर समाज के सुख को अपना सुख तथा समाज के दुःख-दारिद्र्य को अपना दुःख-दारिद्र्य अनुभव करने वाले लोग सब प्रकार की समस्याएँ हल कर सकेंगे। जनसंघ एक देश, एक जन तथा एक संस्कृति के सिद्धांत पर विश्वास रखता है तथा इसी आधार पर राष्ट्र के निर्माण में प्रयत्नशील है।

देश के नेताओं ने देश की एकता स्थिर रखने का कभी आग्रह नहीं किया, जिसके कारण एक दिन उन्हें देश का विभाजन स्वीकार करना पड़ा और यही विभाजन देश की सारी समस्याओं का मूल कारण बन बैठा है। विस्थापितों की दशा अब भी दयनीय है, एक-एक तंबू में पूरा परिवार रह रहा है, लोग कीड़ों-मकोड़ों का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

देश की एक संस्कृति के सिद्धांत पर हमारा विश्वास है। अंग्रेज़ों ने देश में यह ज़हर बोया कि सिख, ईसाई तथा मुसलमान सब अलग-अलग हैं, पर यह बात सर्वथा ग़लत है। आज लोग कहते हैं कि मुसलमानों की संस्कृति अलग होनी चाहिए, किंतु अरब, फारस, इंडोनेशिया तथा चीन आदि देशों में रहने वाले मुसलमानों की भाषा, नाम, पहनावा, रहन-सहन क्या सब एक सा है। संस्कृति देश के आधार पर होती है, मजहब के आधार पर नहीं। फारस में मुसलमान रुस्तम-सोहराब[1] के गीत गाते हैं, जबकि रुस्तम

1. रुस्तम-सोहराब : ईसा की नवीं शताब्दी के समय फारस (ईरान) में एक विख्यात योद्धा थे रुस्तम और उनका पुत्र था सोहराब,जो कि पिता जैसा ही वीर था। रुस्तम फारस की सेना में थे तथा सोहराब यूनान की सेना में भरती हो गया। फारस-यूनान युद्ध में पिता के हाथों पुत्र की मृत्यु हो गई।

आदि मुसलमान नहीं थे। लेकिन भारत का मुसलिम यहाँ के राम-कृष्ण के नाम लेने में संकोच करता है। यह सभी दृष्टियों से अनुचित है। मुसलमानों को चाहिए कि वे ऐसे लोगों का सहारा छोड़ दें, जो पंचमांगी व विश्वासघाती होना सिखाते हों, क्योंकि वे पाकिस्तान को मक्का और लियाक़त[2] के मुक्के को अपना राष्ट्रीय निशान समझकर कभी इस देश के नहीं हो सकते।

जनसंघ का आधारभूत तत्त्व सर्वथा राष्ट्रीय है, सांप्रदायिक नहीं। किंतु यदि अपने अतीत-गौरव का गर्व करना तथा राम, कृष्ण के गीत गाना सांप्रदायिकता है तो हम सांप्रदायिक हैं। यदि शिवा, प्रताप व राजस्थान के त्याग के गीत गाने से कोई सांप्रदायिक हो जाता है तो हम सांप्रदायिक ही बने रहना चाहते हैं।

—पाञ्चजन्य, सितंबर 27, 1951

□

---

2. लियाक़त अली ख़ान पाकिस्तान के पहले प्रधानमंत्री थे। 16 अक्तूबर, 1951 को रावलपिंडी में लियाक़त अली की हत्या कर दी गई।

7

निज़ाम के साथ कड़ा व्यवहार हो

26 सितंबर को लखनऊ के नादानमहल पार्क की प्रायः 5000 शांत-स्तब्ध जनता के समक्ष हैदराबाद पर भारत सरकार के अनपेक्षित, कुशल और सामयिक अभियान एवं विजय पर बधाई देते हुए दीनदयालजी का सारगर्भित भाषण। इस विषय पर दो प्रस्ताव भी पास हुए।

निज़ाम को रजाकारों की कठपुतली समझना बड़ी भूल है। भारतवर्ष के पेट में छेद करने वाले निज़ाम ने आतंकवादियों को जनता का नाश करने के लिए खुली छूट दे दी थी और स्वयं भारत से युद्ध की घोषणा की। निज़ाम के साथ देशद्रोही और आतंकवादी की तरह कठोर व्यवहार होना चाहिए। जैसा माननीय पंतजी ने अपने पूर्व भाषण में कहा था, ''निज़ाम टट्टी की ओट में शिकार खेल रहा था। आज वह टट्टी टूट गई है, पर शिकार सुरक्षित रखा जा रहा है और उसके लिए नई टट्टी तैयार हो रही है।''

हैदराबाद रियासत और निज़ामशाही को हटाने के लिए रियासत को आंध्र, महाराष्ट्र और मध्य प्रांत में मिला देना चाहिए। वहाँ की राज्य कांग्रेस पद-लिप्सा छोड़कर इस संबंध में प्रयत्न करे। क्या हैदराबाद स्वतंत्र देश रहेगा, जो वहाँ विधान परिषद् बनने जा रही है?

—*पाञ्चजन्य, आश्विन कृष्ण 12, 2005*
(*सितंबर 27, 1951*)

□

8

अखंड भारत में ही हिंदू-मुसलमान दोनों की भलाई है

अलीगंज में भारतीय जनसंघ की नगर शाखा के उद्‌घाटन के समय सार्वजनिक सभा में भाषण।

देश विभाजन से भारतीय जनता को, चाहे वह हिंदू हो चाहे मुसलमान, भीषण मुसीबतों का सामना करना पड़ा है। अतः हिंदू-मुसलमान की भलाई एक ही बात में है कि दोनों अपने संयुक्त प्रयास से अखंड भारत का निर्माण करें।

कांग्रेसी नेताओं द्वारा जनसंघ को कुचल देने की धमकियाँ दी जा रही हैं। हमारे देश के संविधान ने पृथक्-पृथक् संस्थाएँ बनाकर शांतिमय ढंग से देशसेवा का अधिकार प्रत्येक नागरिक को प्रदान किया है। अतः जब तक देश में क़ानून है, हम इसके पूर्णाधिकारी हैं। हमारे इस अधिकार को विश्व की कोई शक्ति छीन नहीं सकती। अन्यायी शक्तियाँ दुनिया में अधिक दिन टिक भी नहीं सकतीं।

जनता भेड़-बकरी नहीं है, वह शक्तिशालिनी है। इसी शक्ति के सामने कंस, रावण, दुःशासन और हिरण्यकशिपु को पराभूत होना पड़ा था और औरंगज़ेब को मुँह की खानी पड़ी। अंग्रेज़ भी उसके सामने नहीं टिक पाए। अतएव यदि कोई जनसंघ को समाप्त करना चाहे तो वह असंभव होगा। हम तो अपने मार्ग पर चलते ही रहेंगे, क्योंकि हमारा मार्ग न्यायसंगत और वैधानिक है। किसी संस्था को कुचलने का सामर्थ्य सरकार में नहीं, अपितु जनता में रहता है। क्या अंग्रेज़ी शासन ने कांग्रेस को कुचल दिया था? निश्चय ही नहीं। पर जनता नाम से प्रेम नहीं करती। उसे तो काम प्यारा है। वह तो अपने सेवकों का ही मान करती है। राजमद के मतवालों का परिणाम भीषण हुआ है, यह इतिहास बताता है।

—पाञ्चजन्य, नवंबर 8, 1951

□

9

जनसंघ किसी दल से गठबंधन नहीं करेगा

भारतीय जनसंघ की स्थापना के तत्काल बाद ही भारत का प्रथम महानिर्वाचन (अक्तूबर 1951 से फरवरी 1952) संपन्न हुआ। जनसंघ तो अभी नवजात था, अतः अटकलें लगाई जा रही थीं कि जनसंघ हिंदू महासभा व रामराज्य परिषद् के साथ गठबंधन करके चुनाव लड़ेगा। तब दीनदयालजी ने लखनऊ में यह वक्तव्य दिया।

जनसंघ के अन्य दलों के साथ गठबंधन संबंधी जितने समाचार प्रकाशित हो रहे हैं, वे सब निराधार हैं।

हम किसी भी दल से किसी प्रकार का गठबंधन करने के लिए तैयार नहीं हैं, परंतु आगामी चुनावों के लिए हमने यह सोच रखा है कि भारतीय संस्कृति की रक्षा करने वाले किसी भी दल के मुख्य उम्मीदवार के ख़िलाफ़ अपना उम्मीदवार खड़ा नहीं करेंगे।'

—पाञ्चजन्य, नवंबर 15, 1951

□

10

कांग्रेस बनाम जनसंघ

स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद ध्येयविहीन कांग्रेस और उसके कार्यकर्ताओं के समक्ष यह समस्या थी कि अब कौन सी वस्तु शेष है, जिसके लिए अपनी सेवाएँ समर्पित की जाएँ? कांग्रेस की इस ध्येयविहीनता को महात्मा गांधी ने समझा था और इसलिए वे कांग्रेस को समाप्त कर देने पर बराबर ज़ोर देते थे, किंतु कांग्रेस के अन्य नेताओं ने कांग्रेस को अपने स्वार्थ का साधन बना लिया और उसे भंग नहीं किया।

उद्‌देश्य समाप्त होने पर संस्था निर्जीव हो जाती है। कांग्रेस का काम ख़त्म हो गया, अब उसे समाप्त कर देना चाहिए था। परंतु नेताओं ने इसे भी नहीं माना। फलत: मृत कांग्रेस के शव को पंडित नेहरू लिए घूम रहे हैं और उसे जिलाने का असफल प्रयत्न कर रहे हैं। कांग्रेस का शव अधिक सड़ जाने से गल-गल कर गिरा। फलत: अनेक पार्टियों का जन्म हुआ, जिसमें पहले सोशलिस्टों का नंबर है। ये सब पार्टियाँ केवल विरोध के लिए बनी हैं, जिनका कोई आधार नहीं। हमें तो अपनी समस्याओं को हल करने के लिए एक मौलिक आधार को लेना है। हम अनुरोध करने के लिए हैं, विरोध करने के लिए नहीं। जनसंघ केवल कांग्रेस के विरोध के लिए नहीं है। देश को सुखी तथा वैभवशाली बनाने का कार्य इसके सामने प्रमुख है।

कांग्रेस की ध्येयविहीनता ने देश में निराशा का वातावरण ला दिया। लोग अनुभव करने लगे कि उनका धर्म मिट रहा है, संस्कृति मिट रही है, जीवनोपयोगी वस्तुएँ अन्न-वस्त्र अलभ्य हो रहे हैं। अत: जन-मन में निराशा का प्रादुर्भाव होना स्वाभाविक था। जनसंघ का उदय इस निराशावाद के वातावरण को छिन्न-भिन्न कर देश में आशा और स्फूर्ति का संचार करने के लिए हुआ है।

स्वतंत्रता की लड़ाई में कांग्रेस केवल पेशवा[1] थी और 35 करोड़ जनता उसके साथ

1. पेशवा : छत्रपति शिवाजी द्वारा 1674 में स्थापित हिंदवी स्वराज्य में प्रधानमंत्री के पद को पेशवा कहा जाता था।

उस लड़ाई में संलग्न थी। नेता होने के नाते उसे स्वतंत्रता प्राप्ति का यश प्राप्त हुआ।

कांग्रेस के नेता आज यह कह रहे हैं कि स्वतंत्रता हमने दिलवाई है। उन लोगों से पूछना चाहिए कि योगी अरविंद जैसे लोग तथा जिन्होंने अंडमान में अपना जीवन व्यतीत किया और हँसते हुए स्वतंत्रता के लिए ही अपने जीवन की कुर्बानी की, क्या वे कांग्रेस के झंडे के नीचे आए थे? वासुदेव बलवंत फड़के[2] कांग्रेस से बाहर ही स्वतंत्रता के लिए कार्य कर रहे थे। रासबिहारी बोस, भगतसिंह तथा वीर सावरकर क्या कांग्रेसी थे? सुभाष चंद्र बोस ने भी जो महान् कार्य किए थे, वे भी कांग्रेस से अलग होने पर ही। परंतु इस सबका श्रेय कांग्रेस अपने ऊपर ले रही है। सच्ची बात तो यह है कि भारत की 40 करोड़ जनता ने स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी और हम सबने इस युद्ध में भाग लिया।

आज सभी प्रकार के आदर्शों से दूर होकर कांग्रेस उस समय के नेतृत्व की आड़ लेकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रही है। उस स्वार्थ-सिद्धि के लिए योग्यता-अयोग्यता इत्यादि का कुछ विचार नहीं रखा जा रहा है। अभी हाल में मंडी के राजा[3] को ब्राज़ील का राजदूत इसलिए बना दिया गया, क्योंकि उन्होंने राजकुमारी अमृत कौर[4] के विरोध से अपना नाम वापस ले लिया है। पता नहीं उनमें उस पद की कहाँ तक योग्यता है।

उसी प्रकार स्वार्थ की सिद्धि के लिए ही कांग्रेस सरकार ने कंट्रोल लगा रखा है। यदि कंट्रोल जनता की भलाई के लिए हो तो ठीक भी है, किंतु यहाँ पर वह इसलिए है कि उसके कारण व्यापारी और पूँजीपति कांग्रेस के अँगूठे के नीचे रहते हैं। वोट लेने के समय लोगों को धमकियाँ दी जाती हैं कि उनके लाइसेंस रद्द कर दिए जाएँगे। उनको याद दिलाया जाता है कि उन्हें कितने परमिट दिए गए हैं। इस प्रकार जनता को दुःख देने के लिए कांग्रेस और पूँजीपति मिल जाते हैं। अभी कुछ दिन पूर्व केवल अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए कांग्रेस सरकार ने 287 मन की चीनी मनमाने दामों में मिल मालिकों को बेचने की आज्ञा इसलिए दे दी थी कि उन्होंने कांग्रेस फंड में कुछ चंदा दे दिया था।

कांग्रेस ने देश में तीन भयंकर भूलें की हैं। पहली, बिना किसी आदर्श के कार्य किया है; दूसरी, केवल अपनी पार्टी की स्वार्थसिद्धि की है; तीसरी, यदि आदर्श सम्मुख रखा भी तो वह विदेशी। उदाहरणस्वरूप यदि आज हमारे देश में अन्न की कमी है तो उसके लिए हमने विदेशों से ट्रैक्टर मँगाए किंतु यहाँ चलेंगे कैसे? मकानों की कमी होने पर हमने सीमेंट, लोहा और ईंट जनता को देने के बजाय मकान बनाने की फैक्टरी

---

2. वासुदेव बलवंत फड़के (1845-1883) संभवतः पहले क्रांतिकारी थे, जिन्होंने अंग्रेज़ों को भारत से निकालने के लिए हथियारों का सहारा लिया, फड़के को आजीवन देश निकाला दिया गया और कारावास के दौरान 17 फरवरी, 1883 को इनका निधन हुआ। वे स्वामी दयानंद की प्रेरणा से विदेश गए थे।
3. राजा सर जोगिंदर सेन बहादुर (1931-1986) मंडी, हिमाचल प्रदेश के 18वें राजा थे। भारत सरकार ने इन्हें ब्राज़ील स्थित भारतीय दूतावास का राजदूत (1952-1956) नियुक्त किया।
4. राजकुमारी अमृतकौर (1889-1964) देश की पहली स्वास्थ्य मंत्री थीं।

स्थापित की और करोड़ों रुपए फूँक दिए।

भारतीय जनसंघ का उद्देश्य भारतीय जीवन के लिए अत्यंत पवित्र और स्फूर्तिदायक है। ये सिद्धांत और आदर्श नए नहीं हैं। वे इतने पुराने हैं कि जबसे मानव मानव को पहचानने लगा, प्रकृति का प्रादुर्भाव इस भूमि पर हुआ तथा भारतभूमि को पहचानने के साथ राष्ट्रीयता का उदय हुआ। केवल एक राष्ट्रीयता की भावना को लेकर, जिसको 'एकं सद्विप्रा: बहुधा वदन्ति' कहा गया है—जनसंघ खड़ा हुआ है। इसीलिए देश के कोने-कोने में जहाँ जनसंघ गया है, जनता में उसका आदर हुआ है।

भारतीय जनसंघ का जन्म देश के सम्मुख एक स्वदेशीय आदर्शवाद रखने के निमित्त हुआ और उसका आधार कुछ मर्यादाओं पर स्थिर है। प्रथम तो जनसंघ भौगोलिक मर्यादा को मानता है और यह कहता है कि देश का विभाजन ग़लत है। यह ध्यान रखना चाहिए कि यह कहना भावनाओं को उभारना नहीं है, वरन् कुछ तथ्यों को तर्क की कसौटी पर कसना है। आज हमारे देश में अन्न की कमी है और करोड़ों रुपयों का अन्न हमें बाहर से मँगाना पड़ता है। पाकिस्तान में वह बहुतायत से है। दूसरी ओर पाकिस्तान के पास कोयला, लोहा और कपड़ा नहीं है, जिसके लिए उसको परेशानी होती है। पूर्वी बंगाल में जूट सड़ रहा है, पश्चिम में जूट मिलें बंद हैं। पाकिस्तान में रुई बहुतायत है, हम उसे तेज़ दामों पर मिस्र या अमरीका से ख़रीद रहे हैं। यदि दोनों देश एक हो जाएँ तो आर्थिक दृष्टि से हम फिर स्वावलंबी बन सकते हैं और हमारी सारी समस्याएँ हल हो सकती हैं।

सुरक्षा की दृष्टि से हम अपने बजट का 55 प्रतिशत और पाकिस्तान 60 प्रतिशत केवल सेना पर व्यय कर रहे हैं, जिससे दोनों देशों की आर्थिक अवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। साथ-ही-साथ इस विभाजन के ही कारण हमें ब्रिटिश राष्ट्रमंडल[5] में रहकर अंग्रेज़ों की ग़ुलामी करनी पड़ रही है, क्योंकि दोनों को यह डर है कि एक के द्वारा उसका साथ छोड़ देने पर अंग्रेज़ दूसरे की अधिक सहायता करेगा।

सांप्रदायिक समस्या का भी हल इस विभाजन से नहीं हुआ, क्योंकि यदि कल 35 करोड़ में 10 करोड़ मुसलमान भारत में थे तो आज चार करोड़ रह गए हैं, किंतु वह समस्या हल नहीं हुई। दूसरी ओर पाकिस्तान में रह गए हिंदुओं पर अत्याचार और उनका निष्कासन हमारी आर्थिक तथा राजनीतिक दशा को हर समय चिंतायुक्त बनाए रखते हैं।

कश्मीर समस्या का भी सबसे सरल हल विभाजन का अंत है। इस प्रकार सब दृष्टियों से अखंडता अनिवार्य है। किंतु लोग कहते हैं कि यह बेमानी है। उत्तरी तथा

5. ब्रिटिश राष्ट्रमंडल : 1949 में स्थापित ऐसे 53 स्वतंत्र राष्ट्रों का संघ, जो कभी ब्रिटिश राजशाही के अधीन रहे थे। इनके बीच हर चार वर्ष के अंतराल पर राष्ट्रमंडल खेलों का आयोजन होता है।

दक्षिण कोरिया, मिस्र तथा सूडान और आयरलैंड इत्यादि की एकता की बात तथा उसका समर्थन करने वाले लोग भारत तथा पाकिस्तान की एकता को सुनकर केवल इसलिए बौखला जाते हैं कि उससे उनके स्वार्थों का हनन होता है। आठ साल पूर्व पाकिस्तान का बनना 'बेहूदा'[6] बात थी, किंतु वह बन गया। आज अखंडता 'बेहूदा' है, कल उन्हीं लोगों के सम्मुख वह भी हो जाएगा।

अखंड भारत की माँग हमारी नैतिक माँग है, क्योंकि श्री जिन्ना के अदला-बदली के प्रस्ताव को न मानकर अल्पसंख्यकों की रक्षा करने की शर्त हिंदुस्थान और पाकिस्तान दोनों के लिए कांग्रेस ने रखी थी। उस समय महात्माजी ने कहा था कि इस शर्त के पूरे न होने पर इनमें से कोई भी देश की अखंडता की माँग कर सकता है। हमने अपनी शर्त पूरी कर दी है और अपना अधिकार प्राप्त कर लिया है। चार करोड़ मुसलमानों की रक्षा करने के लिए हिंदुस्थान का प्रत्येक दल तैयार है परंतु पाकिस्तान ने इस शर्त को पूरा नहीं किया। पूर्वी बंगाल के हिंदुओं पर किया गया बर्बर अत्याचार ही प्रमाण के लिए पर्याप्त है। पंडित नेहरू इसके लिए आज क्या कर रहे हैं? सरदार पटेल तो सांप्रदायिक नहीं थे, उन्होंने भी कहा था निर्वासितों को रखने के लिए आधा बंगाल पाकिस्तान से माँगा जाएगा। आज इस प्रश्न को नेहरूजी क्यों नहीं रखते?

किंतु यह अखंडता किसी आक्रमण से नहीं प्राप्त होगी। यह समस्या का ठीक हल नहीं है। वह तभी होगा जब यहाँ का हिंदू और यहाँ का मुसलमान इन बातों को समझ लेगा कि उसका भला इसी में है और यह विचार दिनोदिन ज़ोर पकड़ते-पकड़ते एक दिन यह संभव हो जाएगा। विचारों के ही कारण भारत बँटा है, विचारों से ही यह एक होगा।

हमारी दूसरी मर्यादा एक राष्ट्र में विश्वास है। हम मुसलिम लीग के द्वि-राष्ट्रवाद को नहीं मानते। हमारा कहना यह है कि यदि फारस, चीन और तुर्की का मुसलमान अपने धर्म को मानता हुआ अलग-अलग राष्ट्रीयता मानता है तो भारत का मुसलमान ऐसा क्यों नहीं कर सकता? उन देशों में लोग अपने देश की भाषा और संस्कृति को मानते हैं। यहाँ भी मुसलमानों को इस देश की संस्कृति और राष्ट्रभाषा हिंदी को मानना चाहिए।

हमारी तीसरी मर्यादा धर्म की है। धर्म मज़हब नहीं है वरन् उससे ऊपर है। सहिष्णुता का सिद्धांत हम सदैव से मानते हैं। हम मज़हबी राज्य (पाकिस्तान की तरह) की भी कल्पना नहीं करते, न हम धर्मविहीन राज्य 'सेक्युलर' को समझ सकते हैं। हमारी इस मर्यादा के अनुसार प्रत्येक को अपने धर्म को मानने का अधिकार होगा, किंतु राज्य 'न्याय' का होगा। आज धर्मविहीन राज्य का नारा लगाने वाले नैतिकता तक को लोगों के हृदयों से निकाल दे रहे हैं, जो बहुत घातक है। देश की सभी समस्याओं का हल आध्यात्मिक तथा धार्मिक दृष्टि से बहुत सरलता से हो सकता है और महान् कार्य इसी

6. संकेत पंडित जवाहरलाल नेहरू के एक वक्तव्य की ओर है।

प्रेरणा से हुए भी हैं। स्वतंत्रता का भी आंदोलन तब तक ज़ोर नहीं पकड़ सका, जब तक उसमें आध्यात्मिकता नहीं आई। हम सब मर्यादा की रक्षा करना चाहते हैं।

जनसंघ केवल सुरक्षा उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करना चाहता है। शेष सभी उद्योग वह व्यक्तियों के हाथों में सौंप देना चाहता है किंतु वह इस बात का ध्यान रखेगा कि वे पूँजीपति बनकर अपने हाथ में व्यापार का एकाधिकार न कर लें। साथ-ही-साथ आज की पूँजी की कमी को दूर करने के लिए, जिसकी कि बड़े-बड़े उद्योगों में आवश्यकता है, हम कुटीर उद्योग धंधों का विकास करना चाहते हैं, जिसमें कि थोड़ी पूँजी में काम चल सकेगा और पूँजीपतियों को आश्वासन देने से भी मुक्ति मिल सकेगी। साथ-ही-साथ कुटीर धंधों के विकास से हम अपनी बेकारी की समस्या को भी दूर कर सकेंगे।

भारतीय जनसंघ विरोध के लिए विरोध नहीं करता। वह एक रचनात्मक कार्यक्रम लेकर आगे आया है और इसलिए उसे जनता का सहयोग अवश्य प्राप्त होगा।

पाँच वर्ष के अंदर देश में जो कार्य किया है, उसके लिए कांग्रेस वोट नहीं माँगती। कांग्रेस के अध्यक्ष पंडित नेहरू ने सोचा कि पिछले चुनावों में जब हमारी सरकार बनी थी तो हम देश के अंदर एक तूफ़ान अंग्रेज़ों के विरुद्ध खड़ा करते थे और उस तूफ़ान के उठने पर ही हमारी सरकारें बनती थीं। आज भी उन्होंने सलाह दी अपने कार्यकर्ताओं को देश के अंदर तूफ़ान पैदा करने के लिए। वह तूफ़ान देश में सांप्रदायिकता के विरोध में करने के लिए सलाह दी, न कि वे अगले पाँच वर्ष क्या करने वाले हैं, इस पर विचार के लिए। पंडित नेहरू केवल धमकियाँ और विरोध को छोड़कर रचनात्मक कार्य नहीं रख सकते। परंतु पंडित नेहरू को समझना चाहिए कि तूफ़ान पैदा करने के लिए देश के पत्ते-पत्ते को हिलाना पड़ेगा। देश की 35 करोड़ जनता के हृदय में तूफ़ान उत्पन्न करना पड़ेगा। केवल ताड़ के दो पत्तों के हिलने से तूफ़ान नहीं आ सकता। यदि यही वे करना चाहते हैं तो उन्हें राम, गुरु गोविंद सिंह, रहीम, रसखान, शिवाजी के विरुद्ध तूफ़ान उत्पन्न करना पड़ेगा।

मुसलमान कांग्रेस रूपी उस नाव में न बैठें, जिसमें छेद हो गया है। जिस नाव को हिंदुओं ने अपना ख़ून देकर बनाया था, उस नाव को डुबोने के लिए अब वे ही तैयार हैं। अत: उसके साथ चलने में मुसलमानों को कोई .फ़ायदा नहीं।

श्री टंडनजी को आज के ही कांग्रेसियों ने अपना नेता बनाया था, परंतु चुनाव जीतने के लिए उन्हें लातों से मार दिया। तो जो लोग अपने नेता को चुनाव जीतने के लिए ठुकरा देते हैं, वे ही चुनाव जीतने पर मुसलमानों को भी ठुकरा देंगे।

देश के प्रति जो गद्दारी करेगा, उसे ख़त्म कर दिया जाएगा, चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान। पंडित नेहरू का विरोध भी हम इसलिए करते हैं कि वे अंग्रेज़ियत को बनाए

रखना चाहते हैं, जो देश के लिए हितकर नहीं है। संस्कृति किसी मज़हब की नहीं होती, देश की होती है। यदि मज़हब की संस्कृति होती तो अरब, फारस आदि की एक संस्कृति होती, परंतु ऐसा नहीं है। हिंदुस्थान के मुसलमान यदि राम-कृष्ण को अपना आदर्श मानते, गंगा-जमुना को अपनी पवित्र नदी मानते हैं तो उनका मज़हब ख़तरे में नहीं पड़ जाता। महाकवि रहीम, रसखान तो मुसलमान ही थे, परंतु इस देश का वे गुणगान करते रहे तो हमने कभी नहीं कहा कि उनको हिंदी साहित्य से निकाल दिया जाए। अपितु उनका आदर किया। हम चाहते हैं कि हमारे देश के मुसलमान रहीम बनकर रहें। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि उनकी रक्षा, उनका उत्थान भारत की तैंतीस कोटि जनता हमेशा करेगी।

—पाञ्चजन्य, जनवरी 3, 1952

□

11

निर्वाचन के बाद ग़ैर-कांग्रेसी प्रतिनिधियों का उत्तरदायित्व

एक ओर 25 प्रतिशत जनता के कांग्रेसी प्रतिनिधि हैं,[1] दूसरी ओर 75 प्रतिशत के ग़ैर-कांग्रेसी प्रतिनिधि। आम चुनावों के परिणाम घोषित होकर नई सरकारें बन रही हैं। केंद्र में और लगभग सभी प्रांतों में कांग्रेस की सरकारें बन जाएँगी, क्योंकि जहाँ कांग्रेस को सदस्यों का बहुमत प्राप्त नहीं हुआ है, वहाँ भी केवल कांग्रेस ही ऐसा दल है, जिसके सदस्यों की संख्या अन्य दलों के जोड़ की नहीं तो उनमें से हर एक की तुलना में अधिक है। ऐसे प्रांतों को छोड़कर बाक़ी जगह तो कांग्रेस को ही बहुमत प्राप्त हुआ है। इतना ही नहीं, कुछ प्रांतों में तो उसका इतना अधिक बहुमत है कि हम उसे संपूर्ण अर्थों में एक दलीय शासन कह सकते हैं। हम उत्तर प्रदेश का ही उदाहरण लें। 430 स्थानों में से 390 स्थान कांग्रेस को प्राप्त हो गए हैं तथा केवल 39 स्थान ग़ैर-कांग्रेसी सदस्यों को प्राप्त हुए हैं। (एक क्षेत्र में अभी निर्वाचन शेष है) ग़ैर-कांग्रेसी 39 सदस्य भी आपस में मिले हुए नहीं बल्कि बँटे हुए हैं और दिखता भी यही है कि वे मिल नहीं पाएँगे। एक बार सब 39 सदस्य मिल भी गए तो भी उनकी संख्या इतनी कम है कि कांग्रेसी सदस्यों की संख्या के समक्ष यह बिल्कुल नगण्य हो जाती है। वैधानिक दृष्टि से वे न तो कोई अविश्वास का प्रस्ताव पेश कर सकते हैं और न गणपूरक बना सकते हैं। विधानसभा में वैधानिक रूप से दल के नाते भी समाजवादी दल को छोड़कर और किसी दल को मान्यता प्रदान नहीं की जा सकती।

एक ओर तो कांग्रेसी सदस्यों का यह घटाटोप बहुमत है तो दूसरी ओर हम जब

---

1. 1951-52 के आम चुनाव में देश में कुल 17.3 करोड़ मतदाता थे, जिनमें 61.16 प्रतिशत लोगों ने अपने मत का प्रयोग किया था। कांग्रेस को कुल 44.99 प्रतिशत वोट प्राप्त हुए थे।

मतदान का विचार करते हैं तो पाते हैं कि कांग्रेस गिरे हुए मतों का भी बहुमत प्राप्त करने में समर्थ नहीं हुई है। राज्य के 3.5 करोड़ मतदाताओं में से लगभग 50 प्रतिशत ने मतदान किया है। कुल मतदान का 47 प्रतिशत कांग्रेस को प्राप्त हुआ है तथा शेष 53 प्रतिशत ग़ैर-कांग्रेस वर्गों को। इस 47 प्रतिशत में से भी कितना कांग्रेस के प्रति श्रद्धा के कारण मिला है, कहना कठिन है, क्योंकि सभी ग़ैर-कांग्रेसी दल इस बात का दावा करते हैं कि कांग्रेस ने निर्वाचनों में सभी प्रकार की अनियमितताओं का सहारा लिया है। यहाँ तक कि मतदान पेटियों को खोलकर मतपत्रों की अदला-बदली तक का संदेह किया जाता है। विरोधी दलों ने इन अनियमितताओं की जाँच की माँग की है। किंतु कांग्रेस सरकार ने इस माँग का उचित और न्यायसंगत उत्तर न देकर सारे मामले की लीपापोती करने की कोशिश की है। इन अनियमितताओं के अतिरिक्त कांग्रेस का आतंक, उसके सरकार होने के कारण भोले ग्रामवासियों में 'ना विष्णुपृथिवीपति' की धारणा के अनुसार राजा को ही वोट देने की प्रवृत्ति, महात्मा गांधी, पंडित नेहरू आदि के नामों का दुरुपयोग, स्वतंत्रता प्राप्ति का श्रेय, दस गुने की जब्ती का भय तथा अन्य दलों की विभिन्न प्रकार की कमज़ोरियों के कारण बहुत सा मतदान ऐसा है, जो जान-बूझकर नहीं बल्कि अनजाने अथवा अनिच्छा से कांग्रेस के लिए हुआ है। इसकी कटौती यदि काटी जाए तो कहना होगा कि 25 प्रतिशत से अधिक मतदान कांग्रेस के पक्ष में उसके प्रति विश्वास और श्रद्धा व्यक्त करने वाला नहीं हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यद्यपि कांग्रेस को विधानसभा में बहुमत प्राप्त हो गया है, किंतु जनता का बहुमत उसके साथ नहीं है। कांग्रेस की पिछली पाँच वर्ष की परंपराओं को देखते हुए हम भी कह सकते हैं कि स्वार्थों का यह नग्न नृत्य आगे भी बंद नहीं होगा बल्कि बढ़ता ही जाएगा और इसलिए जनता के हित और भावनाओं का जहाँ तक प्रश्न है, कांग्रेस एक निहित स्वार्थ को छोड़कर और किसी का प्रतिनिधित्व नहीं करती। अर्थात् विधानसभा में एक ओर तो वे 390 सदस्य होंगे, जो बहुत ही थोड़े लोगों का, किसी भी दशा में 25 प्रतिशत से अधिक का नहीं, प्रतिनिधित्व करते हैं और दूसरी ओर वे 39 सदस्य हैं, जो 75 प्रतिशत जनता का प्रतिनिधित्व करेंगे। जिन निर्वाचन क्षेत्रों में कांग्रेस के सदस्य जीते हैं, वहाँ उन लोगों की संख्या कम नहीं, बल्कि अधिक है जिनकी आवाज़ को विधानसभा में रखने वाला व्यक्ति उनके निर्वाचन क्षेत्र से नहीं पहुँच पाया है। फिर भी उनकी आवाज़ और भावनाएँ दब गई हैं और न उनके कष्टों का ही अंत हो गया है। आज उनकी आवाज़ विधानसभा में बुलंद करने का भार उन ग़ैर-कांग्रेसी सदस्यों पर आ पड़ा है, जो निर्वाचन परिसीमन अधिनियम के अनुसार चाहे इन मतदाताओं से संबंध न रखते हों, किंतु देश की जनता एवं कांग्रेसी शासन से विक्षुब्ध एवं पीड़ित नागरिक के नाते अवश्य संबंध रखते हैं। ऐसी परिस्थिति में

इन सदस्यों की ज़िम्मेदारी अधिक है और उनकी सफलता भी इस ज़िम्मेदारी के निर्वहन के अनुपात में ही आँकी जाएगी। विधानसभा में ग़ैर-कांग्रेसी सदस्यों की आवाज़ चाहे नक़्क़ारख़ाने में तूती की आवाज़ मालूम दे किंतु देश में वह आवाज़ अधिक महत्त्व रखती है और इसलिए आवश्यकता है कि इन सदस्यों में उदासीनता का भाव न आए। वे अपने आपको विधानसभा की चारदीवारी में सीमित न रखकर बाहर जनता में आएँ तो उनको पता चलेगा कि उनके पीछे खड़ी होने वाली जनता की संख्या बहुत अधिक है और उसकी श्रद्धा तथा शक्ति तो उससे भी अधिक। हम अंग्रेज़ों के समय की दिल्ली की विधानसभा का ही उदाहरण लें। उस समय विधानसभा, जो भी अंग्रेज़ वाइसराय चाहता था, वह क़ानून पास कर देती थी। कांग्रेस के सदस्यों की कोई नहीं चल पाती थी, किंतु विधानसभा के बाहर अंग्रेज़ी शासन के पिट्ठुओं की आवाज़ नहीं गूँजती थी। जनता का गगनभेदी कंठ उनके स्वर में स्वर मिलाता था, जो उसकी आवाज़ को उसके दु:ख और दर्द को विधानसभा में रखते थे।

अत: आज ग़ैर-कांग्रेसी सदस्यों के लिए आवश्यक है कि वे अपनी संपूर्ण शक्ति लगाकर जनता में आएँ और उसकी भावनाओं को विधानसभा में व्यक्त करें। आज उनको कांग्रेसी सदस्यों के आचरण के अनुकरण के मोह का और विभिन्न उपसमितियों में लिए जाने के मोह का सँवरण करना पड़ेगा। हम कांग्रेसी शासन से भी निष्फल अपेक्षा कर सकते हैं कि वह इन ग़ैर-कांग्रेसी सदस्यों द्वारा व्यक्त मत को तुच्छ न समझकर उसकी वही क़ीमत करे, जो एक विरोधी दल के मत की क़ीमत प्रजातंत्रीय शासन में की जाती है। उसे यही समझकर चलना चाहिए कि वे 39 नहीं, 430 के सदन में 210 हैं। जितनी सतर्कता सरकार बनाने वाले और विरोधी दल में 51 और 49 का अनुपात होने पर होती है, वैसी सतर्कता और विरोधी दल के मतों के प्रति आदर का भाव यदि कांग्रेस सरकार ने बरता तो निश्चित है कि कांग्रेस बहुत सी बुराइयों से बच जाएगी और देश में एक सफल प्रजातंत्र का श्रीगणेश हो सकेगा।

किंतु साधारणतया कांग्रेस से उक्त आशा के पूर्ण होने की संभावना नहीं दिखाई देती, जब तक कि देश के वे दल, जिनके प्रतिनिधि बहुत थोड़ी संख्या में विधानसभाओं में पहुँचे हैं, अपनी-अपनी भूमिका पूरी तरह अदा न करें। अर्थात् उन्हें देश के उस संपूर्ण विरोध को वैधानिक रूप से संगठित करना होगा, जो आज विभिन्न कारणों से विधानसभाओं में तो नहीं पहुँच पाया है किंतु जो देश में मौजूद है। आज सभी दलों को अधिक सक्रिय होने की आवश्यकता है। हमें आज संपूर्ण देश को काउंसिल हाउस में बदल देना होगा। साधारणतया जिन बातों की चर्चा विधानसभा में पर्याप्त होती, अब हमें उनकी चर्चा प्रदेश भर में सभाओं, सोसाइटियों आदि में करनी होगी। विधानसभा में तो इन प्रश्नों की केवल गूँज मात्र सुनाई देगी और यदि मूल स्वर ज़ोरों का रहा तो उसकी गूँज भी कर्णभेदी होगी,

जिसकी अवहेलना कोई भी सरकार नहीं कर सकती। हम जानते हैं कि विधानसभा में चाहे कांग्रेस में और हममें दस और एक का अनुपात हो, किंतु बाहर देश में वह हमसे छोटी है। कांग्रेस के सदस्य जन प्रतिनिधित्व की दृष्टि से जहाँ बौने हैं तो हमारे सदस्य भीमकाय मानव हैं। लिलीपुटियंस की संख्या अधिक होने से उनकी शक्ति अधिक नहीं हो सकती, किंतु गुलिवर[2] को भी अपनी नींद छोड़कर चेतन और कर्मयुक्त होना पड़ेगा। यदि विरोधी दलों ने विधानसभा के दायरे के अतिरिक्त जनता के जीवन में प्रवेश किया तो यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि निर्वाचनों में ही नहीं, उससे पूर्व भी कांग्रेस को अपना पाशवी बहुमत होते हुए भी झुकना पड़ेगा तथा जनता की आवाज़ प्रभावी और विजयी होगी।

—पाञ्चजन्य, मार्च 23, 1952

□

2. अंग्रेज़ी कथाकार जोनाथन स्विफ्ट के उपन्यास 'गुलिवर्स ट्रैवल्स' के मुख्य पात्र की ओर इंगित।

12

जनसंघ के कार्यकर्ता अपने काम में जुट जाएँ

प्रथम महानिर्वाचन के बाद उत्तर प्रदेश के कार्यकर्ताओं को प्रदेश महामंत्री के नाते दीनदयालजी का पत्र।

यह आवश्यक है कि हम अपने क्षेत्र की जनता से पिछले दिनों में स्थापित संपर्क को पानी की रेखा के समान मिटने न दें, बल्कि दृढतर करते रहें। कांग्रेस शासन का पिछला ढर्रा तथा आज भी जैसे लोग तथा जिस प्रकार विधानसभाओं में पहुँचे हैं, उसे देखते हुए यह अनुमान लगाना कठिन नहीं कि जनता के कष्ट अगले पाँच वर्षों में कम न होकर बढ़ेंगे ही। विभिन्न क्षेत्रों में अन्याय और अत्याचारों की परंपरा टूटने वाली नहीं, हमें समाज के ऊपर आने वाली आपत्ति में, वह एक व्यक्ति पर हो या समुदाय पर हो, उसके साथ खड़ा होना पड़ेगा। इसमें आप सदा आगे रहेंगे, यही विश्वास है। चुनावों में भारतीय जनसंघ की स्थिति, उसके परिणाम एवं आगे की अपनी गतिविधि यह पिछले दिनों में आम चर्चा का विषय रहा है। इस संबंध में प्रांतीय और अखिल भारतीय स्तर पर भी विचार हुआ है। सभी इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि यद्यपि चुनावों के परिणाम 'सीट्स' जीतने की दृष्टि से, जिसके लिए हमारी कमियों के अतिरिक्त कांग्रेस सरकार की अनियमितताएँ भी बहुत कुछ ज़िम्मेदार हैं, संतोषजनक नहीं कहे जा सकते किंतु समाज में प्रवेश, प्रचार, अनुभव एवं वास्तविक जनतंत्र के लिए आवश्यक सही विरोधी दल के निर्माण कार्य में हमें पर्याप्त सफलता मिली है। चुनावों में हमारी ताक़त और कमज़ोरी, हमारी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दोनों ही प्रकट हुई हैं। हाँ, संपूर्ण स्थिति का गहराई से विचार किया जाए तो यह स्पष्ट है कि भारत के राजनीतिक मंच पर भारतीय जनसंघ ऐसी शक्ति के रूप में आविर्भूत हो चुका है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, किंतु

जनसाधारण के लिए समझने योग्य एवं दृश्यप्रभावी स्वरूप उपस्थित करने के लिए हमें प्रयत्न करना होगा।

चुनावों के अवसर पर काफ़ी परिश्रम करके हमने अपने कार्य की नींव रखी है, यदि हम बराबर काम करते रहे तो मुझे विश्वास है कि हम अपने दल को सुदृढ रूप में खड़ा कर सकेंगे। भारतीय जनसंघ तो चुनावों के समय शैशवावस्था में था ही, हमारे बहुत से प्रत्याशी भी ऐसे थे जो सच्चरित्र, ईमानदार एवं योग्य होते हुए भी जनता के समक्ष जन नेता के रूप में पहली ही बार आए थे। अखिल भारतीय कार्यकारिणी ने यह अनुभव किया कि हमारी संस्था का ही नहीं अपितु हमारे उम्मीदवारों का भी जनजीवन में गहरा प्रवेश होना चाहिए। जब जनता अनुभव करेगी कि ये लोग वोट के लिए ही हमारे सामने नहीं आते बल्कि हमारी कठिनाइयों में सदा साथ देते हैं तो हमें उनका प्रतिनिधित्व करते देर नहीं लगेगी।

केंद्रीय कार्यकारिणी ने जनसंघ को सुदृढ करने की दृष्टि से निम्न पंचविध कार्यक्रम की योजना की है—

1. जनसंघ की शाखाएँ : ग्राम-ग्राम में खोलना तथा नए सदस्यों की भरती करना। आप जितने सदस्य बना लेंगे, उतना ही कार्य-विस्तार की दृष्टि से लाभ होगा।

2. निर्वाचन यंत्र का निर्माण : निर्वाचन की दृष्टि से अपने सभी कार्यकर्ताओं को योग्य ज्ञान से युक्त करना तथा प्रत्येक पद पर सतर्कता की वृत्ति पैदा करना।

3. रचनात्मक कार्यक्रम : राष्ट्र के विभिन्न प्रश्नों पर अपने कार्यकर्ताओं को शिक्षित करते हुए उनके द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में प्रचार करना तथा वहाँ आवश्यक संगठनों का निर्माण करना।

4. आंदोलनात्मक : शिकायतों का संगठित एवं वैधानिक रूप से व्यक्तीकरण *(organised ventilation of grievances)* आवश्यक। जनता की विभिन्न प्रकार की शिकायतें रहती हैं। वे उनको दूर करने का प्रयत्न नहीं करते, न उन्हें ज्ञान है कि कैसे किया जाए? केवल इधर-उधर चर्चा करते रहने से असंतोष, निराशा और विफलता का ही भाव पैदा होता है। शासन को भी कई बार उनका ठीक रूप से ज्ञान न होने के कारण, सरकार के द्वारा कोई सक्रिय क़दम नहीं उठाया जा सकता। अत: आवश्यक है कि सभी प्रकार की शिकायतों को जनसंघ की समितियाँ एवं कार्यकर्ता लें, उन्हें योग्य अधिकारियों तक ले जाएँ और उनको दूर कराने का प्रयत्न करें। यदि आवश्यक हो तो जनमत तैयार करके उसका दबाव भी डाला जाए।

5. प्रचारात्मक : जनसंघ के विचारों, कार्यक्रमों एवं उसकी गतिविधि का प्रचार सभी साधनों से किया जाए। मैं समझता हूँ कि उपर्युक्त आधार पर हम लोग यदि अपने कार्य को गति देंगे तो वह निश्चित रूप से वेग के साथ प्रसृत होगा। विधानसभाओं में

संगठित एवं सशक्त विरोधी दल के अभाव को हमें बाहर से सही आधार पर विरोधी दल निर्माण करके पूरा करना होगा। यदि हमने बाहर जनमत अपने पीछे रखा तो उसको व्यक्त करने वाले जो थोड़े से हमारे सदस्य विधानसभा में हैं, उनकी आवाज़ को भी बल मिलेगा। ये सदस्य अपने निर्वाचन क्षेत्र के ही नहीं, भारतीय जनसंघ के प्रतिनिधि हैं। जनता के कष्ट, वे फिर चाहे कहीं के हों, उनकी ओर विधानसभा का ध्यान खींचने का काम ये बराबर करते रहेंगे। हमें उनकी मदद करने की आवश्यकता है।

पत्र काफ़ी लंबा हो गया है किंतु फिर भी अंत में यह लिखना आवश्यक समझता हूँ कि काम में जुट जाने की ज़रूरत है। ऊपर से जो कुछ निश्चित हुआ है, वह ऊपर लिखा है। और भी ज़ो-जो निश्चित होगा, वह आपके पास पहुँचेगा किंतु वहाँ के संपूर्ण निश्चय अपने कार्य पर ही निर्भर हैं। साथ ही, पीछे क्या हुआ, इससे हम आगे क्या करते हैं, इसका ही अधिक महत्त्व है। उधर हम प्रवृत्त हों, यही अनुरोध है।

विशेष कुछ हो तो सूचित कीजिएगा तथा प्रांतीय कार्यालय से संबंध बनाए रखिए।

—पाञ्चजन्य, अप्रैल 20, 1952

□

13

कांग्रेस ने प्रजातंत्र के बालरूप का गला घोंट दिया

28 अप्रैल आगरा के मोतीगंज मैदान में आम सभा में दीनदयालजी का संबोधन। अध्यक्षता श्री रघुनाथ दास गुप्त ने की।

गत चुनावों में कांग्रेस की ओर से यह प्रचारित किया गया था कि यदि भारतीय जनसंघ को वोट दिया गया तो कश्मीर हाथ से निकल जाएगा, किंतु हमने उस समय कहा था कि कश्मीर जनसंघ के कारण निकल नहीं जाएगा, अपितु कांग्रेस और श्री नेहरू की नीति के कारण हमारे हाथ से निकल चुका है। आज श्री नेहरू के परम प्रिय मित्र शेख़ अब्दुल्ला ने उन्हें धोखा देकर हमारी पूर्वोक्त भविष्यवाणी की पुष्टि की है। आज फिर हम कहते हैं कि एक कमज़ोरी के आगे झुकने से वह बढ़ती जाती है। अब यदि शेख़ अब्दुल्ला को दबाने के स्थान पर तुष्ट किया गया तो कश्मीर सदा के लिए हमारे हाथ से निकल जाएगा।

यद्यपि कांग्रेस को चुनावों में आशातीत सफलता मिली, किंतु यह ईमानदारी की सफलता नहीं है। सत्तारूढ़ दल द्वारा सरकारी मशीन का दुरुपयोग और सील लगे हुए गोदरेज के बक्सों में से वोटों की अदला-बदली किसी से छिपी नहीं है। जिन बक्सों में निर्वाचन की पवित्रता, गोपनीयता और जन-विश्वास निहित था, कांग्रेस ने अपने स्वार्थ के लिए सब पर पानी फेर दिया। वे बक्से, जिनके संबंध में इतना बड़ा ढोल पीटा गया था, गोदरेज कंपनी के बने हुए होने के कारण ये बक्से कभी खुल ही नहीं सकते, मिट्टी की हँड़ियों से भी बदतर निकले, क्योंकि मिट्टी की हँड़िया फूटकर जुड़ नहीं सकती, जबकि ये बक्से बिना सील हटाए खुल और बंद हो सकते हैं। हम ये बातें हार जाने के कारण

नहीं कह रहे। इन अनियमितताओं से बचने के लिए हमने चुनावों से पूर्व भी राष्ट्रपति शासन की माँग की थी। आज भी हम निष्पक्ष जाँच कमीशन की माँग कर रहे हैं। किंतु हमारी बात न तो तब सुनी गई थी और न आज सुनी जा रही है। इन अनियमितताओं के कारण जनता का चुनावों पर से विश्वास उठता जा रहा है। इस प्रकार कांग्रेस ने प्रजातंत्र के बालरूप का गला ही नहीं घोंटा अपितु भारत के विधान के साथ भी विश्वासघात किया है।

आज का कांग्रेस शासन पहले से अच्छा नहीं होगा, क्योंकि जो लोग कांग्रेस टिकट पर चुने गए हैं, वे अधिकांश में पुराने ही हैं और जो नए आए हैं, वे पहले से भी बदतर हैं। ऐसे समय में भारतीय जनसंघ असेंबलियों में और उनके बाहर विरोधी दल के रूप में 'ब्रेक' का काम करेगा। कांग्रेस मुसलिम सांप्रदायिकता को सदैव तुष्ट करती रही है। देश का विभाजन स्वीकार कर लेने के पश्चात् कांग्रेस ने गत चुनावों में पुराने मुसलिम लीगियों को अपने टिकट पर जिताया। इस कारण दबी हुई यह सांप्रदायिकता फिर पनप रही है। जिन्ना द्वारा माँगे गए पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान को मिलाने वाले कथित गलियारे की लाइन में हुए सांप्रदायिक दंगे और उर्दू को प्रादेशिक भाषा बनाने का आंदोलन आदि हमारे कथन की पुष्टि कर रहे हैं। हमें इन अराष्ट्रीय प्रवृत्तियों का विरोध करना है। हम इसलाम या मुसलमानों के शत्रु नहीं, मित्र हैं। किंतु हम पृथकता की भावना को नहीं पनपने देंगे।

कश्मीर को स्वतंत्र रखने की घोषणा करके शेख़ अब्दुल्ला ने भारत के साथ विश्वासघात किया है।[1] आज कश्मीर के लोगों को हमारे विधान में दिए गए मौलिक अधिकार भी प्राप्त नहीं हैं। इन सब बातों को देखते हुए कश्मीर पर भारत का विधान पूर्ण रूप से लागू कर उसे भारत का अविभाज्य अंग बनाना ही होगा। किंतु शेख़ अब्दुल्ला इन बातों का विरोधी है, अतः उसे दबाना ही पड़ेगा। अपनी सरकार से कश्मीर समस्या का ठीक हल निकलवाने के लिए यदि हमें आंदोलन भी करना पड़ा तो हम ऐसा भी करेंगे।

—पाञ्चजन्य, अप्रैल 28, 1952

□

1. शेख़ अब्दुल्ला की स्वतंत्र योजना की ओर इंगित।

14

क्रांति के अग्रदूत विनोबा और उनके कार्य का महत्त्व

भूमिदान यज्ञ स्वयं क्रांति का अग्रदूत है। समाज में समता का भाव नष्ट होकर जब-जब विषमता उत्पन्न हो जाती है तथा उसका संतुलन बिगड़ जाता है, तब-तब समाज की धारणा कठिन होने पर व्यक्ति की धारणा भी दुष्कर हो जाती है।

संपत्ति के ही नहीं, सभी प्रकार के अधिकारों के पुनर्वितरण तथा बदली हुई परिस्थिति के अनुसार जीवन के सभी मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए ही विनोबाजी का क्रांतिकारी मार्ग है। इसकी सफलता के विषय में संदेह का कोई कारण ही नहीं, क्योंकि विषमता में समता उत्पन्न करने का कार्य तो प्रकृति सदा ही करती रहती है।

भारत में क्रांति तो सुनिश्चित है। इस क्रांति को हम अहिंसक एवं भारतीय मार्ग से करके क्रांति से नवजीवन प्राप्त कर राष्ट्रीय परंपरा की रक्षा और उसको पुष्ट करना चाहते हैं अथवा क्रांति के दौरान ही अपना जीवन समाप्त कर, दूसरों के मानसिक दास बनकर अपनी परंपराओं को सदा के लिए समाप्त कर देना चाहते हैं? विनोबा की क्रांति जीवनदायिनी तथा राष्ट्रीय नवचैतन्य को स्फूर्त करने वाली है। यही है इस मार्ग की विशेषता।

आचार्य विनोबा का भूमिदान यज्ञ आंदोलन[1] ज्यों-ज्यों गति पकड़ता जा रहा है तथा जनसमुदाय से उसे समर्थन प्राप्त होता जा रहा है, त्यों-त्यों उसके आलोचकों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। अधिकांश आलोचना का कारण तो भूमिदान यज्ञ के संबंध में अज्ञान

---

1. भूदान आंदोलन, 1951 में विनोबा भावे द्वारा तेलंगाना में शुरू किया गया था। इस आंदोलन का उद्‌देश्य अमीरों और ग़रीबों के बीच भाईचारे को वास्तविक बनाना था। विनोबाजी ने इस आंदोलन के ज़रिए हरिजनों की स्थिति सुधारने पर ध्यान दिया। चूँकि हरिजन भूमिहीन थे तो उन्होंने अपनी ख़ुद की ज़मीन का एक-तिहाई हिस्सा हरिजनों को देने का फ़ैसला किया और दूसरे लोगों को भी स्वेच्छा से ज़मीन का वितरण करने को कहा।

है किंतु कुछ आलोचना निहित स्वार्थों की प्रेरणा से भी होती है। ऐसे लोग भी हैं, जो भूमिदान यज्ञ में कांग्रेस की गंध पाकर, उसे कांग्रेसियों की अन्य बहुत सी योजनाओं के समान दिखावटी एवं अंत में कांग्रेसजनों अथवा कांग्रेसदल की स्वार्थसिद्धि का एक साधन मात्र समझते हैं। ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं है, जिनकी श्रद्धा भारतीय जीवन प्रणाली से हट गई है और इसलिए भारतीय आधार पर अथवा भारतीय परिभाषा का प्रयोग करने वाली प्रत्येक योजना उन्हें रूढ़िवादी एवं प्रतिगामी मालूम देती है। पश्चिम के आदर्श का अंधानुकरण करने वालों को यह योजना बहुत ही प्राचीन लगती है, सरकार की पंचवर्षीय योजना में अभिरुचि रखने वाले सरकारी अथवा ग़ैर-सरकारी अधिकारी भी भूमिदान यज्ञ को अपनी कल्पनाओं और योजनाओं के लिए घातक समझते हैं। कुछ लोग इसे एक संत की सनक समझते हैं तो कुछ विनोबाजी को गांधीजी के स्थान पर बिठाने का एक योजनाबद्ध प्रयत्न। ऐसे भी लोग हैं, जो सोचते हैं कि यह आंदोलन कम्युनिज़्म को रोकने के लिए किया गया है, किंतु उनका विश्वास है कि यह इसमें सफल नहीं हो सकेगा।

योजना की अव्यावहारिकता की शिकायत तो आप, मैं और वे सब पढ़े-लिखे लोग करते हैं, जो भूमि से कोसों दूर रहकर दो आने के अख़बार के सहारे अपनी सर्वज्ञता के दावे को पुष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। कुछ इस योजना में भूमि के टुकड़े-टुकड़े हो जाने तथा लोगों को उद्योग-धंधे से विमुख करके कृषि के ऊपर भार बढ़ाने के चिह्न देखते हैं। मानवात्मा की सद्प्रवृत्तियों में श्रद्धा न रखने वाले कुछ उदाहरणों को लेकर इस बात का ही ढिंढोरा पीटते रहते हैं कि दान में दी गई संपूर्ण ज़मीन ऊसर, बंजर अथवा झगड़े की है। सरकारी दवाब के कारण दिया गया दान शास्त्रीय व्याख्या की बाल की खाल निकालकर दान नहीं कहा जा सकता और इसलिए भूमिदान यज्ञ पूर्णतः निराधार है, ऐसा भी कुछ लोगों का मत है। एक ज़मींदार महाशय तो इस आंदोलन से इसीलिए असंतुष्ट थे कि इसमें केवल भूमि की समस्या का विचार किया गया है किंतु शहरों में रहने वाले तथा पटरियों पर सोने वालों की कोई चिंता नहीं की गई। उनका मत है कि प्रायः सभी संस्थाओं में शहरियों की बहुतायत होने के कारण वे उन योजनाओं को लेने के बजाय जिनमें शहर वाले अमीरों के हितों पर आघात होता हो, उनको लेते हैं, जो शहर वालों को अछूता छोड़कर गाँववालों को हानि पहुँचाती हैं। गरज यह है कि भिन्न-भिन्न लोग अपने-अपने दृष्टिकोण से योजना की आलोचना करते हैं तथा उसके पीछे उनका अज्ञान अथवा किसी-न-किसी प्रकार का निहित स्वार्थ छिपा हुआ है। आवश्यक है कि हम इस आंदोलन को सही दृष्टि से देखें।

भूमिदान यज्ञ को समझने के पूर्व हमको अपने मन से इस धारणा को निर्मूल कर देना चाहिए कि यह आंदोलन क्रांति को रोकने के लिए है। वस्तुस्थिति तो यह है कि यह स्वयं क्रांति का अग्रदूत है। समाज में समता का भाव नष्ट होकर जब-जब विषमता उत्पन्न

हो जाती है तथा उसका संतुलन बिगड़ जाता है, तब समाज की धारणा भी दुष्कर हो जाती है। फलतः व्यक्ति या तो अपनी धारणा के लिए दूसरों का गला घोंटता है अथवा स्वयं तिल-तिल गलकर मृत्यु सम जीवन व्यतीत करता हुआ हैजे के रोगी के समान स्वयं को तो मारता ही है, आसपास के वातावरण को दूषित करके उनकी मृत्यु का भी कारण बनता है। गीता में 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' की पंक्ति में इंगित किया गया है। धर्म के बिना धारण कैसे संभव है। ऐसी परिस्थिति में धर्म की स्थापना करना ही ईश्वरीय कार्य है और उसका संपादन क्रांति के द्वारा ही होता है।

क्रांति हिंसक और अहिंसक दोनों ही मार्गों से हो सकती है। समाज का संतुलन करने में जिनकी अवस्था का परिवर्तन करना होता है, वे चाहे अमीर हों या ग़रीब, अधिकार-संपन्न हों या अधिकारच्युत, उनका मानसिक स्तर जब तक नवीन स्तर के अनुरूप नहीं आता, तब तक क्रांति अहिंसक नहीं कहलाएगी। समाज के असंतुलन का ज्ञान होने पर हो सकता है कि अधिकार-संपन्न अपने अधिकार को स्वतः ही छोड़ दे अथवा विभिन्न साधनों का उपयोग करके उससे उसके अधिकार छुड़वाए भी जाएँ, दोनों ही हालतों में वह क्रांति अहिंसक ही कहलाएगी। दुर्योधन ने यद्यपि पांडवों को उनका राज्य नहीं लौटाया तथा उसके लिए महाभारत का युद्ध हुआ किंतु दुर्योधन यह बारंबार अनुभव करता रहा कि मैं राज्य न लौटाकर अनुचित ही कर रहा हूँ। उसने यही कहा 'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति, जानाम्यधर्म न च मे निवृत्ति। केनामि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।' कामुक प्रवृत्ति का मनुष्य किसी सुंदर स्त्री को देखकर अंत:प्रेरणा से यदि अपने मन को वश में नहीं कर पाता तो उसे लोकलज्जा एवं क़ानून का भय इस दुष्कृत्य से रोकता है। साथ ही, वह यह भी अनुभव करता है कि उसे इस दुष्कृत्य से रोकने वाला क़ानून उसे रुचिकर चाहे न हो, किंतु न्याय्य अवश्य है।

इसके विपरीत क़ानून, लोकलज्जा, युद्ध और आदेश आदि कोई बात जब अधिकार-संपन्न में यह भाव पैदा करती है कि उसके न्याय अधिकारों का अपहरण किया जा रहा है तथा दूसरी ओर अधिकारविहीन में नवीन अधिकारों की प्राप्ति से उत्पन्न होने वाले उत्तरदायित्व को उत्पन्न करने के स्थान पर स्वार्थ अथवा लोभ तथा दूसरों के प्रति घृणा पैदा करती हो तो कहना होगा कि यह मार्ग हिंसक है तथा इस प्रकार की क्रांति बाह्य संतुलन को ठीक करते हुए भी आत्मा के संतुलन को बिगाड़ देती है। जिसका परिणाम यह होता है कि इस क्रांति में ही उसके विनाश के बीज रहते हैं तथा वह स्थायी नहीं रह पाती।

आचार्य विनोबा का भूमिदान यज्ञ इस प्रकार की अहिंसक क्रांति है। इस क्रांति का काम केवल भूमि तक ही सीमित नहीं अपितु सर्वव्यापी है। भगवान् कृष्ण की क्रांति का प्रारंभ जैसे मथुरा जाने वाले दूध और मक्खन पर रोक लगाने से प्रारंभ हुआ था, वैसे ही इस युग की सर्वांगीण क्रांति का श्रीगणेश भूमिदान यज्ञ से हो रहा है। भारत में भूमि की समस्या प्रमुख होने से स्वाभाविक

है कि पहले इसे ही हाथ में लिया जाए। विषमता के शेष कारण या तो इसके साथ ही दूर हो जाएँगे अथवा इसके बाद ही। एक सज्जन जो कई मकानों के मालिक हैं, ने मुझसे कहा कि यदि भूमिदान यज्ञ हो रहा है तो गृहदान यज्ञ क्यों नहीं करते? उनका मतलब था कि मकानदान यज्ञ की कल्पना ही जैसे असंभव है, वैसे भूमिदान यज्ञ की कल्पना भी हास्यास्पद होगी। मैंने कहा कि गृहदान यज्ञ भी अवश्य ही होगा, उसका सूत्रपात आपने ही कर दिया है। अवश्य ही थोड़े दिन में आपको लगेगा कि आप जिस मकान को अपना कह रहे हैं, वह किरायेदार को दे दिया जाए, अथवा आपके आलीशान मकान के फ़ालतू हिस्से में कोई गृहविहीन बस जाए तो कोई अन्याय नहीं। सर्वसाधारण की बात एक प्रकार की धारणा बनी कि फिर क़ानून भी बनाया जा सकता है।

संपत्ति के ही नहीं, सभी प्रकार के अधिकारों के पुनर्वितरण तथा बदली हुई परिस्थिति के अनुसार जीवन के सभी मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए श्री विनोबाजी का क्रांतिकारी मार्ग है। इसकी सफलता के विषय में संदेह का तो कोई कारण ही नहीं, क्योंकि विषमता में समता उत्पन्न करने का कार्य तो प्रकृति सदा ही करती रहती है। कुरसी पर बैठकर यदि आप उसे एक ओर झुकाकर उसका संतुलन बिगाड़ें तो भूमि की आकर्षण शक्ति आपका संतुलन अवश्य ठीक करेगी, किंतु उसमें आप धराशायी होंगे तथा आपको चोट भी लगेगी। अच्छा हो कि आप अपना बल लगाकर ही उसे ठीक कर लें। भारत में क्रांति तो सुनिश्चित है। इस क्रांति को हम अहिंसक एवं भारतीय मार्ग से करके क्रांति से नवजीवन प्राप्त कर अपनी राष्ट्रीय परंपरा की रक्षा और उसको पुष्ट करना चाहते हैं अथवा क्रांति के दौरान अपना जीवन समाप्त कर दूसरों के मानसिक दास बनकर अपनी परंपराओं को सदा के लिए समाप्त कर देना चाहते हैं। विनोबा की क्रांति जीवनदायिनी तथा राष्ट्रीय नव चैतन्य को स्फूर्त करने वाली है। यही है इस मार्ग की विशेषता।

जहाँ तक भूमिदान यज्ञ का प्रश्न है, यह तो वामन का पहला पग है। अभी तो अगले पग बाक़ी हैं, जिनमें भूमिदान ही नहीं, संपत्ति के समविभाजन के लिए आध्यात्मिक, धार्मिक, वैधानिक, सामाजिक एवं विकेंद्रित आर्थिक व्यवस्था संबंधी सभी साधनों का उपयोग करना पड़ेगा।

भूमिदान यज्ञ के इस क्रांतिकारी दृष्टिकोण को यदि हमने समझ लिया तो इस आंदोलन से निहित स्वार्थों की रक्षा अथवा इसके द्वारा व्यक्ति या दल के स्वार्थों की पूर्ति की इच्छा या इस पूर्ति की संभावना से भय का कोई कारण नहीं रहेगा। कारण, अहिंसक क्रांति किसी भी प्रकार के स्वार्थों को बद्धमूल नहीं होने देती। यह तो प्रकृति के नियम के समान बिना पक्षपात के नियम के सभी का भला करती है।

—पाञ्चजन्य, मई 11, 1952

□

हो जाती है तथा उसका संतुलन बिगड़ जाता है, तब समाज की धारणा भी दुष्कर हो जाती है। फलत: व्यक्ति या तो अपनी धारणा के लिए दूसरों का गला घोंटता है अथवा स्वयं तिल-तिल गलकर मृत्यु सम जीवन व्यतीत करता हुआ हैजे के रोगी के समान स्वयं को तो मारता ही है, आसपास के वातावरण को दूषित करके उनकी मृत्यु का भी कारण बनता है। गीता में 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' की पंक्ति में इंगित किया गया है। धर्म के बिना धारण कैसे संभव है। ऐसी परिस्थिति में धर्म की स्थापना करना ही ईश्वरीय कार्य है और उसका संपादन क्रांति के द्वारा ही होता है।

क्रांति हिंसक और अहिंसक दोनों ही मार्गों से हो सकती है। समाज का संतुलन करने में जिनकी अवस्था का परिवर्तन करना होता है, वे चाहे अमीर हों या ग़रीब, अधिकार-संपन्न हों या अधिकारच्युत, उनका मानसिक स्तर जब तक नवीन स्तर के अनुरूप नहीं आता, तब तक क्रांति अहिंसक नहीं कहलाएगी। समाज के असंतुलन का ज्ञान होने पर हो सकता है कि अधिकार-संपन्न अपने अधिकार को स्वत: ही छोड़ दे अथवा विभिन्न साधनों का उपयोग करके उससे उसके अधिकार छुड़वाए भी जाएँ, दोनों ही हालतों में वह क्रांति अहिंसक ही कहलाएगी। दुर्योधन ने यद्यपि पांडवों को उनका राज्य नहीं लौटाया तथा उसके लिए महाभारत का युद्ध हुआ किंतु दुर्योधन यह बारंबार अनुभव करता रहा कि मैं राज्य न लौटाकर अनुचित ही कर रहा हूँ। उसने यही कहा 'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति, जानाम्यधर्म न च मे निवृत्ति। केनामि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।' कामुक प्रवृत्ति का मनुष्य किसी सुंदर स्त्री को देखकर अंत:प्रेरणा से यदि अपने मन को वश में नहीं कर पाता तो उसे लोकलज्जा एवं क़ानून का भय इस दुष्कृत्य से रोकता है। साथ ही, वह यह भी अनुभव करता है कि उसे इस दुष्कृत्य से रोकने वाला क़ानून उसे रुचिकर चाहे न हो, किंतु न्याय्य अवश्य है।

इसके विपरीत क़ानून, लोकलज्जा, युद्ध और आदेश आदि कोई बात जब अधिकार-संपन्न में यह भाव पैदा करती है कि उसके न्याय अधिकारों का अपहरण किया जा रहा है तथा दूसरी ओर अधिकारविहीन में नवीन अधिकारों की प्राप्ति से उत्पन्न होने वाले उत्तरदायित्व को उत्पन्न करने के स्थान पर स्वार्थ अथवा लोभ तथा दूसरों के प्रति घृणा पैदा करती हो तो कहना होगा कि यह मार्ग हिंसक है तथा इस प्रकार की क्रांति बाह्य संतुलन को ठीक करते हुए भी आत्मा के संतुलन को बिगाड़ देती है। जिसका परिणाम यह होता है कि इस क्रांति में ही उसके विनाश के बीज रहते हैं तथा वह स्थायी नहीं रह पाती।

आचार्य विनोबा का भूमिदान यज्ञ इस प्रकार की अहिंसक क्रांति है। इस क्रांति का काम केवल भूमि तक ही सीमित नहीं अपितु सर्वव्यापी है। भगवान् कृष्ण की क्रांति का प्रारंभ जैसे मथुरा जाने वाले दूध और मक्खन पर रोक लगाने से प्रारंभ हुआ था, वैसे ही इस युग की सर्वांगीण क्रांति का श्रीगणेश भूमिदान यज्ञ से हो रहा है। भारत में भूमि की समस्या प्रमुख होने से स्वाभाविक

है कि पहले इसे ही हाथ में लिया जाए। विषमता के शेष कारण या तो इसके साथ ही दूर हो जाएँगे अथवा इसके बाद ही। एक सज्जन जो कई मकानों के मालिक हैं, ने मुझसे कहा कि यदि भूमिदान यज्ञ हो रहा है तो गृहदान यज्ञ क्यों नहीं करते? उनका मतलब था कि मकानदान यज्ञ की कल्पना ही जैसे असंभव है, वैसे भूमिदान यज्ञ की कल्पना भी हास्यास्पद होगी। मैंने कहा कि गृहदान यज्ञ भी अवश्य ही होगा, उसका सूत्रपात आपने ही कर दिया है। अवश्य ही थोड़े दिन में आपको लगेगा कि आप जिस मकान को अपना कह रहे हैं, वह किरायेदार को दे दिया जाए, अथवा आपके आलीशान मकान के फ़ालतू हिस्से में कोई गृहविहीन बस जाए तो कोई अन्याय नहीं। सर्वसाधारण की बात एक प्रकार की धारणा बनी कि फिर क़ानून भी बनाया जा सकता है।

संपत्ति के ही नहीं, सभी प्रकार के अधिकारों के पुनर्वितरण तथा बदली हुई परिस्थिति के अनुसार जीवन के सभी मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए श्री विनोबाजी का क्रांतिकारी मार्ग है। इसकी सफलता के विषय में संदेह का तो कोई कारण ही नहीं, क्योंकि विषमता में समता उत्पन्न करने का कार्य तो प्रकृति सदा ही करती रहती है। कुरसी पर बैठकर यदि आप उसे एक ओर झुकाकर उसका संतुलन बिगाड़ें तो भूमि की आकर्षण शक्ति आपका संतुलन अवश्य ठीक करेगी, किंतु उसमें आप धराशायी होंगे तथा आपको चोट भी लगेगी। अच्छा हो कि आप अपना बल लगाकर ही उसे ठीक कर लें। भारत में क्रांति तो सुनिश्चित है। इस क्रांति को हम अहिंसक एवं भारतीय मार्ग से करके क्रांति से नवजीवन प्राप्त कर अपनी राष्ट्रीय परंपरा की रक्षा और उसको पुष्ट करना चाहते हैं अथवा क्रांति के दौरान अपना जीवन समाप्त कर दूसरों के मानसिक दास बनकर अपनी परंपराओं को सदा के लिए समाप्त कर देना चाहते हैं। विनोबा की क्रांति जीवनदायिनी तथा राष्ट्रीय नव चैतन्य को स्फूर्त करने वाली है। यही है इस मार्ग की विशेषता।

जहाँ तक भूमिदान यज्ञ का प्रश्न है, यह तो वामन का पहला पग है। अभी तो अगले पग बाक़ी हैं, जिनमें भूमिदान ही नहीं, संपत्ति के समविभाजन के लिए आध्यात्मिक, धार्मिक, वैधानिक, सामाजिक एवं विकेंद्रित आर्थिक व्यवस्था संबंधी सभी साधनों का उपयोग करना पड़ेगा।

भूमिदान यज्ञ के इस क्रांतिकारी दृष्टिकोण को यदि हमने समझ लिया तो इस आंदोलन से निहित स्वार्थों की रक्षा अथवा इसके द्वारा व्यक्ति या दल के स्वार्थों की पूर्ति की इच्छा या इस पूर्ति की संभावना से भय का कोई कारण नहीं रहेगा। कारण, अहिंसक क्रांति किसी भी प्रकार के स्वार्थों को बद्धमूल नहीं होने देती। यह तो प्रकृति के नियम के समान बिना पक्षपात के नियम के सभी का भला करती है।

—पाञ्चजन्य, मई 11, 1952

□

15

अखंड भारत का संकल्प हो*

25 मई, 1952 को जोधपुर[1] की एक चुनाव सभा का यह भाषण है। दीनदयालजी चुनाव सभाओं में भी विचारधारा का ही विवेचन करते थे।

भारत को अखंड भूभाग के रूप में देखने का हमारा विचार स्वप्नमात्र न होकर सुविचारित संकल्प होना चाहिए। जनसंघ का पहला सिद्धांत 'एक देश' है, अर्थात् हम इस संपूर्ण भारतवर्ष को एक देश मानते हैं। हमारा यह प्यारा देश अटक से कटक एवं हिमालय से कन्याकुमारी तक एक एवं अखंड है। हम इसके टुकड़े-टुकड़े होना स्वीकार नहीं कर सकते। हमारी सात नदियाँ एवं चारों धाम हमारी एकता की मानो सगर्व घोषणा कर रहे हैं। देश को अलग-अलग हिस्सों में बाँटने वाली नीति को छोड़ कर हमें तो ऐसी राह पकड़नी है कि हमारा देश पुनः अखंड हो और हम गर्व के साथ अपनी माता के सामने सुपुत्र के नाते अपना मस्तक ऊँचा कर सकें।

हमारे आधुनिक नेता भारत के निर्मम विभाजन को सुनिश्चित तथ्य *(Settled Fact)* मानते हैं। पर उनका यह दृष्टिकोण आमूल ग़लत है। और चाहे कुछ हो, पर उनमें माँ के प्रति ममत्व नहीं। वे इतिहास को भूलते हैं, इतना ही नहीं, सच बात तो यह

---

* देखें परिशिष्ट VIII, पृष्ठ 292।

1. यह चुनाव सभा जोधपुर नगर में विधानसभा तथा लोकसभा के उपचुनाव के संबंध में हुई थी। इन दोनों स्थानों पर जोधपुर के भूतपूर्व नरेश हनुमंत सिंहजी विजयी हुए थे। पर विमान दुर्घटना में उनका आकस्मिक निधन हो जाने से यहाँ उप चुनाव की आवश्यकता पड़ी। स्वर्गीय जोधपुर नरेश ने यहाँ पर विधानसभा के लिए कांग्रेस की ओर से खड़े राज्य के मुख्यमंत्री श्री जयनारायण व्यास को हराया था। लोकसभा के लिए भी उन्होंने कांग्रेसी उम्मीदवार श्री नूरी को हराया था।

है कि वे इतिहास के ज्ञान से अनभिज्ञ हैं। मुसलमानों के काल में भी तो इस देश के कई टुकड़े हुए थे, लेकिन तात्कालिक नेताओं ने उन टुकड़ों को 'सुनिश्चित तथ्य' नहीं माना और वे अखंडता के लिए लड़ते रहे।

पांडवों के लिए पाँच गाँव देने की बात तो दुर्योधन तक ने स्वीकार न की और उसने राज्य को खंडित होने से बचाया, पर हमारे नेताओं ने तो इस दुर्योधन को भी मात कर दिया, क्योंकि जो काम वह भी न कर सका, उसे हमारे गद्दी के लोभी नेताओं ने कर दिखाया। आज भारत एक राज्य नहीं, अनेक राज्यों का संघ (Union of States) माना गया है, यह कैसी विडंबना है।

कश्मीर के भाग्य निर्माण के लिए जनमत संग्रह[2] की माँग युक्ति बुद्धि का सरासर दिवालियापन है। हमारे देश में स्वतंत्रता के पूर्व सैकड़ों देशी रियासतें थीं। कश्मीर तथा जम्मू की रियासत इन्हीं में से एक रियासत थी। जैसा कि अन्य रियासतों के साथ हुआ है, कश्मीर की रियासत का भाग्य निर्णय भारत के साथ ही है। कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है। उसकी रक्षा के लिए भारतीय सेनाओं ने अपना शौर्य-परिचय दिया है। बड़े-बड़े सेनानी भारतीय सैनिकों के अतुल पराक्रम को देखकर आश्चर्यचकित रह गए थे। अन्याय के ऊपर वे विजय करने के लिए निकले थे। उनके क़दम उत्साह के साथ तेज़ी से बढ़ रहे थे। शत्रुबल उसके सामने नगण्य था। आततायी भागने लगे थे। पर हमारे प्रधानमंत्री को कदाचित् अन्याय का दमन अच्छा न लगा, उन्होंने लड़ाई बंद करा दी। भारतीय सैनिक मन मारकर रह गए। अनुशासन की माँग पर बढ़ा हुआ क़दम भी आगे न रख सके।[3] जम्मू-कश्मीर में अगणित भारतीय सैनिकों का बलिदान हुआ, धरा रक्तरंजित हुई, शरीर की अंतिम रक्तबूँद तथा श्वास तक वे मातृभूमि के लिए शस्त्र लिए रहे। अन्याय व अत्याचार से लोहा लेने के लिए वे स्वर्गस्थ आत्माएँ आज हमारे नेताओं की इस बुद्धिमानी (?) पर दो आँसू बहाए बिना रह नहीं पातीं।

जनसंघ का दूसरा सिद्धांत 'एक राष्ट्रवाद' का है। एक राष्ट्र में अल्पमत नहीं होता। शरीर की रचना में नाक एक ही है और आँखें दो, इससे शरीर में नाक का अल्पमत एवं

2. संयुक्त राष्ट्र महासंघ की सुरक्षा परिषद् ने 28 अप्रैल, 1948 को जम्मू और कश्मीर के भारत या पाकिस्तान में विलय के लिए जनमत संग्रह प्रस्तावित किया था।

3. पाकिस्तान ने जम्मू और कश्मीर पर अक्तूबर, 1947 में आक्रमण कर दिया। जम्मू और कश्मीर के महाराजा हरि सिंह ने भारत सरकार से इस संदर्भ में सहायता माँगी। भारत सरकार ने तुरंत अपनी सेना जम्मू और कश्मीर के लोगों की रक्षा के लिए भेज दी। इसी बीच महाराजा हरि सिंह ने जम्मू और कश्मीर के भारत में विलय के लिए 26 अक्तूबर, 1947 को विलय-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। दूसरी तरफ़, भारतीय सेना भारतीय क्षेत्र से पाकिस्तानी फ़ौज को खदेड़ने की ओर अग्रसर थी। लेकिन दुर्भाग्यवश पं. जवाहरलाल नेहरू ने 1 जनवरी, 1948 को जम्मू और कश्मीर पर आक्रमण के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ में अपील कर दी। परिणामस्वरूप युद्ध विराम का फ़ैसला ले लिया गया और जम्मू व कश्मीर के एक-तिहाई क्षेत्र पर पाकिस्तान का अनधिकृत कब्ज़ा हो गया।

आँख का बहुमत नहीं होता। सब एक ही शरीर के अंग हैं। परंतु हमने यदि यह धारणा न रखी तो थोड़े ही समय में सब अल्पमत रह जाएँगे, फिर आज चाहे उनका बहुमत ही क्यों न हो।

जनसंघ का तीसरा सिद्धांत एक संस्कृति है। भारतवर्ष के अंदर मुसलमानों या ईसाइयों की कोई भिन्न संस्कृति नहीं। संस्कृति का संबंध उपासना से नहीं, देश से होता है। मुसलमानों के सामने कबीर, जायसी व रसखान का आदर्श है। भारत के अंदर भारतीय बनकर रहने वाले मुसलमानों के लिए इन मुसलमान कवियों का जीवन अनुकरणीय है। उनकी भावनाओं तथा सोचने के दृष्टिकोण में मूलभूत परिवर्तन होना नितांत आवश्यक है। आज तो उनकी राष्ट्रभक्ति का केंद्र ही भारत के बाहर है। भारत में रहकर दजला-फ़रात[4] के गीत गाना उन्हें छोड़ना पड़ेगा।

देश में आज जो विचारधाराएँ चल रही हैं, उनमें से कुछ के प्रतिनिधि तो पाश्चात्य संस्कृति को भारत में लाना चाहते हैं और कुछ रूस की तानाशाही को भारत में स्थापित करने का स्वप्न देख रहे हैं। इन विचारधाराओं से तो भारत के नष्ट होने का डर है। नष्ट होने का तात्पर्य यह नहीं कि गंगा या हिमालय नष्ट हो जाएँगे, पर उनको पवित्र मानने की जो भावना हमारे अंतःकरण में आज युग-युगों से बनी रही है, वह भावना नष्ट हो जाएगी।

उद्योगों का विकेंद्रीकरण आवश्यक

देश की औद्योगिक समस्या सुलझाने के लिए उद्योगों का विकेंद्रीकरण आवश्यक है। इससे बेकारी दूर होने में भी बड़ी सहायता मिलेगी। परंतु यह सब कौटुंबिक भावना पर ही अधिष्ठित होगा, ग्राम हमारे केंद्र बनने चाहिए, जो कि आज हमें दिखाई नहीं दे रहा। नगरों की ओर जनता के आकर्षण ने हमारी कर्तव्य शक्ति को व आर्थिक ढाँचे को ठेस पहुँचाई है।

आज चारों ओर एक ही आवाज़ सुनाई दे रही है कि समाज में 'आर्थिक समानता' का कोई अर्थ होता नहीं। 'समानता' तो केवल मृत्यु में दिखाई देती है। वास्तव में 'समानता' से हमारा अर्थ इतना ही होना चाहिए कि समाज में सभी व्यक्तियों को सुख और आनंद समान रूप से प्राप्त होते रहें। सुख और आनंद की समानता का आधार परस्पर आत्मीयता की भावना ही हो सकती है। पंचायतों को शक्ति मिले, इसी से आर्थिक प्रजातंत्र की स्थापना संभव है। आज हमारे देश में अन्न की कमी है। इस प्रदेश में भी अन्न का अभाव है। मैं जिस प्रदेश से आ रहा हूँ, अर्थात् उत्तर प्रदेश के कई भागों में भी

4. दजला-फ़रात : दजला (टिगरिस) नदी तुर्की के पर्वतों से निकलकर इराक से बहती हुई फरात नदी में मिल जाती है। फरात तुर्की, इराक और सीरिया से होकर बहती है। इन्हीं नदियों के किनारे मेसोपोटामिया, सुमेरिया, असीरिया व बेबीलोन की सभ्यताएँ विकसित हुईं।

कुछ क्षेत्र अकालग्रस्त हो रहे हैं। मध्य भारत में अन्न के भंडार मालवा में भी दाने-दाने को तरसने की नौबत आ गई है। पंजाब अकाल की छाया से बचा नहीं। मद्रास के रायलसीमा क्षेत्र में निरंतर कई-कई सालों से अन्न की कमी है। हम अपने देश के सभी बांधवों को खिलाने के लिए अन्न पैदा नहीं कर पा रहे हैं। अपनी इस कमी को पूरा करने के लिए हम विदेश की ओर मुँह बाए बैठे हुए हैं। हमारा करोड़ों रुपया देश में ख़र्च न होकर विदेशों से अन्न मँगाने में ख़र्च हो रहा है। इस स्थिति पर हमें गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। हम सोचें कि हम स्वयं अन्नदाता हैं। हम कर्मयोगी बनें और अन्न पैदा करें। हमारे इस प्रण के पीछे हमारे देश की ख़ुशहाली छिपी हुई है।

जनसंघ के विरुद्ध प्रतिक्रियावाद का आरोप थोथा और निर्मूल है। जनसंघ ने जिन सिद्धांतों व बातों को जनता के सामने रखा है, उनमें किसी का विरोध करने की भावना नहीं, वरन् अनुरोध की भावना ही है। हमने समाज को ऊपर उठाने का रास्ता बताया है। समाज में और भी विचारधाराएँ कार्य कर रही हैं। आज हमारे सामने यह सोचने का अवसर है कि समाजोत्थान के लिए हम कौन सा मार्ग चुनें। मार्ग चुनने के पूर्व आप अपने देश के रोग का निदान भली प्रकार से करें और यदि आपने निदान भली प्रकार से समझ लिया तो मुझे विश्वास है कि आपके क़दम बरबस ही जनसंघ के बताए हुए मार्ग पर पड़ेंगे।

कुछ व्यक्तियों को हम अपना प्रतिनिधि मानकर धारासभाओं में भेजते हैं। वहाँ देश की व विदेशों की सारी समस्याओं को हल करने के मार्ग निकाले जाते हैं। निस्संदेह यह कार्य बड़ा ही उत्तरदायित्वपूर्ण है और इसलिए हम सबका यह कर्तव्य है कि इस बोझ को ऐसे कंधों पर रखें, जो उसे उठाए रखने की क्षमता रखता हो। जनता की आवाज़ को बुलंद करने की जिसमें ताक़त हो, जनहित जिसका परम लक्ष्य हो। मुझे विश्वास है कि जनसंघ के कार्यकर्ता धारासभाओं में व उनके बाहर जनता की सेवा में अपने सभी छोटे-बड़े स्वार्थों को छोड़ देने में रंचमात्र भी हिचकिचाएँगे नहीं, वे कर्तव्य की कसौटी पर खरे उतरेंगे।

—पाञ्चजन्य, मई 25, 1952

□

16

उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंघ महत्त्वपूर्ण कार्य करेगा

भारतीय जनसंघ, उत्तर प्रदेश के विभाग संगठन मंत्रियों की बैठक में, जो लखनऊ में दीनदयालजी की अध्यक्षता में हुई, निश्चय किया गया कि राज्य में जनसंघ की शिक्षा-प्रसार योजना के अंतर्गत 1 जुलाई से 200 जूनियर तथा सीनियर हाई स्कूल खोले जाएँगे, जो बिना किसी प्रकार की सरकारी सहायता के चलाए जाएँगे। इसके अतिरिक्त ग्रामों में औषधालय खोलने, अकालपीड़ितों को सहायता पहुँचाने, सहकारी समितियाँ बनाने आदि के संबंध में भी निर्णय किए गए। इस अवसर पर दीनदयालजी का वक्तव्य।

हमारे सारे प्रयास दलगत स्वार्थों की सिद्धि के लिए न होकर समाज-सेवा की ओर ही होने चाहिए। चुनावों के कुछ ही दिन पूर्व जनसंघ का जन्म हुआ था।[1] उस समय तक हम जनता की सेवा में कोई ठोस कार्य न कर पाए थे। चुनाव की आँधी में हमने भी क़दम रखा। हमारे विरुद्ध जो प्रचार किया गया, उसमें किसी प्रकार की कसर उठा न रखी गई थी। किंतु जनता ने असलियत को पहचाना। जनता के बलबूते पर हम दृढता के साथ खड़े रहे। हमने बिना किसी प्रकार की लाग-लपेट के जनता के साथ जो वादे किए थे, उनमें जनता ने विश्वास भी किया। उसका यह विश्वास हमारे पास अमूल्य धरोहर के रूप में हैं। अत: हमारा यह कर्तव्य है कि हम इस धरोहर की बहुत सतर्क होकर रक्षा करें। हमसे निस्स्वार्थ सेवा की अपेक्षा की गई है। इस अपेक्षा को पूरा करना हमारा प्रथम तथा अंतिम लक्ष्य होना चाहिए।

—पाञ्चजन्य, जून 22, 1952

□

1. भारतीय जनसंघ की स्थापना 21 अक्तूबर, 1951 को हुई थी और देश में पहला आम चुनाव 25 अक्तूबर, 1951 से 21 फरवरी, 1952 के मध्य संपन्न हुआ।

17

कश्मीर हमारा है! आज कश्मीर दिवस है*

जम्मू और कश्मीर में अगस्त-सितंबर, 1951 में चुनावों का आयोजन किया गया। शेख़ अब्दुल्ला की जम्मू और कश्मीर नेशनल कॉन्फ्रेंस ने सभी 75 सीटों पर जीत हासिल की। 31 अक्तूबर, 1951 को शेख़ अब्दुल्ला ने वहाँ की विधानसभा में अपने पहले भाषण में पृथक् राज्य-ध्वज की माँग की थी। उस समय दीनदयालजी ने यह वक्तव्य दिया।

कश्मीर समस्या किसी दल, वर्ग या संप्रदाय की समस्या नहीं है। वह तो संपूर्ण राष्ट्र के जीवन-मरण की समस्या है। अत: आवश्यक है कि आज सभी भारतवासी एक स्वर से माँग करें कि—

1. कश्मीर का भारत में पूर्ण विलय हो और वह अन्य राज्यों के समान ही स्थान प्राप्त करे।
2. कश्मीर का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ से वापस लिया जाए।
3. कश्मीर का जो 2/5 हिस्सा पाकिस्तान के क़ब्ज़े में रह गया है, उसे वापस लेने के लिए सक्रिय क़दम उठाए जाएँ।

कश्मीर संविधान सभा के इन निर्णयों से कि कश्मीर-जम्मू राज्य का प्रधानमंत्री निर्वाचित किया जाए, राज्य का अपना पृथक् राज्य-ध्वज हो एवं मूलभूत सिद्धांत समिति के इन सुझावों से कि कश्मीर का राज्य एक गणराज्य में स्वतंत्र गणराज्य होगा, एक गंभीर परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। प्रधानमंत्री पंडित नेहरू के वक्तव्य से भी, जिसमें कश्मीर संबंधी उक्त निर्णयों का समर्थन किया गया है, सभी को गहरा धक्का लगा है। यह विशेषकर इसलिए कि प्रधानमंत्री ने जो मत व्यक्त किया है, वह भारतीय संविधान की

---

* देखें परिशिष्ट VII, पृष्ठ 189।

आत्मा को ठेस पहुँचाता है।

कश्मीर की समस्या को, जो प्रारंभ में एक सरल सा प्रश्न था, जिसे हमारी सीमा से आक्रमणकारियों को खदेड़कर हल कर लिया जाता, अब इसलिए केवल इतना जटिल बना दिया गया है कि नेहरूजी न तो इस बात को समझ सके और न उन्होंने इस बात को समझने का प्रयत्न ही किया कि कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है। वह भारत से पृथक् कोई इकाई या अंग नहीं जो बाद में तथाकथित भारतीय संघ में सम्मिलित हो जाए। इस बात को समझना चाहिए कि भारतीय संविधान एकात्मक (Unitary) है। संघवाद की ओर उठाया गया कोई भी क़दम हमारे देश के खंड-खंड कर देगा।

भारतीय संविधान के 370वें अनुच्छेद में कश्मीर के बारे में जो व्यवस्थाएँ की गई हैं, वे सब निश्चित रूप से अस्थायी थीं और केवल इसलिए की गई थीं कि जिस समय हमारा संविधान स्वीकार किया गया, उस समय कश्मीर का भारत में पूर्णतया विलीनीकरण नहीं हो पाया था।

फिर भी उसका यह अर्थ नहीं कि कश्मीर वैधानिक पेचीदगियों से बाहर न निकले और अपने को भारत में पूर्णतया विलीन कर अपनी राष्ट्रभक्ति का परिचय उसी प्रकार न दे, जिस प्रकार कि अन्य राज्यों ने, जो सन् 1947 के भारतीय स्वातंत्र्य अधिनियम के अंतर्गत कश्मीर की भाँति वैधानिक स्वतंत्रता का उपभोग कर रहे थे—दिया है।

इन राज्यों की सार्वभौमिकता की मिथ्या कल्पना तो चिरकाल पूर्व ही समाप्त हो चुकी है। अब कश्मीर के नेताओं और भारत के प्रधानमंत्री को यह शोभा नहीं देता कि वे आत्मनिर्णय के ग़लत सिद्धांत को मानते ही चले जाएँ।

—पाञ्चजन्य, जून 29, 1952

□

18

लोकसभा में विरोधी पक्ष के प्रमुख नेता डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी

भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष और भारतीय लोकसभा में विरोधी पक्ष के प्रमुख नेता डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी अपनी वाग्मिता और विद्वत्ता और महान् व्यक्तित्व के कारण लोकप्रिय हैं। 6 जुलाई को उनके जन्म दिवस पर दीनदयालजी का आलेख।

'नाभिषेको न संस्कार:
सिंहस्य क्रियते मृगै:।
विक्रमोर्जितराज्यस्य
स्वयमेव मृगेन्द्रता॥'

(नारायण पंडित, हितोपदेश 2/19)

सिंह का कभी राज्याभिषेक नहीं होता अपितु अपने पराक्रम से वह स्वत: ही 'मृगेंद्र' पद को प्राप्त करता है। कवि की यह उक्ति वन के प्राणियों के लिए ही नहीं, मानव के व्यवहार में भी चरितार्थ होती है। संसद् में डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की स्थिति इसका उदाहरण है। अध्यक्ष मावलंकर[1] द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार श्यामाप्रसाद चाहे विरोधी दल के नेता न स्वीकृत हों किंतु संसद् के सभी सदस्य, यहाँ तक कि उनके विरोधी दल के सदस्य भी उन्हें संसद् के विरोधी दल का ही नहीं, अपितु अपना नेता

---

1. गणेश वासुदेव मावलंकर (1888-1956) लोकसभा के पहले अध्यक्ष (मई 1952-फरवरी 1956) थे।

भी मानते हैं।[2] वैसे तो संसद् में प्रतिदिन छह घंटे भाषण ही होते रहते हैं। और अख़बारों में अनेक सदस्यों के भाषण भी छपते हैं, किंतु एक ही व्यक्ति ऐसा है, जिसका भाषण सुनने के लिए प्रत्येक सदस्य लालायित रहता है। क्या विरोधी दल के और क्या कांग्रेस के, सभी सदस्य उस समय अपनी सीटों पर दिखाई देंगे, जब श्यामाप्रसाद मुखर्जी अपना भाषण प्रारंभ करते हैं। दर्शकों से गैलरी खचाखच भरी रहती है तथा प्रेस रिपोर्टर, चाहे वे भाषण को अख़बारों में न छापें, एक-एक शब्द को लेखनीबद्ध करने के लिए आतुर रहते हैं। कारण, श्यामाप्रसाद मुखर्जी के शब्दों में वकील का तर्क ही नहीं, कवि का हृदय भी रहता है। स्वर्ग से गिरने वाली ओस की बूँदों के समान कभी उनके शब्द सरलता से हृदयंगम होते जाते हैं तो कभी उनकी दहाड़ से विरोधियों के छक्के छूट जाते हैं। कांग्रेस के लोग उनके शब्दों की क़ीमत करते हैं, क्योंकि वे उनके हृदय की भाषा में बोलते हैं। अपने जिन भावों को नेहरूजी की भृकुटी के भय से तथा अनुशासन के ताले के कारण वे प्रकट नहीं कर पाते, उन्हें जब वे डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के भाषण में पाते हैं तो बरबस उनका हृदय उनकी ओर खिंच आता है। एकांत में वे उनकी सराहना करते हैं, पर संसद् में आत्मप्रवंचना के अलावा और सहारा ही क्या है!

डॉ. मुखर्जी कभी विरोध के लिए विरोध, अथवा बोलने के लिए बोलने की नीति में विश्वास नहीं करते। वे अपने विषय के साथ जब एकात्मता का अनुभव करते हैं, तब बोलते हैं और वही बोलते हैं, जिसे वे अनुभव करते हैं। हृदय की सच्ची अनुभूति ही तो काव्य है। इस काव्य के अक्षर स्वतः अभिमंत्रित हो जाते हैं। उनका असर केवल संसद् में ही नहीं बल्कि संसद् के बाहर कोटि-कोटि हृदयों तक पहुँचता है। देश की भूखी, नंगी, पीड़ित, त्रस्त और अज्ञानांधकार में आवृत्त जनता उन्हें जाने या न जाने, उनके कानों तक उनका नाम चाहे न पहुँचा हो किंतु उनकी मूक भावनाओं को वाणी का परिधान डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ही पहनाते हैं।

कम्युनिस्टों के समान वे मजमेबाजों की सस्ती वक्तृत्व कला में विश्वास नहीं करते और न संसदीय शिष्टाचार की अवहेलना का बेसुरा राग अलापना ही उन्हें पसंद है। संसद् ने यदि भाषणों को निश्चित समय की सीमा में बाँधा हो तो न तो उन्होंने सीमोल्लंघन का कभी प्रयत्न किया और न कोई ऐसा विषय ही छूटा, जिसे वे प्रस्तुत करना चाहते हों और न कर पाए हों। 'मात्रालाघवेन पुत्रोत्सव मिति वैयाकरणः मन्यनो' के अनुसार उन्होंने भाषण को प्रयत्नपूर्वक कभी संक्षिप्त भले न किया हो, किंतु गागर

---

2. डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने पहली लोकसभा और राज्यसभा के क्रमशः 32 और 10 संसद् सदस्यों के समर्थन से संसद् में विपक्षी दल के नेता के रूप में राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक दल (National Democratic Party) का गठन किया। लेकिन लोकसभा अध्यक्ष, जी.वी. मावलंकर ने डॉ. मुखर्जी के नेतृत्व वाले इस विपक्षी दल को मान्यता देने से इनकार कर दिया।

में सागर भर देने की कला सिद्ध है और फिर सागर के सभी रत्न भी उस गागर में समा जाते हैं।

डॉ. मुखर्जी की आलोचना रचनात्मक होती है। उनके सुझाव विचारपूर्ण होते हैं। किंतु उनका व्यंग्य भी हृदय को विदीर्ण करने वाला होता है, यद्यपि उसमें शत्रु के प्रति विद्वेष का भाव नहीं रहता। उनके एक-एक शब्द में सरकार को चुनौती रहती है। उनके तथ्यों को यदि किसी ने चुनौती दी तो वे कभी बग़लें नहीं झाँकते और न भविष्य में प्रमाण प्रस्तुत कर अपनी बात सिद्ध करने का वादा करते हैं। वे इन प्रमाणों को पहले से अपने पास तैयार रखते हैं तथा आवश्यकता हुई तो प्रस्तुत भी कर देते हैं। हाल ही में कश्मीर के संबंध में भाषण करते हुए शेख़ अब्दुल्ला की सांप्रदायिक नीति की वे निंदा कर रहे थे तो कश्मीर के एक सदस्य ने टोक दिया कि वे कैसे कह सकते हैं कि कश्मीर में सांप्रदायिकता ज़िंदा है। डॉ. मुखर्जी ने तत्काल ज़ेब से एक पुस्तिका निकाली, जो कश्मीर सरकार की छापी हुई थी और उसके उद्धरणों से अपनी उक्ति की प्रामाणिकता सिद्ध की।[3]

हाज़िरजवाबी भी उनका ऐसा गुण है, जो मौक़े पर उनके बड़े काम आता है। डॉ. मुखर्जी के भाषण से परेशान हो एक बार नेहरूजी कह उठे, ''मालूम होता है, डॉ. मुखर्जी की संगत ठीक नहीं है।'' ''जी, हाँ'' मुखर्जी बोल उठे, ''आपके साथ $2\frac{1}{2}$ वर्ष रह चुका हूँ।''[4] नेहरूजी को ठीक से जवाब देते नहीं बना किंतु संसद् के सभी सदस्य मुसकरा उठे।

संसद् में सभी विरोधी दल के सदस्य उनसे बराबर परामर्श लेते रहते हैं और उन्होंने कभी किसी को सत्परामर्श से वंचित नहीं रखा। अनेक दल चाहते हैं कि वे उनके साथ मिलकर काम करें तथा एक विरोधी दल बना लें किंतु वे ऐसा कोई दल संगठित नहीं करना चाहते, जिसका कोई सैद्धांतिक आधार न हो। केवल नेतृत्व के लिए सिद्धांतों से समझौता करने को वे तैयार नहीं और यही कारण है कि उनके राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक

---

3. 26 जून, 1952 को जम्मू और कश्मीर मामले पर एक चर्चा के दौरान डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने कहा, ''जम्मू-कश्मीर में शेख़ अब्दुल्ला की अध्यक्षता वाली टेक्स्ट बुक कमेटी ने इस पुस्तक (सदन की ओर पुस्तक दिखाते हुए) का प्रकाशन किया है।'' टेक्स्ट बुक कमेटी के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप में एक भी अल्पसंख्यक (जम्मू-कश्मीर में हिंदू अल्पसंख्यक हैं) को शामिल नहीं किया गया है। इसमें सभी मुसलमानों के अलावा केवल एक या दो यूरोपियन लोगों को शामिल किया गया है। इससे कोई शंका नहीं है कि किस प्रकार की शिक्षा जम्मू और कश्मीर में दी जाएगी।''
4. डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी आज़ादी के बाद की पहली केंद्रीय अंतरिम सरकार में उद्योग एवं आपूर्ति मंत्री थे। लेकिन डॉ. मुखर्जी ने नेहरू-लियाक़त समझौते के कारण 6 अप्रैल, 1950 को मंत्री पद से इस्तीफ़ा दे दिया। (इस समझौते में आज़ादी के बाद पूर्वी पाकिस्तान (बांग्लादेश) से आए हिंदू शरणार्थियों की समस्याओं को नज़रअंदाज़ किया गया था)।

दल में अभी 34 सदस्य हो पाए हैं। उनका विश्वास है कि यदि वे सिद्धांत पर डटे रहे तो अवश्य ही उनके दल की संख्या बढ़ेगी और इसलिए सिद्धांतहीन सौदेबाज़ी के आधार पर अपने दल को बढ़ाने को अग्रसर होने की अपेक्षा वे थोड़े ही लोगों से संतुष्ट हैं। दल में अन्य लोग आएँ या न आएँ, किंतु उन्हें सब विरोधी दल के नेता स्वीकार करते हैं। देश भी आज उनकी ओर इसी नाते से देखता है और यह विश्वास है कि संसदीय क्षेत्र में पंडित नेहरू के बाद वे ही दूसरा नेतृत्व निर्माण करने में सफल होंगे।

—पाञ्चजन्य, जुलाई 7, 1952

□

19

नीतिमत्ता के अभाव के कारण सांप्रदायिकता जीत गई

यह वक्तव्य दीनदयालजी ने 28 जुलाई, 1952 को मेरठ के टाउन हॉल में दिया था।

लड़ाई में हम सदैव जीतते हैं, परंतु संधि में हार जाते हैं। यह भारत का दुर्भाग्य है और हमारे नेताओं में नीतिमत्ता के अभाव का द्योतक है। हम जनमत को जाग्रत् कर शेर-ए-कश्मीर को, जो किसी भी सूरत में कश्मीर की घाटियाँ छोड़कर दिल्ली आने को तैयार न थे, यहाँ बुला सके, परंतु संतोषप्रिय भारत के प्रधानमंत्री ने भारत के सम्मान की बलि देकर भी इस समझौते को संतोषजनक बताकर संतोष किया है, जो आत्मप्रवंचना धोखे और शब्दाडंबर के अतिरिक्त और कुछ नहीं। प्रधानमंत्री को इससे संतोष हो सकता है, भारतीय जनता को नहीं, जो कश्मीर को अपना अभिन्न अंग मानती है।

कश्मीर के साथ हुए तथाकथित समझौते की शर्तों में ध्वज और मौलिक अधिकार संबंधी शर्तों को ऐतिहासिक कारणों से नहीं, बल्कि सांप्रदायिक कारणों से इस रूप में रखा गया है—यह केवल मात्र नेहरूजी के हाथों सांप्रदायिकता की विजय है।

हिमाचल के प्राकृतिक गिरिअंगों से घिरे कश्मीर को, जिसके साथ हमारे संबंध अपनी दिग्विजय के बाद भगवान् शंकराचार्य ने प्रस्थापित किए थे और जो गुरु तेगबहादुर के बलिदान, महाराजा रणजीत सिंह[1] और गुलाब सिंह[2] के पराक्रम से सुदृढ हुए हैं और

1. महाराजा रणजीत सिंह 'शेर-ए-पंजाब' (1780-1839) ने पहली भारतीय आधुनिक 'सिख खालसा सेना' गठित की और उसे फ्रांसीसी सैनिकों से प्रशिक्षित करवाया। उनका एकछत्र राज्य पख्तून क्षेत्र (वर्तमान अफ़गानिस्तान) तक फैला हुआ था। इनके रहते अंग्रेज़ी हुकूमत, पंजाब प्रांत में हस्तक्षेप न कर सकी। 'कोहिनूर' हीरा इनके ही दरबार में था।
2. महाराजा गुलाब सिंह (1792-1857) : जम्मू-कश्मीर में डोगरा राजवंश के संस्थापक।

जिन्हें 27 अक्तूबर, 1947 को भारतीय सैनिकों के रक्त से पुष्टि मिली है, अब्दुल्ला या नेहरूजी के कहने से वह बन-बिगड़ नहीं सकते। अमरनाथ की यात्रा को शिव की आराधना के लिए आने वालों की परंपरा जब तक बनी हुई है, कश्मीर को हमसे कोई अलग नहीं कर सकता।

राजर्षि टंडन को अपदस्थ कर, ज़बरदस्ती कांग्रेस अध्यक्ष बनकर, निर्वाचनों में हारने वालों को भी गवर्नर और उच्च पदों पर आसीन करके तथा बेईमानियों के द्वारा अपने और कांग्रेस के नेतृत्व को भारतीय जनता की इच्छाओं के विपरीत उस पर लादने वाले लोग भारतीय संविधान को ज्यों-का-त्यों कश्मीर पर लागू करने को किस मुँह से लादना कहते हैं?

—पाञ्चजन्य, अगस्त 3, 1952

□

20

शासन के भ्रष्टाचार और चोर बाज़ारियों के लोभ के कारण परिस्थिति बिगड़ गई*

उत्तर प्रदेश के अकालग्रस्त पूर्वी जिलों का भ्रमण करने के पश्चात् लखनऊ में दिया गया दीनदयालजी का एक वक्तव्य।

प्रदेश के पूर्वी जिलों में अकाल की अवस्था तथा भुखमरी से मौतों के संबंध में माल-मंत्री श्री चरण सिंह के कथित 'भ्रामक व तथ्यहीन' वक्तव्य को लेकर श्री शिब्बनलाल सक्सेना[1] ने आमरण अनशन आरंभ कर दिया है। यह बड़े खेद की बात है कि इतना उग्र क़दम उठाने की स्थिति उत्पन्न हुई, तथापि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि भूख हड़ताल से शायद ही उन क्षेत्रों की पीड़ित मानवता का कोई लाभ हो। इस बात का कोई महत्त्व नहीं है कि वहाँ की स्थिति को कौन सी संज्ञा दी जाती है। वास्तविक महत्त्व तो इस बात का है कि अभावग्रस्त लोगों को खाद्यान्न मिलने की व्यवस्था की जाए। अतएव सरकारी तथा ग़ैर-सरकारी संस्थाओं को शाब्दिक द्वंद्व में पड़ने की अपेक्षा इस दिशा में अपने प्रयत्न केंद्रित करने चाहिए।

पटवारी तथा राशन इंस्पेक्टरों का भ्रष्टाचार

सरकार ने ए.पी. योजना तो प्रारंभ की है, परंतु जिन्हें वस्तुत: सहायता की आवश्यकता है, उन्हें सरकारी भ्रष्टाचार तथा चोरबाज़ारियों के लोभ के कारण हमसे कोई लाभ नहीं

---

* देखें परिशिष्ट III, पृष्ठ 181।

1. शिब्बनलाल सक्सेना (1906-1984) स्वतंत्रता सेनानी, संविधान सभा के सदस्य (1946-50), महराजगंज (उत्तर प्रदेश) से 1952, 1957, 1971 व 1977 में लोकसभा के लिए चुने गए।

पहुँचता। अपने गोरखपुर के दौरे के समय मैंने सुना है कि राशन इंस्पेक्टर कार्ड बनवाई का एक रुपया लेते हैं और दूसरी ओर राशनिंग दुकान का मालिक चोरबाज़ारी के लिए हरेक चाल चलता है। अशिक्षित ग्रामवासियों के कार्ड में लिख तो दिया जाता है, पर उसे राशन नहीं दिया जाता है। सरकार भी ज़िले की प्रतिदिन की आवश्यकता का 9000 मन बाज़ार का कोटा पूरा नहीं दे रही है।

जनसंघ का प्रयत्न

दूसरी कठिनाई यह है कि जनता की क्रयशक्ति, जो भादों के महीने में हमेशा ही निम्नतम या न्यूनतम हो जाती है, इस बार पिछली फ़सल न होने के कारण और भी नीचे पहुँच गई है। ग़रीबों को उधार मिलने की कोई सुविधा उपलब्ध नहीं हैं। अत: भारतीय जनसंघ ने स्थिति का मुक़ाबला करने के लिए दो सूत्री कार्यक्रम अपनाया है। इसके कार्यकर्ता बिना कुछ लिए-दिए राशन कार्ड बनवा देते हैं, साथ ही यह भी देखते हैं कि कार्डों में लिखित मात्रा के अनुसार अनपढ़ ग्रामीणों को राशन मिल जाए। जनसंघ ने अनेक स्थानों पर दरिद्रनारायण यज्ञ भी प्रारंभ किया है, जहाँ पर ग़रीबों को मुफ्त खिचड़ी बाँटी जाती है।

मैं श्री शिब्बनलाल सक्सेना से अनुरोध करूँगा कि वे अपना अनशन तोड़ दें और प्रदेश के उस भाग की जनता की रचनात्मक सहायता में अपनी शक्ति लगाएँ। सरकार को भी पूर्वी जिलों को समस्त संभव सहायता अविलंब पहुँचानी चाहिए और इस बात की निगरानी रखनी चाहिए कि समाज-विरोधी जंतु उसका बहुत सा हिस्सा न गटक जाएँ। सरकार को यह भी चाहिए कि मानवता के इन शत्रुओं को प्रकृति के प्रतिशोध के पूर्व ही उचित दंड दे।

—पाञ्चजन्य, अगस्त 31, 1952

□

21

अखंड भारत क्यों?*
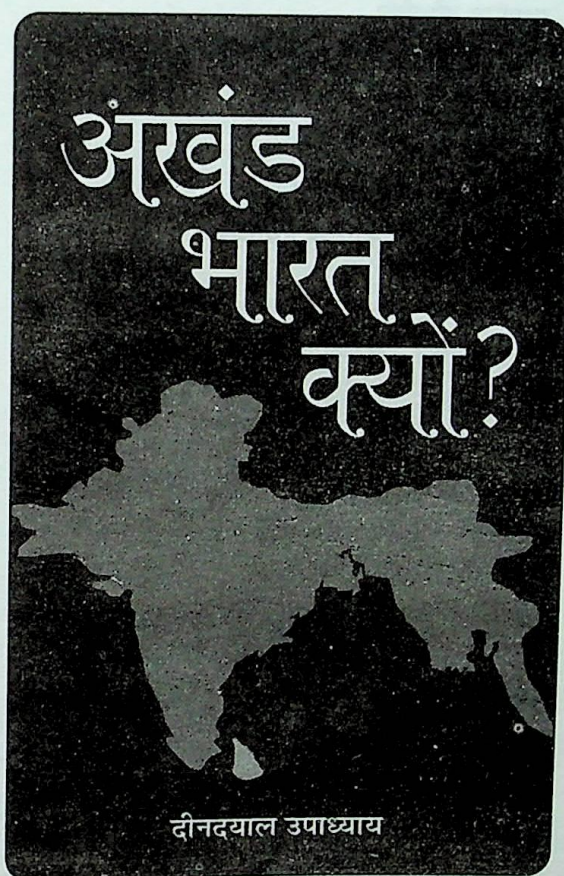
* देखें परिशिष्ट VIII, पृष्ठ 292।

अनुक्रमणिका

गायन्ति देवाः किल गीतकानि।
धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे॥
स्वर्गापवर्गस्य पद हेतुभूते।
भवन्तु भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

(विष्णुपुराण)

पंद्रह अगस्त हमारी स्वतंत्रता का दिन है। सन् 1947 को इसी दिन अंग्रेज़ भारत छोड़कर गए। हमारी युग की साध पूरी हुई किंतु अपनी युगों से सँजोई हुई थाती को खोकर। घर-घर में दीपक जलाए गए किंतु हमारे हृदय में अंधकार था। भारत में एक ओर हम दीवाली मना रहे थे तो दूसरी ओर जो 14 अगस्त, 1947 तक भारत था और 15 अगस्त, 1947 को जिसे पाकिस्तान का नामाभिधान प्राप्त हो गया, वहाँ हमारे जीवन की होली हो रही थी। दिल्ली में हमारे नेता कुंकुम-तिलक लगा रहे थे, जबकि पंजाब में हमारी माताओं और बहिनों की माँग का सिंदूर पुछ रहा था। 'वंदेमातरम्' का जयघोष करके हम माता की वंदना करना चाहते थे किंतु माता के वे हाथ कट चुके थे, जिनसे वह हमें आशीर्वाद देती। फलत: 'हमने जन-गण-मन-अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता' का गान करके अपने मन के क्षोभ को शांत करने का असफल प्रयास किया। दिल्ली के लाल क़िले पर तिरंगा फहराकर स्वतंत्रता की घोषणा की गई, किंतु रावी के जिस तट पर स्वतंत्रता की प्रतिज्ञा दुहराई गई थी, वह हमसे छिन चुका था। तट से टकराकर बहुत बार रावी के जल ने 1929 के उन अमर शब्दों को सुनना चाहा, किंतु उसे स्वतंत्रता का विजयघोष नहीं बल्कि अबलाओं की परवशता का करुण क्रंदन ही सुनाई पड़ा।

स्वतंत्रता के युद्ध में हम जीते किंतु संधि में हार गए। भारत की अखंड धरित्री खंडित हो गई। 15 अगस्त स्वतंत्रता दिवस के साथ-साथ विभाजन-दिवस भी हो गया। कांग्रेस के नेताओं ने समझा कि अगर दो भाई मिलकर नहीं रह पाते तो उनमें बँटवारा हो जाना चाहिए और उन्होंने देश का बँटवारा स्वीकार कर लिया। पर वे भूल गए कि देश कोई ज़मीन का टुकड़ा मात्र नहीं, जिसका जायदाद के समान बँटवारा हो जाए। भाइयों में अनबन होर्ने पर ज़मीन-जायदाद तो बँट सकती है, पर भला माता का विभाजन कौन करेगा? भारत माता भी निर्जीव भूमि का टुकड़ा नहीं बल्कि सजीव अंत:करणों की पुंजीभूत इकाई है। भूमि, जन और संस्कृति तीनों का अनादि काल से ऐसा अन्योन्याश्रित विकास हुआ है कि उनके एकीकरण से जिस राष्ट्र की निर्मिति हुई है, वह निर्जीव शरीर नहीं बल्कि सजीव आत्मा का वासस्थान एवं उसकी लीला-भूमि चेतन एवं क्रियायुक्त देह के समान है। उसका अंगच्छेद निश्चित ही परिणाम में घातक सिद्ध होगा।

1

एकात्मता की चिर साधना

भारत की एकता और अखंडता की साधना हमने सदा से की है। हमारे राष्ट्र का इतिहास इस साधना का ही इतिहास है। 'पृथिव्या समुद्र पर्यन्ताया एक राष्ट्र' का उद्घोष करने वाली ऋषियों की मंत्रपूत वाणी की पृष्ठभूमि में 'नील सिंधु जल धौत चरणातल' भारत की एकता का साक्षात्कार ही था। हिम किरीटिनी एवं सिंधुवलयांकित माता का दर्शन करके ही आदिकवि ने माता का गौरव बढ़ाने वाले सपूत मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की गुण गरिमा का बखान किया तो यही कहा "समुद्र इव गाम्भीर्येण धैर्येण हिमवानिव।" हिमालय और समुद्र की मर्यादाएँ ही राष्ट्रपुरुष राम के चरित्र की मर्यादाएँ बन गईं। कुरुक्षेत्र की सीमाओं में आबद्ध महर्षि वेदव्यास का 'जय' काव्य जब तक महाभारत बनकर कैलास से कन्याकुमारी और गांधार से कामरूप तक विस्तीर्ण देश का दर्शन नहीं करा सका, वह हमारे जीवन का केंद्र नहीं बन पाया। अपने संपूर्ण जीवन का साक्षात्कार करने पर ही कवि ने गर्वोक्ति की 'यद्भारते तद्भारते यत्र भारते तत्र भारते'। कथन सत्य है, कारण महाभारत में जिस प्रदेश का वर्णन किया है, भारत का न्याय वहीं तक रहा है। कविकुल कमल दिवाकर कालिदास की कविता जब यक्ष के हृदय की वेदना को लेकर अवतीर्ण हुई तो उसे रामगिरि से लेकर अलकापुरी तक भारत का गुण-गान किए बिना शांति नहीं मिली। रघुवंश की दिग्विजय के वर्णन में उन्होंने संपूर्ण देश का दिग्दर्शन करा दिया है। उनके हृदय की यह एकात्मानुभूति ही उन्हें महाकवि बना सकी। पुराणों में जिस भारत का वर्णन मिलता है, वह आसिंधु-सिंधुपर्यंत अखंड भारत ही है। वहाँ भारतवर्ष की व्याख्या इन शब्दों में की गई है—

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रैश्चैव दक्षिणम्।
वर्षम् तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्तति:॥

निश्चित ही उपर्युक्त व्याख्या संपूर्ण भारत का एकात्मक चित्र उत्पन्न कर देती है।

बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र' में 'भारत: खण्ड:' सूत्र की अनुवृत्ति में आने वाले निम्न सूत्र जिस भारत के विस्तार का वर्णन करते हैं, वह अखंड भारत ही है।

सहस्रयोजना बदरिका-सेत्वन्ता॥

द्वारकादि-पुरुषोत्तम सालग्रामान्ता सप्तशतयोजना॥

तत्रापि रैवतक-विन्ध्य-सह्य-महेन्द्र-मलय-श्रीपर्वत-

परियात्रा सप्त कुलाचला:॥

गङ्गा-सरस्वती-कालिन्दी-गोदावरी-कावेरी-

ताम्रपर्णी-कृतमाला: कुलनद्यश्च॥

अर्थात् बदरि-केदार से लेकर रामेश्वर तक 1000 योजन लंबा तथा द्वारका से लेकर पुरी तक 700 योजन चौड़ा देश भारतवर्ष है। रैवतकादि मुख्य 7 पर्वत तथा गंगा, सरस्वती आदि मुख्य 7 नदियाँ हैं।

भारत में उत्पन्न एवं प्रचलित सभी मतों और संप्रदायों के सम्मुख भी भारत की एकता का चित्र रहा है। उनके तीर्थ-स्थान भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक फैले हुए हैं। उनकी यात्रा करने वाला सहज ही भारत की परिक्रमा कर लेता है। दक्ष प्रजापति के यज्ञ की वेदी में अपने शरीर की आहुति देने पर सती के शव को अपने कंधे पर डाले भगवान् शिव ने संपूर्ण भारत की यात्रा की। जहाँ-जहाँ सती के अंग गिरे, वहीं शक्ति का पीठ बन गया। दूसरे जन्म में भी सती ने पार्वती के रूप में 'कोटि जनम लौं रगर हमारी। बरहुँ शम्भु नतु रहहुँ कुँआरी' की प्रतिज्ञा कर अपनी तपस्या के लिए हिमालय की गुफ़ाएँ अथवा कैलास का गिरिशृंग नहीं चुना बल्कि भारत के दक्षिणतम बिंदु कन्याकुमारी को ही उपयुक्त समझा। कन्याकुमारी में स्थित कुमारी पार्वती की तपस्या तथा कैलासवासी भगवान् शिव की साधना से शिव-पार्वती का विवाह दक्षिण और उत्तर के मिलन की पवित्र भूमिका पर घटित आख्यायिका के रूप में सहज समझा जा सकता है।

सूर्य के 12 मंदिर, गाणपत्यों के अष्ट विनायक, शैवों के बारह ज्योतिर्लिंग, शाक्तों के 51 पीठ तथा वैष्णवों के अगणित तीर्थक्षेत्र संपूर्ण भारत में बिखरे पड़े हैं। बौद्ध, जैन, सिक्ख तथा विभिन्न संतों को आचार्य मानकर चलने वाले छोटे-मोटे पंथ भी एकदेशीय न होकर सर्वदेशीय दृष्टिकोण लेकर चलते हैं तथा भारत का कण-कण उनके लिए वंदनीय है। भगवान् शंकराचार्य ने तो सभी मतों का समन्वय करते हुए भारत के चारों कोनों पर ऐसे चार क्षेत्रों का विधान किया, जो सबके लिए समान रूप से पूज्य बन गए। हिमाचल के हिमाच्छादित शिखर पर अवस्थित बद्रीनाथ की यात्रा सब प्रांतों और संप्रदायों के लोगों के जीवन की कामना रही है। महोदधि और रत्नाकर दोनों ही जहाँ माता के चरणों का प्रक्षालन करते हैं, वहाँ भारत के कोने-कोने से जाकर नित्य प्रति भक्तगण श्री रामेश्वरम् के शिवलिंग पर गंगोत्तरी का जल चढ़ा उत्तर-दक्षिण की एकता के अजस्र स्रोत

में अवगाहन करते हुए 'शिव' की आराधना करते हैं। 'जगन्नाथ का भात, पूछो जात न पाँत'' कहकर जिस प्रेम और श्रद्धा से श्रीजगन्नाथजी का प्रसाद पाते हैं, वह तो राष्ट्रीय संगठन के लिए संजीवनी का काम करता रहा है। प्राग्ज्योतिष के सम्राट् नरकासुर का वध करके 16000 राजकुमारियों को मुक्त करने वाले भगवान् वासुदेव कृष्ण की राजधानी द्वारकापुरी भी हमारे प्रमुख तीर्थों में से है। इसी प्रकार पुराणकारों ने जब कहा—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्चि अवन्तिका।
पुरा द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिका:॥

तब वे भारतीय अखंडता का ही विधान कर रहे थे। ये सातों पुरियाँ भारतीय राष्ट्र के मर्मस्थल, उसकी सभ्यता और संस्कृति की केंद्र हैं। एक-एक के साथ अतीत की इतनी घटनाओं का संबंध है कि उनकी स्मृतिमात्र से अपना संपूर्ण इतिहास चलचित्र की भाँति आँखों से गुज़र जाता है।

भारतीय एकता का साक्षात्कार कराने के लिए तीर्थ-यात्राओं का ही नहीं अपितु अन्य और भी विधान किए गए। अनेक छोटे-मोटे मेलों के अतिरिक्त हरिद्वार, प्रयाग, उज्जयिनी और नासिक इन चार प्रमुख स्थानों पर कुंभ का मेला लगता है, जिसमें भारत के कोने-कोने से साधु, संत और यात्री आते हैं। इन्हें एक प्रकार का राष्ट्रीय सम्मेलन कहा जा सकता है, जहाँ भारत की अखंडता राष्ट्रीयता का दर्शन होता है और यह अवसर प्रति तीसरे वर्ष आता है। हमारे दैनिक आचरण में भी राष्ट्रीयता के पोषक संस्कारों का समावेश किया गया है। प्रात: उठकर भूमि पर चरण रखते ही अत्यंत विनीत भाव से हिंदू पृथ्वी माता को नमस्कार करता हुआ कहता है—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

वही संपूर्ण भारत का चित्र है। प्रात: स्मरण में जिन महापुरुषों का पुण्यस्मरण किया जाता है, वे भारत के किसी प्रांत-विशेष के नहीं अपितु संपूर्ण भारत के हैं। स्नान के समय जब जल को अभिमंत्रित करते हैं तो

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

के मंत्र से भारत की सभी पवित्र नदियों का आह्वान करते हैं। इन नदियों के समान ही 7 वन, 7 पर्वत और 4 सरोवरों को, जो संपूर्ण भारत में फैले हुए हैं, हमने अपने जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है।

हमारे नीतिकार एवं शास्त्रकार भी संपूर्ण भारत की एकता का अनुभव करके ही शास्त्रों की रचना करते रहे हैं। हमारे जीवन में बाह्य भिन्नताएँ चाहे कितनी ही दिखती हों, किंतु हमारी जीवन की दृष्टि एक ही है। यह दृष्टिकोण की एकता समान संस्कारों से

उत्पन्न हुई है। गर्भाधान से लेकर दाह संस्कार तक सभी संस्कार सब हिंदुओं के लिए समान रूप से निहित हैं। गंगोदक सभी के लिए मोक्षदाता है एवं मृत्यु के पश्चात् हमारी अस्थियाँ गंगाजी में ही विसर्जित की जाती हैं। हिंदूमात्र का पितृ श्राद्ध गया में और मातृ-श्राद्ध सिद्धपुर में होता है। समान मंत्रों से हिंदूमात्र के संस्कार होते हैं। संध्या और संकल्प में हम सदैव संपूर्ण भारतभूमि का ध्यान करते हैं।

मनु से लेकर बृहस्पति तक बनाई हुई स्मृतियों में किसी विशेष प्रदेश के अथवा विशेष वर्ग के व्यक्तियों के जीवन संबंध में विधान नहीं है अपितु सभी भारतीयों के संबंध में समान नियमों का आदेश है। अर्थशास्त्र के रचयिता कौटिल्यपर्यंत सभी विद्वानों ने संपूर्ण भारत की एकता का विचार करते हुए एकसूत्रीय शासन का विधान किया है। आयुर्वेद ने 'यस्य देशस्य यो जन्तुः तज्जं-तस्यौषधिः' के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए भारत के निवासियों, उनके रोग एवं भारत की वनस्पतियों का विचार किया है। भारत-बाह्य किसी भी देश के रोग और वनस्पतियों का न तो उसमें विचार है और न देशांतर्गत किसी प्रदेश की वनस्पतियों को उसमें छोड़ा गया है। भूमि-व्यवस्था, ग्राम पंचायतें और श्रेणी संपूर्ण देश में एक ही रूप में चलते थे। यातायात के लिए विभिन्न स्वरूप के अनेक वाहन होते हुए भी सिंधु और बंगाल, कश्मीर और केरल सभी प्रांतों में प्रयुक्त वाहनों के धुरों की लंबाई एक ही चली आ रही है। राजस्व की व्यवस्था भी संपूर्ण भारत में एक ही रही है।

भारतीय एकता की आराधना हमारी राजनीति का भी विषय रही है। संपूर्ण भारत को एक शासन-सूत्र में बाँधकर चातुरंत साम्राज्य निर्माण करने की अभिलाषा हमारे यहाँ के राजाओं की अत्यंत पवित्र महत्त्वाकांक्षा रही है। राजाओं के संधि, विग्रह और अभियान सबका उद्देश्य भारत की एक-सूत्रता की रक्षा ही रहा है। 'अश्वमेध' और 'राजसूय' यज्ञों से इसी उद्देश्य की सिद्धि हुई है। रघु की दिग्विजय से जो एकछत्र साम्राज्य निर्माण हुआ, उसके शिथिल हो जाने पर ही भगवान् राम का अवतार हुआ। उनका अवतार कार्य उत्तर और दक्षिण के सभी प्रदेशों को एक शासन-सूत्र में गूँथकर पूर्ण हुआ। अश्वमेध यज्ञ भगवान् राम के कार्यों में सुमेरु के समान है। भगवान् कृष्ण ने भी धर्मराज युधिष्ठिर की अध्यक्षता में जिस चातुरंत साम्राज्य का निर्माण किया वह भारत की अखंडता को बनाए रखने का महान् प्रयत्न था। भारत के पश्चिमोत्तर द्वार को जैसे ही सिकंदर ने खटखटाया, वैसे ही आचार्य चाणक्य ने 'न त्वेवार्यस्य दासभावः' की घोषणा की तथा चंद्रगुप्त मौर्य ने यूनानी को ही खदेड़कर बाहर ही नहीं किया अपितु छोटे-मोटे गणराज्यों को समाप्त कर एक सुदृढ एवं शक्तिशाली साम्राज्य की नींव भी डाली। भारत की एकता का यह प्रबल प्रमाण है कि जब-जब उत्तर में विदेशियों का आघात हुआ तो केवल उत्तर को ही नहीं, दक्षिण को भी मर्मांतक पीड़ा पहुँची। सिर पर चोट लगते ही जैसे संपूर्ण शरीर की शक्तियाँ प्रतिकार करने को उद्यत हो जाती हैं, उसी प्रकार शकों और हूणों के आक्रमण का प्रतिरोध

दक्षिण से उठने वाली शकारि विक्रमादित्य और यशोधर्मन की शक्तियों ने किया। मुगलों के साम्राज्य को मिटाने का सत्संकल्प दक्षिण में छत्रपति शिवाजी महाराज ने किया। आधुनिक युग के राजनीतिक नेताओं के नामोल्लेख की आवश्यकता नहीं; उनका कार्यक्षेत्र भी अखिल भारतीय ही रहा। इस प्रकार सुख और दु:ख, जय और पराजय, वैभव और पराभव में जो एकता और अभिन्नता प्रकट की गई, उसने हमारे राष्ट्र को एक जीवन के अछेद्‌य सूत्र में संगठित किया है।

जीवन के सभी क्षेत्रों में प्राप्त एकता का अनुभूति-क्षेत्र केवल भौतिक जगत् तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि हमारी आध्यात्मिक चेतना को भी व्याप्त कर गया। हमारे देश, राष्ट्र एवं संस्कृति की एकता हमारी आत्मा के समान ही चैतन्ययुक्त है। इस आत्मा को खंडित नहीं किया जा सकता।

2

मुसलिम पृथकत्व की नीति

15 अगस्त, 1947 को भारत देश खंडित हुआ। यह अकल्पनीय घटना कैसे घटी, इसके मूल में हमारी कौन सी त्रुटियाँ एवं दुर्बलताएँ थीं तथा भविष्य में इस संबंध में हम क्या दृष्टिकोण अपनाएँ, इस सबके लिए हमें पाकिस्तान के मूल की ओर दृष्टिपात करना पड़ेगा। पाकिस्तान का बीज एक ओर देश में उत्पन्न विघटनकारी एव अराष्ट्रीय भावनाओं में है तो दूसरी ओर उसको सत्य सृष्टि में लाने का दायित्व हमारे उन नेताओं पर है, जिन्होंने भारतीय एकात्मता का पूर्ण साक्षात्कार न कर इस प्रवृत्ति को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रोत्साहन दिया। अंग्रेज़ों की ग़ुलामी से मुक्ति पाने के लिए जैसे-जैसे भारत के प्रयत्न हुए तथा उसकी स्वतंत्रता की आकांक्षाएँ बढ़ती गईं, वैसे-वैसे अंग्रेज़ों ने भी देश में भेद नीति को अपनाना प्रारंभ किया। इस नीति के लिए उन्हें मुसलमान से बढ़कर दूसरा कोई समाज हाथ नहीं लगा। उन्होंने देखा कि भारत का मुसलमान हिंदुस्थान के जीवन से एकरूप नहीं हो पाया है। साथ ही उन्होंने यह भी अनुभव किया कि यदि भारत के हिंदू के मन में स्वतंत्रता की आकांक्षा उत्पन्न हो सकती है तो मुसलमान के मन में भी मुग़ल साम्राज्य के सपने जगाए जा सकते हैं। दोनों की भिन्न आकांक्षाओं के संघर्ष में निश्चित ही अंग्रेज़ों का भला था।

मुसलिम पृथकत्व की भावना का सबसे प्रथम प्रकटीक़रण सर सैयद अहमद द्वारा हुआ। 20 दिसंबर, सन् 1887 को लखनऊ में भाषण देते हुए उन्होंने मुसलमानों को कांग्रेस से तथा हिंदुओं से अलग रहने की सलाह दी। एक वर्ष बाद मेरठ में इस अपील को दुहराया गया। इसी दृष्टि से उन्होंने अलीगढ़ स्कूल की स्थापना की। उन्होंने अनुभव किया कि मुसलमानों के अंग्रेज़ी शिक्षा के बहिष्कार के कारण सरकारी नौकरियों में हिंदू उनसे आगे निकल रहे हैं। अतः मुसलमानों को शिक्षित करने के लिए उन्होंने इस स्कूल की नींव डाली। यही स्कूल बाद में अलीगढ़ की मुसलिम यूनिवर्सिटी में विकसित होता

हुआ मुसलिम सांप्रदायिकता का गढ़ बना। बेरी और मौरिसन ने इसी स्कूल के द्वारा मुसलिम राजनीति पर हिंदू-विरोधी तथा अंग्रेज़परस्त रंग चढ़ाया। उस काल के मुसलिम नेताओं ने मुसलमानों को सलाह दी कि वे अंग्रेज़ों के अधिकाधिक नज़दीक आवें। कारण, वे सोचने लगे कि हिंदू अंग्रेज़ों के कृपापात्र बनकर अधिक लाभ उठा रहे हैं। उन्होंने मुसलमानों को कांग्रेस में सम्मिलित होने से भी मना किया। मुसलमानों के इस झुकाव को देखकर तथा हिंदुओं में बढ़ती हुई राष्ट्रीय आकांक्षाओं को दबाने के लिए अंग्रेज़ों ने मुसलिम नेताओं को अपना हस्तक बनाया। फलतः उग्र राष्ट्रवादी हिंदुओं को कुचलना, मुसलमानों को बढ़ावा देना तथा अंग्रेज़ी पद्धति से वैधानिक मार्ग अपनाने वाले राष्ट्रीय नेताओं को सरकार और मुसलमानों से समझौता करने के लिए बाध्य करना, इस प्रकार की त्रिविध नीति अंग्रेज़ों ने अपनाई।

3

कांग्रेसी नेताओं की कमज़ोरी

हमारे नेता अंग्रेज़ों की इस नीति को समझ नहीं पाए अथवा समझकर भी उसके जाल में फँसने से अपने आपको रोक नहीं पाए। प्रत्येक आंदोलन को बल तो उग्र राष्ट्रवादियों से मिलता था किंतु उन्हें आंदोलन-काल में इतना दबा दिया था तथा हिंदू-मुसलिम दंगे करके समाज को इतना भयभीत कर दिया जाता था कि नरम दलीय नेता सदैव सरकार से संधि करने को इच्छुक रहते थे। हिंदू-मुसलिम समस्या की चट्टान से टकराकर पूर्ण स्वतंत्रता का प्रश्न तो चूर-चूर हो जाता था किंतु कुछ राजनीतिक सुधार अवश्य हाथ लग जाते थे। 1878 से लेकर 1947 तक का यही इतिहास है। स्वयं कांग्रेस का जन्म भारत में बढ़ती हुई राष्ट्रीय क्रांति को रोकने के लिए उपर्युक्त सुधारों के रूप में हुआ।

युद्ध की विजय तथा संधि में हार की इन घटनाओं ने मुसलिम सांप्रदायिकता को पर्याप्त बल दिया। हिंदू-मुसलिम एकता संधि की प्रथम शर्त होने के कारण मुसलमानों की सौदेबाज़ी की ताक़त बढ़ती गई तथा जो मुसलमान पहले केवल सरकारी नौकरियाँ प्राप्त करने के लिए ही हिंदू-राष्ट्रीय आंदोलन से अलग रहकर अंग्रेज़ों के हस्तक बने, उनमें धीरे-धीरे पृथक् राष्ट्रीयता की भावना तथा पुनः मुगल साम्राज्य की स्थापना की आकांक्षा जग गई। 1906 के मुसलिम डेपुटेशन ने वाइसराय के इंगित पर मुसलिम लीग का रूप धारण किया। 1909 में पृथक् मतदान मिला तथा 1916 में लखनऊ पैक्ट करके कांग्रेस ने मुसलिम लीग को अपने समकक्ष बिठा लिया। ख़िलाफ़त आंदोलन को राष्ट्रीय करार देकर हमने अपनी राष्ट्रीयता को ही कलंकित नहीं किया बल्कि मुसलमानों के मन में यह धारणा भी उत्पन्न कर दी कि उन्हें राष्ट्रीय बनने के लिए इसलाम के नाम पर प्रचलित भारत-बाह्य प्रवृत्तियों को छोड़ने की ज़रूरत नहीं बल्कि उन पर आग्रह किया तो वे ही भारत की राष्ट्रीयता का अंग बन सकती हैं। फलतः 1923 की कोकोनाडा कांग्रेस के अध्यक्ष मो. मोहम्मद अली ने 'वंदेमातरम्' का विरोध किया। तत्पश्चात् हिंदी का विरोध प्रारंभ हुआ।

इन प्रश्नों पर कांग्रेस के नेताओं ने समझौता किया। यह समझौते की प्रवृत्ति संकर-राष्ट्रीयता अथवा प्रच्छन्न द्विराष्ट्रवाद का पोषण करती रही। गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस में मि. जिन्ना की सभी प्रकार मनौती की गई, जिससे उनकी माँग और बढ़ी तथा ब्रिटिश सरकार ने सांप्रदायिक निर्णय देकर मुसलमानों को सभी क्षेत्रों में अनुपात से बहुत अधिक प्रतिनिधित्व दे दिया। 1935-36 के चुनावों में यद्यपि मुसलिम लीग को अधिक सफलता नहीं मिली, किंतु कांग्रेस सरकारों की मुसलिम तुष्टीकरण की नीति का लाभ उठाकर मुसलमानों ने अपना संगठन ख़ूब बढ़ाया। श्री जिन्ना ने कांग्रेस से समझौता करने के लिए पहले 14 सूत्रीय तथा फिर 21 सूत्रीय कार्यक्रम रखा। किंतु समझौता नहीं हुआ, कारण वे चाहते ही नहीं थे। कांग्रेस मंत्रिमंडलों के पदत्याग पर लीग ने 'मुक्ति दिवस' मनाया तथा लाहौर में 1940 में 'पाकिस्तान' को अपना ध्येय घोषित किया। पाकिस्तान की स्कीम यद्यपि 1933 में ही बन चुकी थी किंतु जनता के सामने लीग का अधिकृत उद्देश्य इस नाते 1940 में ही सामने आया।

4

द्विराष्ट्रवाद का सिद्धांत

'पाकिस्तान' का आधार दो राष्ट्रों का सिद्धांत था। अर्थात् मुसलमान अलग राष्ट्र है, यही मुसलिम नेता सिद्ध करते रहे। फलत: मुसलमानों में संस्कारवश जो कुछ राष्ट्रीयता का अवशेष था, वह भी समाप्त हो गया। इसलामी हुकूमत के नशे ने उन्हें भारत-विरोधी बना दिया। कांग्रेस के नेताओं ने 'पाकिस्तान' का मज़ाक तो बनाया किंतु मुसलमानों की पृथकत्व की भावना को दबाया नहीं बल्कि उससे समझौता किया। निश्चित है कि एक बार पृथकत्व की भावना जगी तो कांग्रेस की संकर-राष्ट्रीयता से समझौता करने के स्थान पर पृथक् साम्राज्य का निर्माण कर शासक के रूप में ज़िंदा रहना ही मुसलिम आकांक्षाओं को अधिक तृप्तिकर प्रतीत हुआ। अत: पाकिस्तान की माँग दिन-प्रतिदिन ज़ोर पकड़ती गई। 1942 का 'भारत छोड़ो' आंदोलन यह कहकर आरंभ किया गया कि यदि जिन्ना साहब साथ नहीं आते तो उनके लिए भारत की स्वतंत्रता का प्रश्न आगे नहीं टाला जा सकता, किंतु जब आंदोलन शांत हुआ तथा कांग्रेस के नेता जेलों में थे तो श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने 'पाकिस्तान' की माँग का समर्थन किया। बिना मुसलमानों के अंग्रेज़ों से संधि की बातचीत नहीं हो सकती थी। लियाकत अली और भूलाभाई देसाई ने भी पैक्ट कर लिया, जिसका अन्य नेताओं ने विरोध किया किंतु गांधीजी का आशीर्वाद उसे भी प्राप्त हो गया। गांधीजी ने भी जिन्ना से मिलकर अनेक बार समझौते के प्रयत्न किए किंतु वे सदैव असफल रहे। 1945 की शिमला कॉन्फ्रेंस भी जिन्ना साहब की दुराग्रह की चट्टान से टकराकर चूर-चूर हो गई। इस समय तक मुसलिम पृथकत्व की भावना इतना बल पकड़ गई थी कि 1942 के क्रिप्स प्रस्तावों से लेकर 1946 के कैबिनेट मिशन तक के सभी प्रस्ताव भारत की एकता और अखंडता का ढाँचा तो बनाए रखना चाहते थे किंतु एकता के आधार एकात्मता को अमान्य कर मुसलमानों को प्रत्यक्ष अथवा मुसलिम बहुल प्रांतों के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से आत्म-निर्णय का अधिकार देकर

चलते थे। भारत-विभाजन की तथा उसके अंगों के एक ढीले-ढाले संघ (Federation) की कल्पना लेकर अनेक योजनाएँ सामने आईं। कांग्रेस ने इन योजनाओं की अराष्ट्रीयता का विरोध करने के स्थान पर उनके द्वारा मुसलमानों का हित नहीं होगा, यह बताकर उसका विरोध किया। कांग्रेस में सम्मिलित होने वाले तथाकथित राष्ट्रीय मुसलमानों ने भी यही समझाया कि वे कांग्रेस में रहकर मुसलमानों का भला ही कर रहे हैं। एक बार पृथकता का आधार मान्य करने पर यह संभव नहीं था कि पृथक् इसलामी राज्य से छोटी कोई भी चीज़ मुसलमानों को संतुष्ट कर सकती। फलत: 1946 के चुनावों में जहाँ हिंदुओं ने भारी बहुमत से कांग्रेस का उसकी अखंड भारत की घोषणा के कारण समर्थन किया, वहाँ मुसलमानों ने एक ही लीग का साथ दिया। कैबिनेट मिशन की योजना के अनुसार मुसलमानों ने संविधान सभा के चुनावों में तो भाग लिया किंतु उसकी कार्रवाई में भाग न लेते हुए अलग संविधान सभा की माँग की। सितंबर 1946 में अंतरिम सरकार बनने पर भी प्रथम तो लीग उसमें सम्मिलित नहीं हुई किंतु लॉर्ड वेवल ने कांग्रेस को मजबूर किया कि लीग को साथ लेकर ही अंतरिम सरकार बनाई जाए। ब्रिटिश सरकार ने बाध्य किया कि कांग्रेस लीग के सामने झुके।

5

पाकिस्तान का निर्माण

कांग्रेसी नेताओं के लीग के सम्मुख झुकने का कारण उनकी अहिंसावादी नीति एवं आत्मविश्वास की कमी भी थी। 16 अगस्त, 1946 को डायरेक्ट एक्शन के नाम पर मुसलमानों ने जो नरसंहार का प्रारंभ किया, उसका मुक़ाबला करने की हिम्मत कांग्रेस के नेताओं में नहीं थी। कलकत्ता और नोआखाली में हिंदुओं की निर्मम हत्या हुई। लूट, हत्याकांड और बलात्कार का नग्न तांडव देखकर नेतागण सहम गए। उन्हें भय हुआ कि यदि इसी प्रकार रक्तपात हुआ तो भारत के नगर-नगर ग्राम-ग्राम में पाकिस्तान बन जाएगा, कारण संपूर्ण देश में सांप्रदायिक दंगों की भूमिका तैयार हो चुकी थी। लार्ड माउंटबेटन की नीति तथा लीगी डायरेक्ट एक्शन की रक्तरंजित राजनीति का सामना हमारे नेता नीतिमत्ता और साहस के अभाव में नहीं कर पाए। फलतः भारत विभाजन के विरोध में अनेक घोषणाएँ करने के बाद भी 3 जून, 1947 की माउंटबेटन योजना को कांग्रेस के सर्वोच्च नेताओं ने स्वीकार कर लिया। रक्त बहाकर जिस देश की अखंडता की रक्षा की गई थी, उसी देश को रक्तपात के भय से खंडित कर दिया। किंतु यह कैसे संभव था कि चैतन्यमयी माँ का अंगच्छेद हो जाए और रक्तधार न बहे!

3 जून की योजना से मुसलिम सांप्रदायिकता की क्षुधा शांत नहीं हुई। उन्हें जो पाकिस्तान मिला, वह उनकी कल्पना से बहुत छोटा था; वे तो दिल्ली के लाल क़िले पर इसलाम का हरा झंडा लहराना चाहते थे। फलतः पंजाब, सिंध और सीमाप्रांत में चारों ओर बहुत बड़े पैमाने पर हिंदुओं का वध, उनकी संपत्ति की लूट तथा स्त्रियों का अपहरण एवं बलात्कार प्रारंभ हो गया। नरमेध का यह इतिहास इतना दर्दनाक है कि उसका वर्णन भावनाओं के उद्वेग को नहीं रोक सकता। रक्त की धार से लिखा हुआ इतिहास स्याही की रेखाओं से व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह निर्जीव शब्दों में नहीं बल्कि 'शरणार्थी' नाम से पुकारे जाने वाले भारत के लाखों लालों के जीवन में सजीव

रूप में लिखा है। उसका अध्ययन वहीं किया जा सकता है।

भारत-विभाजन की अकल्पनीय घटना घटी तथा हमारे नेताओं ने उसे आशीर्वाद दिया। उनके सामने दूसरा मार्ग नहीं था, यदि विभाजन स्वीकार न किया जाता तो भारत स्वतंत्रता से तो वंचित रहता ही, वरन् देश भर में भारी रक्तपात होता तथा हिंदू-मुसलिम समस्या और भी विकराल हो जाती; यह अंतिम तर्क का तीर है, जो कांग्रेसियों के तरकस में रह जाता है। किंतु यह कितना तीक्ष्ण है, इसका भी विचार करना होगा। भारत को स्वतंत्रता 3 जून की योजना के कारण नहीं मिली बल्कि अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों, अंग्रेज़ों की गिरी हुई दशा तथा भारत की राष्ट्रीय जागृति के परिणामस्वरूप प्राप्त हुई है। इनमें से एक पर भी मुसलिम माँग का प्रभाव नहीं। हम भारत विभाजन मानते या न मानते अंग्रेज़ भारत में टिक नहीं सकते थे। कैबिनेट मिशन ने स्वयं भारत विभाजन की माँग को ठुकरा दिया था। भारत की स्वतंत्रता की योजना 3 जून के बाद नहीं बल्कि पहले ही बन चुकी थी। यदि अंग्रेज़ देर-सबेर करते तो स्वतंत्रता के पुराने सिपाही चाहे थक गए हों किंतु नए सिपाही उनका स्थान लेने के लिए तैयार थे। वास्तव में इन नए सिपाहियों के भय से ही अंग्रेज़ों ने भारत छोड़ा, कारण जिस मित्रता के व्यवहार की पुरानों से आशा थी, उसकी संभावना नयों से नहीं थी। कांग्रेस के नेता यदि डटे रहते तथा भारत की जनजागृति की मदद करते तो अंग्रेज़ अखंड भारत छोड़कर जाते और सत्ता कांग्रेस के ही हाथ में देकर जाते।

दूसरा भय भीषण रक्तपात का था। किंतु रक्तपात कम नहीं हुआ बल्कि बढ़ा ही। भारत विभाजन के पूर्व और पश्चात् के नरमेध में जितनी बलि चढ़ी है, उतनी पिछले दोनों महायुद्धों में भी नहीं चढ़ी। फिर लूट, अपहरण और हत्याकांड में मानव का जो जघन्यतम पशु भाव प्रकट हुआ, वह तो युद्ध में कहीं नहीं हुआ। मुसलिम लीग की अराष्ट्रीय प्रवृत्ति और गुंडागर्दी का मुक़ाबला हमारे स्वातंत्र्य समर का एक अंग बन गया होता तो हमने बहुत सा रक्तपात बचा लिया होता। उस स्थिति में हिंदू अल्पमत अपने आपको असहाय नहीं समझता बल्कि युद्ध का सिपाही समझकर अपनी संपूर्ण शक्ति बटोरकर लड़ता। आज अगर वह कहीं लड़ा तो केवल रक्षा के लिए और उसमें भी पंजाब और सीमाप्रांत में उसने मुसलिम गुंडागर्दी से हार नहीं खाई किंतु नेताओं के हथियार डाल देने पर उसका मानसिक संबल टूट गया। निश्चित है कि प्रत्यक्ष युद्ध में मानसिक दृष्टि से ही नहीं, भौतिक दृष्टि से भी आज से कहीं कम हानि होती।

6

क्या हिंदू-मुसलिम समस्या हल हुई?

हिंदू-मुसलिम समस्या हल हो गई, यह भी भारत-विभाजन का एक लाभ बताया जाता है। किंतु क्या यह सत्य है? यदि यह सत्य होता तो नेहरू-लियाक़त पैक्ट नहीं करना पड़ता और न 1952 के चुनावों में मुसलमानों के मन में झूठा डर पैदा करके कांग्रेस उनके वोट ले पाती। जहाँ तक पाकिस्तान का संबंध है, वह हिंदुओं को खदेड़कर अपनी समस्या को हल कर रहा है। पश्चिमी पाकिस्तान तो हिंदुओं से ख़ाली हो ही गया; पूर्वी पाकिस्तान से भी भारत की ओर आने वालों का ताँता टूटा नहीं बल्कि बढ़ता ही जाता है। यदि मुसलिम बहुल क्षेत्रों से हिंदुओं को निःशेष कर देना ही सांप्रदायिक समस्या का हल है तो यह विष खाकर रोग से छुटकारा पाने के समान ही है। रास्ते में लुटने वाले राहगीर के स्वर में स्वर मिलाकर यदि कांग्रेस पाकिस्तान से हिंदुओं के खदेड़े जाने में हिंदू-मुसलिम समस्या का हल माने तो उनकी महानता की सराहना ही करनी पड़ेगी।

भारत की ओर यदि हम देखें तो यहाँ मुसलमान सुख, शांति एवं सम्मान के साथ जीवन बिता रहा है किंतु इस दृष्टि से कभी ख़तरा था भी नहीं। सांप्रदायिक समस्या हिंदुओं की आक्रामक प्रवृत्ति के कारण नहीं बल्कि मुसलमानों की पृथकता एवं आक्रामक मनोवृत्ति से उत्पन्न हुई थी। आज मुसलिम सांप्रदायिकता अपने आक्रामक स्वरूप में दृश्य नहीं किंतु उसकी पृथकता की भावना तो क़ायम ही है। राजनीति में वह भारतीय के नाते नहीं बल्कि मुसलिम के नाते अपना कर्तव्य निश्चित करता है। पिछले चुनावों से बल पाकर मुसलिम पृथकता की भावना को बनाए रखने के लिए उर्दू जैसे प्रश्नों को फिर से खड़ा करने का प्रयत्न किया जा रहा है। कांग्रेस आज भी सेक्युलरिज़्म के नाम पर मुसलिम संतुष्टीकरण की नीति अपना रही है। सांप्रदायिकता का यह विष वृक्ष कांग्रेस की तुष्टीकरण की नीति से सींचा जाने पर अवश्य ही विषफल देगा। जमियत-उल-उलेमा-ए-हिंद अपनी कार्रवाइयों से अपने आपको लीग का योग्य उत्तराधिकारी सिद्ध कर रही है।

कल की सांप्रदायिक समस्या सुलझी नहीं बल्कि उसका स्वरूप बदल गया है तथा अपने बदले हुए स्वरूप में वह और भी भीषण हो गई है। कल जो समस्या हिंदू-मुसलिम स्वरूप लेकर एक राष्ट्र का आंतरिक प्रश्न-मात्र थी, आज वह भारत-पाक समस्या के रूप में अंतरराष्ट्रीय प्रश्न बन गई है। कल तक जो काम लीग एक संस्था के रूप में करती थी, आज वही कार्य पाकिस्तान एक राज्य के रूप में कर रहा है। निश्चित ही समस्या का परिवर्तित स्वरूप अधिक ख़तरनाक है। पाकिस्तान के निर्माण में सहायक भारत के मुसलमानों की सांप्रदायिक मनोवृत्ति को भी पाकिस्तान से बराबर बल मिलता रहता है तथा भारत के राष्ट्रीय क्षेत्र में भी 3½ करोड़ मुसलमानों की गतिविधि किसी भी सरकार के लिए शंका का कारण ही रहेगी।

7

विभाजन के सामाजिक व आर्थिक दुष्परिणाम

भारत-पाक संबंधों का विचार करें तो वे दिन-प्रतिदिन बिगड़ते ही जा रहे हैं। आज तक ऐसा एक भी प्रश्न नहीं जो शांतिपूर्वक सुलझ सका हो। सम्मेलन और समझौते तो बहुत से होते हैं किंतु परिणाम किसी का यशकारी नहीं होता। पाकिस्तान में रहने वाले अल्पसंख्यकों के जीवन के साथ खिलवाड़ करके भारत की शांति व्यवस्था, अन्न, अर्थ आदि संबंधी सभी स्थितियों को ख़तरा किस प्रकार उत्पन्न किया जाता है, यह तो हिंदू-निष्क्रमण के इतिहास से ही ज्ञात हो जाएगा। आज तक लगभग डेढ़ करोड़ हिंदू पाकिस्तान से शरणार्थी बनकर आ चुके हैं, जिन्हें बसाना भारत के लिए समस्या बना हुआ है। इतने पर भी पूर्वी बंगाल से उनका आना निरंतर जारी है। जिस प्रकार अपमानित एवं दीन-हीन अवस्था में ये बंधु यहाँ आ रहे हैं, उससे आर्थिक ही नहीं, सामाजिक जीवन भी अस्त-व्यस्त हो गया है। आज जिस अवस्था में वे रह रहे हैं तथा आतंक की जिस विभीषिका का उन्होंने सामना किया है, वह उनमें स्वस्थ समाज भाव निर्माण नहीं कर सकती।

आर्थिक दृष्टि से विभाजन ने देश को भारी धक्का पहुँचाया है। आज की विषम परिस्थिति इसी का परिणाम है। 'शस्य श्यामल मातृभूमि' विभाजन के कारण ही भिखारी बनी है। अविभाजित भारत का 75 प्रतिशत गेहूँ का तथा 73 प्रतिशत चावल का क्षेत्र विभाजित भारत के पास बचा है। पैदावार की दृष्टि से देखें तो पाकिस्तान का क्षेत्र अधिक महत्त्व का है। कारण भारत के पास बचे हुए क्षेत्र में केवल 64 प्रतिशत गेहूँ का और 67 प्रतिशत चावल का उत्पादन है। संपूर्ण अविभक्त भारत की सिंचाई भूमि का 41.4 प्रतिशत पश्चिमी पाकिस्तान में है। फलत: पाकिस्तान में गेहूँ की उपज भारत से लगभग पाँच गुनी प्रति एकड़ होती है। पंजाब में कुल उपजाऊ भूमि की 62.5 प्रतिशत तथा सिंध में 85.8 प्रतिशत सिंचाई की भूमि है। सिंचाई की इन सभी नहरों का उद्‌गम भारत में है। यह देखा जाए तो विभाजन की अव्यावहारिकता और भी स्पष्ट हो जाएगी। पैदावार के उपर्युक्त

आँकड़ों के विरुद्ध हम यदि जनसंख्या का विभाजन देखें तो जहाँ भारत की आबादी 36 करोड़ के लगभग है, वहाँ पाकिस्तान की जनसंख्या 6 करोड़ से अधिक नहीं। 15 अगस्त, 1947 को 4.78 करोड़ मुसलमान तथा 1.78 करोड़ हिंदू थे। आज अधिकांश हिंदू चले आए हैं तथा कुछ मुसलमान बन गए हैं। आज की संख्या कुल मिला कर 6 करोड़ होगी, जिसमें पिछले वर्षों की वृद्धि भी शामिल है। इस पर भारत मुख्यतया शाकाहारी है तथा पाकिस्तान मांसाहारी। भोजन की इस प्रवृत्ति से अन्नाभाव में और भी वृद्धि हुई है। विभाजन के कारण जो संतुलन बिगड़ा है, वह करोड़ों रुपए का अन्न बाहर से मँगवाकर भी पूरा नहीं हो पाया है। भारत में अन्न की कमी 14,16,000 टन है, जबकि पाकिस्तान के पास 12,90,000 टन अन्न बचा रहता है।

विभाजन के कारण अन्न-वस्त्र की कमी

	भारत	पाकिस्तान
आबादी	77 प्रतिशत	5 करोड़, 70 लाख
क्षेत्र	77 प्रतिशत	3,61,311 वर्गमील
गेहूँ	64 प्रतिशत	32,60,000 टन
चावल	67 प्रतिशत	84,20,000 टन
तंबाकू	67 प्रतिशत	90,000 टन
कपास	61.4 प्रतिशत	14,10,000 गाँठें
जूट	79 प्रतिशत	62,90,000 गाँठें

अन्य फ़सलों की ओर भी देखें तो निम्न आँकड़े बिगड़े हुए आर्थिक संतुलन का ही चित्र प्रस्तुत करते हैं।

जिन्स	भारत	पाकिस्तान
पटसन	26.6 प्रतिशत	73.4 प्रतिशत
तंबाकू	67 प्रतिशत	33 प्रतिशत
कपास क्षेत्र	75 प्रतिशत	25 प्रतिशत
कपास उत्पादन	61.4 प्रतिशत	38.6 प्रतिशत
जूट क्षेत्र	7.9 प्रतिशत	92.1 प्रतिशत
जूट उत्पादन	7.9 प्रतिशत	92.1 प्रतिशत
नमक	4.92 करोड़ मन	1 करोड़ मन

अर्थात् पटसन, कपास और जूट की अधिकांश पैदावार पाकिस्तान में होती है। भारत और पाकिस्तान दोनों की दुरवस्था का सहज चित्र आँका जा सकता है, जब यह भी तुलना करें

कि इनकी मिलों का 92 प्रतिशत भारत में है। जूट के अभाव में कलकत्ते की मिलें बंद होती हैं तथा मज़दूर रोता है। बाज़ार के अभाव में पूर्वी बंगाल का किसान अपने नेताओं को कोसता है। दोनों राज्यों के बीच किया हुआ कोई भी व्यापारिक समझौता अभी तक भलीभाँति नहीं चल पाया है।

कच्चे माल के उत्पादन पर ही नहीं, भारत के उद्योग-धंधों पर भी विभाजन का भारी परिणाम है। प्रथम तो विभाजन के कारण उद्योगों के लिए जिस कच्चे माल की या अन्य किसी वस्तु की ज़रूरत रही और यदि वह पाकिस्तान में उत्पन्न होता है तो उसका मिलना बंद हो गया, सारे कारीगर जो कि अधिकांश मुसलमान थे, पाकिस्तान चले गए। वहाँ वे नौकरी के लिए दर-दर भटक रहे हैं तो दूसरी ओर भारत में उनकी क्षतिपूर्ति होना कठिन हो रहा है। उद्योग-धंधों की विभाजन के कारण कितनी अवनति हुई है, वह निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाएगा। पिछले चार वर्षों में उक्त आँकड़ों में विशेष अंतर नहीं पड़ा है।

उद्योग-धंधों की विभाजन के कारण अवनति

क्र.	उद्योग	विभाजन के पूर्व की उत्पादन शक्ति	विभाजन के पश्चात् ('48) का अनुमानित उत्पादन
1.	इस्पात	12,64,000 टन	8,75,000 टन
2.	सूती कपड़ा	4 अरब, 83 करोड़ गज़	3 अरब 80 करोड़ गज़
3.	सीमेंट	20 लाख, 75 हज़ार टन	13 लाख 50 हज़ार टन
4.	रसायन (टिंचर आदि)	7,50,000 गैलन	5 लाख गैलन
5.	गंधक का तेज़ाब	1 लाख टन	65 हज़ार टन
6.	सुपर फॉस्फेट्स	60 हज़ार टन	10 हज़ार टन
7.	कास्टिक सोडा	10,500 टन	3,000 टन
8.	अल्कोहल	1 करोड़ 60 लाख गैलन	70 लाख गैलन
9.	साबुन	2,50,000 टन	85 हज़ार टन
10.	शीशा	1,50,000 टन	90 हज़ार टन
11.	मिट्टी के बरतन और सामान	23,000 टन	16,000 टन
12.	रेफ्रिजरेटर	2,13,700 टन	1,72,825 टन
13.	इनेमल का सामान	2,40,00,000 चीज़ें	1 करोड़ से 1.20 करोड़ चीज़ें
14.	मार्जन का सामान (एप्रेजिंस)	1,21,680 रीम	35,376 रीम
15.	काग़ज़ का गत्ता	1,10,000 टन	86,000 टन

16.	चमड़ा	50 लाख खालें	20 लाख खालें
17.	प्लाईवुड	6 करोड़ वर्ग फुट	3 करोड़ वर्ग फुट
18.	डीजल इंजन	700	500
19.	लोहे की ढलाई	5,57,600 टन	3,50,000 टन
20.	बाईसिकल	42,000 व 10,000 साइकिलों के पुर्जे	3000 व 5000 साइकिलों के पुर्जे
21.	मशीनरी के औजार	11,000	8,800
22.	धातुएँ	7,000 कॉपन टन्स	5000 कॉपर टन्स
23.	बिजली के लट्टू	1,33,50,000	85,00,000
24.	बैटरियाँ	13,20,00,000	8,60,00,000
25.	मोटरों की बैटरियाँ	1,72,000	61,000
26.	बिजली की मोटरें	1 लाख हॉर्स पावर	30 हज़ार हॉर्स पावर
27.	ट्रांसफार्मर्स	1,02,000 के.वी.ए.	30,000 के.वी.ए.
28.	बिजली के पंखे	1,50,000	1,03,500
29.	तारें व केबल्स तारें केबल्स व फ्लेक्सिबल्स	24,350 टन 5 करोड़ गज़	तारें 6,180 टन 3 करोड़ गज़
30.	इंसुलेटर्स	42 लाख	15 लाख
31.	बिजली के लिए ब्लैक कॉपर	24,000	7,000 टन
32.	चमड़े की बेल्टिंग	1600 टन	550 टन

आर्थिक स्थिति के विषम होने का एक कारण और हुआ है। पाकिस्तान से भारत में आने वाले अधिकांश हिंदू व्यापारी अथवा नौकरीपेशा हैं। उनमें कारीगरों की संख्या बहुत कम है। जो उत्पादक हैं भी, वे यहाँ इस स्थिति में आए हैं कि अपने कल-कारख़ाने सहज ही खड़े नहीं कर पाए हैं। पाकिस्तान ने मशीनें लाने भी नहीं दीं। भारत सरकार भी इस ओर उदासीन हो रही। फलतः आज भारत में उत्पादकों की संख्या कम तथा वितरकों की अथवा उत्पादकों से प्राप्त करों के आधार पर आजीविका उपार्जन करने वाले कर्मचारियों की संख्या अनुमानतः अधिक है। लाखों शरणार्थी तो अभी भी बा-रोज़गार नहीं हो पाए हैं।

देश की इस आर्थिक स्थिति के साथ ख़र्चे का भी हिसाब लगाया जाए तो उसमें भी सब प्रकार से वृद्धि हुई है। दो राज्य हो जाने से आंतरिक एवं बाह्य सभी मामलों के लिए पाकिस्तान और भारत को दुहरा ख़र्च करना पड़ा है। पाकिस्तान की वैमनस्यपूर्ण नीति के कारण विदेशों में भारतविरोधी भ्रामक प्रचार पर पाकिस्तान तो लाखों रुपया पानी की तरह

बहाता ही है; भारत को भी अपनी सफ़ाई देने के लिए रुपया ख़र्च करना पड़ता है। दोनों राज्यों के बढ़े हुए टैक्स, शासन की फ़िज़ूलख़र्ची के साथ-साथ विभाजन के कारण बढ़े हुए शासन-व्यय का परिणाम भी है।

भारत की आर्थिक स्थिति को नीचा गिराने के लिए पाकिस्तान ने भी कोई कोर कसर नहीं छोड़ी है। भारत ने यद्यपि कश्मीर-युद्ध छिड़ने पर भी 55 करोड़ का भुगतान किया तथा आज भी पाकिस्तान को बिजली, नहरों का पानी तथा कोयला दे रहा है। पाकिस्तान ने भारत के किसी भी ऋण को वापस नहीं किया। व्यापारिक समझौतों में भी वह अपना हिस्सा कभी अदा नहीं करता। जूट आदि भारत को आने वाले माल पर अत्यधिक निर्यात कर लगा दिया है तो भारत से जाने वाले फलों पर एकाएक आयात कर बढ़ा दिया जाता है। मुद्रा के क्षेत्र में स्टर्लिंग क्षेत्र के सभी राष्ट्रों के अवमूल्यन करने पर भी पाकिस्तान ने अवमूल्यन नहीं किया, जिसके परिणामस्वरूप भारत को करोड़ों की हानि सहन करनी पड़ी है। लगभग 800 करोड़ की हिंदू संपत्ति आज भी पाकिस्तान में पड़ी है, जबकि भारत में छोड़ी निष्क्रांत संपत्ति का मूल्य 150 करोड़ से अधिक नहीं। पाकिस्तान इस विषय में कोई समझौता नहीं करता। इतना ही नहीं, पाकिस्तानी नागरिक जब भी बढ़ती गई ग़रीबी का शिकार होते हैं, उनकी भावनाओं को सांप्रदायिक रंग देकर हिंदुओं की लूट शुरू हो जाती है। आज पाकिस्तान से आने वाले सभी हिंदू भिखारी बनकर आ रहे हैं, जिसका परिणाम भारत की आर्थिक स्थिति पर भयंकर पड़ रहा है।

विभाजन के कारण रक्षा व्यय में वृद्धि

46 करोड़ 18 लाख—सन 1938-39

	भारत	पाकिस्तान
47-48	92 करोड़ 74 लाख	34 करोड़ 24 लाख
48-49	144 करोड़ 58 लाख	40 करोड़ 28 लाख
49-50	148 करोड़ 86 लाख	50 करोड़ 90 लाख
50-51	179 करोड़ 47 लाख	60 करोड़ 70 लाख
51-52	180 करोड़ 2 लाख	62 करोड़

सेना और सुरक्षा की दृष्टि से देखेंगे तो दोनों ही राज्यों को भारी भार वहन करना पड़ रहा है। विभाजन के पूर्व जहाँ हमारी सेना का कुल ख़र्च 38-39 में 46.16 करोड़ रुपए था, वहाँ 47-48 में 92.74 करोड़ तथा 51-52 में 180.02 करोड़ है। उसी प्रकार पाकिस्तान ने 47-48 में 34.24 करोड़ तथा 51-52 में 62.00 करोड़ रुपए ख़र्च किया है। महँगाई आदि सभी बातों का विचार करने के पश्चात् भी यह कई गुना बढ़ गया है। भारत की प्राकृतिक रक्षा पंक्ति उससे छीन ली गई है। फलतः आज पाकिस्तान और भारत के

बीच पश्चिम में 1500 मील तथा पूर्व में 100 मील लंबी अप्राकृतिक सीमा-रेखा है। जिसकी रक्षा पर दोनों राज्यों के पारस्परिक संबंध ही नहीं कोष के लिए भी क्षति का कारण बना हुआ है। भारत की जिन सेनाओं के बलबूते अंग्रेज़ अपना साम्राज्य टिकाए हुए थे, आज वे ही बँटकर आपस में अपनी शक्ति को व्यर्थ कर रही हैं।

सांस्कृतिक दृष्टि से विभाजन का भारतीय जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। भारत की संस्कृति के भग्नावशेष मोहनजोदड़ो और हड़प्पा आज पाकिस्तान में हैं, जहाँ के वासी उनसे कोई स्फूर्ति नहीं ले पाते। मौर्य सम्राटों की विजय-दुंदुभी जिस सीमांत पर फहराई, आज वहाँ के नागरिक उस विजय-घोष की स्मृति से गौरवान्वित नहीं होते। 'नत्वेवार्यस्य दासभाव:' की घोषणा करने वाले आचार्य चाणक्य की ज्ञान-भूमि तक्षशिला आज मुसलिम शासन से पदाक्रांत हो दासता का अनुभव कर रही है। देववाणी संस्कृत को एकसूत्र में बाँधने वाले महर्षि पाणिनि की भूमि में कोई संस्कृत का नाम लेने वाला भी नहीं। जिस पंजाब ने आर्यसमाज की यशोवृद्धि की, आज वहाँ कोई अपने को आर्य कहलाने के लिए तैयार नहीं। आर्य समाज की करोड़ों की संपत्ति पाकिस्तान में छूट गई। सैकड़ों शिक्षा संस्थाएँ समाप्त हो गईं। हज़ारों देवालय भ्रष्ट कर दिए गए। पूज्य महात्माजी की अस्थियाँ भारत की सभी नदियों में प्रवाहित की गईं, किंतु सिंधु के लिए वे आज तक तरस रही हैं। सुर-सिंधु सेविनि सरिता आज हमसे छिन गई। गुरु नानक की जन्मभूमि ननकाना साहिब आज हमारे पास नहीं, न वह डेरा साहिब पंजवीन का गुरुद्वारा है, जिसे बलिदानी वीरों की अस्थि और रक्त से बनाया गया था। पुरातत्त्व विभाग के लेखा के अनुसार 172 इमारतें पश्चिमी पाकिस्तान में तथा 79 पूर्वी पाकिस्तान में रह गई हैं।

8

अखंड भारत क्यों?

ये अनेक दुष्परिणाम हैं, जो हमें विभाजन के कारण भुगतने पड़े हैं। इनका अभी अंत नहीं। कारण मुगल-साम्राज्य के जिन स्वर्ण-स्वप्नों ने मुसलिम आकांक्षाओं को जगाकर उनकी सांप्रदायिक भावना को पुष्ट किया तथा पाकिस्तान की निर्मिति की, वह अभी शांत नहीं हुई है। 'हँस के लिया है पाकिस्तान—लड़ के लेंगे हिंदुस्तान' के नारे पाकिस्तानी सभा के आम नारे हैं। आज वे India को Dinia बनाने के मनूसबे बना रहे हैं। फलत: भविष्य भारत की राष्ट्रीयता के लिए आराम से बैठने का नहीं बल्कि साधना और तपस्या का है।

पाकिस्तान बन गया। उसके जो भी दुष्परिणाम होने थे, हो गए। अब उसे स्वीकार करके चलें अथवा उसे मिटाकर भारत को अखंड करें। यह प्रश्न अनेकों के सम्मुख खड़ा होता है। जो भारत की विशुद्ध राष्ट्रीय कल्पना लेकर चले हैं तथा माता को चैतन्यमयी मूर्ति मानकर उसके कण-कण की पूजा करते हैं, उन्हें तो अखंड भारत के अतिरिक्त कोई दूसरी स्थिति स्वीकार ही नहीं। किंतु जो सभी प्रश्नों को केवल भौतिक दृष्टि से ही देखते हैं, वे भी यदि निष्पक्ष हो गहराई से सोचेंगे तो उन्हें ज्ञात होगा कि भारत और पाकिस्तान दोनों ही राष्ट्रीय, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी प्रकार की समस्याएँ तब तक नहीं सुलझ सकतीं, जब तक कि दोनों राज्य मिलकर एक नहीं हो जाते। अंतरराष्ट्रीय शांति की दृष्टि से अविभक्त एवं सुदृढ एवं शक्तिशाली भारत जितना लाभदायक हो सकता है, उतना आपस में लड़ने वाला विभक्त भारत नहीं। साम्यवादी रूस तथा अमरीका दोनों की साम्राज्यवादी नीति के चंगुल से सुदृढ भारत ही बच सकता है। तभी वह एशिया के राष्ट्रों का सच्चा नेतृत्व कर सकेगा तथा एक तीसरा दल संगठित कर युद्ध-पिपासु पाश्चात्य राष्ट्रों को अपने प्रभाव से युद्धरत होने से बचा सकेगा।

अखंड भारत के आदर्श की ओर सबका रुझान होने के बाद भी अनेक लोग इसे

अव्यावहारिक मानते हैं। उनकी समझ में नहीं आता कि भारत अखंड कैसे होगा। विभाजन के पूर्व तक पाकिस्तान को भी अव्यावहारिक समझा जाता था किंतु कुछ मुसलमानों की दृढ इच्छाशक्ति एवं आत्मविश्वास ने पाकिस्तान को सत्य सृष्टि में परिणत कर दिया। क्या भारत के 38 करोड़ लोगों की दृढ इच्छाशक्ति को आज खंडित भारत का उच्चारण करने में इसलिए डर लगता है कि कहीं पाकिस्तान नाराज़ न हो जाए तथा इसके लिए हमें पाकिस्तान से लड़ना पड़ेगा। मन की यह भावना आत्मविश्वास की कमी के कारण है, क्योंकि वे ही लोग गोवा आदि पुर्तगाली तथा पांडिचेरी आदि फ्रांसीसी बस्तियों को भारत में मिला लेने की माँग करते हैं। आप युद्धलोलुप न हों किंतु युद्धभीरु भी न बनें। दोनों ही पाप हैं किंतु युद्धभीरु तो दूसरों को आक्रमण करने के लिए आमंत्रण देता है। भय के कारण जब आदर्शों के साथ समझौता करने की कोशिश की जाती है, तब सदैव हानि होती है। आत्मप्रवंचना कभी कल्याणकर नहीं होती।

वास्तव में भारत को अखंड करने का मार्ग युद्ध नहीं। कारण युद्ध से भौगोलिक एकता हो सकती है, राष्ट्रीय एकता नहीं। अखंडता भौगोलिक ही नहीं, राष्ट्रीय आदर्श भी है। देश का विभाजन दो राष्ट्रों के सिद्धांत तथा उसके साथ समझौते की प्रवृत्ति से हुआ। अखंड भारत एक राष्ट्र के सिद्धांत पर मन-वचन और कर्म से डटे रहने से सिद्ध होगा, जो मुसलमान आज राष्ट्रीय दृष्टि से पिछड़े हुए हैं, वे भी आपके सहयोगी बन सकेंगे, यदि हम राष्ट्रीयता के साथ समझौते की प्रवृत्ति त्याग दें। आज की परिस्थिति में जो असंभव लगता है, वह कालांतर में संभव हो सकता है, किंतु आवश्यकता है कि आदर्श हमारे सम्मुख सदा ही जीवित रहे।

15 अगस्त का दिन हमारे लिए आत्मनिरीक्षण का दिन है। इतिहास में ऐसे काल आए हैं, जब भारत का कम या अधिक भाग परतंत्र रहा है। किंतु संपूर्ण भारत को एकसूत्र में बाँधने की आकांक्षा हमारी राष्ट्रीय आकांक्षा है। आज हम पवित्र प्रतिज्ञा करें कि भारत को सुदृढ, सबल और शक्तिशाली बनाते हुए इतना महान् बनाएँ कि जो दुर्बलता में हमारा साथ छोड़ गए हैं, वे हमारे साथ आएँगे। अपने प्रयत्न और परिश्रम से, तप और त्याग से, साहस और साधना से वह दिन लाएँगे, जब सिंधु के किनारे बैठकर हम अपने पूर्वजों का तर्पण कर सकें। अखंडता की यह साध हमारी स्वतंत्रता का वरदान हो, यही समय की पुकार है तथा माता की माँग है। आइए, हम आगे बढ़ें और माता का आशीर्वाद प्राप्त कर अपने संकल्प की सिद्धि में यशस्वी हों।

अखंड भारत अमर रहे।

'अखंड भारत दिवस' का संकल्प

पाँच वर्ष पूर्व इस ऐतिहासिक दिवस पर भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की किंतु अपनी एकता खो दी। अनेक शताब्दियों के संघर्ष के बाद हमने जो पाया, वह महत्त्वपूर्ण है, परंतु हमने जो खोया वह कुछ कम नहीं।

स्वतंत्रता हमारी महत्त्वाकांक्षाओं की चरम परिणति नहीं है। वह केवल एक क़दम है, बड़ी कठिनाइयों से प्राप्त स्वतंत्रता को सुदृढ करना हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य है। जाति और जाति तथा प्रांत और प्रांत के मध्य भेदभाव उत्पन्न करने वाले बंधनों को तोड़ना और राष्ट्रीय एकात्मता की गहरी जड़ जमाना आवश्यक है। आम जनता की आर्थिक मुक्ति अभी बाक़ी है और चतुर्दिक् समृद्धि के लिए कार्य करना है।

आज हमें इस बात का भी स्मरण हो जाता है कि इसी दिन पाँच वर्ष पूर्व मदांध सांप्रदायिकता की कभी न तुष्ट होने वाली क्षुधा की पूर्ति के अंधाधुंध प्रयत्न में भारत का अंगभंग किया गया था। एक अनुचित माँग की बलिवेदी पर सिद्धांत तथा स्वाभिमान का यह अधम समर्पण था। परिणामस्वरूप अनेकानेक समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं।

इतिहास की समस्त दीर्घकालीन युग परंपरा में भारत सदैव एक और अविभक्त रहा है।

इसके विपरीत जब तक भारत विभाजित रहेगा, तब तक वह दुर्बल व परावलंबी और अनेक समस्याओं से ग्रस्त रहेगा। परिणामस्वरूप वह अपनी प्रतिभा का पूर्ण विकास करने या संसार में अपना भाग्योदय करने में असमर्थ होगा। एकता के बिना स्वतंत्रता अपूर्ण है।

अत: अखंड भारत भारतीय जनसंघ की आधारभूत मान्यता है। अतएव इस ऐतिहासिक दिवस पर हम अपनी इस प्रतिज्ञा को पुन: दोहराते हैं कि भारतमाता के अंगभंग को दूर करने और उसकी एकात्मकता की पुनर्प्राप्ति के लिए हम बद्ध परिकर हैं।

(पुस्तक के अंतिम पृष्ठ से)

—पुस्तक, अगस्त 1952

□

22

जनसंघ का प्रादेशिक सम्मेलन चंदौसी में 11-12 अक्तूबर को ही होगा

लखनऊ में दीनदयालजी का प्रेस वक्तव्य।

भारतीय जनसंघ उत्तर प्रदेश का प्रादेशिक सम्मेलन 11-12 अक्तूबर को चंदौसी में होने जा रहा है। ज्ञात हुआ है कि सम्मेलन में अखिल भारतीय नेता भी उपस्थित रहेंगे। जम्मू और कश्मीर प्रजा परिषद् के अध्यक्ष पं. प्रेमनाथ डोगरा को भी आमंत्रित किया गया है।

प्रत्येक मंडल समिति के प्रधान, मंत्री, प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के सदस्य तथा वर्तमान जिला समितियों के प्रधान और मंत्री सम्मेलन के प्रतिनिधि समझे जाएँगे। प्रतिनिधियों के पास अलग से सूचना तो भेजी जाएगी, किंतु कई मंडलों में हाल ही में चुनाव हो रहे हैं। अत: यदि अलग से सूचना न जाए तो इस सूचना को ही वे सूचना समझ लें।

सम्मेलन की कार्रवाई शनिवार दिनांक 11 को शाम को 4 बजे प्रारंभ होगी। अत: तय समय से पूर्व चंदौसी पहुँच जाना आवश्यक होगा। सम्मेलन का समारोप दिनांक 12 को सायंकाल होगा।

सम्मेलन में पेश करने योग्य प्रस्तावों की प्रतिलिपि भारतीय जनसंघ कार्यालय, ए.पी. सेन रोड, लखनऊ के पते पर दिनांक 8 की सायंकाल 4 बजे तक पहुँच जानी चाहिए।

प्रत्येक मंडल समिति के मंत्रियों को यह भी सूचित किया जाता है कि वे अपनी मंडल समिति के निर्वाचन का पूरा विवरण तुरंत ही प्रांतीय कार्यालय को भेज दें।

—पाञ्चजन्य, सितंबर 28, 1952

□

23

राष्ट्रजीवन में विजिगीषु वृत्ति का निर्माण आवश्यक

लखनऊ में हुई राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा में विजयादशमी[1] महोत्सव पर दीनदयालजी का बौद्धिक वर्ग।

विजयादशमी का पावन पर्व हमारी अनादि काल से चली आती हुई राष्ट्रीय विजय परंपराओं का गौरवपूर्ण स्मारक है। यह उत्सव उस उज्ज्वल इतिहास का साक्षी है, जब विजिगीषु वृत्ति से प्रेरित होकर भारतीय व्यापारियों, सांस्कृतिक संदेशवाहकों तथा धार्मिक प्रचारकों ने दुर्लंघ्य पर्वतों और अथाह समुद्रों को पार करके दूर-दूर तक भारतीय व्यापार एवं भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में अद्‌भुत सफलता संपादित की थी।

जीवन संग्राम में विजय तथा सफलता प्राप्त करने के लिए विजिगीषु वृत्ति का होना परमावश्यक है। महत्त्वाकांक्षा के बिना प्रगति तथा उन्नति नहीं हो सकती। हमारे देश के उज्ज्वल अतीत का इतिहास और आधुनिक युग में यूरोप में विज्ञान आदि की प्रगति साक्षी है कि बिना विजिगीषु वृत्ति तथा महत्त्वाकांक्षा के उन्नति असंभव है। अपनी इसी वृत्ति के बल पर प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनियों ने ब्रह्म तक का साक्षात्कार करने का प्रयत्न किया था।

आज विजयादशमी का महोत्सव मनाने के निमित्त हम यहाँ एकत्र हुए हैं। हिंदू

---

1. विजयादशमी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा अपनी सभी शाखाओं में मनाए जाने के लिए सुनिश्चित किए गए छह राष्ट्रीय उत्सवों में से एक है। यह पर्व प्रतिवर्ष आश्विन शुक्ल दशमी को मनाया जाता है। इसे दशहरा भी कहते हैं।

समाज में यह उत्सव अति प्राचीन काल से मनाया जाता है, यह कहना कठिन है कि कब से यह मनाया जाता है? इतिहास के अनुसार इस विषय पर कोई निर्णय नहीं दिया जा सकता। अतः कठिन ही नहीं, असंभव ही है। कालांतर में अनेक घटनाएँ इस उत्सव के साथ जुड़ गई हैं। आज के दिन प्रारंभ किए हुए किसी भी कार्य में विजय होती है, ऐसी कल्पना साधारण तौर पर है। राष्ट्र जीवन की घटनाएँ विजय की स्मारक हैं तथा विजयी भावनाओं को बताने वाली हैं। इसीलिए आज रावण फूँका जाता है और शस्त्र पूजन भी होता है। वस्तुतः यह लकीर को पीटने के समान है। हमने कभी अंतर्मुख होकर नहीं सोचा कि हम यह उत्सव क्यों मनाते हैं। क्या ऐसा कोई क़ानून है कि हम साल में दस-पंद्रह उत्सव मनाएँ ही। ऐसा नहीं है परंतु हमारी प्रगति एवं उत्कर्ष के लिए उत्सव मनाना आवश्यक है। इससे उत्पन्न संस्कार हमारे जीवन में उपादेय होते हैं। विजयी भावना की विजिगीषु वृत्ति उत्पन्न करने हेतु है। जिस समाज में यह भाव नहीं, वह समाज जीवित नहीं रहता। दुःख है कि आज तो हम पराजय के स्वप्न देखते हैं, आज तो रक्षात्मक भाव ही दिखाई देते हैं। परंतु रक्षार्थ विजय करनी चाहिए, यह भाव चाहिए। आज तो विजय की बातें पागलपन सी मालूम होती हैं। ध्रुव को पागल कहा गया, हरिभक्त प्रह्लाद को पागल कहा गया परंतु अंत में विजय उन्हीं की हुई। पश्चिम में कोलंबस को, जिसने पहले अमरीका की खोज की, पागल कहा गया। परंतु यह उसका पागलपन नहीं, जीवन की महत्त्वाकांक्षा थी। यूनान में मोम के पंख लगाकर उड़ने की चेष्टा को पागलपन कहा गया, परंतु आज वह कल्पना साकार हो गई। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी महत्त्वाकांक्षा रहती है। जर्मनी थोड़े दिन से संगठित हुआ, क्योंकि उसमें आगे बढ़ने की इच्छा थी। वह जंगली यूरोप एक दिन दुनिया पर कैसे हावी हुआ। हिमालय पर स्विस के लोग इसी विजय भावना से चढ़े।

हमारे भारतीय जीवन में जब तक यह भाव रहा, हम भी आगे बढ़े। हम भी दुनिया के कोने-कोने में फैले। स्याम, चीन, हिंदेशिया[2] में हमारी सभ्यता फैली। आज वहाँ रानीद्वीप में भी रामलीला मनाई जाती है। हम अथाह समुद्र पार कर आगे बढ़े। सीमाएँ नहीं बाँधी। अमर्यादित समुद्र पार कर हमारे व्यापारी भारत की विजय पताका लेकर बढ़े। दुर्लंघ्य हिमालय की शिखाओं को पार कर हम मध्य एशिया व जापान पहुँचे। हमारे यहाँ कहा गया कि लक्ष्मी समुद्र से निकलती है। इसका अर्थ यही है कि हमारी लक्ष्मी समुद्र पार दूर देशों से आई थी। भगवान् बुद्ध ने 108 बार पुनः-पुनः जन्म इसी महत्त्वाकांक्षा से लिया। अंत में अत्यंत सुकर्म करने के कारण उन्हें स्वर्ग मिला—स्वर्ग-द्वार पर जब पहुँचे तो एक व्यक्ति की करुणा भरी चीख उन्हें सुनाई दी। उन्होंने स्वर्ग जाने से इनकार

2. हिंदेशिया : वर्तमान इंडोनेशिया।

कर पुनः जन्म लिया और एक भी व्यक्ति को इस संसार में दुःखी न देखकर ही स्वर्ग जाने का निश्चय किया। आज उनकी अहिंसा का डंका ग़लत और भ्रमात्मक अर्थ लगाकर पीटा जाता है।

आज दूसरे देशों से ईसाई यहाँ आकर जंगल में घूमकर धर्म प्रचार करते हैं। जबकि हम इसी माता के पुत्र गाँवों में जाने में संकोच करते हैं। क्योंकि हममें राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षा का अभाव है।

परंतु एक समय पर इसी विजय प्रगति की भावना से हमने ब्रह्म तक का साक्षात्कार किया था और केवल आँखों से दिखने वाली दुनिया को ही दुनिया की परिधि में सीमित नहीं माना।

नचिकेता ने यज्ञ में सर्वस्व दान दिया। जब यम के यहाँ दान देने का प्रश्न आया, तब उसने स्वयं को यज्ञ में दान किया। यम के द्वार पर तीन दिन राह देखता रहा। तब यम आए और प्रसन्न हो नचिकेता से तीन वर माँगने के लिए कहा। इस पर नचिकेता ने अंत में वर स्वरूप यही ज्ञान माँगा कि 'मृत्यु का क्या रहस्य है?' यम ने इसे अमान्य कर साम्राज्य आदि देने के लिए कहा, परंतु नचिकेता ने अपना आग्रह नहीं छोड़ा। क्योंकि वह तो जीवन में महत्त्वाकांक्षा लेकर चला था।

आज ही के दिन राजा रघु ने कुबेर पर चढ़ाई कर विजिगीषु वृत्ति से विजय प्राप्त की। आज शमी का पूजन होता है। कहते हैं, वह तो स्वर्ण की पत्तियाँ हैं। हम उसे घर पर न रखकर अपने बंधु-बांधवों को बाँट देते हैं। हम यह सोचकर चलें कि आज के दिन शक्ति के बल पर राम एवं काली ने कैसी विजय प्राप्त की?

आज हमारे नेता हमारी इस भावना को दबाना चाहते हैं। जैसे बाहर से मार खाकर आए हुए बच्चे को माँ और पीटती है, उसी प्रकार हम पर लांछन लगाकर हमें पीटा जाता है। हमें लड़ाई से बचने का आदेश होता है। यह ग़ुलामी के परिणामस्वरूप उत्पन्न दासता की भावना है। और आज हम परकीयों का अनुकरण सोचते हैं। आज जीवन में चारों ओर मिलावट की भावना हावी होने लगी है। इस बुराई को दूर करना होगा। चाय का इतना प्रचार कैसे हुआ? विस्तार की भावना के कारण परंतु खेद है कि हम इसके विपरीत ही सोचते हैं।

यह विस्तार शॉर्टकट से नहीं हो सकता। जैसे शक्ति सदैव अविनाशी है। पावर हाउस में एक शक्ति—जैसे विद्युत् शक्ति शक्ति में बदल सकती है, उसी प्रकार राष्ट्र के व्यक्ति की ऊर्जा को सामूहिक ऊर्जा में बदलकर हम राष्ट्रोन्नति कर सकते हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना इसी आधार पर हुई है।

आज हम चीन के आक्रमण से डरते हैं। हम यह क्यों नहीं सोचते कि उस पर आक्रमण कर फिर उसे पाठ पढ़ाएँगे।

समुद्र में बाँध बाँधकर हम नहीं चल सकते। परंतु अगस्त्य[3] के समान चुल्लू भर में समुद्र पीने की महत्त्वाकांक्षा हम क्यों न करें। भगवान् राम ने तीन दिन तक प्रार्थना समुद्र से की, परंतु अंत में लक्ष्मण के कहने पर धनुष उठाते ही वह उनके चरणों में आ गिरा। दुनिया के कीटाणुओं से बचने हेतु टीकाकरण और निरोधात्मक उपाय अपनाकर अनेक टी.बी. एवं टाइफाइड के टीके लगे, परंतु फिर भी बीमारियाँ क्यों फैलीं। क्योंकि हृष्ट-पुष्ट होकर रोक करने का भाव हम जाग्रत् नहीं कर सके। परंतु हमारा यह भाव मन में रहा, सीमाएँ न बाँधें, दीवारें न खड़ी करें।

हमें सीमोल्लंघन कर अज्ञात प्रदेश में जाकर विजय प्राप्त कर ज्ञान संपादन करना है। हम निर्माण क्षेत्र में, निर्माण व्यापार में लाभ उत्पन्न करेंगे। इस सीमोल्लंघन की भावना को हिंदू समाज में जाग्रत् करने हेतु ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना हुई है। इसी विजय के निश्चय पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना हुई है। शक्ति साधना से उत्पन्न होती है। हमारा रास्ता तो साधना का है। परंतु आज तो समाज में अकर्मण्यता का जीवन है। यदि हम गुलामी में जगदीशचंद्र बसु[4] जैसे वैज्ञानिक, रवींद्र के समान कवि और भगत सिंह जैसे हुतात्मा पैदा कर सके तो आज स्वातंत्र्य प्राप्ति के पाँच वर्ष की अवधि में हम क्या कर सके? प्रत्येक क्षेत्र में हम पिछड़े दिखाई देते हैं। क्योंकि साधना का अभाव है।

सर्वतोमुखी पतन की अवस्था को दूर करने के लिए कोई शॉर्टकट नहीं, साधना ही काम देगी।

हमारे संघ जन्मदाता की यही इच्छा थी कि इसी देह में तथा इन्हीं आँखों में यह कार्य पूर्ण होता दिखाई दे, परंतु इस पर भी वह व्यग्र नहीं हुए। अत: हम अपने क़दम तेज़ करें, हम अभी नहीं पहुँचे हैं। हम चाल धीमी न करें। हम दूसरों के चक्कर में न पड़ें। हम गति बढ़ाएँ। यही बात प्रार्थना में हम नित्य कहते हैं। आगे बढ़ने के लिए गड्ढों की ओर न देखकर उच्च गिरिश्रृंग पर गौरी शंकर की शिखा निहारें। छोटी पगडंडी पर ही क्यों न हों, हमसे पीछे कौन रह गया, यह न देखें। कौन गिरा, कौन बैठ गया, यह न देखें। हम देखें कि कौन दौड़ रहा है, कौन आगे चल रहा है। यदि दौड़ में दस चलते हैं तो कुछ तो गिरते हैं और कुछ थककर बैठ जाते हैं। परंतु आगे जानेवाला पीछे नहीं

---

3. अगस्त्य : वैदिक ऋषि, केरल के मार्शल आर्ट कलरीपायट्टु की दक्षिणी शैली वर्मक्कलै के आदि गुरु, तमिल भाषा के आदि वैयाकरण तथा दक्षिणी चिकित्सा पद्धति 'सिद्ध वैद्यम्' के जनक। पुराणों के अनुसार भगवान् सूर्य की विनती पर विंध्याचल पर्वत की ऊँचाई कम करने के लिए दक्षिण में जा बसे। समुद्रस्थ राक्षसों के अत्याचार से घबराकर देवताओं ने प्रार्थना की तो सारा समुद्र पी गए।
4. जगदीशचंद्र बसु (1858-1937) : पौधों में चेतना की खोज करने वाले पहले वैज्ञानिक तथा क्रेस्कोग्राफ के आविष्कारक। 1917 में नाइट की उपाधि एवं कलकत्ता में बोस इंस्टीट्यूट की स्थापना, 1920 में रॉयल सोसाइटी (लंदन) के फेलो चुने गए।

देखता। धर्मराज युधिष्ठिर जैसे-जैसे आगे बढ़ते गए, वैसे-वैसे महाभारत का प्रमुख पात्र धनंजय अर्जुन मर गया, प्राणप्रिय द्रौपदी मर गई, नकुल गए, सब गए, रहा एक साथी कुत्ता। परंतु उसके साथ चलकर वह ध्येय प्राप्त कर सके।

अत: आज के दिन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के जन्मदाता का हम स्मरण करें और जैसे सारा जीवन उन्होंने राष्ट्र के लिए लगा दिया, परंतु व्यग्रता प्रकट नहीं की, वैसे ही हम मिलकर आगे बढ़ें और ध्येयदेवता के चरणों में 'मैं सबसे पहले सर अर्पित करूँगा' यह भावना रख कार्य करें तो निश्चित विजय अपनी है।

अर्जुन को भले ही कोई चिता पर चढ़ने को कहे या बदली से डरावे, परंतु वह तो हटेगी ही। छोटे-मोटे उपहासकों की चिंता नहीं। हमारे पीछे तो ईश्वर है। हमें उसी ने इस कार्य के लिए नियोजित किया है।

सन् 1925 में डॉ. साहब ने संघ की स्थापना की तो आज से कहीं अधिक ज़ोर कांग्रेस का था, परंतु ऐसे समय में 'हिंदू हैं' यह कहकर चलने वाला, और मार्ग का ज्ञान कराने वाली साधना का भाव जगाने वाले एक डॉक्टर, छोटे-छोटे बच्चों के साथ कबड्डी खेलने वाले डॉक्टरजी को ईश्वरीय प्रेरणा थी।

जहाँ अर्जुन जैसी विजिगीषु वृत्ति होगी और कृष्ण के समान प्रेरक होंगे, वहाँ विजय निश्चित है। हम समय व्यर्थ न गँवा ध्येय की एकाग्रता रख कार्य करते चले जाएँ और जब हम आज ऐसी विजय प्राप्त कर सकेंगे, तभी विजयादशमी मना सकेंगे। आसुरी भावना को त्याग, लगन और बल से विजित कर रामराज्य बनाने में सफल हो सकेंगे। इसमें कोई शंका नहीं होनी चाहिए।

—पाञ्चजन्य, अक्तूबर 5, 1952

□

24

उत्तर प्रदेश प्रादेशिक अधिवेशन, चंदौसी महामंत्री प्रतिवेदन

गत वर्ष 2 सितंबर को लखनऊ में जनसंघ का अधिवेशन बुलाया गया था। उसके पश्चात् 40 दिनों के भीतर समस्त प्रांत में हमने समितियों का निर्माण कर लिया। नई संस्था होने के पश्चात् भी हमने चुनाव लड़ने का निश्चय किया और समाज ने इस निर्णय का पूर्ण स्वागत किया। प्रांत की अनेक पुरानी संस्थाओं की तुलना में हमने अधिक उम्मीदवार खड़े किए। विधानसभा के लिए 209 तथा लोकसभा के लिए 42 उम्मीदवारों ने जनसंघ के टिकट लिए थे। यह हमारी लोकप्रियता का प्रमाण है। लोकसभा के दो उम्मीदवारों ने नाम वापस ले लिए और इस प्रकार कुल 249 व्यक्तियों ने चुनाव लड़ा। चुनाव के परिणाम हम जानते ही हैं। हम अधिक स्थान नहीं ले पाए। इसकी कारण मीमांसा आवश्यक नहीं। हमारे उम्मीदवारों की पराजय के लिए भिन्न कारण हैं। उनमें कई हमारी अपनी कमज़ोरियों तथा अन्य दलों एवं सरकार की ओर से बरती हुई अनियमितताओं को, जिन्हें हम रोक नहीं पाए—प्रमुख स्थान दिया जा सकता है। गहराई से विचार करने पर मैं तो यही समझता हूँ कि जो हमने किया, वह कुछ कम नहीं है। हमारे कार्यकर्ता नए थे, उनकी लोकप्रियता कम थी। कोई महीने भर का मंत्री था, कोई 15 दिन का प्रधान। इतने समय में जनता का विश्वास संपादित नहीं किया जा सका। फिर भी यह निश्चित सत्य है कि प्रांत में खड़े किए गए राज्य और केंद्र के सभी मंत्रियों से यदि किसी ने कड़ी टक्कर ली तो वह जनसंघ ने ही। उनमें से कई घटनाएँ तो इतिहास बन गई हैं। अन्य प्रमुख कांग्रेसियों को भी हमसे ही कड़ा मोर्चा लेना पड़ा। सरकार तथा अन्य विरोधियों की ताक़त जनसंघ को नष्ट करने में लगाई गई। हमारे जो लोग जीते, वे भी केवल इस कारण कि उन स्थानों पर कांग्रेस को हमारी जीत का तनिक भी विश्वास

न था। समस्त प्रांत में हमारे बक्सों में जो वोट निकले, वे 10 लाख थे। उन जैसी परिस्थितियों में इनको भी कम नहीं कहा जा सकता।

चुनाव का परिणाम निकलने के बाद एक ओर सर्वत्र शिथिलता छा गई। कार्यकर्ता यह समझने लगे कि हम लड़ाई हार गए तो कुछ भी नहीं कर सकते। इतना होने पर भी समाज की अपेक्षाएँ हमसे कम नहीं हुईं। बाद में किए गए दौरे यह सिद्ध करते हैं। कई स्थानों पर हुई सभाओं में तो उतने लोग आए, जितने चुनाव सभाओं में भी नहीं आए थे। यह निराशा तात्कालिक रूप में स्वाभाविक भी थी। गत 3-4 मास के कार्य के पश्चात् अब हमने अपना स्थान पुनः प्राप्त कर लिया है। निराशा दूर हो गई है। काम शुरू हो गया है। हमने 29 जून को कश्मीर दिवस के रूप में पहला कार्यक्रम किया, जो आशातीत रूप में सफल रहा। उसका परिणाम भी हुआ और भारत तथा कश्मीर सरकार ने यह समझा कि जनसंघ के साथ देश में बहुत बड़ा जनमत है। अखंड भारत दिवस के रूप में 15 अगस्त को हमने दूसरा कार्यक्रम मनाया। तीसरा कार्यक्रम कर वृद्धि विरोधी दिवस के रूप में 5 अक्तूबर को ही मनाकर आप लोग यहाँ आए हैं। इसके पूर्ण विवरण अभी प्राप्त नहीं हुए हैं, परंतु जितना ज्ञात हो सका है, उससे जनता के पर्याप्त सहयोग का पता चला है। लखनऊ में संपूर्ण हड़ताल रही। इस कार्यक्रम का एक बहुत बड़ा लाभ यह हुआ कि समाज को हमारे आर्थिक स्वरूप का भी ज्ञान हुआ और चुनाव के दिनों में हमारे विरुद्ध जो भ्रमपूर्ण प्रचार किया गया था, वह दूर हो गया।

इसके अतिरिक्त हमने अन्य स्थायी कार्यक्रम भी आरंभ किए, जिनमें प्रथम स्थान संगठनात्मक कार्यों का है। चुनाव के पूर्व हमने एड हॉक (Ad Hoc) समितियाँ बना कर काम चलाया था परंतु अब स्वतंत्र और दृढ यंत्र खड़ा करने की दृष्टि से मंडल समितियाँ बनाकर काम करने का निर्णय किया गया। प्रांत में 347 मंडल हैं (द्विसदस्यीय मंडलों को एक माना गया है) और 180 मंडल समितियाँ बना ली गई हैं। बुंदेलखंड और पर्वतीय क्षेत्रों में पहले भी कार्य बहुत कम था, अब भी कम ही है। भविष्य में बढ़ाने की योजना है। सदस्यता आंदोलन का अनुभव यह है कि लोग सदस्य बनने को तैयार हैं, केवल हमारे जाने की ज़रूरत है। यह वस्तुतः उत्साह की बात है।

अभी तक हम नीति प्रचार आदि की एकरूपता का निर्णय नहीं कर सके थे, अतः सैद्धांतिक एकता को दूसरा महत्त्व दिया गया। किसी भी प्रगतिशील संस्थान में छोटे-मोटे परिवर्तन तो होते ही रहते हैं, मूलभूत बातें नहीं बदलतीं। इस दृष्टि से कार्यकर्ताओं के लिए स्वाध्याय मंडल खोले गए। 'पाञ्चजन्य' में स्थायी स्तंभ प्रकाशित किया गया, जिससे उसको स्थान-स्थान पर चलाने वाले मार्गदर्शन ले सकें। अभी यह योजना बहुत व्यापक नहीं हुई है, परंतु इसकी बहुत आवश्यकता है। इसके बिना हमारी शंकाएँ दूर न होंगी। कार्यकर्ता प्रायः ऐसे प्रश्न पूछ लिया करते हैं, जिनके उत्तर स्पष्ट रूप से घोषणा-

पत्र में दे दिए गए हैं। उस पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है। दूसरी ज़रूरत यह है कि हम विरोधी समाचार-पत्रों को पढ़कर अपने विचार न बनाएँ, बल्कि अपने समाचार-पत्रों को अधिक पढ़ें।

तीसरा स्थायी कार्य प्रचारात्मक है। विभागशः नए-नए पत्रों का निकालना आरंभ किया गया। सर्वप्रथम लखीमपुर से 'दीपक' निकला, जो कार्यकर्ताओं के सहयोग से काफ़ी अच्छी तरह चल रहा है। एटा से 'संविधान', रायबरेली से 'विजय' और बुलंदशहर से 'प्रचारक' भी निकल रहा है। शीघ्र ही देहरादून से 'अखंड भारत' तथा गोरखपुर से 'जनशक्ति' निकलने की सूचना भी मिली।

रचनात्मक दृष्टि से भी इतने थोड़े समय में हम लोग काफ़ी आगे बढ़े हैं। लखीमपुर विभाग में श्री कुंजबिहारी लाल राठी[1] के प्रयत्नों से 24 स्कूल चल रहे हैं तथा प्रांत के अन्य स्थानों में भी प्रायः इतने ही विद्यालय खुल गए हैं। गोरखपुर में एक मांटेसरी तथा अन्यत्र रात्रि पाठशालाएँ चल रही हैं। कई स्थानों पर चिकित्सालय भी खोले गए हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से एक अन्य योजना भी विचारणीय है, इसके अंतर्गत ग्रामों में औषधालय खोले जाएँगे। इनके 250 सदस्य बनाकर कार्य प्रारंभ किया जाएगा, जिनको प्रतिमास 1 रुपया देना पड़ेगा। इन सदस्यों की मुफ़्त चिकित्सा की जाएगी। यह योजना स्वास्थ्य का बीमा करने जैसी है। शीघ्र ही प्रयोग होने वाला है। कई स्थानों पर सहकारी समितियाँ खोली गई हैं। रुड़की में एक शुद्ध वस्तु सहकारी समिति चल रही है। बुंदेलखंड में एक प्रयोग सहकारी कृषि का भी किया जा रहा है।

इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र में हमने पग भी बढ़ाए हैं। भविष्य में और अधिक तेज़ी से काम करने की ज़रूरत है।

—पाञ्चजन्य, अक्तूबर 26, 1952

□

1. कुंजबिहारी लाल राठी (1910-1968) भारतीय जनसंघ की उत्तर प्रदेश इकाई के सचिव (1959-1963) व उत्तर प्रदेश से राज्यसभा के सदस्य (1966-1968) रहे।

25

चुनावों में लड़-भिड़ लेने के बाद गोवध बंदी के प्रश्न पर आइए हम सब एक हों

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने अपने गोवध बंदी का आंदोलन प्रारंभ किया है। आंदोलन की महत्ता, पवित्रता, आवश्यकता और अनिवार्यता निर्विवाद है। फलत: संघ के स्वयंसेवकों को सभी ओर से समर्थन प्राप्त हो रहा है। पढ़े-बेपढ़े, ग़रीब-अमीर और पुरातनवादी-प्रगतिवादी सभी का सहकार्य इस आंदोलन को प्राप्त है। भारत की 35 कोटि जनता के हृदय की आवाज़ और उनकी श्रद्धा का विषय होने के कारण इसका विरोध तो संभव ही नहीं किंतु कुछ ऐसे व्यक्ति अवश्य मिल जाते हैं, जो आंदोलन को योग्य समर्थन देने से हिचकिचाते हैं। कारण, आंदोलनकारियों की मनोभावना के संबंध में उनको भ्रम है अथवा उन्हें भय है कि आंदोलन की सफलता से मिलने वाले श्रेय का राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ उन्हें राजनीतिक सत्ता से पदच्युत करने के लिए उपयोग न करे। देश के दुर्भाग्य से ऐसे व्यक्ति भी हैं, जो संपूर्ण गो-वध बंदी को अनावश्यक समझते हैं। उनकी इस समझ का कारण डॉलर कमाने की अर्थवादी (वास्तव में अनर्थवादी) दृष्टि, अथवा भारत के मुसलमानों के ग़लत, भ्रमपूर्ण तथा इसलाम विरोधी गो-वध प्रेम को अपनी मुसलिम तुष्टीकरण की नीति के कारण धक्का लगने का डर है। कुछ भी क्यों न हो, वे गोवध बंदी आंदोलन के समर्थक नहीं। किंतु इस आंदोलन का वे विरोध कर सकें, ऐसी भी उनकी हिम्मत नहीं। फलत: ये लोग आंदोलन के वास्तविक स्वरूप से जनता का ध्यान हटाकर दूसरी बातों पर लगा देना चाहते हैं। उदाहरण के लिए वे कहते हैं कि गो-वध बंदी तो ठीक है किंतु गो-पालन को आप क्यों नहीं लेते? गो के संबंध में फूँका आदि की जो दुष्प्रथाएँ चल रही हैं,

उनके विरुद्ध आंदोलन क्यों नहीं करते? जब स्वामी करपात्रीजी ने आंदोलन किया था, तब आप कहाँ थे? गौएँ मारी ही कहाँ जाती हैं? आंदोलन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने ही क्यों उठाया? यह आपका राजनीतिक स्टंट तो नहीं है, जो पिछले चुनावों में हारने के कारण अपने आपको जनप्रिय बनाने के लिए आपने हाथ में लिया है। गो-वध बंदी के समान ही अन्य महत्त्व के आर्थिक प्रश्न हैं; उन्हें आप क्यों हाथ में नहीं लेते? हस्ताक्षर करने से क्या होता है, इसके लिए तो कोई बड़ा कार्य करना होगा आदि-आदि। इन सभी बातों पर गहराई से विचार करें तो ज्ञात होगा कि इनमें सत्यांश थोड़ी-बहुत मात्रा में हो तो भी इनसे गो-वध बंदी आंदोलन की महत्ता और आवश्यकता कम नहीं होती। हाँ, जनता के मन में भ्रम उत्पन्न करके आंदोलन की उत्कटता को कम करने का, जाने या अनजाने में, दुर्भाग्यपूर्ण प्रयत्न अवश्य किया जा सकता है।

ग़लत तर्क

देश में अनेक आवश्यक कार्य हैं किंतु सभी कार्यों को एक साथ तो पूर्ण नहीं किया जा सकता। भोजन की थाली में परोसे गए सभी व्यंजन खाने होते हैं एवं न्यूनाधिक मात्रा में वे रुचिकर भी होते हैं किंतु रायता खाने वाले से यदि कोई पूछे कि इसी कौर में तुम दाल क्यों नहीं खाते? क्या दाल भोजन के लिए आवश्यक नहीं है? तो आप क्या कहेंगे? इसी प्रकार भोजन के संबंध में अनेक ग़लत प्रथाएँ हैं, उसको स्वास्थ्यकर दृष्टि से खाना बहुत कम लोग जानते हैं किंतु क्या इस आधार पर अन्नोत्पादन बंद किया जा सकता है? गो संवर्धन अथवा राष्ट्र संवर्धन के लिए अनेक आवश्यक कार्यों को हाथ में लेने की सलाह अच्छी है किंतु असामयिक है। आज गोवध बंदी आंदोलन की तीव्रता में अणुमात्र भी कमी करना गोवध का समर्थन ही करना है, क्योंकि राज्यकर्ता तो अपनी नीति को बनाए रखने के लिए बहाना चाहते ही हैं। अत: आज टालमटोल से काम नहीं चलेगा। आप या तो गोवध बंदी का समर्थन कीजिए अथवा हिम्मत के साथ विरोध कीजिए। जनता को पता लगने दीजिए कि आप किधर हैं। 'न हियो में न शियो में' की नीति नहीं चलेगी।

समर्थन ही कीजिए

जिनको यह भय है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ कहीं इस आंदोलन का राजनीतिक मंतव्यों की पूर्ति के लिए उपयोग न करे, उनको तो मैं राजनीति की सलाह यही दूँगा कि वे इस आंदोलन का जी खोलकर समर्थन करें। आंदोलन की जनप्रियता और सफलता निश्चित है। यदि आपने साथ दिया तो सफलता के श्रेय में आप भी समभागी बनेंगे, अन्यथा संपूर्ण श्रेय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को जाएगा। फिर वह उसका उपयोग करे अथवा न करे या चाहे जिस प्रकार करे।

किंतु राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का उद्‌देश्य सस्ती राजनीति नहीं है और न इस आंदोलन का सूत्रपात ही राजनीतिक कारणों से अथवा राजनीतिक मंतव्यों की पूर्ति के लिए किया गया है।

चुनावों का कलुष धोने के लिए यह आंदोलन

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ राष्ट्र में एकता और संगठन के लिए प्रयत्नशील है। यह राष्ट्र को उन मान्यताओं और जीवन की जन भावनाओं पर बल देता है, जो राष्ट्र को एक सूत्र में गूँथ सकती हैं। वास्तविक विद्वेष और विघटन उत्पन्न करने वाली भावनाओं को उसने सदा ही दबाया है। उसका वृंदवाक्य तो 'वयं पंचाधिकम् शतम्.' है। 'हम 105 हैं' की अनुभूति ही राष्ट्र का प्राण है। 105 को बाँटकर 5 के 2 या अनेक वर्ग करने वाली परिस्थितियाँ, अच्छी या बुरी, आवश्यक या अनावश्यक उत्पन्न होती ही रहती हैं। किंतु राष्ट्र के कर्णधार इसी प्रयत्न में रहते हैं कि 100 और 5 की विभेदकारी प्रवृत्ति का शीघ्र अतिशीघ्र परिमार्जन करके '105' की मनोभूमि तैयार की जाए। भाई-भाई में मतभेद होता है, आपस में लड़ भी लेते हैं किंतु माता की गोद में बैठकर अपने दूध के संबंध का अनुभव करने को फिर एक हो जाते हैं। खिलाड़ी मैदान में उतरकर एक-दूसरे के विरुद्ध डटकर लड़ते हैं किंतु खेल ख़त्म होने पर मिलकर जलपान करते हुए सब हार-जीत भूल जाते हैं। संघ के स्वयंसेवक रोज़ ही संघ स्थान पर एक-दूसरे से डटकर मोर्चा लेते हैं किंतु अंत में प्रार्थना करते हुए 'वयं हिंदुराष्ट्रांगभूता' के गगनभेदी घोष के साथ अपनी एकात्मता का अनुभव करते हैं। गोवध बंदी आंदोलन भी इस एकात्मता की अनुभूति के लिए है। पंडित नेहरू के अनुसार गत चुनावों में हार की झेंप मिटाने के लिए यह आंदोलन हो रहा है। (पंडितजी को मालूम होना चाहिए कि चुनावों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने नहीं बल्कि भारतीय जनसंघ, हिंदू महासभा तथा राम राज्य परिषद्, जिनके कार्यक्रम में गो-वध बंदी का समावेश था, भाग लिया था। हार या जीत इनकी हुई, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की नहीं) वस्तुतः चुनावों के कलुष को धोने के लिए इस आंदोलन का सूत्रपात हुआ है। चुनावों में एक-दूसरे के विरुद्ध कितना विष उगला गया, यह सर्वविदित है। किंतु क्या उस विषाक्त वातावरण को स्वच्छ करने के लिए कोई क़दम उठाया गया? विजेता के मन में गर्व एवं बाक़ी सबको हिकारत की नज़र से देखने की प्रवृत्ति, पराजित के मन में प्रतिशोध एवं प्रतिक्रिया की भावना एवं जनता के अंदर विकल्प का भाव ही दृष्टिगोचर होता है। क्या वे राष्ट्र के लिए शुभ लक्षण हैं? यदि नहीं तो इनको दूर करना होगा। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने यही कार्य हाथ में लिया है। इसलिए उसमें गोवध बंदी का प्रश्न हाथ में लिया है, जिस पर भारत में सर्वाधिक एकमत हो सकता है तथा जिसकी सफलता पर भारतीय आत्मा गौरव का अनुभव कर सकती है।

चुनावों में हिंदू महासभा और जनसंघ के उम्मीदवार एक-दूसरे के ख़िलाफ़ लड़े किंतु आज वे कंधे से कंधा लगाकर गोवध बंदी के लिए काम कर रहे हैं। रामराज्य परिषद् और परिगणित जाति तंत्र सभी इस आंदोलन में साथ हैं। टंडनजी, कृपलानी, किदवई और काटजू सभी को एक अधिष्ठान पर लाने की क्षमता इस आंदोलन में है। गौ सभा के लिए समान श्रद्धा का विषय है। आवश्यकता है कि हम इस आंदोलन के इस स्वरूप को भी समझें। होली का रंग तो हो गया, अब तो होली खेलने का कार्यक्रम है। इस समय भी हम प्रेमपूर्वक गले-मिलने के बजाय धुलेंडी की गाली-गलौज, कीचड़-कालौंच, रंग और अबीर की ही सोचते रहेंगे तो रंग में भंग हो जाएगा।

गो स्वातंत्र्य दलबंदी का विषय नहीं

राष्ट्र की स्वतंत्रता जैसे दलबंदी और राजनीति का विषय नहीं, वैसे ही गोमाता की स्वतंत्रता और अवध्यता भी राजनीति से परे राष्ट्रनीति का विषय है। इस विषय को राजनीति के अखाड़े में घसीटने वाले लोग जयचंद का पार्ट अदा कर रहे हैं। पृथ्वीराज और जयचंद की लड़ाई अनहोनी नहीं, हाँ इस लड़ाई के कारण राष्ट्र की स्वतंत्रता को बेचना अक्षम्य अपराध है। आप भी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से सहमत हों या न हों, उसके संगठनात्मक प्रयत्न आपको रुचें या न रुचें, किंतु गोवध बंदी का सवाल राष्ट्र का मौलिक सवाल है। इसमें तो आपको साथ देना ही होगा।

कांग्रेसी जनता का अनुशासन मानें

कांग्रेसी गोवध बंदी का समर्थन करते हैं किंतु उन्हें अनुशासन का भय लगा रहता है। हस्ताक्षर करने से हिचकिचाते हैं। मैं कहूँगा, ज़रा हिम्मत कीजिए; अनुशासन के नाम पर कायर न बनिए। अंतरात्मा की पुकार अनुशासन की माँग से बढ़कर है। आप अपने आपको जन प्रतिनिधि कहते हैं। जनता का अनुशासन सबसे बड़ा अनुशासन है। आप नेहरूजी की हाँ में हाँ न मिलाइए बल्कि जनता के स्वर में स्वर मिलाइए। भारत की इस माँग का समर्थन कीजिए। मंदिर में जाते समय जूते दरवाज़े पर छोड़ दिए जाते हैं; उनके साथ ही विचार भी छोड़ दीजिए। आइए, गोमाता की पूजा में श्रद्धा और स्नेह के साथ मिलें। ज़रूरत होगी तो कबड्डी का पाला फिर खींच लिया जाएगा किंतु पाले की रेखा को बंकर न बनाइए। माता मिलाने के लिए है, अलग करने के लिए नहीं। गो माता भी संपूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में आबद्ध करती रही है। आज भी उसका नाता सबल है। देश में गो-वध बंद होगा और होगा राष्ट्र की एकात्मता का सत्य साक्षात्कार।

—पाञ्चजन्य, नवंबर 9, 1952

□

26

मध्यम वर्ग का मसीहा भारतीय जनसंघ

जब से मार्क्स ने वर्ग संघर्ष के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है, पढ़े-लिखे लोग समाज को शोषित और शोषक अथवा छोटे और बड़े दो वर्गों में बाँटने के आदी हो गए हैं। विचारों की यह रूढ़ि हमें वास्तविकता से दूर कर देती है। अगर कभी बरबस हमें उस समाज को भी देखना पड़े, जो न शोषक है और न शोषित अथवा जो कभी शोषण का शिकार होता है और दूसरे ही क्षण स्वयं शोषक बन जाता है, तो हमारे मार्क्सवादी भाई उसे महत्त्वहीन कहकर टाल देते हैं। किंतु यह महत्त्वहीन नहीं, कम-से-कम हिंदुस्थान में तो यह अत्यंत ही महत्त्व का है। कारण, यह संख्या और क्रिया दोनों ही दृष्टि से सबल रहा है। यह बहुत बड़ा वर्ग मध्यवर्ग के नाम से पुकारा जा सकता है, यदि हम वर्गों के रूप में ही विचार करें। मार्क्सवादी इस वर्ग का रोल अभी तक निश्चित नहीं कर पाए हैं। एक दशक पूर्व तक वे इसे शोषण का एक पुर्जामात्र मानकर शोषक की श्रेणी में डालते थे किंतु अब वे सिद्धांत में उसे 'शोषित, पर व्यवहार में शोषक' ही मानते हैं। इस वर्ग के महत्त्व को न समझने के कारण मार्क्सवादी न तो इनकी समस्या को समझ पाए हैं और न उसका कोई हल ही उनके पास है।

जिस देश में बड़े-बड़े उद्योगों का बाहुल्य नहीं है, वहाँ मध्यम वर्ग की बहुतायत होती है। भारत में तो ऐसा ही है। यूरोप के देशों के विपरीत यहाँ करोड़पति और निर्धन के बीच करोड़ों व्यक्ति हैं, जो अधिक धनी नहीं तो बिल्कुल ग़रीब भी नहीं कहे जा सकते। यही वर्ग भारत के सामाजिक जीवन का सृष्टा, उसके सांस्कृतिक विकास का जनक तथा राष्ट्रीय आंदोलन का अगुआ रहा है। यह मध्यम वर्ग ही हमारे समाज की रीढ़ की हड्डी है। इस वर्ग का बल ही राष्ट्र का बल है। हमारी परंपरा भी इसी वर्ग का आधार लेकर आगे बढ़ी है। इस वर्ग में सभी प्रकार के लोग सम्मिलित हैं। किसान,

मज़दूर, व्यापारी, कर्मचारी, अध्यापक, लेखक, राजनीतिज्ञ, ज़मींदार और छोटे-छोटे पूँजीपति आदि सभी व्यवसायों के व्यक्ति मध्य वर्ग में आते हैं। भारत की अर्थनीति का यह मज़बूत पाया रहा है।

भारतीय अर्थनीति मध्यम वर्ग को केंद्रबिंदु मानकर चली है। अत: यहाँ उन बड़े-बड़े कल-कारखानों की गुंजाइश नहीं, जिनमें आर्थिक शक्ति का केंद्रीयकरण एक व्यक्ति के हाथों या कुछ व्यक्तियों के हाथों में हो जाता है तथा जन सामान्य एक यंत्र का पुर्जामात्र बनकर शोषण का शिकार होता है। उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करने पर भी स्थिति में विशेष अंतर नहीं आता बल्कि आर्थिक व राजनीतिक दोनों ही शक्तियों का केंद्रीकरण होने से हालत बदतर हो जाती है। अत: भारतीय जीवन प्रणाली छोटे-छोटे उद्योगों के विकास की कल्पना लेकर चली। इन उद्योगों में मालिक और मज़दूर भिन्न नहीं होते और यदि कहीं हों तो भी उनमें इतना पारस्परिक संबंध रहता है कि वे एक इकाई ही हो जाते हैं। इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से तथा उसके आधार पर सामाजिक दृष्टि से यहाँ बड़े और छोटे दो वर्ग नहीं बल्कि मध्य वित्त वर्ग की बहुलता है।

मध्य वित्त वर्ग की स्थिति में पिछले 150-200 वर्षों में अंतर आया है। प्रथम तो ईस्ट इंडिया कंपनी की अमलदारी में, जब यहाँ के उद्योग-धंधे नष्ट किए गए तो बहुत से कारीगर तथा व्यापारी बेकार हो गए। उनमें से कुछ तो दूसरे-दूसरे पेशों में लग गए तथा कुछ नष्ट हो गए। कारीगर तो खेती आदि की ओर झुके तथा व्यापारियों ने विदेशी माल का कारोबार प्रारंभ कर दिया। उद्योग-धंधों के नष्ट हो जाने के कारण मध्यवर्ग के लोगों की संख्या में कमी हुई। फिर भी वे काफ़ी थे। उनमें से अधिकांश के जीवन-यापन के साधन छिन चुके थे। अंग्रेज़ों ने उन्हें नए साधन देने का प्रयत्न किया। किंतु यह विष मिली हुई रोटी थी। इसने उसका पेट तो भरा किंतु नए रोग पैदा कर दिए। अंग्रेज़ी काल में नौकरी मध्यवित्त व्यक्तियों का प्रधान व्यवसाय रह गई। अकबर इलाहाबादी के शब्दों में—'बी.ए. हुए, नौकर हुए, पेंशन मिली और मर गए',[1] यही हमारे जीवन की कहानी रह गई। इस कहानी का नायक बनने के लिए अंग्रेज़ी पढ़ना ज़रूरी था, अंग्रेज़ीदां ही नहीं अंग्रेज़ी तहज़ीबयाफ़्ता भी होना चाहिए था। इसका नतीजा यह हुआ कि हमारा समाज से संबंध टूट गया। हम अपनी परंपरा से बिछुड़ गए। फलत: जोहड़ के पानी के समान इस समाज में गंदगी बढ़ी, जिसका व्यक्तीकरण अनेक सामाजिक और मानसिक समस्याओं के रूप में हुआ। राम मोहन राय से लेकर आज तक के सभी महापुरुषों ने इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की। महर्षि दयानंद, तिलक, विवेकानंद, रामतीर्थ,

1. अकबर इलाहाबादी के शे'र
हम क्या कहें अहबाब क्या कार-ए-नुमायां कर गए।
बी.ए. हुए नौकर हुए पेंशन मिली फिर मर गए॥ की ओर अंगित।

डॉ. हेडगेवार आदि ने परंपरा से संबंध स्थापित करने का प्रत्यक्ष स्पष्ट प्रयत्न किया और अन्यों ने नई भूख पैदा करके कुछ पश्चिमी और कुछ भारतीय ढंग का मिला-जुला भोजन देकर अप्रत्यक्ष रूप से प्रयत्न किया।

अंग्रेज़ी शिक्षा के परिणामस्वरूप हमारी प्रवृत्ति बहिर्मुखी हो गई। साथ ही आजीविका के लिए कलम का सहारा ही प्रमुख होने के कारण हम वीणापाणि के पवित्र संदेश को भूल गए। हमारी रीति, नीति, विचार, व्यवहार किसी का भी संबंध गाँवों में फैले करोड़ों लोगों से न रहा। अंग्रेज़ों ने इस विभेद को सब प्रकार से बढ़ाया ही। यहाँ तक कि सन् 1935 के विधान[2] में तो हिंदू और मुसलमानों के लिए पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था नहीं थी अपितु शहरी और देहाती इलाकों के अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्र परिसीमित हुए।

सभ्यता और संस्कृति के इस खोखलेपन के साथ ही धीरे-धीरे आर्थिक दिवालियापन भी घर कर गया। नौकरियों में तो निश्चित संख्या तक लोग ही लिए जा सकते हैं। फलतः पढ़े-लिखे बेकारों की संख्या दिन-पर-दिन बढ़ने लगी। दफ़्तरों के सामने 'जगह नहीं है' की पट्टियाँ लग गईं। बढ़ती हुई समस्या को देखकर आँसू पोंछने के लिए 'सप्रू कमेटी' बनाई किंतु उनकी सिफ़ारिशों पर कभी अमल नहीं किया गया।

द्वितीय महायुद्ध के छिड़ जाने पर यह समस्या अस्थायी रूप से सुलझ गई। नौकरियों की बहुतायत हो गई। यद्यपि पुराने कर्मचारियों के सामने महँगाई के कारण नई समस्याएँ आ खड़ी हुईं, किंतु कई नौकरयाँ मिल जाने के कारण बेकारी को राहत मिली। बाहर से चीज़ें आना बंद हो जाने के कारण स्वदेशी उद्योग भी पनपे। फलतः एक नए मध्य वर्ग का सृजन हुआ, जो पढ़ा लिखा तो नहीं था किंतु आर्थिक दृष्टि से उसकी स्थिति पढ़े-लिखे मध्य वर्ग से कहीं अच्छी थी। हाँ, कंट्रोल के कारण व्यापारियों को, विशेषकर छोटे व्यापारियों को अवश्य धक्का लगा। फिर भी आर्थिक दृष्टि से समस्या भीषण नहीं थी।

महायुद्ध समाप्त होने तथा स्वराज्य के बाद चक्र फिर से पुरानी दिशा में घूमने लगा है। यदि हमने इस बदली हुई स्थिति को समझा होता तथा आगे आने वाली समस्याओं को रोकने का प्रयत्न किया होता तो आज हालत अच्छी होती, किंतु हमने अपनी अदूरदर्शी नीति से समस्या को और भी विकट बना दिया है। आज मध्यम वर्ग की अत्यंत विषम स्थिति है। इसका हम संक्षेप में यह विश्लेषण कर सकते हैं।

प्रथम तो ऐसा पढ़ा-लिखा वर्ग है, जो यदि नौकरी में है तो उसका वेतन बहुत ही अपर्याप्त है। उसकी समस्याएँ कुछ तो स्वाभाविक हैं तथा कुछ नए ज़माने के विचारों तथा पश्चिमी सभ्यता के अनुकरण से बढ़ गई हैं। इनकी पूर्ति के लिए वेतन की कमी अनेक भ्रष्टाचारी साधनों से पूरी की जाती है, जिसका परिणाम दिन-प्रतिदिन नैतिक पतन में हो रहा है। इसके अतिरिक्त ऐसा भी वर्ग है, जो पढ़ा-लिखा है किंतु बेकार है। उसके पास

2. सन् 1935 का विधान : आशय 'भारत शासन अधिनियम 1935' से है।

जीविकोपार्जन के कोई साधन नहीं। घर की पूँजी ख़र्चीली पढ़ाई-लिखाई में स्वाहा हो गई, कलम छोड़कर हाथ का काम कर नहीं सकते। फलत: उसके मन में निराशा घर करती जा रही है। तीसरा वर्ग ऐसा भी है, जो अभी तक बेकार नहीं, जो हाथ का कारीगर है, काफ़ी कमाता है किंतु आज संस्कृति और सभ्यता की दृष्टि से वह काफ़ी पीछे है। यह नया मध्यवित्त वर्ग है किंतु अभी आर्थिक और सामाजिक जीवन में अंतर है। हमें एक ओर इन सभी की समस्या को सुलझाना है तो दूसरी ओर यह प्रयत्न करना है कि मध्यवित्त वर्ग अधिकाधिक बढ़े न कि थोड़े दिनों में बेकार होकर पीछे हट जाए।

दुर्भाग्य से शासन की नीति इस वर्ग को बढ़ाने की अपेक्षा घटा ही रही है। प्रथम तो उसकी उद्योग नीति में ऐसे उद्योगों को कोई स्थान नहीं, जिन्हें थोड़ी पूँजी से तथा थोड़े ज्ञान से चलाया जा सकता है। जो कुछ छोटे-छोटे उद्योग लड़ाई के काल में पनपे थे, वे नष्ट हो रहे हैं। आयात-निर्यात की नीति इन स्वदेशी उद्योगों के लिए हानिकर रही है। विदेशी पूँजीपति भ्रष्ट नौकरशाही को सहज ही अपने अनुकूल कर लेते हैं, जिससे भारत के उद्योगों के हित के प्रतिकूल आयात किया जाता है। निर्यात पर लगाए गए टैक्सों ने हमारे छोटे-छोटे ही नहीं, बड़े उद्योगों को भी आघात पहुँचाया है। कर नीति भी मध्यम वर्ग को समाप्त कर रही है। बहुसूत्री बिक्री कर का परिणाम बिचौलियों को समाप्त कर रहा है। फैक्टरी ऐक्ट तथा श्रमिकों संबंधी जो क़ानून बनाए गए हैं, उन्हें छोटे-छोटे कारखानों पर भी इस प्रकार लागू किया जाता है, जिसमें न तो श्रमिकों का लाभ होता है और न उद्योगों का। सरकारी क़ानूनों के मातहत काग़ज़ी कार्रवाई तथा भ्रष्टाचार ने उत्पादन व्यय इतना बढ़ा दिया है कि छोटे-छोटे उद्योग ख़त्म होते जा रहे हैं। नियंत्रण से भी सबसे अधिक धक्का मध्य वित्त लोगों को ही लगा है। उसका व्यवहार भी बड़े-बड़े उद्योगपतियों के हित में तथा खुदराफ़रोशों को घातक ही होता है। पंचवर्षीय योजना में भी इस बेकारी को दूर करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया।

भारत की समस्या का हल प्रथम तो शिक्षा में आमूल-चूल परिवर्तन कर बेकारों को शिक्षित करना है। आवश्यकता है कि उन्हें टेक्निकल शिक्षा दी जाए। जो डिग्रियाँ ले चुके हैं, उन्हें भी थोड़े दिनों की कोई ट्रेनिंग देकर उत्पादन के योग्य बनाया जा सकता है। उनको केवल शिक्षा देने से ही काम नहीं चलेगा बल्कि इस प्रकार शिक्षा प्राप्त नवयुवकों की सहकारी समितियाँ बनाकर उनसे छोटे-छोटे उद्योग प्रारंभ करवाए जाएँ। इनके माल के विपणन का भी प्रबंध सरकार को करना होगा। यदि इस प्रकार व्यापक रूप से छोटे-छोटे धंधे खुलवाए जाएँ तथा उनको शहरों में केंद्रित करने के बजाय गाँवों में विकेंद्रित किया जाए तो देश की आर्थिक ही नहीं, सांस्कृतिक एवं सामाजिक समस्या भी सुलझ जाएगी। गाँव और शहरों के बीच की खाई ही इस समस्या की जड़ में है। उसे मिटाना ही होगा।

बिना पढ़ा किंतु आर्थिक दृष्टि से कमाऊ वर्ग के लिए हमें शिक्षा एवं समाज केंद्रों

की स्थापना करनी होगी। इन केंद्रों में पढ़े और अनपढ़ सबके मिलन की व्यवस्था करनी आवश्यक है। 4 रुपए रोज़ कमाने वाला रिक्शा वाला यद्यपि 72 रुपए के बाबूजी से आर्थिक दृष्टि से अच्छा है किंतु अभी ऐसा कोई अवसर नहीं, जहाँ दोनों समान भूमि पर मिल सकें। एक ओर अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों की संस्कृति और सभ्यता की ग़लत धारणा को बदलना होगा तो दूसरी ओर अनपढ़ को भी सुसंस्कृत बनाना होगा।

भारतीय जनसंघ यद्यपि निचली श्रेणी के लोगों की ओर से आँखें बंद नहीं करता, फिर भी वह मध्य वित्त वर्ग की समस्या को देश की प्रमुख समस्या मानता है। आज के करोड़ों किसान-मज़दूर, छोटे तथा उजड़े हुए ज़मींदार, कर्मचारियों आदि के सामने की समस्याओं को समन्वित रूप से सुलझाया जाए, तभी देश का कल्याण होगा। स्वदेशी के व्यापक प्रसार, विकेंद्रित अर्थव्यवस्था, राष्ट्रीय एवं टेक्निकल शिक्षा तथा गाँव-गाँव और मुहल्लों-मुहल्लों में समाज केंद्रों की स्थापना से यह संभव हो सकेगा।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 31, 1952

□

27

भारतीय जनसंघ राष्ट्रीय अधिवेशन, कानपुर*

भारतीय जनसंघ का पहला राष्ट्रीय वार्षिक अधिवेशन, कानपुर में 29 से 31 दिसंबर, 1952 को हुआ। इस अधिवेशन की अध्यक्षता भारतीय जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने की। इस अधिवेशन में कुल 15 प्रस्ताव[1] पारित हुए। इनमें 7 दीनदयालजी ने प्रस्तुत किए, जो निम्न प्रकार हैं।

1.

दक्षिण अफ्रीका

दक्षिण अफ्रीका की मालान सरकार की रंगभेद[2] की नीति मानवता के तथा राष्ट्रसंघ

---

* देखें परिशिष्ट V, पृष्ठ 184।

1. अन्य प्रस्तावों के विषय तथा प्रस्तोता निम्न थे :
   1. गो-हत्या निषेध : प्र. चाँद करण शारदा, स. आचार्य रामदेव
   2. उर्दू-उन्मूलन : प्र.पं. शिवदयालु, स. शिव कुमार द्विवेदी
   3. हैदराबाद विलय : प्र. वैद्य गुरुदत्त, स. सौमित्र शर्मा
   4. जनसंघ का संविधान : प्र. भाई महावीर
   5. प्रांतों का पुनर्गठन : प्र. श्री ठाकुरदास एडवोकेट, स. ब्रदीलाल दबे
   6. स्वदेशी : प्र. बच्छराज व्यास, स. कृष्ण बलवंत पावगी
   7. पूर्व बंगाल : अज्ञात
   8. जम्मू-कश्मीर : प्र. उमाशंकर त्रिवेदी, स. लाल सिंह शक्तिवत, धन्वंतरि सिंह, अमरनाथ बर्मन, कर्नल भादुड़ी और वी.पी. जोशी

   (प्र.- प्रस्तोता; स. समर्थक)
2. डेनियल एफ. मालान (1874-1959) : दक्षिण अफ्रीका के प्रधानमंत्री (1948-548) रहे। इनके समय में गोरे और कालों में अलगाव पैदा करते हुए रंगभेद की नीति बनाई गई, जिसका उद्देश्य हमेशा के लिए वहाँ गोरों का वर्चस्व स्थापित करना था।

द्वारा घोषित समस्त जनाधिकारों के प्रतिकूल है तथा एशियाई और अफ्रीकी राष्ट्रों के सम्मान को ठेस पहुँचाने वाली है। प्रत्येक स्वाभिमानी व्यक्ति और जाति के लिए स्वाभाविक है कि इस नीति का विरोध करे। यह संतोष का विषय है कि दक्षिण अफ्रीका के भारतीय एवं अफ्रीकी जन शांतिपूर्ण रूप से अपने अधिकारों की रक्षा के लिए आंदोलन कर रहे हैं, जनसंघ उनके आंदोलन का समर्थन करता है तथा इसकी सफलता चाहता है। जनसंघ भारत सरकार से अनुरोध करता है कि वह राष्ट्रमंडल सरकारों को इस बात के लिए प्रेरित करे कि वे अपने प्रभाव का उपयोग कर दक्षिण अफ्रीका के शासन को बाध्य करें कि वह अपनी इस मानवता विरोधी नीति का परित्याग करे।

2.
भारत स्थित विदेशी उपनिवेश

जनसंघ का यह स्पष्ट मत है कि भारत में अब फ्रांस और पुर्तगाल[3] के अधीन छोटी-छोटी बस्तियों का रहना सर्वथा अनुचित है। स्वतंत्र भारत के नैसर्गिक विकास और उसकी उद्‌गत जाग्रत् राष्ट्र चेतना इसके प्रतिकूल है। इन बस्तियों के लोग भारत में विलय चाहते हैं, परंतु खेद है कि अंग्रेज़ों के अनुभव से लाभ न उठाकर इन अशक्त यूरोपीय देशों के शासन राष्ट्रीय शक्तियों का बर्बर रूप से दमन कर रहे हैं। भारत इस दमनचक्र को मौन भाव से झेल नहीं सकेगा। लोक की प्रबल माँग के अतिरिक्त भारत की सुरक्षा की दृष्टि से भी इन छोटी सागर तटस्थ बस्तियों का अस्तित्व देश के लिए भय का कारण हो सकता है। अतः जनसंघ भारत शासन से अनुरोध करता है कि इन बस्तियों के भारत में विलय के लिए सक्रिय पग उठाए।

3.
कर नीति तथा बहुसूत्री बिक्री कर

भारतीय जनसंघ का यह सम्मेलन विभिन्न प्रादेशिक सरकारों की कर नीति को जनहित के प्रतिकूल समझता है। आज जबकि देश की आर्थिक स्थिति गिरती जा रही हो, व्यापार ठप हो रहा हो तथा बेकारी बढ़ रही हो, कर वृद्धि की योजनाएँ न केवल जीवन-निर्वाह के गिरे हुए स्तर को और भी गिराएँगी बल्कि भविष्य के उत्पादन पर भी प्रभाव करेंगी। नवीन करों से विशेषकर बिक्री कर जो कि कई प्रांतों में जीवन की

---

3. पुर्तगाली बस्तियाँ : 1498 में वास्को डिगामा के कालीकट (अब कोझिकोड) आगमन के साथ ही पुर्तगालियों ने भारत में अपनी कंपनियाँ स्थापित करनी प्रारंभ कीं और प्रथम पुर्तगाली वायसराय फ्रांसिस्को डी अल्मीडा ने 1500 में कोचीन (केरल) को अपना मुख्यालय बनाया। बाद में 1510 में यह मुख्यालय गोवा स्थानांतरित हो गया। बाद में दमन, दीव, दादरा व नगर हवेली पर भी अधिकार जमा लिया। 1950 के दशक में हुए भारतीय जनसंघ व जनता के मुक्ति आंदोलनों के बाद दादरा व नगर हवेली से इनका नियंत्रण 1954, गोवा व अन्य क्षेत्रों से 1961 में समाप्त हो गया।

आवश्यक वस्तुओं तक पर तथा बहुसूत्री रूप से लगाया गया है, अत्यंत ही प्रतिगामी है। फलतः स्थान-स्थान पर इसके विरुद्ध जो दमन का अवलंबन किया गया है, उसकी निंदा करता है। विशेषकर सौराष्ट्र में इस संबंध में चलने वाले सत्याग्रहियों का जनसंघ अभिनंदन करता है तथा सौराष्ट्र सरकार की दमन नीति का विरोध करते हुए उससे माँग करता है कि वह जनता की सही माँगों को स्वीकार कर शांति स्थापित करे।

4.
चुनाव नियम में संशोधन की माँग

कार्यसमिति को यह आदेश दिया जाता है कि वह साधारण रूप से चुनाव संबंधी नियम तथा विशेषकर मतगणना पद्धति में संशोधन के विषय में भारत सरकार से पत्र व्यवहार करे, ताकि मतगणना मतदान के पश्चात् तुरंत ही की जाए और प्रत्याशियों के संबद्ध एजेंटों को प्रत्येक मतदान-स्थल पर चुनाव फल दिया जाए।

5.
पुनर्वास

पश्चिमी पाकिस्तान से विस्थापित हिंदुओं के पुनर्वास का कार्य अभी बहुत कुछ उसी अंश में पूर्ण हुआ है, जिस अंश में उन लोगों ने अपने उद्योगों से स्वावलंबी बनने में सफलता पाई। सरकार द्वारा किए गए व्यय का एक बहुत बड़ा भाग कर्मचारियों और बिचौलियों में ही बँट जाता है और पात्रों तक नहीं पहुँच पाता। मिलता भी है तो उन्हीं को, जिनकी कर्मचारियों तक पहुँच है। अतः जनसंघ का मत है कि सरकार को अपने कर्मचारियों के माध्यम से मकान बनाने और व्यवसाय खुलवाने आदि के प्रयोग न कर भूमि, व्यवसायों के अवसर, उपकरण तथा धन सीधा विस्थापित को देकर उन्हें अपने पाँवों पर खड़े होने का अवसर देना चाहिए। इसके साथ ही उनकी पाकिस्तान में छूटी हुई संपत्ति की क्षतिपूर्ति के रूप में जो भी उन्हें दिया जाना है, वह उन्हें अविलंब मिल जाना चाहिए। पूर्वी पाकिस्तान से आए विस्थापितों के लिए तो इतना भी नहीं किया गया और उनमें से अधिकतर जो अब आए हैं और आगे आने वाले हैं, आर्थिक दृष्टि से पहले ही बहुत दुर्बल हैं। अतः शासन को चाहिए कि क्षतिपूर्ति के कार्य को पहले के समान विलंबित न कर द्रुत-परिणामी बना दे। पुनर्वास के विषय को लेकर हाल ही में दिल्ली के पुरुषार्थी सम्मेलन में तथा बंगाल की निष्क्रांति समिति ने जो प्रस्ताव किए हैं, उनका जनसंघ समर्थन करता है।

जनसंघ भारत शासन से माँग करता है कि विस्थापितों की व्यक्त संपत्ति की क्षतिपूर्ति पाकिस्तान से कराए। पाकिस्तान शासन जिस प्रकार अपने मिथ्यावाद और हमारी उदारता का लाभ उठाता रहा है, वह विस्थापितों के लिए अत्यंत हानिकर हुआ

है। यदि भारत शासन पाकिस्तान से कड़ा व्यवहार कर उक्त संपत्ति की क्षतिपूर्ति ले सके तो विस्थापितों की समस्या की चिंता भारत को नहीं, पाकिस्तान को सताने लगेगी। जनसंघ भारत सरकार से बलपूर्वक आग्रह करता है कि पाकिस्तान के प्रति अपनी दुर्बल नीति को बदले और शठ शत्रु के प्रति कठोर एवं सबल नीति का अवलंबन कर देश के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करे।

6.
पंचवर्षीय योजना

योजना आयोग द्वारा संसद् के समक्ष उपस्थित की गई पंचवर्षीय योजना के बारे में जनसंघ का यह मत है कि

(1) इस योजना में निर्माताओं के घोषित आदर्शों एवं सिद्धांतों के प्रतिकूल बेकारी दूर करने और जीवन-स्तर उन्नत करने की ओर जैसा ध्यान चाहिए था, नहीं दिया गया।

(2) भारत कृषिप्रधान देश है और आज भारत की सबसे बड़ी समस्या यह है कि अन्न, कपास और पटसन की उपज बढ़ाई जाए, किंतु ऐसे साधनों द्वारा जिनके लिए हम विदेशों पर निर्भर न हों। यह योजना अमरीकी कृषि पद्धति पर आधारित है और उपज के साधनों के लिए विदेशों से ट्रैक्टर तथा पेट्रोल आदि इसके अनिवार्य अंग हैं। फलतः देश अन्न, वस्त्रादि तक के लिए अमरीका और ब्रिटेन की नीति द्वारा प्रभावित रहेगा, जो देश की आर्थिक स्वतंत्रता के लिए विधायक नहीं हो सकता। वस्तुतः आधारभूत वस्तुओं के उत्पादन के लिए स्वेदशी उपकरणों के ही विकास का आधार रहा है और रहेगा। इस मौलिक तत्त्व का तिरस्कार कर योजना के निर्माताओं ने भयंकर भूल की है।

(3) इस प्रकार गाँव में बसने वाले भारतीय जन के जीवन के स्तर को ऊपर उठाना तभी संभव होगा, जब कृषि के साथ-साथ घरेलू उद्योगों का गाँव में विकास हो, जिससे ग्रामीण मज़दूरों की बेकारी दूर हो और किसानों को ख़ाली समय के लिए कुछ उपजाऊ काम मिल जाए। 2000 करोड़ की योजना में इस कार्य के लिए 15 करोड़ का व्यय 5 लाख गाँवों में उद्योग की स्थापना के लिए उपहासप्रद है और प्रतिपक्ष घोषित कर रहा है कि यह योजना किसान, मज़दूर और ग़रीबों के लिए नहीं बनाई गई है।

(4) रक्षा संबंधी और आधारभूत बड़े उद्योगों के विकास की ओर भी ध्यान नहीं दिया गया।

(5) इस योजना की आधारभूत कल्पनाओं में से प्रधान कल्पना यह है कि देश के

आर्थिक जीवन के सभी अंगों पर शासन का नियंत्रण रहेगा। जिस शासन में ऊपर से लगाकर नीचे तक अयोग्यता, भ्रष्टाचार अप्रामाणिकता और असंतोष हो, उसके हाथ नियंत्रण समाज के लिए यंत्रणा हो जाता है और बिना समाज की सहायता के ऐसी कोई योजना क्षणमात्र भी सफल नहीं हो सकती। हमारी आज की परिस्थिति में नियंत्रण जितने कम हों, उतना ही समाज और शासन दोनों के लिए हितकर है।

(6) साक्षरता और प्रसारकता, जिसके बिना लोकतंत्र और वयस्क मताधिकार निरर्थक रहते हैं, को इस योजना में एकबारगी भुला दिया गया है।

(7) इसी प्रकार जन-स्वास्थ्य की भी उपेक्षा की गई है, विशेषकर अपनी स्वदेशी चिकित्सा पद्धति की। आयुर्वेद के वैज्ञानिक विकास के कार्य को सर्वथा भुला दिया गया है।

(8) भारत सेवक समाज का संगठन भी कांग्रेस के खोए हुए जन-संपर्क के पुनर्विधान के लिए नियुक्त एक विभाग के रूप में हो रहा है और उसको एक निष्पक्ष राष्ट्रीय संस्था का रूप नहीं दिया गया, जिसका परिणाम यह होगा कि जनता का यथायोग्य सहयोग इस कार्य में प्राप्त नहीं हो सकेगा।

7.

सांस्कृतिक पुनरुत्थान[4]

जनसंघ का मत है कि भारत तथा अन्य देशों के इतिहास पर विचार करने से यह सिद्ध होता है कि केवल भौगोलिक एकता एक राष्ट्रीयता के लिए पर्याप्त नहीं। एक देश के निवासीजन एक राष्ट्र तभी बनाते हैं, जब वे एक संस्कृति के द्वारा एकरूप कर दिए गए हों। जब तक भारतीय समाज एक संस्कृति का अनुगामी रहा, तब तक अनेक राज्य रहते हुए भी यहाँ के जनों की मूलभूत एक राष्ट्रीयता बनी रही। परंतु जब से विदेशी शासकों ने अपने लाभ के लिए एकात्मता को भंग कर विदेशपरक संस्कृतियों को इस देश में जन्म दिया है, तब से भारत की एक राष्ट्रीयता संकटापन्न हो गई। अनेक शताब्दियों तक एक राष्ट्र का घोष करते हुए भी भारत में मुसलिम संप्रदायवादियों के द्विराष्ट्रवाद की विजय हुई, देश विभक्त हुआ और पाकिस्तान में ग़ैर-मुसलिमों के लिए रहना असंभव कर दिया गया। दूसरी ओर भारत में मुसलिम संस्कृति को अलग मान उसकी रक्षा और संवर्धन के ब्याज से उसी द्विराष्ट्र वाली प्रवृत्ति का पोषण हो रहा है, जो राष्ट्र-निर्माण के मार्ग में बाधक है।

---

4. सांस्कृतिक पुनरुत्थान का यह प्रस्ताव वैचारिक दृष्टि से बीजभूत प्रस्ताव है। इसी प्रस्ताव का विकास करते हुए दीनदयालजी ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एवं एकात्म मानववाद अवधारणाओं को देश के समक्ष प्रस्तुत किया।

अत: जनसंघ निर्णय करता है कि भारत की एक राष्ट्रीयता के विकास और दृष्टिकोण हेतु यह नितांत आवश्यक है कि भारत में एक संस्कृति का पोषण हो और समाज के सभी घटकों में चाहे वह किसी धर्म के मानने अथवा किसी भी प्रदेश के निवासी हों, उसका प्रचार किया जाए और उसे मान्यता दिलाई जाए।

इस कार्य के संपादन के लिए निम्नलिखित दिशाओं में समाज और शासन को अग्रसर होना चाहिए—

1. शिक्षा को राष्ट्र संस्कृति पर आधारित किया जाना चाहिए। उपनिषद्, गीता, रामायण, महाभारत तथा अर्वाचीन-भारतीय भाषाओं द्वारा भारतीय संस्कृति को जीवित रखने वाले साहित्य सर्जकों से सबका परिचय कराया जाए और वह समय शीघ्र आए, जब सामाजिकजीवन के सभी केंद्रों में इस सांस्कृतिक धारा को अनिवार्य समझा जाए।
2. भारत के राष्ट्रपुरुषों के जन्मदिवस आदि राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाए जाएँ, जिनमें शासन प्रेरणा, प्रबंध और धन का सहायक हो और राष्ट्र के सभी नागरिक भाग लें।
3. भारत के प्रधान त्योहारों को राष्ट्रीय त्योहारों के रूप में मनाया जाए। इसमें होली, विजयादशमी, रक्षाबंधन तथा दीपावली का समावेश हो।
4. भारत के सामाजिक जीवन के सभी अंगों में क्षेत्रीय भाषा अथवा राष्ट्रभाषा का प्रचलन करने के लिए शासन और समाज की ओर से समर्थ तथा सतत उद्योग प्रारंभ हो, जिससे भारतीय समाज अपना विकास राष्ट्रीय आधारों पर कर सके।
5. संस्कृत भाषा का पुनरुज्जीवन किया जाए, उसका ज्ञान विद्वत्ता के लिए अनिवार्य हो तथा उद्योग किया जाए कि देश की समस्त भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि को ही एक लिपि के रूप में स्वीकार किया जाए।
6. भारतीय इतिहास शुद्ध रूप से भारतीय जन का इतिहास हो। इसमें विदेशी शासकों के नाम पर काल विभाजन न होकर भारतीय समाज के विकास, उसमें होने वाले आंदोलनों और क्रांतियों के आधार पर काल विभाजन कल्पित हो तथा भारतीय संस्कृति तथा भारतीय संस्कृति के पूर्वकालीन विश्वव्यापी प्रसार की गाथा भी सम्मिलित हो।

6.1 संस्कृति के पुनरुत्थान तथा एकीकरण की दृष्टि से यह संघ देश के हिंदू समाज को सचेत करता है कि अपनी इतिहाससिद्ध अंतरंग सामाजिक दुर्बलताओं का शीघ्रता से निराकरण करें। विशेषकर जातिभेद के कारण उत्पन्न, ऊँच-नीच और विभिन्नताओं को तत्काल दूर किया जाए और पिछड़े

हुए वर्गों तथा अन्य हिंदुओं के बीच पूर्ण साम्य की स्थापना की जाए। साथी समाज के हेतु धार्मिक पर्वों और उत्सवों को सामूहिक, संगठित तथा अनुशासित रूप में मनाया जाए और समाज के जनों का उसमें सहयोग प्राप्त किया जाए।

6.2 इस प्रकार अपने अंतरंग सुधार के साथ-साथ हिंदू समाज का राष्ट्र के प्रति कर्तव्य है कि भारतीय जन के उन भागों के राष्ट्रीकरण का महान् कार्य हाथ में ले, जो विदेशियों द्वारा स्वदेशपराङ्मुख और विदेशाभिमुख बना दिए गए हैं। हिंदू समाज को चाहिए, उन्हें आत्मसात् कर ले। केवल इसी प्रकार सांप्रदायिकता का अंत हो सकता है और राष्ट्र की एकनिष्ठता तथा दृढता निष्पन्न हो सकती है।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 31, 1952

□

28

जम्मू का आंदोलन भारत की एकता के लिए लड़ाई*

जयपुर के प्रेस सम्मेलन में अखिल भारतीय जनसंघ के महामंत्री दीनदयालजी द्वारा दिया गया वक्तव्य।

कश्मीर की 1/3 भूमि को, जो पाकिस्तान के अधिकार में है,[1] वापस लेने की अत्यधिक आवश्यकता है। अन्यायपूर्ण ढंग से अधिकृत भूमि पर पाकिस्तान के क़ब्ज़े को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में स्वीकार करना भविष्य के लिए उदाहरण होगा। शेष कश्मीर के संपूर्ण विलयन का प्रश्न भी अविलंब हल होना चाहिए।

भारत का संविधान, जो जाति और पंथ से ऊपर उठकर सभी नागरिकों को समान अधिकार एवं सुरक्षा की गारंटी देता है; भारत के 4 करोड़ मुसलमानों के प्रतिकूल नहीं कहा जा सकता। जनमत संग्रह का प्रस्ताव होते हुए भी सुदूर भविष्य की उस तिथि तक कश्मीर में गतिरोध नहीं हो सकता। कश्मीर के संबंध में वहाँ की संविधान सभा तथा नेहरू-अब्दुल्ला समझौते[2] के अनुसार कुछ पग भी उठाए जा रहे हैं, किंतु ये कश्मीर

---

* देखें परिशिष्ट VII, पृष्ठ 185।

1. पाकिस्तान द्वारा 22 अक्तूबर, 1947 को जम्मू और कश्मीर पर आक्रमण कर जम्मू और कश्मीर के मीरपुर, मुजफ़्फ़राबाद और पुंछ (पुंछ शहर को छोड़कर) अपने क़ब्ज़े में ले लिया गया। हालाँकि 26 अक्तूबर, 1947 को हरिसिंह द्वारा विलय पत्र पर हस्ताक्षर करने के पश्चात् भी तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने इस ज़मीन को वापस लाने का कभी प्रयत्न नहीं किया।

2. नेहरू-अब्दुल्ला समझौता 24 जुलाई, 1952 को हुआ। इस समझौते के अंतर्गत जम्मू एवं कश्मीर को भारतीय संविधान से अलग संविधान, अलग ध्वज एवं निर्वाचित सदर-ए-रियासत (राज्यपाल) की माँग भारत सरकार द्वारा स्वीकार की गई। यह जम्मू एवं कश्मीर के अलगाववादी तत्वों के समक्ष नेहरू का आत्मसमर्पण था।

और भारत के हितों के अनुकूल पूर्ण एकात्मता की ओर न होकर एक स्वतंत्र सत्ता बनाकर पाकिस्तान का नवीन संस्करण निर्माण कर रहे हैं। भारत की एकता को भंग करने का यह प्रयत्न सन् 1947 के समान ही घातक होगा।

जम्मू प्रजा परिषद् इन विघटनकारी प्रवृत्तियों के विरुद्ध संघर्ष कर रही है। कश्मीर और भारत सरकार ने प्रजा परिषद् के सत्याग्रह को अमानुषिक तरीक़ों से दबाने का ही नहीं अपितु उसके वास्तविक उद्देश्यों के प्रति भ्रम पैदा करने का प्रयत्न किया है। कांग्रेस के हैदराबाद अधिवेशन[3] में भी इस बात का प्रयत्न किया गया है।

जम्मू के सच्चे समाचार भारत में नहीं आने दिए जाते, स्वतंत्र व्यक्ति वहाँ जा नहीं सकते, भारतीय जनसंघ के शिष्टमंडल को कश्मीर जाने की अनुमति नहीं मिली है।

भारत सरकार सच्चाई पर परदा डालना चाहती है। प्रतिदिन के गोलीकांड, लाठीचार्ज, अश्रुगैस तथा जनता के प्रदर्शन एवं हड़तालें इस बात के प्रमाण हैं कि स्थिति क़ाबू के बाहर हो चुकी है। यदि सरकार ने स्थिति की गंभीरता का अनुभव नहीं किया तथा राष्ट्र की माँगों को स्वीकार नहीं किया तो यह ज्वाला भारतव्यापी हो जाएगी, क्योंकि जम्मू की लड़ाई भारत की एकता की लड़ाई है और इसलिए भारत की सभी राष्ट्रवादी शक्तियों की यह अपनी लड़ाई है। भारतीय जनसंघ ने भारत की एकता का पवित्र सिद्धांत अपने सम्मुख रखा है। अतः कानपुर अधिवेशन[4] में इस संघर्ष को भी अपनाने का निश्चय किया गया है।

—पाञ्चजन्य, जनवरी 25, 1953

□

---

3. हैदराबाद में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का 58वाँ (1953) अधिवेशन हुआ। जवाहरलाल नेहरू इस अधिवेशन में पुनः अध्यक्ष निर्वाचित हुए।
4. भारतीय जनसंघ का कानपुर अधिवेशन 29–31 दिसंबर, 1952 को संपन्न हुआ। यह जनसंघ का पहला अधिवेशन था। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी जनसंघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

29

अब्दुल्ला द्वारा जुलाई समझौते का उल्लंघन

अलग निशान और अलग प्रधान का निर्माण कर जम्मू और कश्मीर के नेता अपनी पृथकतावादी मनोवृत्ति का परिचय पहले ही दे चुके हैं। जो अलग विधान इस राज्य के लिए उन्होंने बनाने का प्रस्ताव किया है, वह इस मनोवृत्ति का व्यापक स्पष्टीकरण करता है। सच में तो भारत के लिए जम्मू और कश्मीर भी उसी प्रकार सम्मिलित है, जिस प्रकार अंग्रेज़ों द्वारा भारत छोड़ने के पूर्व स्वतंत्र की हुई शेष 554 रियासतें हैं।[1] एक विधान बन चुका है। वह विधान सब पर लागू है और आशा थी कि जम्मू और कश्मीर पर भी यह विधान लागू होगा। किंतु न मालूम किस घड़ी में हमारे प्रधानमंत्री पंडित नेहरू के मुँह से जनमत संग्रह की बात निकल गई और तब से शेख़ अब्दुल्ला तथा उनके साथी उसका आधार लेकर स्वतंत्र कश्मीर के मंसूबे पूरे कर रहे हैं। कश्मीर में लड़ाई की स्थिति होने के कारण उस रियासत का भारत के साथ अन्य रियासतों के समान पूरी तरह से विलीनीकरण नहीं हो सका और इसीलिए संविधान में अनुच्छेद 370 जोड़कर भारत-कश्मीर के उस समय के संबंधों का दिग्दर्शन कराया गया तथा भावी की दिशा इंगित की गई।

अस्थायी और अंतरिम प्रावधानों के अंतर्गत अनुच्छेद 370 में यह स्पष्ट दिया है कि भारत और कश्मीर के संबंध तीन मामलों तक सीमित रहेंगे।[2] किंतु उसी अनुच्छेद की धारा 3 में यह भी कहा है कि कश्मीर की संविधान सभा के अभिस्ताव पर भारत के प्रधान यह घोषणा कर सकते हैं कि अनुच्छेद 370 पूरी तरह समाप्त हो गया अथवा

---

1. 3 जून, 1947 को ब्रिटिश सर्वोपरिता के समापन के साथ ही 562 रियासतें अपना भविष्य भारत एवं पाकिस्तान में से किसी एक के साथ निश्चित करने के लिए स्वतंत्र थीं। 15 अगस्त, 1947 तक तक़रीबन सभी रियासतों (कुछ रियासतें बाद में भारत में शामिल हुईं) का विलय भारत के साथ हो चुका था। जम्मू एवं कश्मीर का विलय भारत में 26 अक्तूबर, 1947 को संपन्न हुआ।
2. यह तीन मामले रक्षा, विदेश मामले और संचार से संबंधित है।

उसमें कुछ परिवर्तन कर लिया गया। विधान निर्माताओं की यह अपेक्षा थी कि उस समय चाहे कश्मीर को अन्य 'ख' श्रेणी राज्यों के समकक्ष न रखा जाए, किंतु वह दिन अवश्य आएगा जब अनुच्छेद 370 समाप्त हो जाएगा और कश्मीर भी पूर्णतया 'ख' ('B') श्रेणी का राज्य होकर भारत में मिल जाएगा।[3] स्वर्गीय श्रीयुत् गोपालास्वामी आयंगर ने, जिन्होंने अनुच्छेद 370 का प्रस्ताव किया था, संविधान सभा में यह आशा भी व्यक्त की थी, किंतु वह आशा दुराशा ही सिद्ध हुई। शेख़ अब्दुल्ला और उनके साथी, जिन्हें हमने भारतीय समझा था, भारतीय नहीं बन पाए। वे स्वयं को कश्मीरी ही समझते हैं और उससे ऊपर उठने को तैयार नहीं।

धीरे-धीरे जब यह प्रकट होने लगा कि शेख़ अब्दुल्ला कश्मीर को भारत में पूरी तरह नहीं मिलाना चाहते हैं तो भारत में उनके विरुद्ध जनमत ने ज़ोर पकड़ा। यहाँ तक कि रणवीर सिंह पुरा[4] में स्वतंत्र कश्मीर का प्रस्ताव करते हुए जो भाषण शेख़ अब्दुल्ला ने दिया, उसकी निंदा पं. नेहरू ने भी की। उनके मंसूबों के इस प्रकार साफ़ प्रकट होने पर भारत सरकार ने उन्हें बुलाया और यह जानना चाहा कि आख़िर वे कश्मीर का कौन सा अंतिम स्वरूप रखना चाहते हैं। छोटे-छोटे मामलों में चाहे कश्मीर में भिन्न प्रकार का शासन हो, किंतु भारतीय संविधान के कुछ भाग, जैसे नागरिकता, मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, वित्तीय एकीकरण, निर्वाचन, प्रधान के संकटकालीन अधिकार आदि तो सभी जगह पर समान रूप से लागू होने चाहिए। फलत: जुलाई 1952 में नेहरूजी तथा शेख़ अब्दुल्ला के बीच बातचीत हुई, जिसके अनुसार उपर्युक्त सभी विषयों को किसी-न-किसी अंश में कश्मीर पर लागू करने का निर्णय हुआ। इस जुलाई समझौते को उस समय नेहरूजी ने बहुत संतोषजनक बताया था, क्योंकि उन्होंने सोचा था कि इस प्रकार भारत का संविधान पूरी तरह नहीं तो कम-से-कम कुछ अंशों में तो कश्मीर पर अवश्य लागू हो जाएगा। किंतु राजनीतिक दृष्टि से यह समझौता भारी भूल हुई, क्योंकि इसमें कश्मीर की एक स्वतंत्र सत्ता किसी-न-किसी रूप में मान ली गई। अभी तक जो अनिश्चित थी, वह निश्चित हो गई और उसका लाभ शेख़ अब्दुल्ला ने 'अंगुली के बाद पहुँचा पकड़ने' की नीति के अनुसार उठाया है।

अब्दुल्ला की इस नीति को समझने के पूर्व हमें कश्मीर राज्य के लिए वहाँ की

---

3. 26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान अस्तित्व में आया। इस संविधान के अनुसार सभी भारतीय राज्यों को तीन हिस्सों पार्ट A, पार्ट B और पार्ट C में विभाजित किया गया था। पार्ट A में वे राज्य शामिल थे, जहाँ ब्रिटिश भारत में गवर्नर नियुक्त किए गए थे। पार्ट B राज्यों में सभी भूतपूर्व रियासतों या उनके समूहों को शामिल किया गया था। जम्मू एवं कश्मीर को पार्ट B में शामिल किया जाता है। और पार्ट C में दोनों; पूर्व मुख्य आयुक्तों एवं भूतपूर्व रियासतों को शामिल किया गया था। इसके लगावा पार्ट D के रूप में केंद्र शासित राज्यों को भी शामिल किया गया था।
4. रणवीर सिंह पुरा : जम्मू कश्मीर राज्य में जम्मू ज़िले की तहसील है।

संविधान समिति द्वारा प्रस्तुत संविधान के प्रारूप का थोड़ा सा दिग्दर्शन करना पड़ेगा :

1. प्रारूप के अनुसार जम्मू और कश्मीर राज्य भारत की एक स्वायत्त संबद्ध इकाई (Autonomous Federated Unit) होगा और वह सर्वप्रभुता संपन्न राज्य रहेगा। उसकी वैधानिक, प्रशासनिक तथा न्यायिक शक्तियों का स्रोत भारत की जनता या संविधान नहीं है बल्कि कश्मीर की जनता और उसका अपना संविधान है।
2. प्रारूप का भाग 2 नागरिकता से संबंध रखता है, जिसके अनुसार 'स्थायी निवासी' की संज्ञा देकर कश्मीरवासियों को भारत के नागरिकों से भिन्न नागरिकता प्रदान की गई है।
3. भाग 3 मूलभूत अधिकारों से संबंध रखता है, जिसमें भारतीय संविधान के भाग 3 के सभी मूलभूत अधिकार सम्मिलित कर लिए गए हैं। किंतु भूमि सुधारों के लिए मुआवजे आदि से बचत का मार्ग भी निकाल लिया है। कश्मीर में स्थायी संपत्ति ख़रीदने अथवा नौकरियों में स्थान प्राप्त करने का अधिकार केवल कश्मीर के 'स्थायी निवासियों' को ही दिया गया है। मौलिक अधिकारों के साथ भारतीय संविधान से भिन्न और संभवतया किसी भी संविधान की दृष्टि से नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों का समावेश भी किया है, जिसके अनुसार एक सेकुलर प्रजातंत्रीय राज्य का निर्माण करने के लिए प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा कि (क) वह जातीय तथा सांप्रदायिक एकता स्थापित करे, (ख) सभी सार्वजनिक कार्यों में प्रामाणिकता का परिचय दे, (ग) अपने व्यवहार में गौरव, शालीनता और उत्तरदायित्व को प्रकट करे, (घ) किसी भी सार्वजनिक संस्था में सोच-समझकर तथा ईमानदारी से वोट दे, (च) सांप्रदायिक विद्वेष का प्रचार न करे, (छ) चोर बाज़ारी और मुनाफ़ाखोरी या इसी प्रकार के समाज विरोधी काम न करे। उपर्युक्त कर्तव्यों का पालन न करने वालों को मताधिकार से वंचित किया जा सकेगा।
4. भाग 4 जम्मू और कश्मीर राज्य के प्रमुख, जो सदर-ए-रियासत कहलाएगा, के निर्वाचन, कर्तव्य आदि का वर्णन करता है। केवल स्थायी नागरिक ही सदर-ए-रियासत चुने जा सकेंगे। सदर-ए-रियासत को 'ख़ुदा' का नाम लेकर, चाहे वह नास्तिक ही क्यों न हो, शपथ ग्रहण करनी पड़ेगी। सदर-ए-रियासत भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाएगा और उनकी प्रसादावधि तक पदारूढ़ रहेगा किंतु उसकी नियुक्ति कश्मीर की राष्ट्रीय सभा महाभियोग कर उसे हटा भी सकती है। भारत के राष्ट्रपति को तो राष्ट्रीय सभा के निर्णयों पर मुहर लगाने मात्र का अधिकार है। यदि मुहर नहीं लगाई तो क्या

परिणाम होगा, यह भविष्य के लिए छोड़ दिया गया है।

5. कश्मीर का शासन-कार्य एक मंत्री परिषद् के द्वारा होगा, जो सामूहिक रूप से राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी होगी। मंत्री परिषद् प्रधानमंत्री की इच्छा के अनुसार सदर-ए-रियासत द्वारा नियुक्त की जाएगी और उसकी इच्छा के अनुसार ही एक या अधिक मंत्री हटाए भी जा सकते हैं।
6. राष्ट्रीय महासभा कश्मीर की विधान परिषद् होगी, जो कि प्रति 40,000 निवासियों के ऊपर एक सदस्य के आधार पर चुनी जाएगी। केवल जम्मू प्रांत में हरिजनों के लिए 5 वर्ष के लिए 4 स्थान सुरक्षित रहेंगे। कश्मीर के नागरिक भारत के नागरिकों से अधिक समझदार हैं, इसलिए उन्हें 18 वर्ष की उम्र में ही मताधिकार प्राप्त हो जाएगा। मतदाताओं को अपने प्रतिनिधि वापस बुलाने (Recall) का अधिकार दिया है। महासभा का सब कार्य उर्दू में होगा। अध्यक्ष यदि चाहे तो किसी भी सदस्य को अंग्रेज़ी में और यदि वह अंग्रेज़ी भी नहीं बोल सकता तो मातृभाषा में बोलने की अनुमति दे सकता है।
7. भाग 6 न्याय विधान से संबद्ध है। इसके अनुसार कश्मीर राज्य का अंतिम और सर्वोच्च न्यायालय दीवानी, फ़ौजदारी आदि सभी मामलों के लिए एक न्याय मंडल (Judicial Board) होगा। यह न्याय मंडल सदर-ए-रियासत के द्वारा प्रधानमंत्री की सहमति से नियुक्त किया जाएगा। न्याय मंडल के अतिरिक्त एक हाईकोर्ट भी होगा, जिसकी बैठकें जम्मू और श्रीनगर में होंगी। मूलभूत अधिकारों के संबंध में आदेश आदि देने का अधिकार दोनों न्यायालयों को होगा। मौलिक अधिकारों के संबंध में कोई भी नागरिक भारत सुप्रीम कोर्ट में भी आवेदन कर सकता है किंतु सुप्रीम कोर्ट में कश्मीर के और किसी भी विषय पर अपील नहीं की जा सकेगी।
8. भाग 7 प्रधानांकेक्षक की नियुक्ति के संबंध में है। भारत के प्रधानांकेक्षक को कश्मीर में कोई अधिकार नहीं रहेंगे।
9. भाग 8 भारत और कश्मीर के संबंधों की विवेचना करता है। यह संबंध 3 अनुसूचियों में वर्णित है, जिसमें प्रथम अनुसूची में वे विषय सम्मिलित हैं, जिनका संबंध रक्षा, विदेश नीति और यातायात से है। इन विषयों पर विधान बनाने का अधिकार भारतीय संसद् को होगा। इसके साथ ही एक और अनुसूची दी गई है, जिसमें वे विषय सम्मिलित हैं, जो सम्मिलन पत्र के अनुसार तो भारतीय संसद् के अधिकार क्षेत्र में हैं, किंतु जिनमें परिवर्तनों की माँग की गई है। इसमें ध्यान देने योग्य यह है—(क) भारतीय संसद् में कश्मीर के प्रतिनिधि जनता द्वारा चुने हुए नहीं होंगे, वरन् वहाँ की सरकार

की सिफ़ारिश पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होंगे, (ख) कोई भी संधि, जो भारत का विदेश मंत्री दूसरे देशों के साथ करे और जिसमें जम्मू और कश्मीर राज्य का किसी भी प्रकार संबंध आए, वह कश्मीर की सरकार की सहमति के बिना नहीं हो सकेगी और भारतीय संसद् को उस संधि को व्यावहारिक रूप देने के संबंध में कोई भी क़ानून बनाने का अधिकार न होगा, (ग) भारतीय संसद् के अध्यक्ष कश्मीर के किसी भी संसदीय सदस्य को उसकी मातृभाषा में भाषण करने की अनुमति नहीं दे सकेंगे। वह भाषण वहाँ की राजकीय भाषा अर्थात् उर्दू में ही हो सकता है, (घ) भारत के सुप्रीम कोर्ट को विभिन्न राज्यों एवं राज्य और संघ सरकार के बीच उत्पन्न सभी विवादों के लिए मूल न्यायिक अधिकार प्राप्त हैं किंतु वह न तो कश्मीर के संविधान के संबंध में और न उन विषयों के संबंध में, जिनके लिए भारतीय संसद् को कश्मीर के लिए क़ानून बनाने का अधिकार नहीं, अपने अधिकारों का उपयोग कर सकेगा, (च) यदि किसी विषय पर भारत और कश्मीर दोनों ने नियम बनाए हैं और वे परस्पर विरोधी हैं तो जहाँ अन्य राज्यों में राज्य के नियम के ऊपर संघीय नियम को मान्यता होती है, वहाँ कश्मीर में राज्य के अपने नियम को ही मान्यता रहेगी, (छ) भारत को यद्यपि यातायात में सभी अधिकार प्राप्त हैं किंतु भारत का राष्ट्रपति किसी भी मार्ग को कश्मीर सरकार की सम्मति के बिना राष्ट्रीय या सैनिक महत्त्व का घोषित नहीं कर सकता, (ज) कश्मीर राज्य चाहे तो राज्य की पुरानी सेनाओं को रख तथा बढ़ा सकता है। यदि उनका भारतीय सेनाओं के साथ किसी भी प्रकार से एकीकरण किया जाए तो वह कश्मीर सरकार की सम्मति से ही हो सकेगा। कोई भी सेना का अंग, जो भारतीय सेना के साथ अभी तक संबद्ध नहीं हुआ है, भारतीय सेना का अंग नहीं समझा जाएगा और उन पर राज्य का ही अधिकार रहेगा, (झ) भारत यदि नागरिकता के संबंध में कोई क़ानून बनाता है तो वह कश्मीर की विधानसभा की सहमति के बिना उस राज्य पर लागू नहीं हो सकेगा। इसी प्रकार वे सब लोग, जो जम्मू और कश्मीर राज्य से सन् 1947 के झगड़ों के कारण पाकिस्तान (भारत नहीं) चले गए हैं, वे सब वापस आने पर नागरिक माने जाएँगे, (त) भारत यदि राज्य कर्मचारियों के लिए कोई संयुक्त जनसेवा आयोग बनाना चाहे तो उसे कश्मीर सरकार की पूर्व सम्मति प्राप्त करना आवश्यक होगा तथा (थ) भारत के राष्ट्रपति को जम्मू और कश्मीर राज्य में आंतरिक दुर्व्यवस्था होने पर तब तक संकटकालीन स्थिति की घोषणा करने का अधिकार प्राप्त नहीं, जब तक वहाँ की सरकार प्रार्थना न करे। युद्धजन्य

संकटकालीन स्थिति की घोषणा करने पर भी संघ सरकार जम्मू और कश्मीर राज्य को वही निर्देश दे सकती है, जो राज्य के प्रशासनिक मामलों में किसी प्रकार का दखल न दे। इसी प्रकार भारतीय संसद् ऐसे समय में भी बिना कश्मीर की विधानसभा अथवा वहाँ की सरकार की सहमति के कोई क़ानून नहीं बना सकती।

कश्मीर सरकार ने अपने व्यापारी प्रतिनिधि देश-विदेशों में रखने और किसी भी प्रकार के अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में, जिनमें व्यापार आदि की बातें हों, भाग लेने का अधिकार सुरक्षित रखा है।

भारत की सुरक्षा के लिए तैयारी करने संबंधी नियम बनाने का अधिकार यद्यपि संघीय अनुसूची की प्रथम सूची के अनुसार भारत को स्वत: प्राप्त है, किंतु कश्मीर में उसके लिए कश्मीरी विधानसभा की स्वीकृति आवश्यक है। संघीय सूची में से विषय क्रमांक 7 (संसद् द्वारा सुरक्षा अथवा युद्ध के लिए आवश्यक घोषित उद्योग), क्रमांक 8 (केंद्रीय सूचना तथा चर विभाग), क्रमांक 9 (सुरक्षा, वैदेशिक मामले और भारत की सुस्थिति से संबंधित निवारक निरोध अधिनियम) को कश्मीर राज्य ने भारतीय संसद् के अधिकार क्षेत्र से निकाल लिया है।

रेल पथ यद्यपि संघीय विषय है किंतु यदि कश्मीर सरकार राज्य में कोई रेल बनाए या किसी कंपनी से बनवाए तो वह केंद्रीय अधिकार क्षेत्र से बाहर होगी।

मुद्रा, बैंकिंग तथा पोस्ट ऑफिस आदि में केंद्र को कोई अधिकार नहीं रहेगा। जनगणना के लिए कश्मीर राज्य भारत की जनगणना से संबंध नहीं रखेगा और न उसका किसी प्रकार सर्वेक्षण विभाग से कोई संबंध रहेगा। चुनाव आयोग का अधिकार-क्षेत्र केवल राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन तक ही रहेगा।

10. भारत का कश्मीर के साथ किसी भी प्रकार वित्तीय एकीकरण नहीं होगा। वहाँ भारत कोई कर नहीं लगा सकता।

11. भाग 9 के अनुसार प्रधानमंत्री की सलाह से सदर-ए-रियासत एक जनसेवा आयोग नियुक्त करेगा। चुनाव कमीशन सदर-ए-रियासत द्वारा प्रधानमंत्री की सलाह से नियुक्त होगा। भाग 11 उर्दू को राजभाषा स्वीकार करता है। प्रारंभिक शिक्षा के लिए कोई भी जिला कौंसिल किसी भी अनुसूचित भाषा को स्वीकार कर सकती है। भाग 12 में विविध प्रावधान दिए हैं, जिनमें संकटकालीन स्थिति की अवस्था में प्रधानमंत्री की सलाह से सदर-ए-

रियासत घोषणा कर सकता है कि किसी भी न्यायालय को मौलिक अधिकारों के संबंध में विचार करने का अधिकार नहीं रहेगा।

12. राज्य का झंडा तीन सफ़ेद खड़े पहियों और हल के साथ लाल रंग का रहेगा।

13. भाग 13 के अनुसार कश्मीर एक संघ राज्य माना गया है, जिसके 5 अंग होंगे—(क) कश्मीर : अनंतनाग, श्रीनगर, बारामूला ज़िलों सहित, (ख) पुंछ : मीरपुर, पुंछ, रजौरी और मुज़फ़्फ़राबाद ज़िलों सहित, (ग) जम्मू : जम्मू, कठुआ, ऊधमपुर और डोडा ज़िलों सहित, (घ) लद्दाख : लेह, कारगिल और अस्कारदू सहित, (च) गिलगित : गिलगित तहसील और दुंजी सहित। कश्मीर, पुंछ और जम्मू प्रांत का शासन एक चीफ़ कमिश्नर के अधीन होगा, जिसकी नियुक्ति प्रधानमंत्री की सलाह से सदर-ए-रियासत करेंगे। चीफ़ कमिश्नर प्रांत के प्रशासन का प्रमुख रहेगा और वह राज्य सरकार के प्रति उत्तरदायी होगा। प्रत्येक चीफ़ कमिश्नर के अधीन मंत्री परिषद् होगी, जो प्रांतीय अनुसूची में वर्णित विषयों के संबंध में उसे सलाह देगी। मंत्री परिषद् प्रांतीय विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होगी। विधानसभा का निर्वाचन प्रति 60,000 निवासियों पर एक सदस्य के हिसाब से होगा। मतदाताओं को अपने प्रतिनिधि वापस बुलाने का अधिकार होगा। प्रांतीय विधानसभा को प्रांत का बजट स्वीकार करने का भी अधिकार है, जो बाद में राज्य के बजट के साथ सम्मिलित कर लिया जाएगा। लद्दाख और गिलगित के प्रदेशों के लिए एक रीजनल कमिश्नर नियुक्त होगा। उसको सलाह देने के प्रति 10,000 निवासियों पर एक सदस्य के हिसाब से एक प्रादेशिक समिति निर्वाचित होगी। यह समिति सलाहकार समिति के रूप में काम करेगी। कश्मीर, पुंछ और जम्मू प्रांत के प्रत्येक ज़िले की एक ज़िला समिति होगी, जिसका निर्वाचन 20,000 निवासियों पर एक सदस्य के हिसाब से होगा। ज़िला समिति डिप्टी कमिश्नर की सलाहकार समिति के रूप में काम करेगी तथा जो प्रस्ताव वह चाहे, पास करके राज्य या प्रांतीय सरकार के पास सिफ़ारिश के रूप में भेज सकती है। राज्य विधानसभा नया ज़िला या प्रांत बना सकती है, उन्हें घटा-बढ़ा सकती है। उनकी सीमाएँ बदल सकती है। गिलगित और मीरपुर, मुजफ़्फ़राबाद कश्मीर में मिलने तक राज्य संघ की केवल तीन ही इकाइयाँ होंगी—कश्मीर और जम्मू प्रांत तथा लद्दाख का ज़िला। तब तक सभी ज़िला कौंसिल में 1/3 सदस्य सरकार द्वारा नामज़द रहेंगे। प्रत्येक ज़िला कौंसिल अपनी कार्यपालिका निर्वाचित करेगी, जो सलाहकार समिति के रूप में काम करेगी। कोई भी ज़िला

एक प्रस्ताव द्वारा तीन वर्ष के बाद निर्णय कर सकता है कि वह एक प्रांत से दूसरे प्रांत में जाएगा अथवा सीधा राज्य सरकार से प्रशासित होगा। राज्य सरकार भी एक आयोग की रिपोर्ट के बाद किसी भी ज़िले या प्रांत की सीमाएँ बदल सकती हैं।

14. भाग 16 के अनुसार संविधान में संशोधन राष्ट्रीय महासभा के 2/3 बहुमत से किया जा सकता है, किंतु प्रांतीय विधानसभाओं के अधिकार और कार्यों से संबंधित संशोधन उन विधानसभाओं के 2/3 सदस्यों द्वारा पारित होने पर ही स्वीकृत होंगे।

यह विधान भारतीय संविधान से पृथक् होने के कारण भारत की मौलिक एकता के लिए घातक तो है ही, किंतु स्वयं भी अनेक दृष्टियों से आपत्तिजनक है। भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों को कश्मीर पर लागू करने के बजाय कश्मीर के संविधान में ही मौलिक अधिकारों का भाग जोड़ना प्रकट करता है कि कश्मीर-राज्य भारत का अविभाज्य अंग नहीं बल्कि एक नए पाकिस्तान के रूप में बना हुआ है। अंतर यही है कि उसकी रक्षा की ज़िम्मेदारी हमारी है और शेख़ अब्दुल्ला लियाक़त अली के समान भारत को घूँसा न दिखाकर मुहम्मद अली के समान नेहरूजी को बड़ा भाई कह देते हैं। चाहिए तो यह था कि भारतीय संविधान के वे सभी भाग, जिनके संबंध में जुलाई 1952 में विचार हो चुका है, जम्मू और कश्मीर राज्य पर लागू कर दिए जाते और उस राज्य के लिए यदि कोई विशेष प्रबंध करने की आवश्यकता है तो भारतीय संसद् में तत्संबंधी संवैधानिक संशोधन पारित कर दिया जाता किंतु शेख़ साहब ने तो जुलाई समझौते को भी ठुकरा दिया है। हाँ, इस प्रारूप से जम्मू प्रजा परिषद[5] की माँगों को स्वीकार करने का दिखावा अवश्य किया गया है। क्योंकि (क) जम्मू को प्रांतीय स्वायत्त सत्ता दी गई है, यद्यपि उस सत्ता का अधिकार क्षेत्र भारत की किसी नगरपालिका से भी गया बीता है। (ख) डोडा ज़िले को जम्मू से अलग नहीं किया गया, यद्यपि भविष्य में उसको अलग करने के बीज ज़रूर बो दिए गए हैं। हम समझते हैं कि 40 लाख लोगों के एक छोटे से राज्य का संघीय विधान बनाना और फिर उसका भारत संघ के साथ केवल 3 मामलों में संबंध करना एक ऐसा प्रयोग है, जो दुनिया के अन्य किसी भाग में देखने को नहीं मिलता। भारत की आत्मा तो एकता चाहती है और इसीलिए अंग्रेज़ों की तमाम कोशिशों के बाद भी हमने सन् 1935 के संविधान के फेडरेशन वाले भाग को स्वीकार नहीं किया

5. जम्मू प्रजा परिषद् : पंडित प्रेम नाथ डोगरा और बलराज मधोक द्वारा 1947 में स्थापित राजनीतिक संगठन। इसने जम्मू-कश्मीर राज्य को भारतीय संविधान में विशेष दर्जा (अनुच्छेद 370) देने के विरुद्ध आंदोलन किया था। इसी पार्टी ने नारा दिया था 'एक देश में दो विधान, दो प्रधान, दो निशान नहीं चलेंगे, नहीं चलेंगे'। 1970 में प्रजा परिषद् का भारतीय जनसंघ में विलय हो गया।

तथा स्वतंत्र होने के बाद भी जो विधान बनाया, उसके ऊपर यद्यपि फेडरेशन की कुछ छाप रही, परंतु हमने तो भी उसे एकत्व का जामा पहनाने का प्रयत्न किया और भारत को एक (Federation of States) के स्थान पर (Union of States) बनाया। हमारे संविधान के अनुसार हमारी संपूर्ण जनता की शक्ति हमारी केंद्र सरकार में निहित है। प्रांतों को वही शक्ति प्राप्त है, जो केंद्र देता है और अवशेष प्रभुता केंद्र को प्राप्त है, किंतु कश्मीर में चक्र उलटा चला जा रहा है। क्या इसके बाद भी हम यह समझें कि शेख़ अब्दुल्ला ने राष्ट्रवादी मनोवृत्ति का परिचय दिया है। सच तो यह है कि लौहपुरुष सरदार पटेल के निधन, नेहरूजी की तुष्टीकरण की नीति और संयुक्त राष्ट्र संघ में कश्मीर के प्रश्न की उपस्थिति से उत्पन्न परिस्थिति का अनुचित लाभ उठा कर, जो कभी भी राष्ट्र भक्तिपूर्ण नहीं हो सकता, शेख़ अब्दुल्ला एक तीसरे राष्ट्र का निर्माण कर रहे हैं। सत्य प्रकट हो गया है, अब यह भारत की जनता को निर्णय करना है कि वह उस सत्य का मुक़ाबला करती है अथवा आँखें बंद कर सत्य को देखने से इनकार करती है।

—पाञ्चजन्य, मई 11, 1953

□

30

जम्मू चलें!*

श्रीनगर में डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के साथ शेख़ मोहम्मद अब्दुल्ला की बैठक के बारे में कुछ अख़बारों में एक समाचार के प्रकाशन से लोगों में नैसर्गिक जिज्ञासा पैदा हो गई और जनसंघ कार्यालय एवं कुछ अन्य जगहों से भी बार-बार पूछताछ की जाने लगी कि क्या सुलह-समझौते के कुछ प्रयास चल रहे हैं। हालाँकि प्रजा परिषद् और उसके लक्ष्य के समर्थक संगठन हमेशा बातचीत के लिए तैयार रहे हैं, वर्तमान सत्याग्रह तो तब शुरू किया गया था, जब नेहरू और अब्दुल्ला ने बात करने तक से मना कर दिया था। मैं स्पष्ट शब्दों में कहना चाहूँगा कि ऐसी कोई बात अब तक नहीं हुई है। हम अपनी ओर से वर्तमान गतिरोध के शांतिपूर्ण और सम्मानजनक समाधान के लिए सभी रास्ते तलाशने की कोशिश कर रहे हैं और भविष्य में भी करते रहेंगे। वास्तव में हमारे नेता डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए जम्मू-कश्मीर राज्य में प्रवेश किया है। लेकिन सरकार अब भी जनमत की इस तरह की लोकतांत्रिक अभिव्यक्तियों पर ध्यान देने के मूड में नहीं है, बल्कि इसके विपरीत उसने आतंक का राज शुरू कर दिया है। नेहरू-अब्दुल्ला षड्यंत्र के परिणामस्वरूप डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी को भारत के उच्चतम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के बाहर, श्रीनगर में हिरासत में लिया गया, वहीं यहाँ दिल्ली में कई प्रमुख व्यक्तियों को बिना किसी कारण के गिरफ़्तार कर लिया गया है। यहाँ तक कि जिन लोगों को हाल ही में उच्चतम न्यायालय द्वारा रिहा कर दिया गया था, उन्हें भी सलाखों के पीछे डाल दिया गया है। उन विधि सलाहकारों को भी हिरासत में ले लिया गया है, जिन्होंने सत्याग्रहियों के मामले हाथ में लिए हैं। इस सबसे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि सरकार हमें विधि के न्यायालयों में न्याय से वंचित करना चाहती है।

---

* देखें परिशिष्ट VII, पृष्ठ 189।

वास्तव में सरकार ने देश के उच्चतम न्यायालय सहित, क़ानून और क़ानून की अदालतों के प्रति नाममात्र ही सम्मान प्रदर्शित किया है। यद्यपि कोई सत्याग्रही जब एक क़ानून तोड़ता है, तो भी वह इसके प्रति कोई अनादर व्यक्त नहीं करता, क्योंकि वह क़ानून के निर्देशक पक्ष का उल्लंघन करते हुए स्वयं को स्वेच्छा से दंडात्मक पक्ष द्वारा निर्धारित सजा के लिए प्रस्तुत करता है। लेकिन दंड क़ानून के अनुसार ही लागू किया जाना चाहिए। सच तो यह है कि न्याय के प्रति हमारे सम्मान की यह आवश्यकता है कि हम अवैध कृत्यों के आगे न झुकें, चाहे वे किसी भी रूप में हों।

जो सरकार कल तक लगातार प्रचार कर रही थी कि सत्याग्रह को दिल्ली में कोई जनसमर्थन प्राप्त नहीं था, वह सत्याग्रहियों को जनता की नज़रों से दूर करने के लिए मजबूर हो गई है। अब उन्हें उनके निवास स्थानों से, रेलवे स्टेशनों से रात के अँधेरे में गिरफ़्तार किया गया है। उनके द्वारा धारा 144 का उल्लंघन किए बिना ही भारतीय दंड संहिता की धारा 188 के तहत उनका चालान किया जा रहा है। हम इस तरह के सभी हथकंडों का विरोध करेंगे। सरकार उत्पीड़न करके और मध्यस्थता के बारे में खबरों का एक योजनाबद्ध प्रचार करके लोगों का उत्साह कम करना चाहती है। जो लोग देश में न्याय और लोकतांत्रिक स्वतंत्रता स्थापित करना चाहते हैं, मैं उन सभी से अपील करूँगा कि वे सरकार के हथकंडों के शिकार न हों, बल्कि हमारे सम्मानित नेता डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की इच्छा के अनुसार नए उत्साह के साथ जम्मू के लिए आगे बढ़ें।

—ऑर्गनाइज़र, मई 25, 1953

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

31

दमन का प्रबल विरोध किया जाए*

दिल्ली में दीनदयालजी का वक्तव्य।

दमन के विरोध में अनशन करने वाले 74 वर्षीय वयोवृद्ध नेता पं. प्रेमनाथ डोगरा तथा उनके साथियों के साथ किए गए दुर्व्यवहार से स्पष्ट है कि शेख़ अब्दुल्ला ने अपना दमनचक्र पूर्ण वेग से जारी रखा है। और आज तक भी वे दमन की निरर्थकता को नहीं जान सके हैं। अब्दुल्ला सरकार द्वारा अत्याचार किए जा रहे हैं। सरकार के इस निंदनीय कृत्य की भर्त्सना हर एक देशभक्त व्यक्ति करेगा।

देश में सभी नागरिकों से मेरा अनुरोध है कि वे अब्दुल्ला सरकार के इस दुष्कृत्य को परास्त करने के लिए अपनी आवाज़ उठाएँ।

—पाञ्चजन्य, जून 8, 1953

□

---

* देखें परिशिष्ट VII, पृष्ठ 189।

32

राजनीतिक सौदेबाज़ी में हमारा विश्वास नहीं*

लखनऊ की एक विशाल सार्वजनिक सभा में भाषण।

हम आज न केवल अपनी संस्था बल्कि संपूर्ण देश के जीवन की महत्त्वपूर्ण कालावधि में मिल रहे हैं। अभी हाल में ही हम उस संघर्ष में से निकले हैं, जो आज के अपने शासकों को जनता की आवाज़ सुनाने के लिए और जनमन में भारत की एकता तथा अखंडता के लिए उत्पन्न आसन्न संकट की चेतना जगाने के लिए चलाया गया था, और हम बिना किसी संकोच के यह कह सकते हैं कि इस दिशा में हमें काफ़ी सफलता मिली है। इसमें संदेह नहीं कि इस उद्‌देश्य की पूर्ति हेतु हमें महान् बलिदान करना पड़ा। हज़ारों लोगों को कारा की कोठरियों में कष्ट सहना पड़ा और इसके अतिरिक्त पुलिस तथा नौकरशाही के हाथों लोगों की जो सब प्रकार की दुर्गति हुई, उसकी तो कोई गिनती ही नहीं है। परंतु सामान्यतया संपूर्ण देश को, और विशेषकर हमारी संस्था को जो सर्वोच्च बलिदान करना पड़ा, वह है डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की आहुति। भारतीय जनसंघ को उनके महान् व्यक्तित्व की कुछ कम देन नहीं थी, परंतु दूसरी ओर यह भी सच है कि उन्होंने ऐसी संस्था नहीं बनाई, जो अपने अस्तित्व के लिए पूर्ण रूप से उन्हीं पर निर्भर करे। आज देश में लाखों ऐसे कार्यकर्ता हैं, जिनमें उनके जैसी ही आदर्शवादिता भरी है और मुझे विश्वास है कि वे उनके अधूरे कार्य को पूरा करके ही रहेंगे।

चूँकि बहुत से लोग हमारे समक्ष उपस्थित आदर्शवाद और उस पर हमारी अटल श्रद्धा से उत्पन्न होने वाली आंतरिक शक्ति को समझने में असमर्थ हैं, इसलिए हमारी संस्था के अध्यक्ष की गद्‌दी के भरने के संबंध में मनमानी अटकलबाजियाँ लगाने में व्यस्त

---

* देखें परिशिष्ट VII, पृष्ठ 189।

हैं। हवा में अनेक नाम उछाले हैं। उनमें से अधिकांश तो भारतीय जनसंघ के सदस्य भी नहीं हैं। यद्यपि बड़े या छोटे किसी भी व्यक्ति के लिए हमारे दरवाज़े बंद नहीं हैं, परंतु इससे किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि हम किसी नेता की तलाश में दुनिया भर में चक्कर लगाते फिरेंगे और फिर जहाँ कहीं उनके दर्शन हो जाएँगे, वहाँ तुरंत उसके गले में जयमाला डाल देंगे। हमारे लिए कोई अलग व्यक्ति न होकर संगठन शरीर का अभिन्न अंग होता है। हम यह नहीं समझते कि नेताओं की कोई अलग जाति होती है और इसलिए हम उन लोगों से सहमत नहीं हैं, जो ऐसा समझते हैं कि चूँकि हिंदू महासभा के पास नेता है और जनसंघ के पास सबल संगठन, इसलिए दोनों को एक हो जाना चाहिए।

—पाञ्चजन्य, जुलाई 17, 1953

□

33

अखंड भारत : साध्य और साधन

यह आलेख 'राष्ट्रजीवन की समस्याएँ' तथा 'राष्ट्र चिंतन' नामक संपादित पुस्तकों में भी संकलित है।

भारतीय जनसंघ ने अपने सम्मुख अखंड भारत का ध्येय रखा है। अखंड भारत देश की भौगोलिक एकता का ही परिचायक नहीं अपितु जीवन के भारतीय दृष्टिकोण का द्योतक है, जो अनेकता में एकता के दर्शन करता है। अत: हमारे लिए अखंड भारत कोई राजनीतिक नारा नहीं, जो परिस्थिति विशेष में जनप्रिय होने के कारण हमने स्वीकार किया हो, बल्कि यह तो हमारे संपूर्ण दर्शन का मूलाधार है। 15 अगस्त, 1947 को भारत की एकता के खंडित होने तथा जन-धन की अपार हानि होने के कारण लोगों को अखंडता के अभाव का प्रकट परिणाम देखना पड़ा और इसलिए आज भारत को पुन: एक करने की भूख प्रबल हो गई है, किंतु यदि हम अपनी युग-युगों से चली आई जीवन-धारा के अंत:प्रवाह को देखने का प्रयत्न करें तो हमें पता चलेगा कि हमारी राष्ट्रीय चेतना सदैव ही अखंडता के लिए प्रयत्नशील रही है तथा इस प्रयत्न में हम बहुत कुछ सफल भी हुए हैं।

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रैश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥

इस प्रकार जब हमारे पुराणकारों ने भारतवर्ष की व्याख्या की तो वह केवल भूमिपरक ही नहीं अपितु जनपरक और संस्कृतिपरक भी थी। हमने भूमि, जल और संस्कृति को कभी एक-दूसरे से भिन्न नहीं किया अपितु उनकी एकात्मता की अनुभूति के द्वारा राष्ट्र का साक्षात्कार किया। अखंड भारत इस राष्ट्रीय एकता का ही पर्याय है। एक देश, एक

राष्ट्र और एक संस्कृति की जो आधारभूत मान्यताएँ जनसंघ ने स्वीकार की हैं, उन सबका समावेश अखंड भारत शब्द के अंतर्गत हो जाता है। अटक से कटक, कच्छ से कामरूप तथा कश्मीर से कन्याकुमारी तक संपूर्ण भूमि के कण-कण को पुण्य और पवित्र ही नहीं अपितु आत्मीय मानने की भावना अखंड भारत के अंदर अभिप्रेत है। इस पुण्यभूमि पर अनादि काल से जो प्रथा उत्पन्न हुई तथा आज जो है, उनमें स्थान और काल के क्रम से ऊपरी चाहे जितनी भिन्नताएँ रही हों, किंतु उनके संपूर्ण जीवन में मूलभूत एकता का दर्शन प्रत्येक अखंड भारत का पुजारी करता है। अत: सभी राष्ट्रवासियों के संबंध में उसके मन में आत्मीयता एवं उससे उत्पन्न पारस्परिक श्रद्धा और विश्वास का भाव रहता है। वह उनके सुख-दु:ख में सहानुभूति रखता है। इस अखंड भारत माता की कोख से उत्पन्न सपूतों ने अपने क्रिया-कलापों से विविध केंद्रों में जो निर्माण किया, उसमें भी एकता का सूत्र रहता है। हमारी धर्मनीति, अर्थनीति और राजनीति, हमारे साहित्य, कला और दर्शन, हमारे इतिहास पुराण और आशय, हमारी स्मृतियाँ और विधान सभी में देवपूजा के विभिन्न प्रावधानों के अनुसार बाह्य भिन्नताएँ होते हुए भी भक्ति की भावना एक है। हमारी संस्कृति की एकता का दर्शन अखंड भारत के पुरस्कर्ता के लिए आवश्यक है।

संपूर्ण जीवन की एकता की अनुभूति तथा उस अनुभूति के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने के रचनात्मक प्रयत्न का ही नाम इतिहास है। ग़ुलामी हमारी एकत्वानुभूति में सबसे बड़ी बाधा थी। फलत: हम उसके विरुद्ध लड़े। स्वराज्य प्राप्ति उस अनुभूति में सहायक होनी चाहिए थी। वह नहीं हुआ, इसीलिए हम खिन्न हैं। आज हमारे जीवन में विरोधी-भावनाओं का संघर्ष हो रहा है। हमारे राष्ट्र की प्रकृति है 'अखंड भारत'। खंडित भारत विकृति है। आज हम विकृत आनंदानुभूति का धोखा खाना चाहते हैं। किंतु आनंद मिलता नहीं। यदि हम सत्य को स्वीकार करें तो हमारा अंत:संघर्ष दूर होकर हमारे प्रयत्नों में एकता और बल आ सकेगा।

कई लोगों के मन में शंका होती है कि अखंड भारत सिद्ध भी होगा या नहीं। उनकी शंका पराभूत मनोवृत्ति का परिणाम है। पिछली अर्धशताब्दी के इतिहास तथा हमारे प्रयत्नों की असफलता से वे इतने दब गए हैं कि अब उनमें उठने की हिम्मत ही नहीं रह गई। उन्होंने सन् 1947 में एकता संबंधी अपने प्रयत्नों की पराजय तथा पृथकतावादी नीति की विजय देखी। उनकी हिम्मत टूट गई और अब वे उस पराजय को ही स्थायी बनाना चाहते हैं। किंतु यह संभव नहीं। वे राष्ट्र की प्रकृति के प्रतिकूल नहीं चल सकते। प्रतिकूल चलने का परिणाम आत्मघात होगा। गत 6 वर्षों की कष्ट परंपरा का यही कारण है।

सन् 1947 की पराजय भारतीय एकतानुभूति की पराजय नहीं अपितु उन प्रयत्नों की पराजय है, जो राष्ट्रीय एकता के नाम पर किए गए। हम असफ़ल इसलिए नहीं हुए

कि हमारा ध्येय ग़लत था बल्कि इसलिए कि मार्ग ग़लत चुना। सदोष साधन के कारण ध्येय सिद्धि न होने पर ध्येय न तो त्याज्य ठहराया जा सकता है और न अव्यावहारिक ही। आज भी अखंड भारत की व्यावहारिकता में उन्हीं को शंका उठती है, जिन्होंने उन दोषयुक्त साधनों को अपनाया तथा जो आज भी उनको छोड़ना नहीं चाहते।

अखंड भारत के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा मुसलिम संप्रदाय की पृथकतावादी एवं अराष्ट्रीय मनोवृत्ति रही है। पाकिस्तान की सृष्टि उस मनोवृत्ति की विजय है। अखंड भारत के संबंध में शंकाशील यह मानकर चलते हैं कि मुसलमान अपनी नीति में परिवर्तन नहीं करेगा। यदि उनकी धारणा सत्य है तो फिर भारत में 4 करोड़ मुसलमानों को बनाए रखना राष्ट्र हित के लिए बड़ा संकट होगा। क्या कोई कांग्रेसी यह कहेगा कि मुसलमानों को भारत से खदेड़ दिया जाए? यदि नहीं तो उन्हें भारतीय जीवन के साथ समरस करना होगा। यदि भौगोलिक दृष्टि से खंडित भारत में यह अनुभूति संभव है तो शेष भू-भाग को मिलते देर नहीं लगेगी। एकता की अनुभूति के अभाव में यदि देश खंडित हुआ है तो उसके भाव से वह अब अखंड होगा। हम उसी के लिए प्रयत्न करें। किंतु मुसलमानों को भारतीय बनाने के लिए हमें अपनी 30 साल पुरानी नीति बदलनी पड़ेगी। कांग्रेस ने हिंदू मुसलिम ऐक्य के प्रयत्न ग़लत आधार पर किए। उसने राष्ट्र की और संस्कृति की सही एवं अनादि से चली आने वाली एकता का साक्षात्कार नहीं किया तथा अनेकता को कृत्रिम एवं राजनीतिक सौदेबाज़ी के आधार पर एक करने का प्रयत्न किया। भाषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि सभी की कृत्रिम ढंग से रचना की। ये यत्न कभी सफल नहीं हो सकते थे। राष्ट्रीयता और अराष्ट्रीयता का समन्वय संभव नहीं।

यदि हम एकता चाहते हैं तो भारतीय राष्ट्रीयता, जो हिंदू राष्ट्रीयता है तथा भारतीय संस्कृति, जो हिंदू संस्कृति है, उसका दर्शन करें। उसे मानदंड बनाकर चलें। भागीरथी की पुण्यधाराओं में सभी प्रवाहों का संगम होने दें। यमुना भी मिलेगी और अपनी सभी कालिमा खोलकर गंगा की धवल धारा में एकरूप हो जाएगी। किंतु इसके लिए भी भागीरथ के प्रयत्नों की निष्ठा 'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति' की मान्यता लेकर हमने संस्कृति और राष्ट्र की एकता का अनुभव किया है। हज़ारों वर्षों की असफलता अधिक है। अतः हमें हिम्मत हारने की ज़रूरत नहीं। यदि पिछले सिपाही थके हैं तो नए आगे आएँगे। पिछलों को अपनी थकान को हिम्मत से मान लेना चाहिए, अपने कर्मों की कमज़ोरी स्वीकार कर लेनी चाहिए। लड़ाई जीतेंगे ही नहीं, यह कहना ठीक नहीं। यह हमारी आन और शान के ख़िलाफ़ है, राष्ट्र की प्रकृति और परंपरा के प्रतिकूल है।

—पाञ्चजन्य, अगस्त 24, 1953

□

34

'सबको काम' ही भारतीय अर्थनीति का एकमेव मूलाधार

जनसंघ के महामंत्री के नाते दीनदयालजी का आर्थिक विषय पर यह प्रथम आलेख है।

बेकारी की समस्या यद्यपि आज अपनी भीषणता के कारण अभिशाप बनकर हमारे सम्मुख खड़ी है किंतु उसका मूल हमारी आज की समाज, अर्थ और नीति व्यवस्था में छिपा हुआ है। वास्तव में जो पैदा हुआ है तथा जिसे प्रकृति ने अशक्त नहीं कर दिया है, काम पाने का अधिकारी है। हमारे उपनिषदकार ने जब गह घोषणा की कि 'काम करते' हुए हम 100 वर्ष जीवें (कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत् समाः।) तो वे यही धारणा लेकर चले कि प्रत्येक को काम मिलेगा। इसीलिए शास्त्रकारों ने प्रत्येक के लिए कर्म की व्यवस्था की। यहाँ तक कि इस आशंका से कि कोई कर्महीन रहकर केवल भोग की ही ओर प्रवृत्त न हो जाए, उन्होंने यह धारणा प्रचलित की कि यह भारतभूमि 'कर्मभूमि' है। स्वर्ग के देवता भी अपने कर्म फल क्षय हो जाने पर यही इच्छा करते हैं कि वे भारत में जन्म लें एवं पुनः सुकृत संचय करें। तात्पर्य यह कि हमने किसी भी व्यक्ति के संबंध में बेकारी अथवा कर्मविहीनता की कल्पना नहीं की। अतः भारतीय अर्थनीति का आधार 'सबको काम' ही हो सकता है। बेकारी अभारतीय है। भारतीय शासन का कर्तव्य है कि वह इस आधार को लेकर चले।

बेकारी के कारण

लोगों को काम न मिलने के दो ही कारण हैं—प्रथम, काम के लिए जिस प्रकार के

व्यक्तियों की आवश्यकता हो, वैसी योग्यता उनमें न हो। दूसरे, काम करने वालों का इतना बाहुल्य हो कि उद्योग-धंधे, व्यापार एवं सार्वजनिक सेवाओं का वर्तमान स्तर उन्हें खपा न पाएँ। बेकारी के अन्य कारण भी हैं किंतु वे तात्कालिक एवं अस्थायी हैं। भारत में आज दोनों ही कारण उपस्थित हैं। अत: बेकारी के प्रश्न को हल करने के लिए हमें इनके संबंध में गंभीरता से विचार करना होगा। शिक्षा की पद्धति और उद्योग-धंधों के विकास के संबंध में अपनी नीति निश्चित करनी होगी। इस नीति के साथ बेकारी को दूर करने का प्रश्न ही नहीं वरन् देश की समृद्धि का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है।

अर्थ नीति का आधार

भारत की जनसंख्या, उसके 7 लाख गाँव, उसका विस्तार, भारतीय जन की प्रकृति, हमारी समाज व्यवस्था तथा युगों से चली आई हमारी अर्थनीति की परंपरा आदि का विचार कर आज सभी अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि भारतीय समृद्धि का आधार हमारे कुटीर एवं ग्रामोद्योग ही हो सकते हैं। हाँ, यूरोपीय अथवा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के समर्थक कुछ अपवादस्वरूप व्यक्ति ऐसे भी मिलेंगे, जो इन उद्योगों में मध्ययुगीन संस्कृति की बू पाते हैं तथा जो इन्हें अप्रगतिशील मानकर इंग्लैंड और अमरीकी पद्धति पर बड़े-बड़े कल-कारख़ाने खोलने की सलाह देते हैं। यद्यपि यह बात सत्य है कि किसी भी दिशा में अतिरेक कर अंतिम कोटि का विचार प्रस्तुत करना बुद्धिमानी नहीं होगी। फिर भी हमें अपनी अर्थव्यवस्था का कोई केंद्र अवश्य निश्चित कर लेना होगा, जिसके चारों ओर एवं जिसके हित-संवर्धन में बड़े पैमाने पर उद्योगों को हम अपना केंद्र बनाएँ? आज इस दृष्टि से हमारी स्थिति बहुत ही गिरी हुई है। दूसरे देशों के मुक़ाबले में बड़े उद्योगों में हम बहुत ही पिछड़े हुए हैं। यदि उस दृष्टि से हम कुछ करना चाहें तो हमें मशीन और तंत्र-विशारदों के लिए ही नहीं बल्कि पूँजी के लिए भी दूसरे देशों का मुँह ताकना पड़ेगा। पिछले 6 वर्षों से हम यही करते आ रहे हैं और अपना करोड़ों रुपया पानी की तरह बहा चुके हैं। हमें जन-शक्ति की दृष्टि से भी विचारना होगा। इन बड़े कारखानों में यदि हज़ारों को काम मिलता है तो दूसरी ओर लाखों बेकार हो जाते हैं।

यदि कल्पना कर भी ली जाए कि संपूर्ण भारत में बहुत बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण होने पर चारों ओर सुख और समृद्धि लौटने लगेगी किंतु तब तक हम अपने को पूरी तरह उजाड़ चुके होंगे। इस परिवर्तन में करोड़ों नष्ट हो जाएँगे तथा संभव है कि हम अपने लक्ष्य तक पहुँचने के पूर्व ही जनक्षोभ की ज्वाला में भस्म हो जाएँ। अत: हमारा केंद्र तो होना चाहिए मनुष्य। मनुष्य को काम मिले और वह सुखी रहे, यही हमारा उद्देश्य होना चाहिए। मशीन मनुष्य की सुविधा के लिए है, उसका स्थान लेने के लिए नहीं। मनुष्य मशीन का निर्माता है, उसका स्वामी है, उसका ग़ुलाम नहीं। उत्पादन के साधन की दृष्टि

से उसका उपयोग अवश्य है किंतु वह मनुष्य को खाकर नहीं, उसे खिलाकर होना चाहिए। इस दृष्टि से मनुष्य श्रम और मशीन में एक समन्वय चाहिए, जो प्रत्येक समाज धीरे-धीरे करता जाता है। ज्यों-ज्यों उद्योगों की अवस्था में उन्नति होती जाती है, उनको बाज़ार मिलता जाता है, मनुष्य स्वयं मशीनों का सहारा लेता है। किंतु जब यही अस्वाभाविक रूप से किया जाता है तो हानि होती है। अत: भारत में कुटीर और ग्रामोद्योग ही हमारे केंद्र हो सकते हैं। बड़े-बड़े उद्योग इन उद्योगों के हित में जहाँ चलाना आवश्यक हो, चलाए जाएँ किंतु इनके प्रति स्वार्थी बनकर नहीं।

औद्योगीकरण कैसे?

आवश्यकता है कि वेग के साथ औद्योगीकरण का कार्यक्रम अपनाया जाए। इसके लिए कुटीर एवं ग्रामोद्योगों को आधार बनाकर बड़े उद्योगों को उनके साथ समन्वित किया जाए। वे एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी न बनें, इसका ध्यान रखा जाए। इस दृष्टि से कुछ सुझाव नीचे दिए जाते हैं—

1. केंद्र एवं प्रांतों में उन उद्योगों के रक्षण एवं विकास के लिए आयोगों की स्थापना हो।
2. छोटे उद्योगों को कच्चा माल दिलाने की पूर्ण व्यवस्था की जाए। सहकारी संस्थाओं की स्थापना करके अथवा पुरानी आढ़त की पद्धति का प्रचार करके यह व्यवस्था की जा सकती है। सरकार अपनी ओर से गोदाम खोल सकती है।
3. कारीगरों को कम दर पर कर्जा मिलने की व्यवस्था हो।
4. छोटी मशीनें जो विद्युत् से भी चल सकें, उन्हें उपलब्ध कराई जाएँ तथा उन्हें विद्युत् शक्ति देने का प्रबंध हो।
5. मशीन और कच्चा माल अगाऊ मिल सके तथा उसका भुगतान तैयार माल से अथवा किश्तों में हो।
6. तैयार माल की बिक्री के लिए उचित व्यवस्था हो। सहकारी संस्थाओं के द्वारा अथवा सहकारी क्रय भंडारों द्वारा यह व्यवस्था हो। सरकार इस बात का दायित्व ले कि वह कारीगरों द्वारा तैयार माल को, यदि वह बाज़ार में नहीं बिकता, तो उचित मूल्य पर ख़रीद लेगी।
7. स्थान-स्थान पर इन उद्योगों की दृष्टि से अनुसंधान केंद्र खोले जाएँ।
8. रेल भाड़े की दरों में कुटीर उद्योगों के माल के अनुरूप परिवर्तन किया जाए।
9. बड़े कारख़ाने केवल उन वस्तुओं के खोले जाएँ, जिनका विकेंद्रीकरण संभव न हो। इनके उत्पादन की सीमाएँ एवं क्षेत्र निश्चित कर दिए जाएँ।

10. विदेशी माल पर नियंत्रण कर स्वदेशी को प्रोत्साहन दिया जाए।
11. सरकारें अपनी आवश्यकता की पूर्ति कुटीर उद्योगों के माल से ही करें।
12. कारीगरों को शिक्षा देने के लिए उद्योग शिक्षा केंद्रों की स्थापना की जाए।
13. कुटीर उद्योगों के माल को बिक्री कर आदि करों से मुक्त कर दिया जाए।
14. दूतावासों में केवल स्वदेशी, विशेषत: कुटीर उद्योग निर्मित वस्तुओं का ही उपयोग हो।

बेकारी को रोकने एवं उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन देने के लिए सर्वसाधारण की क्रयशक्ति बढ़नी चाहिए। इसके लिए आय की विषमता दूर कर उसमें समानता स्थापित करनी होगी। शासन की कर नीति इस लक्ष्य की प्राप्ति में दूर तक नहीं ले जाती। निम्न और मध्यवर्ग के लोगों को करमुक्त कर ऊपर के वर्ग पर कर का भार बढ़ाना होगा। बड़े-बड़े लोग पूँजी के दब जाने का शोर मचाकर भार से बचते रहते हैं किंतु यह ठीक नहीं। यदि आर्थिक विषमता बनी रही तथा नीचे के लोगों की क्रयशक्ति नहीं बढ़ी तो पूँजी निकालकर भी कोई लाभ नहीं। वास्तव में तो जो चीज़ पैदा होती है, उसके ख़रीदार मिलते गए तो उद्योग पनपता जाएगा। अत: पैदा किए हुए माल के लिए माँग पैदा करना उद्योगों को बढ़ाने के लिए आवश्यक है। इस माँग की कमी के कारण ही बेकारी पैदा होती है।

औद्योगिक शिक्षा

अक्षर और साहित्य ज्ञान के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि विद्यार्थी को किसी-न-किसी प्रकार की औद्योगिक शिक्षा दी जाए। औद्योगिक शिक्षा की दृष्टि से यद्यपि विचार बहुत दिनों से हो रहा है, किंतु अभी तक सिवाय कुछ औद्योगिक शिक्षा केंद्रों के खोलने के अलावा साधारण शिक्षा का मेल औद्योगिक शिक्षा से नहीं बैठाया गया है। टेक्निकल (तकनीकी) और वोकेशनल (व्यावसायिक) शिक्षा केंद्रों में भी शिक्षा प्राप्त नवयुवक इस योग्य नहीं बन पाते कि वे स्वयं कोई कारोबार शुरू कर सकें। वे भी नौकरी की ही तलाश में घूमते हैं। कारण, जिस प्रकार की शिक्षा उन्हें दी जाती है, वह उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होने के अयोग्य बना देती है। अत: आवश्यक तो यह होगा कि गाँवों के धंधे, खेती और व्यापार के साथ हमें शिक्षा का मेल बैठाना होगा। प्रथमत: शिक्षा की प्रारंभिक एवं माध्यमिक अवस्थाओं में हमें विद्यार्थी को उसके घरेलू धंधे के वातावरण से अलग करने की ज़रूरत नहीं, बल्कि हम ऐसा प्रबंध करें कि वह उस वातावरण में अधिक-से-अधिक रह सके तथा अज्ञात रूप से वह धंधा सीख सके। धीरे-धीरे हमें यह भी प्रयत्न करना होगा कि वह अपने अभिभावकों का सहयोगी बन सके। माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने तक नवयुवक को अपना धंधा भी आ जाना चाहिए। हो सकता है कि उन धंधों की योग्यता के प्रमाणपत्र की भी हमें कुछ व्यवस्था करनी पड़े। माध्यमिक शिक्षा तक कुशाग्र बुद्धि सिद्ध होने वाले

नवयुवकों की आगे शिक्षा का प्रबंध उनकी रुचि के अनुसार किया जाए।

जनसंख्या, उसकी आवश्यकता में उन आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन एवं व्यवस्था, इन तीनों का पारस्परिक संतुलन जब बिगड़ जाता है, तब अर्थ-संबंधी समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। आज देश की जनसंख्या बढ़ती जा रही है, किंतु उसके अनुपात में उत्पादन के साधन और उत्पादन नहीं बढ़ रहे। फलत: हमारी आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं हो पातीं। अत: हमारा रहन-सहन स्तर बहुत ही नीचा है। निष्कर्ष यह निकलता है कि हम उत्पादन के साधनों की वृद्धि के लिए आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करें। इसके लिए हमारी निगाह स्वाभाविक ही पश्चिम के बड़े-बड़े कारखानों के द्वारा उत्पादन की ओर चली जाती है और हम पिछले 6 वर्षों से उसके लिए प्रयत्नशील हैं। किंतु प्रश्न उठता है कि क्या उन साधनों से हम देश के सभी लोगों को काम दे सकेंगे। यदि नहीं तो उन साधनों के स्वामी एवं उन पर काम करने वाला एक छोटा सा वर्ग रह जाएगा। फलत: उत्पादित वस्तुओं का समान रूप से वितरण नहीं होगा। बचे हुए लोगों को या तो जनसेवा के रूप में लगाना होगा अथवा हमारी आवश्यकताएँ इतनी विभिन्न प्रकार की हो जाएँ, जिससे उसकी पूर्ति के लिए सबको खपा सकें तथा उनके साधन जुटा सकें। यह भी संभ्व है कि हम क़ानून बनाकर जहाँ 4 लोगों से काम चल जाए, वहाँ 10 लोगों को रखने की सलाह दें। यह प्रजातांत्रिक देश में व्यापक रूप से संभव नहीं है। आज बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना के साधन जुटाना भी हमारे लिए कठिन हो रहा है तथा उस प्रतिस्पर्धा में हम छोटे उद्योगों के साधनों को भी नष्ट कर रहे हैं। अब बेकारी प्रमुखतया यांत्रिक है। यंत्र मनुष्य की जगह लेता जा रहा है तथा मनुष्य बेकार होता जा रहा है। यंत्र का अर्थ प्रगति समझा जाता है और इसलिए हमारी प्रगतिवादी मनोवृत्ति यंत्रीकरण से विमुख नहीं होने देती। हमें इस संबंध में समन्वयात्मक दृष्टि से काम करना होगा। हमारी नीति का आधार होना चाहिए प्रत्येक को काम।

प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि उसे काम मिले। काम न मिलने से उसकी व्यक्तिगत आजीविका का सहारा तो जाता ही रहता है, वह राष्ट्र की संपत्ति के अर्जन में सहायता देने से भी वंचित हो जाता है। प्रत्येक को काम का सिद्धांत यदि स्वीकार कर लिया तो 'समवितरण' की दिशा निश्चित हो जाती है। अधिक केंद्रीकरण के स्थान पर हम विकेंद्रीकरण की ओर बढ़ते जाते हैं।

प्रत्येक को काम का सिद्धांत स्वीकार करने पर बाक़ी बातों का भी निर्धारण हो सकता है। गणित के छोटे से सूत्र के रूप में हम अर्थशास्त्र का यह सिद्धांत रख सकते हैं—

ज × क × य = इ

यहाँ 'इ' समाज की प्रभावी इच्छा का द्योतक है, जिसकी पूर्ति की उसमें शक्ति है।

'ज' समाज के काम करने योग्य व्यक्तियों का द्योतक है।

'क' काम करने की अवस्था एवं व्यवस्था का द्योतक है।

'य' यंत्र का द्योतक है।

इस सूत्र के अनुसार यदि हम चाहते हैं कि 'ज' निश्चित रहे तो 'इ' के अनुपात में 'क' और 'य' को बदलना होगा। ज्यों-ज्यों हमारी माँग बढ़ती जाएगी, हमें ऐसे यंत्रों का उपयोग करना होगा, जिनके सहारे हम अधिक उत्पादन कर सकें। आज शासन जिस नीति पर चल रहा है, उसमें 'य' सबका नियंत्रण कर रहा है।

वास्तव में तो 'इ' प्रभावी माँग के बढ़ने से ही हमारी समस्या हल होगी, किंतु 'इ' सहज ही नहीं बढ़ सकती, क्योंकि यह हमारी क्रयशक्ति पर निर्भर करती है। अत: शासन को देश की क्रयशक्ति बढ़ाने का प्रयत्न भी करना होगा।

'इ' अर्थात् प्रभावी माँग देश में तथा देश के बाहर भी हो सकती है। यदि हमारा माल बाहर जाता है तो 'इ' बढ़ जाती है। बाहर से माल आने पर देशज वस्तुओं की दृष्टि से 'इ' कम हो जाती है, क्योंकि हमारी कार्यशक्ति का बहुत बड़ा भाग बाहर से आई वस्तुओं की ख़रीद पर ख़र्च हो जाता है। आज यही हो रहा है। सरकार की आयात-नीति के कारण हमारे बाज़ार विदेशी माल से पट गए हैं। उनके सस्ते और अच्छे होने तथा 'स्वदेशी' प्रेम के अभाव के कारण उनकी भारी खपत है। फलत: स्वदेशी वस्तुओं के लिए 'इ' दिन-प्रतिदिन गिरती जा रही है। चूँकि 'य' और 'क' में एकाएक परिवर्तन करना संभव नहीं, इसलिए 'ज' कम होता जा रहा है। बेकारी बढ़ रही है। इसे रोकने के लिए जहाँ एक ओर विदेशी आयात की उन वस्तुओं पर जो स्वदेशी तैयार माल पर अनुचित रूप से दबाव डाल रही हों, प्रतिबंध लगाना होगा, तो दूसरी ओर समाज में 'स्वदेशी' की भावना को भी जाग्रत् करना होगा। विदेशी आयात पर नियंत्रण आयात-निर्यात एवं तटकर नीति के द्वारा किया जा सकता है। बड़े-बड़े उद्योगों को संरक्षण देने की नीति तो शासन में अंग्रेज़ी काल से ही अपनाई गई है। घरेलू ग्रामोद्योगों की ओर इस दृष्टि से कभी ध्यान नहीं दिया गया। उन्हें संरक्षण की नितांत आवश्यकता है और वह हमें देना ही होगा।

'इ' को बढ़ाने की दृष्टि से विदेशी व्यापार की ओर भी ध्यान देना होगा। हमारी बहुत सी चीज़ों की विदेशों में खपत है। लड़ाई के ज़माने में कपड़ा एवं कई अन्य वस्तुओं के लिए हमने मध्यपूर्व एवं सुदूरपूर्व के देशों में अपने बाज़ार बना लिए थे। काम की वस्तुओं के लिए तो आज भी अमरीका और यूरोप के देशों में हमारे माल की काफ़ी पूछ होती है। यदि प्रयत्न किया जाए तो ये बाज़ार भी बढ़ सकते हैं। फर्रुखाबाद की छींट और बनारस के रेशम के रुमालों की अमरीका में बहुत भारी मांग है। किंतु सरकारी नियंत्रण नीति के कारण यह माँग ठीक तरह से पूरी नहीं हो पाई, जबकि हम डॉलर कमाने के लिए बड़े उत्सुक रहे।

'ज' अर्थात् देश की जनसंख्या तो हमारे देश में बराबर बढ़ती जा रही है। उसे सहसा

रोका नहीं जा सकता। अत: 'इ' की वृद्धि के अनुपात में हमको 'क' और 'य' पर नियंत्रण करना होगा। आज देश में दो प्रकार के वर्ग हैं—एक तो आधुनिक यंत्रीकरण के बिल्कुल विरोधी है तथा उसे क़तई नहीं चाहते। दूसरे वे हैं, जो अनियंत्रित रूप से यंत्रीकरण की वृद्धि चाहते हैं। हम समझते हैं, दोनों ही दृष्टिकोण ग़लत हैं। जैसा कि ऊपर के सूत्र से ज्ञात होगा 'य' ध्रुव नहीं, बल्कि 'इ' तथा अन्य तत्त्वों पर अवलंबित है। यदि हमारी 'इ' बढ़ गई और बिना यंत्रों की वृद्धि के हम उसे पूरा नहीं कर सकते तो हमें यंत्रीकरण करना ही होगा, किंतु यदि माँग के बढ़े बिना हमने यंत्रीकरण करना स्वीकार कर लिया तो फिर 'ज' या 'क' में कमी करनी होगी। चूँकि 'क' को कम करना उत्पादन व्यय, समाज नीति आदि अनेक बातों पर निर्भर है, 'ज' कम हो जाएगा। अत: हमारा सिद्धांत है कि ज्यों-ज्यों देश की क्रय-शक्ति एवं प्रभाव माँग बढ़ती जाए, हम यंत्रों का अधिकाधिक उपयोग करते जाएँ। इस पद्धति में हमारा स्वाभाविक विकास होगा तथा हो सकता है कि हम अपनी स्थिति के अनुकूल अधिक उपयोगी यंत्रों का आविष्कार और निर्माण भी कर सकें।

क्या किया जाए?

बेकारी के इन कारणों को दूर करके समस्या को मौलिक रूप से हल करने के साथ ही आज जो बेकार हो गए हैं अथवा हो रहे हैं, उनको फिर से काम देने की तथा जब तक काम नहीं मिलता, तब तक उनकी व्यवस्था करने की ज़िम्मेदारी भी सरकार की है। आज के बेकारों में बहुत बड़ी संख्या पढ़े-लिखे लोगों की है। उनको खपाने के लिए स्कूल खोलने की नीति सरकार ने अपनाई है। इस नीति को और भी व्यापक करना होगा।

स्कूल और कॉलेजों में तुरंत ही औद्योगिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का प्रबंध कर देना चाहिए। जो 'अंतिम परीक्षा' पास करके निकलने वाले हैं, उनके लिए एक वर्ष की औद्योगिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाए। इससे पढ़े-लिखे बेकारों की समस्या के हल की दौड़ में एक वर्ष तुरंत आगे बढ़ जाएँगे तथा संभव है कि एक वर्ष की औद्योगिक शिक्षा प्राप्त नवयुवकों में से बहुत से लोग बाबूगिरी की ओर न दौड़कर हाथ से रोज़ी कमाना शुरू कर दें।

युद्धकाल में कारख़ानेदारों को भारी मुनाफ़ा हुआ था, जो आजकल संभव नहीं है। अत: आज गिरे हुए मुनाफ़ों को हानि की आशंका से चारों ओर बचत की योजनाएँ प्रारंभ हो गई हैं, जिसका परिणाम मज़दूरों पर भी पड़ता है। उनकी छँटनी की जा रही है। सरकार भी अपने विभिन्न विभागों में छँटनी कर रही है। कई विभागों का, जैसे रसद और पूर्ति विभाग तथा युद्धकालीन अनेक विभागों का काम अब समाप्त हो गया है। उनके कर्मचारियों की भी छँटनी अनिवार्य सी प्रतीत होती है। यह बेकारी समस्या को और भी भीषण बनाए हुए है। आवश्यकता है कि इस प्रकार के व्यक्तियों को जब तक कहीं दूसरी नौकरी न

मिल जाए, उनकी जीविका की व्यवस्था की जाए। यूरोप के कई देशों में बेकारी बीमा योजना चालू है। अनैच्छिक रूप से बेकार होने वाले श्रमिकों को इस योजना के अंतर्गत सहायता मिलती है। भारत सरकार के श्रममंत्री श्री गिरि ने एक त्रिदलीय—मिल मालिक, श्रमिक और शासन के बीच समझौता करवाया है, जिसके अनुसार किसी भी व्यक्ति के अनिच्छा से काम से अलग होने पर उसे 45 दिन तक अपने वेतन एवं महँगाई भत्ता का आधा मिलता रहेगा। इस संबंध में एक विधान भी लोकसभा में प्रस्तुत होने की आशा है। यह पग ठीक दिशा में उठाया गया है। किंतु मालिकों के ऊपर यह भार न छोड़कर शासन को इसकी अलग से व्यवस्था करनी चाहिए तथा मालिकों से इस बीमा योजना में चंदा लेना चाहिए। साथ ही 45 दिन की अवधि न रखकर यह अवधि जब तक दूसरी नौकरी न मिले तब तक की रखनी चाहिए।

पढ़े-लिखे लोगों की शिक्षा के लिए औद्योगिक शिक्षा केंद्र खोले जाएँ, जहाँ वे शिक्षा के साथ-साथ काम भी कर सकें। ये केंद्र सरकार के द्वारा बड़े पैमाने पर खोले जाने चाहिए।

गाँवों की बेकारी को दूर करने के लिए सहायता कार्य प्रारंभ किए जाएँ। सड़कें, इमारतें, बाँध, कुएँ और तालाब आदि की बहुत सी योजनाएँ शुरू की जा सकती हैं। पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत भी जो योजनाएँ हैं, उनमें जन-शक्ति का अधिकतम उपयोग करना चाहिए। अभी तो वहाँ भी श्रम बचाने वाली बड़ी-बड़ी मशीनों का ही उपयोग किया गया है।

अर्थ-नीति के निर्धारण में शासन का प्रमुख हाथ होने के कारण उसकी नीति से उत्पन्न समस्याओं को दूर करने की ज़िम्मेदारी और क्षमता बहुत अंशों में उसकी होती है। फिर भी जनता और राजनीतिक पार्टियाँ उस दृष्टि से अपने सीमित क्षेत्र में बहुत कुछ कर सकती हैं। शासन को समस्या की गंभीरता का अनुभव कराने के लिए वे आंदोलन तो कर ही सकती हैं, किंतु अपनी ओर से रचनात्मक सहयोग भी दे सकती हैं।

अपने क्षेत्र के छोटे-छोटे उद्योगों की तालिका बनाकर उनमें शिक्षार्थी के रूप में एक-एक, दो-दो व्यक्तियों को रखा जा सकता है। आज बहुत से कारोबार ऐसे हैं, जिनमें रोज़ी कमाई जा सकती है। हाँ, सीखे हुए लोगों की कमी है।

छोटे-छोटे उद्योग केंद्र भी सहकारी आधार पर चलाए जा सकते हैं। स्वदेशी की भावना एवं पारस्परिक संबंधों के सहारे उनके लिए बाज़ार भी मिल सकता है। इनके अतिरिक्त और भी रचनात्मक कार्य हाथ में लिए जा सकते हैं।

—पाञ्चजन्य, अगस्त 31, 1953

□

35

रिश्वत का बाज़ार कैसे ठंडा करें

रिश्वत का बाज़ार आजकल चारों ओर गरम है। ऊपर से लेकर नीचे तक आप कोई भी काम करना चाहें, बिना सी.डी. देशमुख के परिचयपत्र[1] के वह संभव नहीं।

वैसे तो रिश्वतखोरी कोई नई बुराई नहीं। कम-से-कम अंग्रेज़ों के आने के समय तो यह प्रचलित थी ही, इससे भी पूर्व यह थी अथवा नहीं, कहा नहीं जा सकता। संस्कृत में रिश्वत के लिए कोई शब्द न होने के कारण यह अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि प्राचीन भारत में शायद वह बुराई नहीं थी। ईस्ट इंडिया कंपनी के कारकुन आम तौर पर रिश्वतखोरी के शिकार थे, यहाँ तक कि वारेन हेस्टिंग्स के ख़िलाफ़ तो रिश्वत लेने का मुकदमा भी ब्रिटेन की पार्लियामेंट में चलाया गया, पर धीरे-धीरे अंग्रेज़ शासको ने यह अनुभव किया कि अंग्रेज़ कर्मचारियों में से रिश्वतखोरी समाप्त किए बिना वे हिंदुस्तान की प्रजा के ऊपर अपना नैतिक सिक्का नहीं जमा सकेंगे। मद्रास के एक अंग्रेज़ गवर्नर ने तो यह स्पष्ट कहा कि हमें अंग्रेज़ों में से रिश्वतखोरी दूर कर देनी चाहिए तथा नीचे के हिंदुस्तानी कर्मचारियों में यह बनी रहे तो विशेष चिंता की बात नहीं। इससे एक बहुत बड़ा लाभ यह होगा कि हिंदुस्तान के लोगों के मन में यह भावना जड़ पकड़ लेगी कि अंग्रेज़ उनके देशवासियों के मुक़ाबले में अधिक ईमानदार और सच्चे हैं। इसलिए अंग्रेज़ अफ़सरों के लिए तनख़्वाहों के ग्रेड बढ़ाए। साथ ही उन्हें और सब प्रकार की सुविधाएँ भी दीं और दूसरी ओर हिंदुस्तानी कारकुनों का वेतन कम ही नहीं, इतना कम रखा कि वे बिना रिश्वत काम ही नहीं चला सकते थे। पटवारी, क़ानूनगो आदि सरकारी कर्मचारी रिश्वत लेना कोई पाप नहीं समझते अपितु आमदनी का एक जायज ज़रिया मानते हैं।

---

1. सर चिंतामणि द्वारकानाथ देशमुख (1896-1982) : भारतीय मूल के पहले व्यक्ति, जो भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर बने। देश के पहले केंद्रीय मंत्रिमंडल में वित्तमंत्री (1950-1956) रहे। यहाँ आशय रुपए से है।

ब्रिटिश युग

पिछली लड़ाई के दिनों में जब महँगाई बढ़ने लगी तो उत्तर प्रदेश क़ानूनगोओं का एक डेपुटेशन उस समय के चीफ सेक्रेटरी, जो एक अंग्रेज़ था, से मिला और माँग की कि उनका वेतन बढ़ाया जाए। उसने स्पष्ट उत्तर दिया कि तनख़्वाह और आपके ख़र्च का कोई संबंध ही नहीं है। उसने कहा कि मैं तुम्हारी आमदनी के ज़रिए जानता हूँ और तुम उनके द्वारा भली प्रकार अपना ख़र्चा चला सकते हो। अर्थात् इस प्रकार की रिश्वतखोरी बहुत दिनों से प्रचलित है और जनता व कर्मचारी इसके आदी हो गए है। मुंशी प्रेमचंद के शब्दों में तनख़्वाह तो पूनो के चाँद की तरह है, जो महीने में केवल एक दिन अपनी पूर्ण आभा से उदय होता है और फिर बराबर घटता जाता है। भला उससे काम चल सकता है!

रिश्वतखोरी की उपर्युक्त पद्धति तो ख़राब है ही, परंतु जिससे जनता बहुत अधिक परेशान है, वह रिश्वतखोरी पिछले चौदह वर्षों से प्रारंभ हुई है। इसमें बिना रिश्वत के और वह भी भारी रिश्वत के, किसी का काम नहीं बनता। कहीं-कहीं तो इससे भी आगे बढ़कर रिश्वत देने के लिए निर्दोष व्यक्तियों को किसी-न-किसी जाल में फँसाने की कोशिश की जाती है। ठेकेदार से पी.डब्ल्यू.डी. के कर्मचारी अपना दस प्रतिशत बहुत दिनों से लेते आ रहे हैं। परंतु इससे पूर्व ठेका देने में कभी भी भेदभाव नहीं बरता जाता था। अब तो रुपए के बल पर किसी भी व्यक्ति को ठेका मिल सकता है और उसकी कैसी भी चीज़ पास हो सकती है। इसका परिणाम यह हो गया है कि जनता का रुपया तो बरबाद होता ही है, सार्वजनिक निर्माण कार्यों का स्तर भी बहुत नीचे गिर गया है।

रिश्वत देने वाले

इस प्रकार के बहुमुखी और नाना रूप धारण करके आने वाली रिश्वतखोरी को मिटाना सहज नहीं, क्योंकि इसमें रिश्वत लेने वाले से अधिक रिश्वत देने वाले का स्वार्थ रहता है। रिश्वत देने वाले तो बहुत बार नेक और ईमानदार कर्मचारियों को भी थोड़े दिनों में बेईमान और रिश्वतखोर बना देते हैं। अभी तक इन रिश्वत देने वालों के विरुद्ध राजनीतिक संस्थाओं ने कोई जिहाद नहीं बोला और साधारणत: यही समझकर चला जाता है कि रिश्वत देने वाला बेबस होकर ही रिश्वत देता है जो कि अधिकांश सत्य नहीं। हम इस पाप को यदि जड़मूल से मिटाना चाहते हैं तो इस पर चारों ओर से हमला करना पड़ेगा। प्रथम तो यह भाव व्यापक रूप में समाज में उत्पन्न करना होगा कि रिश्वत लेना और देना क़ानून की दृष्टि से ही दंडनीय नहीं, सामाजिक रूप से भी पाप है। जो इस पाप के दोषी हों, वे समाज में अधिकाधिक निंदनीय हों, इसका प्रयत्न करना होगा। ऐसे लोग मताधिकार से वंचित किए जाने चाहिए। उनको दंड दिया जाए। वह जेल की चारदीवारी तक ही सीमित न रखा जाए, किंतु वह समाज को भी दिखाई दे।

क़ानून की दृष्टि से आज रिश्वत लेनेवाला और देनेवाला दोनों ही जुर्म करते हैं और यह ठीक भी है, परंतु इसका दूसरा परिणाम यह हो रहा है कि कई बार रिश्वत का राज़ खुल नहीं पाता। इसके लिए हमें यह व्यवस्था करनी चाहिए कि यदि रिश्वत देने वाला स्वयं आकर रिश्वत की बात बताए तो वह क्षमा किया जा सके। साथ ही रिश्वत के लिए कठोर दंड की व्यवस्था होनी चाहिए तथा न्याय जल्दी हो सके, इस प्रकार का भी क़ानून में परिवर्तन होना चाहिए। हो सकता है कि इस प्रकार के कठोर उपायों से दो-चार निर्दोष भी पिस जाएँ, परंतु जब कभी सामूहिक बुराई को दूर करना होता है तो कुछ न कुछ बलि अवश्य देनी पड़ती है। निरुपाय होकर हमें इस बलि को स्वीकार करना होगा।

अधिकारी ज़िम्मेदार

आज की बढ़ी हुई रिश्वतखोरी के लिए हमारे ऊपर के अधिकारी भी ज़िम्मेवार हैं। एक स्टेशन पर जब बाबू ने टिकट बनाने के लिए आठ आने पैसे अतिरिक्त माँगे और उसको कहा गया कि ये नाजायज़ हैं तो उसने उत्तर दिया कि बड़े-बड़े मिनिस्टर तो लाखों डकार जाते हैं, आप उनसे तो कुछ नहीं कहते और हम ग़रीब लोग, जिन्हें केवल अस्सी रुपया माहवार मिलता है, उनके आठ आने भी आपको खटकते हैं। आप ही बताइए, मेरे दो लड़के कॉलेज में पढ़ते हैं, उन्हीं को 150 रुपया मासिक भेजना होता है। कैसे काम चलाया जाए? बाबू के तर्क में कुछ सत्य अवश्य हैं और उसका विचार करना होगा। गुलिस्ताँ के एक पद का हिंदी अनुवाद किसी कवि ने किया है—

एक मुर्ग के हित नृपति करे जो अत्याचार।
चाकर वाके नित्य प्रति मारें मुर्ग हज़ार॥

आज वह यह बात बिल्कुल सत्य सिद्ध हो रही है। ऊपर मंत्रिमंडल में अनेक घोटाले होते हैं और वे दबा दिए जाते हैं। 'सीजर की पत्नी का चरित्र संदेह से ऊपर होना ही चाहिए'[2] इस कहावत के अनुसार तो मंत्रियों को यह आदर्श उपस्थित करना चाहिए कि उनके संबंध के कोई उँगली तक न उठा सके। इसके लिए यह आवश्यक होगा कि कोई भी ऐसा केस सम्मुख आए तो उसकी पूरी जाँच की जाए और दोषियों को दंड देने की व्यवस्था हो।

क़ानून में परिवर्तन

रिश्वत बहुत कुछ आज के क़ानूनों के कारण भी है। लाल फीताशाही रिश्वत का द्वार खोल देती है। गरजमंद चाहता है कि उसका काम जल्दी-से-जल्दी पूरा हो जाए,

---

2. विलियम शेक्सपीयर के नाटक 'जूलियस सीज़र' की लोकप्रिय उक्ति 'Caesar's wife must be above suspicion' की ओर इंगित।

परंतु उसकी फाइल तब तक आगे नहीं बढ़ती जब तक कि हर एक स्टेज पर दान-दक्षिणा न चढ़ा दी जाए। इस दुर्व्यवस्था को भी रोकना होगा, साथ ही क़ानून की पद्धति, जो न्याय के स्थान पर केवल लिखित विधान का ही अनुसरण करती है, उसे भी बदलना होगा।

भिन्न-भिन्न विभागों में स्पेशल ऑफिसर नियुक्त करके और सभी अधिकार उनके हाथ में देकर रिश्वत का नया रास्ता खोला गया है। कई जगह तो मंत्री महोदय भी कुछ कमाई कर सकें, इसलिए उन्होंने ज़िलाधीशों के अधिकारों को छीनकर अपने अधीन किसी विशेष ऑफिसर को दे दिए हैं। उत्तर प्रदेश में स्कूलों की टेक्स्ट बुक स्वीकार करने का काम जहाँ पहले एक कमेटी करती थी, पिछले दिनों वह काम एक स्पेशल एजुकेशन ऑफिसर को, जो उस समय के शिक्षा मंत्री के मित्र थे, सौंप दिया गया। कहने को तो मित्र महोदय इस काम का वेतन नहीं लेते थे किंतु रिश्वत का बाज़ार इस प्रकार गरम हुआ कि अच्छी-अच्छी किताबों की तो कोई पूछ नहीं और निम्न स्तर की किताबें स्कूलों के लिए स्वीकृत हो गईं। नौकरियों और तरक्की में भी पब्लिक सर्विस कमीशन को एक ओर रखकर नए-नए पद पैदा किए गए और उन पर नौकरियाँ दी गईं। इन सबको रोकना नितांत आवश्यक है।

उत्पादन वृद्धि

किंतु उपर्युक्त उपायों से भी अधिक आवश्यक है कि चीज़ों का बाहुल्य हो और मनुष्यों में नेकनीयत और संतोष का भाव पैदा हो। जब तक माँग के मुक़ाबले किसी भी वस्तु की कमी होगी, तब तक किसी-न-किसी प्रकार की प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष रिश्वत चलती रहेगी। और इसी भाँति अपने स्वार्थों को सर्वोपरि मानने की भावना जब हमारे कार्यों की प्रमुख प्रेरक शक्ति हो तो अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए रिश्वत लेना और देना जारी रहेगा। अत: आवश्यक है कि हम देश के उत्पादन को बढ़ाएँ, ताकि सभी प्रकार की वस्तुओं का अभाव दूर हो जाए। वितरण को समान करें, जिससे कि आज बहुत से लोग, जिनकी इच्छाएँ अपूर्ण हैं और इसलिए अनैतिक उपायों को अपनाते हैं, उनसे बाज आ जाएँ और वे लोग, जिनके पास धन की अधिकता होने के कारण उस धन को रिश्वत के तौर पर दे सकते हैं, भी रिश्वत न दे सकें। एतदर्थ छोटे कर्मचारियों का वेतन हमें बढ़ाना चाहिए। बड़े कर्मचारियों का वेतन भी घटाना आवश्यक है। रहन-सहन के तरीक़े में भारी अंतर छोटे कर्मचारियों के मन में बहुत इच्छाएँ पैदा कर देता है, जिनको पूर्ण करने के लिए वे अनुचित उपायों का अवलंबन करते हैं।

धर्म का भाव

धर्म का भाव भी हमारी इन बुराइयों को दूर करने में समर्थ होगा। आज लोगों में

पाप से डरने और पुण्य को करने की प्रवृत्ति नहीं। क़ानून न तो हर जगह पहुँच सकता है और न हर जगह देख सकता है। अँधेरी बंद कोठरी में किए गए पाप केवल मन के पुलिसमैन को छोड़कर और किसी को नहीं दिखते। आज सेकुलरिज़्म के नाम पर उस पुलिसमैन को हमने बरखास्त कर दिया है। नतीजा यह हो गया है कि हम बुरे काम से नहीं डरते, केवल इतनी ही चिंता करते हैं कि क़ानून की गिरफ़्त में न आएँ। क़ानून का आधार भी आज धर्म नहीं रह गया। उसके कोई सर्वमान्य सिद्धांत नहीं। वे जनता की भावनाओं और उसकी मान्यताओं का विचार न करते हुए केवल कुछ लोगों की सनक पर बनाए जाते हैं।

कोटा राज्य के पुराने महाराजा के समय की एक घटना है। हिंदुओं में एक पद्धति है कि मृत्यु के पश्चात् तेरहवें दिन सभी बिरादरी को भोज दिया जाता है। एक विधवा धनाभाव से ऐसा न कर सकी। उसकी बिरादरी वालों ने उसे बुरा-भला कहा। वह महाराजा के पास पहुँची और अपना दुखड़ा रोया। महाराजा ने इस प्रकार का अन्याय देखकर क़ानून बना दिया कि मृत्यु के पश्चात् बारह ब्राह्मणों को छोड़कर और किसी को भोजन न कराया जाए। दौरा करते हुए दो वर्ष पश्चात् जब वे एक ग्राम में पहुँचे और चौधरी से पूछा कि हमारा भोज वाला क़ानून तो ठीक चल रहा होगा तो उसने उत्तर दिया, हुजूर! बहुत अच्छा चल रहा है। इतना ही है कि पहले हम एक भोज करते थे, अब दो करते हैं। महाराजा ने जब इसका अर्थ पूछा तो उत्तर मिला कि पहले तो हम केवल मृतक का ही भोज करते थे, परंतु अब दारोगा का भी करना पड़ता है। यदि दारोगा का न करें तो क़ानून की गिरफ़्त में आ जाते हैं और मृतक का न करें तो बिरादरी से बुरे बनते हैं। हमें दोनों को निभाना है, इसलिए दोनों की पेट-पूजा करनी पड़ती है। तात्पर्य यही है कि जब कोई क़ानून समाज की प्रचलित रीति-नीति के अनुरूप नहीं होगा तो वह रिश्वत को जन्म देगा। रीति-नीतियों में परिवर्तन क़ानून से नहीं होता, वह प्रचार से होता है और प्रचार की एक स्टेज आने के बाद ही विधान बनाना चाहिए। हमारे बहुत से राशनिंग क़ानून रिश्वत के लिए उत्तरदायी रहे हैं। कंट्रोलों ने भी उसको बढ़ावा दिया है। इसमें परिवर्तन करना ही होगा।

—पाञ्चजन्य, सितंबर 28, 1953

□

36

भारतीय जनसंघ–उत्तर प्रदेश में सफलता

दीनदयालजी का प्रेस वक्तव्य।

हाल में हुए चुनावों में कांग्रेस और उसकी सरकार के प्रति लोगों में विश्वास के अभाव की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। अगर कांग्रेस ने मतदान पेटियों के साथ तब धाँधली न की होती तो कांग्रेस ने आम चुनाव में भी उसी तरह ख़राब प्रदर्शन किया होता, जैसा प्रदर्शन उसने अभी किया है। उस समय उसने हमारे बक्से सीधे ग़ायब ही कर दिए थे। इस बार हमने रात के दौरान भी बक्सों पर पहरा दिया। मैं जहाँ कहीं भी गया, हर जगह लोगों ने मुझसे कहा कि ''हम जनसंघ के पक्ष में मतदान करेंगे, लेकिन अपनी मतपेटियों की रक्षा करना जनसंघ का काम है।'' हमने यह काम किया है और हमने भारी जीत हासिल की है।

लोग कांग्रेस सरकार से पूरी तरह तंग आ चुके थे। भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद और रिश्वतखोरी में वृद्धि ने बुद्धिमान मतदाताओं को कांग्रेस से पूरी तरह अलग कर दिया है। अतीत में उसे सभी हिंदुओं का निश्चित समर्थन प्राप्त था। अब वह समाप्त हो गया है। अतीत में वह स्वतंत्रता के मसले पर संयुक्त मुद्दे करने के नाम पर मुसलमानों का तुष्टीकरण किया करती थी। स्वतंत्रता आ गई है, लेकिन तुष्टीकरण अभी भी जारी है। दूसरी ओर मुसलिम कांग्रेस शासन से संतुष्ट नहीं हैं। यहाँ तक कि वे महसूस करते हैं कि कुटिल कांग्रेस की तुलना में जनसंघ अधिक ईमानदार और स्पष्टवादी है। अधिकांश स्थानों में मुसलमानों ने कांग्रेसियों को छोड़कर किसी के भी पक्ष में मतदान किया। हरिद्वार, मथुरा, एटा और कई अन्य जगहों पर उन्होंने कांग्रेसियों के ख़िलाफ़ जनसंघ उम्मीदवारों का समर्थन किया।

कांग्रेस का आकर्षण पूरी तरह समाप्त हो जाएगा। अब तक स्थिति यह थी कि कांग्रेस का टिकट मिल जाने का अर्थ सफलता का 90 प्रतिशत विश्वास कर लेना होता था। अब ऐसी स्थिति नहीं रहेगी। कांग्रेस उम्मीदवारों के लिए सफलता की संभावना 10 प्रतिशत से भी कम रह जाएगी। यह उत्तर प्रदेश में कांग्रेस के अंत की पहली ठोस शुरुआत है। इसकी गूँज देश भर में होगी। यह राष्ट्रीय महत्त्व की बात है।

—ऑर्गनाइज़र, नवंबर 2, 1953

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

37

पाकिस्तान में हिंदुओं के हितों की रक्षा

भारतीय जनसंघ के महासचिव श्री दीनदयाल उपाध्याय ने 17 नवंबर, 1953 को पूना में कहा है कि उनका संगठन 'पाकिस्तान में हिंदुओं के हितों की रक्षा सुनिश्चित करने के लिए' एक आंदोलन शुरू कर सकता है।

उन्होंने घोषणा की कि पाकिस्तानी संविधान की इसलामी प्रकृति के कारण उन्हें अपना घर छोड़ने के लिए या इसलाम में धर्मांतरित होने के लिए मजबूर नहीं किया जाना चाहिए।

यह आंदोलन जनमत जुटाने और भारत सरकार पर इस बात के लिए दबाव डालने के लिए किया जाएगा कि वह यह सुनिश्चित करने के लिए हर संभव प्रयास करे कि पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों के साथ बराबरी और सम्मान का व्यवहार किया जाए।

श्री उपाध्याय ने स्वीकार किया कि पाकिस्तान की संविधान सभा संप्रभु है; लेकिन भारत का विभाजन इस अनकही समझ के आधार पर किया गया था कि दोनों भागों में अल्पसंख्यकों के साथ बहुसंख्यकों जैसा ही समानता का व्यवहार किया जाएगा।

यह अच्छी बात है कि श्री नेहरू ने पाकिस्तान में संविधान निर्माण की प्रक्रिया पर ध्यान दिया था। लेकिन जनसंघ महसूस करता है कि भारत के प्रधानमंत्री के केवल एक 'सरसरे अवलोकन' भर से पाकिस्तान अपना धर्मांध और कट्टर रवैया बदल नहीं देगा।

श्री उपाध्याय ने घोषणा की कि अब समय आ गया है, जब अगर अन्य सभी उपाय विफल रहते हैं तो युद्ध का विकल्प छोड़े बिना–आज़ाद कश्मीर के इलाके को पाकिस्तान के नियंत्रण से मुक्त कराने के लिए उपाय किए जाएँ।

कश्मीर में कोई जनमत संग्रह नहीं होना चाहिए, क्योंकि वहाँ के लोगों की इच्छा पहले से ही पता है, और वह भारत के पक्ष में है।

श्री उपाध्याय के अनुसार स्व. डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के मिशन को पूरा करने के लिए जनसंघ के नेताओं और कार्यकर्ताओं में उत्साहपूर्ण दृढ संकल्प है।

उन्होंने कहा कि यह ख़ुशी की बात है कि जनसंघ ने पंजाब, उत्तर प्रदेश और राजस्थान में निकाय चुनावों में अच्छा प्रदर्शन किया है।

उन्होंने घोषणा की कि भारतीय जनसंघ का वार्षिक सत्र अगले वर्ष जनवरी में बंबई में आयोजित किया जाएगा।

—द टाइम्स ऑफ इंडिया, नवंबर 18, 1953
(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

38

पंचवर्षीय योजना लाभप्रद नहीं

साँगली, 23 नवंबर : भारतीय जनसंघ के महासचिव श्री दीनदयाल उपाध्याय ने शुक्रवार को यहाँ कहा कि बाहरी सहायता पर आधारित पंचवर्षीय योजना भारत की परंपराओं के अनुरूप नहीं है और इस कारण इसे देश के लिए फ़ायदेमंद नहीं समझा जा सकता।

उन्होंने कहा कि जनसंघ का उद्देश्य देश में सच्चे लोकतंत्र की स्थापना करना है। अगर श्री नेहरू कश्मीर के एक-तिहाई हिस्से से पाकिस्तानी नियंत्रण को समाप्त कराने की कोशिश करते हैं तो जनसंघ उनका समर्थन करेगा। इस उद्देश्य के लिए किसी जनमत संग्रह की ज़रूरत नहीं, क्योंकि कश्मीर भारत का हिस्सा है।

शुक्रवार को कोल्हापुर में एक बैठक में श्री उपाध्याय ने कहा कि प्रशासनिक सुविधा के लिए राज्यों को भाषाई आधार पर गठित किया जा सकता है, लेकिन उन्हें अलगाववादी प्रवृत्ति को बढ़ावा नहीं देना चाहिए।

बैठक में श्री उपाध्याय ने भारतीय जनसंघ की साँगली जिला शाखा का उद्घाटन किया।

—द टाइम्स ऑफ इंडिया, नवंबर 24, 1953
(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

39

भारत की राष्ट्रीयता और उसका आधार भारतीय संस्कृति

13 नवंबर, 1953 को जलगाँव के नागरिकों के सम्मुख सुभाष मैदान में दीनदयाल जी का भाषण।

भारत के विभाजन से समस्याएँ हल नहीं हुईं, पर द्विगुणित हो गई हैं और उसका हल है अखंड भारत! 'अखंड भारत' हमारा राजनीतिक नारा नहीं है। यह हमारा विश्वास और सिद्धांत है। आज देश में सैद्धांतिक आधारों पर काम करने वाली शक्तियाँ केवल दो हैं। एक है, कम्युनिस्ट पार्टी व दूसरी है जनसंघ। कांग्रेस निर्बल होती जा रही है और प्रजा समाजवादी अवसरवादी है। अतः चुनना दो में से है। यदि राष्ट्रीयता व प्रजातंत्र चाहिए तो जनसंघ और यदि तानाशाही चाहिए तो अपनाइए कम्युनिस्ट पार्टी को।

जनसंघ ने बहुत थोड़ी आयु में ही प्रतिष्ठा प्राप्त की है। पिछले चुनावों में केवल चार पार्टियों को अखिल भारतीय घोषित किया गया—कांग्रेस, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी[1], कम्युनिस्ट पार्टी तथा जनसंघ। कांग्रेस गत साठ वर्षों से इस देश में कार्य कर रही है। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी समय-समय पर कांग्रेस में से निकले हुए लोगों का समूह है। इसमें बहुत से लोग ऐसे हैं, जिन्हें आज देश 'नेता' के नाम जानता है। कम्युनिस्ट पार्टी भी भारत में सन् 1923 से कार्य कर रही है। साथ ही इसे रूस से सहायता प्राप्त है, ऐसा कहा जाता है। इन सबकी तुलना में जनसंघ जैसी संस्था का, जिसका नाम कुछ दिन पूर्व

---

1. प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना 1952 में हुई, लेकिन आपसी मतभेदों के चलते यह पार्टी 1955 एवं 1969 में विखंडित हुई और अंततः 1972 में समाप्त हो गई।

ही लोगों ने सुना है और जिसे श्यामाप्रसाद मुखर्जी के अतिरिक्त कोई प्रसिद्धि प्राप्त व्यक्ति भी नहीं है, अखिल भारतीय घोषित हो जाना उसकी शक्ति ही दरशाता है।

संस्कृति ही प्रेरणा का स्रोत

भारतीय जनसंघ किसी बाहरी देश से प्रेरणा लेकर नहीं चला है। हमारी संस्कृति ही हमारी प्रेरणा का स्रोत है और हमारी परंपरा के अनुसार जीवन-रचना करना हमारा कार्य है। इसकी दो कसौटियाँ हैं—राष्ट्रीयता और प्रजातंत्र। इन्हीं सिद्धांतों को लेकर जनसंघ चला है।

भारत की राष्ट्रीयता एक है और वह है भारतीय राष्ट्रीयता। इसका आधार है भारतीय संस्कृति। राष्ट्रीयता को ठीक से न समझने के कारण हमारे देश का विभाजन हुआ। हमारे नेता कहते हैं कि विभाजन के बिना चारा ही न था। इसके बिना हिंदू-मुसलिम समस्या सुलझ ही नहीं सकती थी। पर समस्या सुलझी कहाँ, वह तो और उलझ गई। अब तक हिंदू-मुसलिम समस्या हमारे राष्ट्र की समस्या थी, पर अब वह अंतरराष्ट्रीय समस्या बन गई है। विभाजन के पूर्व अल्पमत की समस्या एक थी। इस देश में मुसलमान अपने को अल्पमत कहते थे, पर विभाजन से पाकिस्तान में हिंदू व हिंदुस्थान में मुसलमान अल्पमत बन गए। सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से भी किसी समस्या का हल नहीं हुआ। इन सब समस्याओं का एक हल है—वह है अखंड भारत। भारत की अखंडता, यह हमारे सम्मुख सिद्धांत रूप में है। इसमें किसी के प्रति द्वेष नहीं, न कोई प्रतिगामी वृत्ति ही है। आज से कुछ वर्ष पूर्व कांग्रेस ने अखंड भारत की ही घोषणा सामने रखकर जनता से वोट लिए थे। महात्मा गांधी व राजेंद्र बाबू ने इसके समर्थन में पन्ने के पन्ने रँग डाले। फिर आज ही ये विचार अराष्ट्रीय व प्रतिगामी कैसे बन गए? कांग्रेस यदि भारत को अखंड नहीं रख सकी तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह दूसरों को भी, जो इस मार्ग पर चल रहे हैं, पथविमुख कर दे। अपेक्षा तो यह थी कि वे हमें उत्साह ही दिखाएँगे कि हम असफल हुए हैं तो क्या हुआ, तुम सफल होना।

भारत खंडित कैसे हुआ?

'भारत अखंड कैसे होगा' यह विचार करने के पूर्व वह खंडित कैसे हुआ, इसका विचार करना होगा। भारत में रहने वाले सभी लोगों की एक संस्कृति है। पर यहाँ के मुसलमानों की भिन्न संस्कृति मान ली गई। इसलाम एक मत है और मतों के प्रति हम सदा से ही सहिष्णु रहे हैं। 'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति' मत भिन्न होने से राष्ट्रीयता भिन्न नहीं हो जाती। यदि आज एक हिंदू मुसलमान बन जाए तो क्या उसकी भाषा बदल जाएगी, उसके पूर्वज बदल जाएँगे तथा उसका इतिहास बदल जाएगा? वह राम-कृष्ण की संतान तो राम-कृष्ण की ही रहेगी। उनके माता-पिता कैसे बदल जाएँगे? उसकी

मातृभूमि को पदाक्रांत करने वाले गज़नवी व ग़ोरी तो आक्रामक ही रहेंगे। पर भारत का मुसलमान बदल गया। वह नल-दमयंती की प्रेम कथा[2] छोड़कर 'शीरी फ़रहाद'[3] के गीत गाने लगा। कोयल की कूक के बजाय उसे बुलबुल की तान याद आने लगी। वह हनुमान और भीम की वीरगाथाएँ गाने के स्थान पर रुस्तम और सोहराब के गीत गाने लगा। गंगा और जमुना के पानी में उसे कोई मिठास दिखाई नहीं दी।

धर्म-परिवर्तन कर लेने से संस्कृति क्यों बदल गई? इस प्रकार संस्कृति न तो बदलती है, न बदली है। जहाँ-जहाँ मुसलमान गया, उसके अनुसार ही उसने अपने आपको बदला। तुर्किस्तान के मुसलमान की, अफ़गानिस्तान के मुसलमान की और हिंदेशिया के मुसलमान की संस्कृति भिन्न-भिन्न है, एक नहीं। फिर हिंदुस्थान में ही ऐसा क्यों हुआ? हिंदुस्थान में जब मुसलमान नमाज़ पढ़ने बैठता है तो मक्के की ओर मुँह कर लेता है, वहाँ की लाई हुई थोड़ी सी मिट्टी सामने रख लेता है कि इस देश की मिट्टी पर सर न टेकना पड़े। यहाँ के मुसलमान को बदलना पड़ेगा। अन्य देशों में भी मुसलमान बदला है। टर्की में कमालपाशा[4] ने सबकुछ बदल दिया। यहाँ तक कि अपना नाम भी बदल कर दूसरा रख लिया। फारस में अल्लाह से ख़ुदा बन गया। फिर भारत में अल्लाह ईश्वर क्यों नहीं बन गया?

ऐसे भी मुसलमान यहाँ हुए हैं। रसखान ने यह नहीं कहा कि 'मेरे मौला बुला मदीने मुझे' उन्होंने तो यही कहा कि 'मानुस हो तो वही रसखान, बसों बृज गोकुल गाँव के ग्वारन।' मैं मुसलमानों को सलाह देता हूँ कि वे रसखान का अनुसरण करें। बाबर ने अपने आपको नहीं बदला, क्योंकि वह शासक था। यदि धर्मभूमि के प्रति ही मुसलमानों को आकर्षण होता तो अरबी को अपनाना था, पर उन्होंने तो फारसी को अपनाया। चीन का मुसलमान और हिंदेशिया का मुसलमान वहाँ का राष्ट्रीय बन सकता है और वहाँ के नाम रख सकता है तो हिंदुस्थान का मुसलमान अपना नाम रामनारायण या राजीवलोचन क्यों नहीं रख सकता? वह तो अपने नाम के आगे ख़ान जोड़ने में शान समझता है, पर

---

2. नल-दमयंती की प्रेमकथा का वर्णन महाभारत में है। पांडवों के वनवास के दौरान एक ऋषि ने उन्हें यह कथा सुनाई। नल निषध देश (वर्तमान ग्वालियर, मध्य प्रदेश) के राजा थे, जबकि दमयंती विदर्भ (वर्तमान पूर्वी महाराष्ट्र) नरेश की पुत्री थी। दोनों ही अति सुंदर थे और एक-दूसरे की प्रशंसा सुनकर बिना देखे ही प्रेम करने लगे थे।
3. शीरी-फ़रहाद की कथा : फारस का बादशाह खुसरो आर्मेनिया के बादशाह की बेटी शीरी से शादी करना चाहता था। शीरी ने शर्त रखी कि बादशाह दूध के दरिया का निर्माण करवाए। यही दरिया बनाने के लिए फ़रहाद की नियुक्ति की गई। दरिया निर्माण के दौरान दोनों में प्रेम हो गया। अंततः दोनों ने आत्महत्या कर ली थी।
4. मुस्तफ़ा कमालपाशा 'कमाल अतातुर्क' (1881-1938) : टर्की में साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध हुए आंदोलन का नेतृत्व किया। तत्पश्चात् टर्की गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति (1923-38) बने। इन्हें आधुनिक टर्की का निर्माता कहा जाता है।

ख़ान यह शब्द तो अरबी नहीं है। यह तो मंगोलियन लोग अपने नाम के आगे लगाते हैं।

फिर मुसलमान की संस्कृति है कहाँ की? फारस की, अफ़गानिस्तान की, तुर्किस्तान की, अरब की, मंगोल की या सबकी खिचड़ी? यहाँ का मुसलमान रोज़ा तोड़ेगा तो छुहारे से। यहाँ की कोई चीज़ उसे नहीं सुहाती। पर मज़हब राष्ट्रीयता में बाधक नहीं होना चाहिए। कांग्रेस ने यही ग़लती की। मुसल्मानों ने कहा, 'हमारी अलग संस्कृति है', कांग्रेस ने मान लिया। उन्होंने कहा, 'हमारी अलग भाषा है', कांग्रेस ने कहा, 'अच्छा भाई, अलग भाषा है।' इस प्रकार कांग्रेस ने यद्यपि ऊपर-ऊपर एक राष्ट्रीयता का ढिंढोरा पीटा, तथापि भीतर-भीतर द्विसंस्कृतिवाद अर्थात् द्विराष्ट्रीयतावाद को उत्तेजना दी। जब कांग्रेस के नेता हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष बने तो उन्होंने महाकवि भूषण की 'शिवा बावनी' पर रोक लगा दी। पर शिवाजी का आंदोलन मुसलमानों के विरुद्ध नहीं, बाहरी औरंगज़ेबी संस्कृति के विरुद्ध था। आज भी नए-नए आघात हमारी संस्कृति पर किए जा रहे हैं। भाषावार प्रांत रचना यह एक नमूना है। देश को क्षत-विक्षत करना, यह अंग्रेज़ों और कम्युनिस्टों का षड्यंत्र है। हमारे देश के प्रांत ठीक बने हैं, यह मैं नहीं कहता, क्योंकि वे तो अंग्रेज़ों ने अपनी सुविधा के अनुसार बनाए थे। इसके लिए आवश्यक यह है कि एक कमीशन बैठाया जाए जो प्रांतों की पुनर्रचना करे। यह कहना कि प्रत्येक प्रांत की भाषा अलग-अलग है व संस्कृति भिन्न-भिन्न है, सैद्धांतिक भूल है। इस प्रकार का विद्वेष फैलाने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए हमारा सिद्धांत यह है कि यह एक देश है, इसकी एक संस्कृति है और एक ही राष्ट्रीयता है।'

राजनीतिक प्रजातंत्र

हमारी दूसरी कसौटी है—प्रजातंत्र। वह भी दो प्रकार में—राजनीतिक व आर्थिक। आप कहेंगे कि हमारे यहाँ भी प्रजातंत्र है। हम भी 5 साल में एक बार वोट देते हैं। रूस में भी वोट दिया जाता है। पर वहाँ पर तो तानाशाही है। यहाँ पर भी तानाशाही ही है। कांग्रेस!! कांग्रेस!!! कांग्रेस जो चाहती है, करती है। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की मृत्यु हो गई, पर मामले को दबा दिया गया। यह कोई साधारण व्यक्ति की मृत्यु नहीं थी और न ही साधारण स्थितियों में हुई थी। पर सरकार ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। एक बार भगवान् राम के शासन में एक ब्राह्मण के बेटे की मृत्यु हो गई। ब्राह्मण दरबार में आया और उसने राज्य से इसका उत्तर माँगा। राजा राम को राजगद्दी छोड़कर इसका पता लगाने के लिए वन-वन भटकना पड़ा। डॉ. श्यामाप्रसादजी की मृत्यु ऐसी-वैसी मृत्यु नहीं है। उसमें षड्यंत्र का आभास मिलता है। हमारे पास कुछ तथ्य हैं। हमने सरकार से निष्पक्ष जाँच कमीशन बैठाने की माँग की है, पर सरकार तैयार नहीं हुई, तो हम अपना कमीशन बैठा देंगे। क्या यही प्रजातंत्र है? यदि यह प्रजातंत्र है तो कश्मीर का

सत्याग्रह क्यों हुआ?[5] इतने लोगों को जेल क्यों जाना पड़ा?

हमने तो पहले ही कहा था कि सरकार शेख़ अब्दुल्ला के बारे में अपनी नीति बदले। शेख़ अब्दुल्ला अलग राज्य बनाना चाहता है, जबकि हमारा आदर्श है 'एक विधान, एक प्रधान और एक निशान', पर नेहरूजी ने बात नहीं मानी। क्यों? क्योंकि प्रजातंत्र नहीं है। आप मेंबर चुनते हैं और वे वहाँ जाकर केवल हाँ में हाँ मिलाने का काम करते हैं। वे आपकी आवाज़ नहीं उठाते और न ही अपनी आवाज़ उठाते हैं। वे सत्य को जानते हुए भी कहने से डरते हैं कि कहीं नेहरू का कोपभाजन न बनना पड़े। यदि जनसंघ ने आंदोलन न किया होता तो आज कश्मीर चला गया होता। शेख़ अब्दुल्ला इसे निगल गया होता।

आज कांग्रेस व कम्युनिस्ट कहते हैं कि शेख़ अब्दुल्ला अमरीका का एजेंट था। यदि वह अपने स्थान पर कुछ दिन और रहता तो कश्मीर के अस्तित्व को ख़तरा था। यही बात डॉ. मुखर्जी ने पार्लियामेंट में कही तो कम्युनिस्टों व कांग्रेस वालों ने इसका विरोध किया। नेहरूजी ने मुखर्जी के भाषण का उत्तर देते हुए कहा कि अब्दुल्ला देशभक्त व राष्ट्रीय विचार वाला है और मेंबरों ने तालियाँ बजाकर भाषण का स्वागत किया। कुछ दिनों बाद नेहरू को कहना पड़ा कि अब्दुल्ला अराष्ट्रीय व देशद्रोही है, इसलिए हमें उसे गिरफ़्तार करना पड़ा, तब भी मेंबरों ने तालियाँ बजाईं। तो ये मेंबर केवल तालियाँ बजाने का काम करते हैं। यह जनतंत्र के विरुद्ध है।

देश की जनता ने माँग की कि गोहत्या बंद हो। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने 1.75 करोड़ हस्ताक्षर एकत्र किए। आर्यसमाज, गोसेवक समाज आदि ने भी यही माँग की। फिर इस प्रकार का क़ानून सरकार क्यों नहीं बनाती। क्योंकि यह जनतंत्र नहीं। हमारे यहाँ व्यक्तियों को स्वतंत्रता नहीं है। संविधान के अनुसार किसी व्यक्ति को गिरफ़्तार करने के 24 घंटे के अंदर मजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित करना पड़ता है। पर हमारे यहाँ अखिल भारतीय नेताओं को भी 30 घंटे तक मजिस्ट्रेट के सामने नहीं लाया जाता। क्या यही प्रजातंत्र है? यदि प्रजातंत्र होता तो विद्यार्थियों पर गोलियाँ नहीं चलतीं, आंध्र प्रांत बनाने के लिए रामलू[6] को अपने प्राण न खोने पड़ते, कश्मीर सत्याग्रहियों को जेलों में न सड़ना पड़ता व डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की मृत्यु इस प्रकार नहीं होती।

---

5. कश्मीर सत्याग्रह नवंबर, 1952 में प्रजा परिषद् द्वारा जम्मू और कश्मीर में नागरिकता, मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, वित्तीय एकीकरण, निर्वाचन आदि मूलभूत संवैधानिक प्रावधानों को जम्मू-कश्मीर में लागू करवाने के लिए किया गया।
6. पोट्टी श्रीरामलू (1901-1952) ने मद्रास प्रेसीडेंसी से तेलुगू-भाषी जनसंख्या के लिए अलग राज्य की माँग के लिए 58 दिन का आमरण अनशन किया। इसी आमरण अनशन के चलते पोट्टी श्रीरामलू की 15-16 दिसंबर, 1912 को मृत्यु हुई। इसके बाद 19 दिसंबर, 1952 को तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने भाषाई आधार पर अलग आंध्र प्रदेश बनाने की माँग को स्वीकार कर लिया।

आर्थिक प्रजातंत्र

राजनीतिक प्रजातंत्र की तरह आर्थिक प्रजातंत्र भी हमारे यहाँ नहीं है। हर एक नागरिक को काम करने का अधिकार है, पर भारत में 13 करोड़ लोगों को काम नहीं है। बेकारी सुरसा के मुख की तरह बढ़ती जा रही है। काम की गारंटी सरकार की ओर से मिलनी चाहिए। बड़ा आश्चर्य है कि इस कर्मभूमि में लोगों को काम नहीं। अंग्रेज़ों ने इस देश में बेकार पैदा होने की शिक्षा दी और वही शिक्षा अब भी दी जा रही है। उद्योग-धंधों के बारे में भी हमारी नीति बदलनी चाहिए। बड़े-बड़े उद्योग-धंधे स्थापन करने की नीति ग़लत है। इंग्लैंड-अमरीका की तरह बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण बदलना होगा। इसके स्थान पर उद्योगों का विकेंद्रीकरण करना होगा। भारत 7 लाख गाँवों का देश है। गाँवों में चलने योग्य छोटे-छोटे उद्योगों की ओर ध्यान देना होगा।

आज पूँजीवादी या कम्युनिस्ट दोनों ही 'अर्थ' के केंद्रीकरण में विश्वास रखते हैं। पूँजीवादी 'अर्थ' को पूँजीपतियों में केंद्रित करना चाहते हैं, जबकि कम्युनिस्ट 'अर्थ' को राज्य में केंद्रित करना चाहते हैं। पर भारत में दोनों से ही काम नहीं चलेगा। हमें उद्योगों का विकेंद्रीकरण करना होगा। छोटे-छोटे कुटीर उद्योगों को लेकर चलना होगा। बड़े दुःख की बात है कि पंचवर्षीय योजना में बड़े-बड़े उद्योगों के लिए 1500 करोड़ रुपए रखे गए हैं, जबकि छोटे-छोटे उद्योगों के लिए केवल 300 करोड़। यही कारण है कि छोटे-छोटे उद्योग बिगड़ते जा रहे हैं व स्वदेशी वस्तुओं का ह्रास होता जा रहा है।

दूसरा बड़ा दोष यह है कि हमारे यहाँ धन का वितरण ठीक नहीं है। 5.5 करोड़ रुपए राजाओं की प्रिवी पर्स[7] के रूप में जाता है। भारत के राष्ट्रपति 10,000 पाते हैं। राज्यपाल तथा अन्य लंबी तनख़्वाह पाने वाले अफसरों की तनख़्वाह में साढ़े सत्ताईस करोड़ ख़र्च होता है। इस प्रकार 27.50 + 5.5 = 33 करोड़ रुपए बड़े-बड़े लोगों की जेब में जाते हैं। किसी को कितनी भी तनख़्वाह मिले, हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं। पर इस धन का बहुत छोटा भाग आवश्यक ख़रीद के रूप में बाज़ार में आता है और बाक़ी सारा बैंकों में जाता है या विदेशों में। यही पैसा यदि शिक्षकों में बाँट दिया जाए तो वह बाज़ार में आएगा। इससे व्यापार में तेज़ी आएगी। राष्ट्र की क्रयशक्ति बढ़ेगी, उत्पादन बढ़ेगा और बेकारी की समस्या हल हो जाएगी। आज जिस गति से काम हो रहा है, उससे तो सन् 1977 में राष्ट्र की क्रयशक्ति 50 प्रतिशत बढ़ेगी, ऐसा मत है, फिर तब तक क्या होगा? इसलिए छोटे-छोटे उद्योगों को लेकर चलना व धन का ठीक वितरण होना, यही प्रजातंत्र है।

---

7. प्रिवी पर्स देसी रियासतों के राजाओं को उनकी रियासतों को भारत में विलय करने के फलस्वरूप मिलने वाली राशि थी। यह राशि सभी 562 रियासतों को निर्धारित मानकों के अनुसार हज़ार से लाख रुपयों में आवंटित की गई थी। लेकिन 1971 में 26वें संविधान संशोधन द्वारा यह व्यवस्था समाप्त कर दी गई।

यही दो सिद्धांत लेकर जनसंघ चल रहा है और धीरे-धीरे शक्ति का संग्रह कर रहा है। अन्यायों का विरोध इसने आरंभ से ही किया है। सरकार का विरोध करना आजकल की पद्धति बन गई है। सरकार की ग़लतियाँ निकालना लोगों का अधिकार है, पर कर्तव्यों से भी च्युत नहीं होना चाहिए। यह सरकार भ्रष्टाचारी और घूसखोर है, इसलिए इसको हम इनकम टैक्स नहीं देंगे, ऐसा कहने वाले और करने वाले भी ग़लती पर हैं। आज जनतंत्र है, जनता मालिक है और सरकार नौकर है। हम इनकम टैक्स दें पर साथ ही अपनी शक्ति बढ़ाएँ। शक्ति होने पर ही अन्यायों का प्रतिकार हो सकेगा।

शक्ति होगी तो नेहरू भी मानेंगे। भक्त जब तपश्चर्या करता है और शक्ति प्राप्त कर लेता है तो भगवान् भी उससे पूछते हैं, 'क्या चाहिए?' बिना पूछे ही कुछ नहीं दे डालते। शक्तिसंपन्न करेंगे और अन्यायों का प्रतिकार करेंगे, यही हमारा सिद्धांत है। देश की चार अखिल भारतीय संस्थाओं में से कांग्रेस धीरे-धीरे नष्ट होती जा रही है। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी अवसरवादी है और अवसरवादी टिक नहीं सकते। सिद्धांतों पर चलने वाली पार्टियाँ केवल दो हैं—कम्युनिस्ट पार्टी और जनसंघ। यदि राष्ट्रीय दल और प्रजातंत्र चाहिए तो आपके सामने जनसंघ है और यदि तानाशाही चाहिए तो कम्युनिस्ट पार्टी है।

पर कम्युनिस्ट पार्टी भी राष्ट्रीयता की नींव नहीं हिला सकती। हज़ारों वर्षों से शक, हूण, मुग़लों और अंग्रेज़ों ने राष्ट्रीयता को नष्ट करने का प्रयत्न किया, पर सफल नहीं हुए। आज रोटी के नाम पर भी राष्ट्रीयता हिल नहीं सकती। और रोटी देने रूस थोड़े ही आएगा? रोटी यहाँ होगी, शक्ति हमारी, युक्ति हमारी, बुद्धि हमारी, फिर बाहर वालों का नाम क्यों? हम आपस में ही फ़ैसला कर लेंगे। अपना सिर फोड़ लेंगे, पर जयचंद न बनेंगे। महाभारत लड़ लेंगे, पर बाहर के व्यक्तियों को नहीं बुलाएँगे। अतः राष्ट्रीयता और प्रजातंत्र इन सिद्धांतों को लेकर चलने वाले जनसंघ को सक्रिय सहयोग दीजिए।

—पाञ्चजन्य, नवंबर 30, 1953

□

40

जनसंघ के महामंत्री का कर्नाटक दौरा

धारवाड़ से अपना दस दिन का दौरा प्रारंभ करके दीनदयालजी ने हुबली, बालकोट, बीजापुर, बेलगाँव, मेंगलूर, मैसूर, तुमकुर आदि प्रसिद्ध स्थानों में सार्वजनिक सभाओं, पत्रकार-सम्मेलनों तथा जनसंघ के कार्यकर्ताओं की बैठकों में भाषण करते हुए अंत में बंगलौर में अपना दौरा समाप्त किया। इस अवसर पर एक वक्तव्य।

कुछ दिन पूर्व प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने अपने पत्रकार–सम्मेलन में पाक–अमरीकी सैनिक गठबंधन की चर्चा की थी। यद्यपि पाकिस्तानी एवं अमरीकी क्षेत्रों ने बड़ी कूटनीतिपूर्वक उक्त चर्चा की आलोचना करते हुए उसे ग़लत बताया है, पर वस्तुस्थिति क्या है, यह तो अंतरराष्ट्रीय राजनीति कुशल हमारे प्रधानमंत्री ही बता सकते हैं। किंतु एक बात निश्चित है कि भारतीय जनता पर इसका प्रभाव विचित्र रूप से पड़ेगा।

भारत–पाकिस्तान के वर्तमान संबंध को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि पाक–अमरीकी गठबंधन से भारत की सर्वसाधारण जनता में रूस के प्रति सहानुभूतिपूर्ण भावना का निर्माण होगा। यह निश्चित है कि विश्व के दोनों गुटों में भारत न किसी के पक्ष में है और न विरोध में, फिर भी पाकिस्तान द्वारा भारत की सुरक्षा को ख़तरे में पड़ते देखकर भारतीय कम्युनिस्ट इस अवसर से लाभ उठाकर जनता को उभाड़ना अवश्य चाहेंगे। अमरीका द्वारा पाकिस्तान को दी गई कोई भी सैनिक सहायता भारत में कम्युनिज़्म को घटाने के बजाय उसकी वृद्धि ही करेगी।

पाकिस्तान का विधान संबंधी निर्णय भी भारतीयों के लिए एक विचारणीय विषय है। भारत का विभाजन इसी आधार पर स्वीकार किया गया था कि पाकिस्तान में हिंदुओं

के साथ समानता का व्यवहार होगा। परंतु आज वे अपने उस अधिकार से वंचित हो रहे हैं। यह आनंद का विषय है कि प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने इस पर ध्यान दिया है। यद्यपि पाकिस्तान विधानसभा के हाथ में सारी ताक़त दे दी गई है। अत: हम यह विश्वास रखते हैं कि यह विधानसभा पाकिस्तान की स्थापना करने वाले अपने नेताओं द्वारा दिए गए वादे का आदर करेगी। भारत सरकार को यह देखना आवश्यक है कि पाकिस्तान अल्पसंख्यक हिंदुओं के साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार होता है अथवा नहीं।

जहाँ तक भाषावार प्रांतों की रचना का प्रश्न है, अब तक इसके पक्ष एवं विरोध में बहुत कुछ कहा–सुना जा चुका है। सरकार ने इसके लिए एक आयोग बना दिया है, जो प्रांतों के पुनर्निर्माण पर विचार करेगा। इस प्रश्न को लेकर काफ़ी सरगर्मी देश में आ गई है। अत: जननायकों से मेरा यह निवेदन है कि वे जनता की भावनाओं को संयम से रखें, ताकि इस महत्त्वपूर्ण कार्य का संपादन स्वस्थ एवं शांतिपूर्ण वातावरण में हो सके। जनसंघ सदा से इस बात का समर्थक रहा है कि प्रांतों की रचना शासन की सुविधा, आर्थिक स्थिति, सुरक्षा तथा भाषा के आधार पर की जाए। शासन की दृष्टि में भाषा की एकता अवश्य एक प्रमुख स्थान रखती है, पर केवल यही आधार न हो। प्रांतों की रचना के पश्चात् भी सभी प्रांतों में भाषा के आधार पर अल्पसंख्यकों का रहना अनिवार्य ही है, अत: भाषा को विशेष महत्त्व देना कदापि उचित नहीं।

देश के शिक्षित एवं अन्य वर्गों में बढ़ती हुई बेकारी की समस्या भी आज विकराल रूप धारण करती जा रही है। यद्यपि सरकार ने इस समस्या के हल के लिए कुछ योजनाएँ बनाई अवश्य हैं, पर वे कहाँ तक सफल हो सकेंगी, यह अभी कहना कठिन है। जनसंघ का मत है कि बेकारी की समस्या अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अतएव इसके हल के लिए सर्वप्रथम सभी आर्थिक योजनाओं के पीछे की मूलभूत धारणाओं में ही परिवर्तन करने की आवश्यकता है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के उत्पादन बढ़ाने के लिए बड़े उद्योगों को ही अधिक महत्त्व दिया है। वितरण व्यवस्था की बिल्कुल उपेक्षा कर दी गई है, परिणामत: लोगों की क्रयशक्ति कम हो गई है। जनसंघ चाहता है कि कुटीर उद्योग ही योजना का आधार बनें तथा बड़े उद्योग छोटे उद्योगों के पूरक के रूप में चलाए जाएँ। इन कुटीर उद्योगों को तात्कालिक सहायता पहुँचाने के लिए सरकार उनके लिए बाज़ारों की खोज करे और यदि खुले बाज़ार न मिलें तो इनके द्वारा निर्मित वस्तुओं को एक निश्चित मूल्य में ख़रीदने की व्यवस्था करे। नए उद्योग खोले जाएँ, पर इस बात की सावधानी अवश्य रखी जाए कि ये नए उद्योग वर्तमान उद्योगों के लिए घातक न सिद्ध हों।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 14, 1953

□

41

अर्थ अंक पर सम्मति

पाञ्चजन्य का अर्थ अंक दीपावली 1953 को प्रकाशित हुआ था। यह अंक आर्थिक व्यवस्था संबंधी सभी पक्षों के विवेचन के लिए था। इस अंक पर दीनदयालजी की सम्मति।

अर्थ-अंक पसंद आया। लेखों का चयन अच्छा है। सभी विचारधाराओं का समावेश करने पर भी संपूर्ण अंक में एक अंतर्भूत एकता के दर्शन होते हैं। आपने संपादकीय में जो विचार प्रकट किए हैं, उनसे मैं मोटे रूप से सहमत हूँ।

श्री शिवशंकर मिश्र का लेख मध्यवर्ग की दशा का सही और कारुणिक वर्णन तो करता है किंतु उसमें उसके सुधार का कोई व्यावहारिक सुझाव पेश नहीं किया गया। भारतीय जनसंघ मध्यम वर्ग की दशा सुधारने के लिए चिंतित है किंतु अंग्रेज़ी राज्यकाल में उत्पन्न, उसकी शिक्षा और संस्कार का ग़ुलाम तथा बहुत कुछ उसके शासनतंत्र का पुर्जा, यह मध्यम वर्ग अपनी मनोवृत्ति में क्रांतिकारी परिवर्तन किए बिना अपनी दशा सुधार सकेगा, इसका मुझे विश्वास नहीं। हाँ, नया मध्यम वर्ग पैदा हो रहा है, वह सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से भी आगे बढ़े और चैतन्ययुक्त हो, इसका प्रयत्न करना होगा। विकेंद्रीकरण एवं आय के 1 : 20 के अनुपात से पुराने सफ़ेदपोश मध्यम वर्ग की दशा सुधारी जा सकेगी। श्री रावी का लेख भी मिश्रजी को कुछ उत्तर देगा।

आचार्य रामचंद्र तिवारी के ऐतिहासिक विश्लेषण से मैं सहमत नहीं हो सका, निष्कर्ष एकपक्षीय प्रतीत हुए। पुनः एक बार पढ़कर समझने का प्रयत्न करूँगा।

पंचवर्षीय योजना में श्री रणदिवे की आलोचना को क्यों स्थान दिया गया? अन्य दलों की आलोचनाओं का समावेश नहीं है। वैसे भी वह विचारपूर्ण न होकर केवल भावपूर्ण है।

चीन की अर्थव्यवस्था का चित्रण भी निष्पक्ष नहीं हुआ। चीन से सीखने लायक़ बहुत कुछ हो सकता है, और उसमें सबसे महत्त्वपूर्ण यही है कि जिस प्रकार चीन ने रूस की अंधी नक़ल न करके कम्युनिज़्म को अपना जामा पहनाया, उसी प्रकार हम भारतीय पृष्ठभूमि में रूस और चीन के तथाकथित साम्यवादी कार्यक्रम को लाने के स्थान पर भारतीय जीवन का आर्थिक विकास करें, फिर उसके विकास की रूपरेखा का साम्यवाद से कोई साम्य हो तो आपत्ति नहीं।

पं. रामनरेश त्रिपाठी का लेख अच्छा है किंतु वस्तु विनिमय अर्थव्यवस्था को वापस कैसे लाया जाए, यह समस्या है? जाति व्यवस्था और अर्थव्यवस्था हमारे गाँवों में इतनी घुल-मिल गई थी कि एक का परिणाम दूसरे पर हो रहा है। जाति-व्यवस्था से उत्पन्न भेदभाव के परिणामस्वरूप लोग उसे सहन करने को तैयार नहीं किंतु उसको नष्ट करते हुए अपनी अर्थव्यवस्था पर भी आघात किया है, जो अर्थव्यवस्था पुरानी जाति-व्यवस्था को लाने का प्रयत्न करे, उसे मानने को लोग तैयार नहीं।

संपादकीय में श्री अशोक मेहता के शासन के साथ सहयोग की नीति की आलोचना करते हुए 'मूर्खतापूर्ण' शब्द के स्थान पर यदि किसी सौम्य शब्द का प्रयोग होता तो 'पाञ्चजन्य' की प्रतिष्ठा के अनुरूप होता।

ऊपर जो थोड़ी सी मूषक प्रवृत्ति दिखाई है, उसका यह अर्थ नहीं कि अंक में उपयोगी बातें नहीं, वे तो बहुत हैं। निश्चित ही अंक भारतीय अर्थनीति की दिशा में विचार करने वालों के लिए ठोस सामग्री प्रस्तुत करता है।

आपके सराहनीय प्रयत्न के लिए शब्द के अभाव में 'बधाई' देकर ही शिष्टाचार का पालन करता हूँ।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 28, 1953

□

42

केरल में भारतीय जनसंघ की स्थापना

दीनदयालजी के केरल प्रवास का विवरण। ऑर्गनाइज़र में यह यात्रा-वृत्तांत 1 दिसंबर, 1953 को प्रकाशित हुआ। लगता है, पाञ्चजन्य में यह देर से प्रकाशित हो सका।

भारतीय जनसंघ के महामंत्री, पं. श्री दीनदयाल उपाध्याय के केरल प्रदेश पहुँचते ही उनके दर्शन एवं भाषणों से वहाँ की जनता ने निराशा के घोर अंधकार में प्रकाश का अनुभव किया। केरल की जनता कांग्रेस-ईसाई गठबंधन से बिल्कुल निराश हो चुकी थी। कांग्रेस-ईसाई षड्यंत्र के संबंध में हम 'पाञ्चजन्य' के पाठकों को इसके पूर्व ही सूचित कर चुके हैं। कांग्रेस की ओर से निराश होकर वहाँ के हिंदुओं ने कुछ दिनों से 'हिंदू महामंडल' नाम की संस्था को अपना आशा केंद्र बनाया था, किंतु दुर्भाग्यवश यह संस्था भी आख़िर कांग्रेस की ही चचेरी बहन निकली। परिणामतः उससे भी निराश होकर अनेक हिंदुओं ने वामपंथी संस्थाओं में प्रवेश करना प्रारंभ कर दिया था। किंतु पं. दीनदयालजी के एक सप्ताह के तूफानी दौरे से ऐसा प्रतीत होता है कि यह निराशा दूर होकर अब सर्वत्र आशा का वातावरण फैल रहा है। जनसंघ के ध्वज के नीचे एकत्र होने के लिए जनता अत्यधिक उत्सुक एवं अधीर हो उठी है।

अपने तूफानी दौरे के सिलसिले में भी दीनदयालजी ने एरणाकुलम, एलेपी, त्रिवेंद्रम, कोट्टयम, क्वीलोन, पालघाट तथा कालीकट आदि प्रमुख स्थानों का भ्रमण किया और वहाँ के प्रमुख

नागरिकों से मिले। उन्होंने स्थान-स्थान पर जनसंघ की स्थापना कर अस्थायी समितियों का भी निर्माण किया।

एरणाकुलम के श्री पी.के. कृष्णन, कुट्टी मेनन, नायर सर्विस सोसाइटी[1] (N.S.S.) के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री एन. गोविंद मेनन, त्रिवेंद्रम के श्री मान्नार, पी. गोपाल नायर तथा सरदार पणिक्कर के भ्राता डॉ. के.पी. पणिक्कर आदि अनेक प्रमुख नेताओं ने श्री दीनदयालजी से भेंट-वार्त्ता की और यह निश्चय किया गया कि दल के संगठन के बारे में विचार-विमर्श करने के लिए जनवरी महीने में शीघ्र ही अस्थायी समितियों (Adhoc) का एक सम्मेलन बुलाया जाए।

दक्षिण भारत के दौरे में जनसंघ के प्रति सबसे अधिक उत्साह उन्हें त्रावणकोर कोचीन[2] की जनता में दिखाई दिया, इस प्रदेश की जनता कांग्रेस और कम्युनिस्टों से इतनी तंग आ चुकी है कि राष्ट्रीय विचारधारा रखने वाले नवीन दल भारतीय जनसंघ के प्रति वह अत्यंत उत्सुक हो उठी है।

—संपादक, पाञ्चजन्य

केरल में जनसंघ का प्रांतीय कार्यालय स्थापित किया जा चुका है। मलाबार में, कालीकट और पालघाट, त्रावणकोर-कोचीन में एरणाकुलम, कोट्टयम, एलेपी में अस्थायी समितियाँ स्थापित हो गई हैं।

भारतीय जनसंघ अखंड भारत के लिए कृतसंकल्प होकर खड़ा है। हिंदू-मुसलिम तथा भारत-पाक समस्या का एकमात्र हल अखंड भारत ही है, जिसमें सभी को समान अधिकार एवं अपनी उन्नति के लिए समान अवसर प्राप्त होगा। एक स्वतंत्र और प्रजातंत्र राज्य में किसी भी धार्मिक अल्पसंख्यक समाज को कोई विशेष सुविधाएँ अधिकार देने का प्रश्न ही नहीं उठता।

कश्मीर की पिछली घटनाओं ने जनसंघ की नीति को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है। यदि सरकार ने कुछ पहले ही इस ओर ध्यान दिया होता तो देश को स्व. डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी जैसे महान् देशभक्त नेता का बलिदान नहीं देखना पड़ता।

---

1. नायर सर्विस सोसाइटी की स्थापना 10 अक्तूबर, 1914 को मन्नाथु पद्मनाभन (1878–1970) ने की थी। यह सोसाइटी उस वक़्त अस्तित्व में आई, जब नायर समाज सामाजिक आडंबर एवं अनुचित प्रथाओं का केंद्र बन गया था। पद्मनाभन ने नायर सर्विस सोसाइटी द्वारा नायर समाज के दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया।
2. संयुक्त त्रावणकोर-कोचीन : आज़ादी के बाद 1 जुलाई, 1949 को दो रियासतों—त्रावणकोर और कोचीन को मिलाकर एक संयुक्त प्रांत बनाया गया था। 1956 के राज्य पुनर्गठन अधिनियम मद्रास स्टेट के मलाबार ज़िले को त्रावणकोर-कोचीन के साथ मिलाकर 1 नवंबर, 1956 को केरल राज्य की स्थापना की गई।

राज्य को मनुष्य की कार्यशक्ति पर अवश्य विचार करना चाहिए। आज जिस गति से हम चल रहे हैं, यदि आगे भी यही गति रही तो एक क्या पाँच पंचवर्षीय योजनाएँ भी बेकारी की समस्या को हल नहीं कर सकेंगी। बेकारी की समस्या को हल करने के लिए एक ही मार्ग है कि मुख्य उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाए तथा दूसरे उद्योगों का विकेंद्रीकरण। बड़े-बड़े उद्योग केंद्रों में मशीनों ने मनुष्य का स्थान ले लिया है। परिणामत: आज वे मशीनें मानव हित में अत्यंत घातक हो गई हैं। जिन बड़े उद्योगों का विकेंद्रीकरण हम नहीं कर सकते, उनमें हमें मज़दूरों को हिस्सा देना आवश्यक है।

भूमि वह तो जोतने वाले की है। ज़मींदार और जागीरदार तो केवल पुनर्वास अनुदान (Rehabiliation grant) के अधिकारी हैं। स्वदेशी नीति एवं दृष्टिकोण के अभाव में स्वराज्य बिल्कुल अधूरा ही है। स्वदेशी नीति के द्वारा ही राष्ट्रीय निधि को मज़बूत बनाया जा सकता है। सरकार को इसलिए त्वरित कार्रवाई करने की आवश्यकता है।

केरल विधानसभा में अविश्वास प्रस्ताव पारित होने के बाद जॉन मंत्रिमंडल[3] के लिए अब गद्दी पर बने रहना उचित नहीं। यद्यपि इंग्लैंड में निंदा प्रस्ताव के पश्चात् नए चुनाव होने तक पूर्व मंत्रिमंडल ही कार्य करता रहता है, परंतु वहाँ इस बात का ध्यान रखा जाता है कि नया चुनाव अधिक-से-अधिक एक महीने के भीतर हो जाए। राजनीतिक नैतिकता के यह सर्वथा विपरीत है कि पराजित मंत्रिमंडल एक वर्ष तक इस बहाने कार्य करता रहे कि वह विधानसभा से अधिक अच्छी तरह जनता का प्रतिनिधित्व करता है।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 28, 1953

□

3. अनपरांबिल जोसेफ जॉन (1893-1957) : त्रावणकोर-कोचीन राज्य के 1952 से 1954 तक मुख्यमंत्री रहे।

43

हमारा काश्मीर

हमारा काश्मीर

दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म प्रकाशन

हमारा काश्मीर

महर्षि कश्यप की भूमि तथा भारत का भाल कश्मीर गत पाँच वर्षों से हमारे लिए समस्या बना हुआ है। 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदैव रूप रमणीयताया:' के आदर्श को जहाँ सत्य सृष्टि में परिणत करने के लिए प्रकृति नटी नित्य नया सौंदर्य बिखेरती रहती थी, आज वही कश्मीर अपनी समस्या का नित्य नया स्वरूप प्रकट कर रहा है। जहाँ भगवान् अमरनाथ की आराधना में भारत ने अपने 'शिव' का साक्षात्कार किया, वही कश्मीर आज 'अशिव' की उपासना कर रहा है। जिस पर्वत शृंग पर जगद्‌गुरु शंकराचार्य ने भारतीय एकता की प्रतिष्ठापना कर अपनी विजयध्वजा फहराई थी, उसी गिरिशृंग पर खड़े होकर आज कश्मीर के नेता भारतीय एकता को चुनौती दे रहे हैं। हिमाद्रि की जिन श्रेणियों ने अपना तन गला-गलाकर भारत की भूमि को सींच शस्य-श्यामला बनाया तथा अपनी सबल भुजाओं से शत्रु का मान मर्दन किया, आज उसी पर्वतमाला की रक्षा के लिए भारत संतान अपने रक्त की एक-एक बूँद सुखा रही है। नंदन कानन की श्री को भी लजाने वाला जो कश्मीर हमें सदा सुख और शांति देता था, आज वह हमारी चिंता का कारण क्यों बना है?

भारत विभाजन का दुष्परिणाम

कश्मीर की समस्या को पेचीदा बनाने का कारण हमारे नेताओं की अयथार्थवादी नीति तथा मिथ्या आदर्शों की उपासना ही है। इसी नीति के कारण देश का विभाजन हुआ और इसी के परिणामस्वरूप विभाजनजन्य अनेक समस्याओं के सुलझाने में हम असफल रहे हैं। कश्मीर की समस्या भी इनमें से एक है। यदि देश की अखंडता को हमने भंग न किया होता अथवा जिस ग़लत द्विराष्ट्र के सिद्धांत को मानकर हमने भारत के टुकड़े किए, उस सिद्धांत को स्वीकार न किया होता तो हमारे सामने आज कश्मीर जैसा कोई भी प्रश्न उपस्थित नहीं होता। समस्या की वास्तविकता को समझने के लिए हमें थोड़ा सा विगत घटनाओं का ऊहापोह करना होगा।

3 जून, 1947 की लॉर्ड माउंटबेटन योजना के अनुसार जब हमारे नेताओं ने मुसलिम लीग की दुराग्रहपूर्ण सांप्रदायिकता के सामने घुटने टेककर भारत का विभाजन स्वीकार कर लिया तो उक्त योजना को कार्यान्वित करने के लिए ब्रिटिश पार्लियामेंट ने 'इंडिया इंडिपेंडेंस ऐक्ट 1947' पास किया। इसके अनुसार 'पाकिस्तान' और 'इंडिया' नाम के दो स्वतंत्र डोमिनियंस बना दिए गए तथा भारत की देशी रियासतों को स्वतंत्र कर दिया गया। उन्हें अधिकार दिया गया कि वे चाहे जिस डोमिनियन में सम्मिलित हो जाएँ। 15 अगस्त, 1947 से पहले भारत की सीमा में अवस्थित सभी रियासतों ने, कश्मीर तथा हैदराबाद को छोड़कर, भारत के साथ सम्मिलन स्वीकार कर लिया, जिसके अनुसार सुरक्षा, विदेश नीति तथा यातायात संबंधी सभी अधिकार भारत सरकार के अधीन कर दिए गए। किंतु कालावधि में सभी राजाओं एवं महाराजाओं ने भारतीय एकता की आवश्यकता को अनुभव करते हुए अगला देशभक्तिपूर्ण क़दम उठाया तथा अपने राज्यों के सभी अधिकार भारत को सौंप दिए। परिणामस्वरूप भारत के अन्य प्रदेशों के समान ही शेष देशी रियासतें भी भारत का अंग बन गईं। लौहपुरुष सरदार पटेल की नीतिमत्ता और दृढता से हैदराबाद का प्रश्न भी हल हो गया तथा वह भी भारत का अंग बन गया; किंतु कश्मीर का इतिहास कुछ भिन्न है।

शेख़ अब्दुल्ला तथा मुसलिम कॉन्फ्रेंस

15 अगस्त, 1947 तक कश्मीर राज्य ने भारत अथवा पाकिस्तान के साथ सम्मिलित होने का कोई निर्णय नहीं लिया। वह पाकिस्तान के साथ जाना नहीं चाहता था तथा भारत के साथ मिलने के लिए जो शर्तें भारत के नेता रख रहे थे, उन्हें वह उस समय मानने के लिए तैयार नहीं था। शर्त थी कश्मीर के शासन की बागडोर शेख़ अब्दुल्ला के हाथ में सौंप देना। शेख़ अब्दुल्ला का प्रारंभिक इतिहास तथा उनकी राजनीतिक कार्रवाइयाँ मुसलिम लीग के नेताओं से भिन्न नहीं हैं। वे अलीगढ़ यूनिवर्सिटी के स्नातक हैं, जहाँ पाकिस्तान का जन्म हुआ। सन् 1931 में अनुशासन-भंग के लिए सरकारी नौकरी से निकाले जाने पर उनके मन में कश्मीर शासन के विरुद्ध कटुता उत्पन्न हुई तथा उस काल के अंग्रेज़ रेज़ीडेंट की सहायता पाकर उन्होंने मुसलिम कॉन्फ्रेंस को जन्म दिया। मुसलिम कॉन्फ्रेंस की भूमिका वही थी, जो मुसलिम लीग की भारत में रही है। किंतु सन् 1939 में शेख़ अब्दुल्ला ने अनुभव किया कि भारत के किसी जनप्रिय आंदोलन की सहानुभूति के बिना वे कश्मीर में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। अतः उन्होंने मुसलिम कॉन्फ्रेंस का नाम बदलकर नेशनल कॉन्फ्रेंस कर दिया तथा महाराजा की अध्यक्षता में जनतांत्रिक शासन स्थापित करने का ध्येय लेकर आंदोलन करते रहे। सन् 1946 में जब भारत में कांग्रेस के नेता ब्रिटिश सरकार के साथ समझौते की बातचीत कर रहे थे, शेख़ अब्दुल्ला

ने भी आंदोलन का उपयुक्त समय जानकर 'कश्मीर छोड़ो' का नारा लगाया। उनका मतलब था कि महाराजा हरीसिंह कश्मीर छोड़ दें। कश्मीर छोड़ो आंदोलन का अनौचित्य स्वयं गांधीजी ने स्वीकार किया। कारण महाराजा हरीसिंह अंग्रेज़ों के समान किसी दूसरे देश के निवासी नहीं। वे कश्मीर छोड़कर कहाँ जा सकते थे? किंतु नेहरू ने कश्मीर छोड़ो का समर्थन किया तथा शेख़ अब्दुल्ला के काराबद्ध होने पर स्वयं उस आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए कश्मीर सरकार ने नेहरूजी को बंदी बना लिया तथा तीन दिन बाद मुक्त कर दिया। किंतु काँटा चुभ गया। भावी भारत के प्रधानमंत्री के साथ किए गए व्यवहार की छाया भविष्य की घटनाओं पर स्पष्ट दिखाई देती है।

शेख़ अब्दुल्ला को न छोड़ने की दुराग्रहपूर्ण नीति के कारण कश्मीर भारत के साथ सम्मिलित न हो पाया। इतना ही नहीं, 'यथास्थिति' समझौता भी न हो पाया। किंतु पाकिस्तान के साथ यथास्थिति समझौता हो गया। लेकिन पाकिस्तान को इससे संतोष कहाँ। वह तो कश्मीर को पाकिस्तान में मिलाना चाहता था। 15 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान ने कश्मीर स्थित डाकखाने की इमारतों पर पाकिस्तानी झंडा फहराने का प्रयास किया। कश्मीर सरकार ने इसका विरोध किया। फलतः पाकिस्तान ने कश्मीर पर दबाव डालने के अन्य उपाय काम में लाए। उसने कश्मीर की नाकेबंदी कर दी, जिनके कारण तेल, पेट्रोल, नमक आदि आवश्यक चीज़ों का कश्मीर में पहुँचना बंद हो गया।

पाकिस्तानी आक्रमण

एक ओर आर्थिक घेरा डाला गया तथा दूसरी ओर कश्मीर के अंदर विद्रोह तथा बाहर से आक्रमण की तैयारी आरंभ हुई। 22 अक्तूबर, 1947 को पाकिस्तानी फ़ौजों ने कबाइली लुटेरों के वेश में कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। साथ ही कश्मीर स्थित पंजाबी मुसलमानों ने आज़ाद कश्मीर सरकार की स्थापना कर विद्रोह कर दिया। कश्मीर के पास इतनी ताक़त नहीं थी कि वह आक्रमणकारियों का मुक़ाबला कर पाता। जो कुछ सेना थी, उसने स्थान-स्थान पर डटकर लोहा लिया। किंतु अंदर और बाहर दोनों ही ओर का विद्रोह दबाना था। आक्रमणकारी बढ़ते-बढ़ते श्रीनगर के निकट पहुँच गए। यदि उन्होंने श्रीनगर ले लिया होता तो कश्मीर का नक़्शा आज भिन्न होता।

भयंकर भूल

ऐसी विपन्न अवस्था में कश्मीर महाराजा ने भारत सरकार से सहायता की माँग की तथा भारत के साथ उसकी शर्तों पर सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया। मामला राज्य मंत्रालय का था, अतः सरदार पटेल को सँभालना चाहिए था। किंतु पंडित जवाहरलाल नेहरू ने विशेष रूप से कश्मीर के प्रश्न को अपने हाथ में लिया। कश्मीर का भारत में

सम्मिलन वैधानिक दृष्टि से पूर्ण हुआ था, किंतु नेहरूजी ने उसमें भी यह शर्त लगा दी कि यह सम्मिलन अस्थायी है तथा कश्मीर के संबंध का स्थायी निर्णय वहाँ की जनता जनमत संग्रह द्वारा करेगी। यह शर्त क्यों लगाई गई, यह कोई नहीं जानता। किंतु यह कितनी भयंकर भूल हुई, यह हम आगे देखेंगे। शेख़ अब्दुल्ला को शासन के सूत्र सौंप दिए गए तथा हमारी सेनाएँ 27 अक्तूबर को कश्मीर की सहायता के लिए हवाई मार्ग से श्रीनगर पहुँचीं। कश्मीर के युद्ध क्षेत्र पर भारतीय सेनाओं का इतिहास अत्यंत गौरव का इतिहास है। मातृभूमि की रक्षा के लिए गए हुए सैनिकों ने बलिदान और वीरता की भारतीय परंपरा को क़ायम रखा। शत्रु की बाढ़ रुक गई तथा उसे धीरे-धीरे पीछे खदेड़ना शुरू कर दिया। जब मोर्चा डट गया तो शत्रु भी अपने आपको छिपा न सका। यह स्पष्ट हो गया कि आक्रमणकारी कबाइली लुटेरे नहीं बल्कि पाकिस्तानी सेना के सिपाही हैं तथा उनका नेतृत्व भी सेना के अधिकारी कर रहे हैं। हमारी सेनाओं ने माँग की कि उन्हें पाकिस्तानी आक्रमण का प्रत्याक्रमण करने का मौक़ा दिया जाए। किंतु भारत सरकार ने आक्रमणकारियों के अड्डों पर, जो कि पाकिस्तान में थे, आक्रमण नहीं करने दिया। हमारे सैनिकों के सामने समस्या थी। उन्हें एक-एक विषफल को नष्ट करना पड़ता था किंतु वे वृक्ष की जड़ें नहीं काट सकते थे। हम पाकिस्तान के सैनिकों से लड़ रहे थे, किंतु हमारी गोली पाकिस्तान की सीमा में नहीं जा सकती थी, कारण—पाकिस्तान ने वैधानिक रूप से लड़ाई की घोषणा नहीं की थी।

अंतरराष्ट्रीय दाँवपेंच

कश्मीर का युद्ध चल रहा था, हमारे सैनिक पर्वतीय प्रदेश की कठिनाइयों और यातायात की असुविधाओं के बावजूद प्रबल मोर्चा संगठित कर रहे थे। उधर हमारी सरकार ने यह तय किया कि पाकिस्तान के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र संघ में उसके विधान के 35वें अध्याय के अनुसार मामला पेश करें। फलतः सुरक्षा समिति से निवेदन किया गया कि अंतरराष्ट्रीय शांति के लिए पाकिस्तान को विवश किया जाए कि वह आक्रमणकारियों को न केवल अपने राज्य में से कश्मीर में प्रवेश न करने दे अपितु वह अपने नागरिकों को भी उन्हें सहायता देने से रोके। भारत ने माँग की कि सुरक्षा समिति यह घोषणा करे कि पाकिस्तान आक्रमणकारी है तथा उसे इस कृत्य से रोका जाए। संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रश्न को भेजने के कारण यह समस्या केवल भारत की शांति और सुरक्षा की ही समस्या नहीं रह गई अपितु वह अंतरराष्ट्रीय दाँवपेंच का भी शिकार बन गई।

संयुक्त राष्ट्र संघ में भेजे गए मामले का इतिहास लंबा किंतु अंतरराष्ट्रीय राजनीति का नग्न चित्र उपस्थित करने वाला है। भारत की शिकायत के विरुद्ध प्रथम तो पाकिस्तान ने गुनाह से इनकार किया तथा घोषणा की कि वह तो दूध का धोया है। उलटे भारत को

सभी प्रकार से बदनाम करने की कोशिश की। किंतु जब सर ओवन डिक्सन यहाँ आए और उन्होंने वस्तुस्थिति को देखा तो पाकिस्तान ने एकदम स्वीकार कर लिया कि उसकी सेनाएँ कश्मीर में लड़ रही हैं तथा ऐसा भारत से अपनी रक्षा के निमित्त कर रही हैं। पाकिस्तान की इस स्वीकृति से भारत का दोषारोपण सिद्ध हो जाता है किंतु संयुक्त राष्ट्र संघ ने कोई भी निर्णय नहीं लिया, बल्कि मामले को तूल देता रहा। आज भी ग्राहम साहब वाशिंगटन में बैठे इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

हमारी खोखली एवं मित्रहीन वैदेशिक नीति के कारण संयुक्त राष्ट्र संघ में चाहे हम कश्मीर समस्या का हल न कर पा रहे हों, किंतु भारत में हमारी सेना अपने बल और वीरता से विजय पर विजय प्राप्त करती जा रही थी। शत्रु के छक्के छूट रहे थे तथा वह बराबर पीछे हटता जा रहा था। किंतु हमारी बढ़ती हुई सेना के क़दम एकदम रोक दिए गए। नए वर्ष के उपलक्ष्य में 1 जनवरी, 1949 से नेहरूजी ने युद्धबंदी की घोषणा कर दी। भागते हुए शत्रु के क़दम रुक गए। भारत के वीर सैनिक दिल मसोसकर रह गए। उनकी जीत हार में परिणत हो गई। पीठ दिखाकर भागने वाले शत्रु के हाथों उन्हें कश्मीर का 2/5 हिस्सा छोड़ देना पड़ा।

युद्धबंदी के बाद से नेहरूजी ने अनेक घोषणाएँ की हैं कि वे कश्मीर समस्या को शांति से ही हल करेंगे। हाँ, यदि पाकिस्तान ने युद्ध के लिए विवश ही किया तो अवश्य ही भारत को विवश होकर युद्ध करना पड़ेगा किंतु यह भी घोषणा की कि इस बार कश्मीर का युद्ध केवल कश्मीर तक सीमित न रहकर संपूर्ण भारत-पाक सीमा पर शुरू हो जाएगा। पाकिस्तान ने जब ज़िहाद की बातें करके पुनः कश्मीर से युद्ध प्रारंभ करने की कोशिश की तब संपूर्ण सीमा पर अपनी सेनाओं के लगा देने का अपेक्षित परिणाम हुआ तथा पाकिस्तान के होश ठिकाने आ गए।

आंतरिक समस्या

आक्रमण से उत्पन्न समस्या तो अभी हल होने को बाक़ी है ही किंतु उससे भी भीषण समस्या आंतरिक है, जिसने हाल ही में भीषण स्वरूप धारण कर लिया है। कश्मीर यद्यपि भारत में सम्मिलित हो गया है किंतु कश्मीर की युद्धरत स्थिति होने के कारण भारत का संविधान बनने के पूर्व अन्य रियासतों की भाँति पूर्ण सम्मिलन-क्रिया पूरी नहीं हो पाई। फलतः हमने विधान में कश्मीर के संबंध में अस्थायी प्राविधान कर दिए तथा यह विश्वास रखा कि ज्यों-ज्यों मामला सुलझता जाएगा, कश्मीर भी भारत का अभिन्न एवं अविभाज्य अंग होने के नाते अन्य राज्यों के समान गौरवपूर्ण पद प्राप्त करेगा। हमारा संविधान वहाँ पूर्णरूपेण लागू होगा तथा हमारा और कश्मीर का गठबंधन केवल सुरक्षा, यातायात तथा वैदेशिक मामलों तक ही सीमित न होकर व्यापक होगा।

इस गौरवपूर्ण एवं स्वाभाविक स्थिति का वैधानिक निर्णय यद्यपि कश्मीर के महाराजा एवं वहाँ के मंत्रिमंडल के द्वारा लिया जा सकता था कि नेहरूजी द्वारा दिए गए आत्मनिर्णय के वादे का लाभ उठाकर कश्मीर में एक अलग संविधान सभा बनाई गई तथा हाल ही में उस संविधान सभा ने जो निर्णय लिए हैं उससे भारत के सभी क्षेत्रों में काफ़ी हलचल मच गई है। कश्मीर संविधान सभा की 'मूलभूत सिद्धांत समिति' ने कश्मीर के लिए जिस संविधान की कल्पना की है, उसके अनुसार कश्मीर भारतीय गणराज्य के अंदर एक स्वतंत्र गणराज्य होगा, जिसका अपना निर्वाचित राष्ट्रपति, अलग राज्यध्वज तथा स्वतंत्र राष्ट्रगीत होगा। कश्मीर नेशनल कॉन्फ्रेंस के लाल झंडे में ही तीन सफ़ेद पट्टी जोड़कर कश्मीर का राज्यध्वज स्वीकार कर लिया है। कश्मीर संविधान सभा ने यह भी निर्णय कर लिया है कि कश्मीर में वंशानुगत शासक का पद समाप्त कर दिया जाए।

भारत की एकता को चुनौती

भारत की एकता के लिए यह नई चुनौती है। किंतु इसके लिए भी ज़िम्मेदारी हमारे प्रधानमंत्री को ही अधिक है। कारण, नेशनल कॉन्फ्रेंस एवं उसके नेताओं के मनोगत भाव इसके पूर्व भी स्पष्ट थे। शेख़ अब्दुल्ला के हाथ में जैसे ही सत्ता आई, उन्होंने धीरे-धीरे कश्मीर को सभी प्रकार से भारत से अलग एवं स्वतंत्र बनाने का प्रयत्न किया। एक ओर तो सुरक्षा, यातायात और वैदेशिक मामलों को छोड़कर सभी मामलों में भारत से संबंध विच्छेद करने का प्रयत्न किया तो दूसरी ओर जम्मू और कश्मीर राज्य में भारत के साथ पूर्ण सम्मिलन के पक्षपाती वर्गों को सभी प्रकार दबाना प्रारंभ किया। श्रीनगर का अलग विश्वविद्यालय बनाकर उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से संबंध तोड़ दिया। भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार कश्मीर के नागरिकों पर लागू नहीं तथा हमारे सुप्रीम कोर्ट को अधिकार नहीं कि कश्मीरवासी नागरिकों को न्यायदान दे सके। हमारे राज्यध्वज की प्रतिद्वंद्विता करता हुआ कश्मीर का अलग ध्वज खड़ा हुआ है। भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी के स्थान पर कश्मीर की भाषा उर्दू बनाई गई है।

स्वतंत्र कश्मीर की कल्पना

जिस नूतन कश्मीर की योजना लेकर शेख़ अब्दुल्ला सरकार चल रही है, वह स्वतंत्र कश्मीर की कल्पना लेकर ही चलती है। मार्च 1949 के अंत में नेशनल कॉन्फ्रेंस के कार्यकर्ताओं की एक सभा में श्रीनगर में भाषण करते हुए कॉन्फ्रेंस के मंत्री मौ. मुहम्मद सैयद ने कहा था, ''हमारे लिए भारत एक जिन (devil) है और पाकिस्तान आग। हम किसी के साथ सम्मिलित नहीं होना चाहते। किंतु हमारे सामने एक तीसरा मार्ग भी खुला है और यह मार्ग वही है, जो हमसे सादिक साहब (श्री जी.एम. सादिक,

विकासमंत्री) तथा श्री बेग़ साहिब (मियाँ अफ़ज़ल बेग़ आगम मंत्री) ने हमें सुझाया है। स्वयं शेख़ अब्दुल्ला ने लंदन ऑब्ज़र्वर के प्रतिनिधि श्री माइकल डेविसन को कहा, "किसी के भी साथ सम्मिलित होने से शांति स्थापित नहीं की जा सकती। हम दोनों ही अधिराज्यों से मैत्रीपूर्ण संबंध रखना चाहते हैं, जिसमें प्रत्येक का आर्थिक सहयोग उपलब्ध हो। इतने पर भी स्वतंत्र कश्मीर को न केवल भारत और पाकिस्तान से ही अपितु संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्य सदस्यों से भी मान्यता तथा प्रत्याभूति (गारंटी) मिलना अनिवार्य होगा।" सन् 1949 के मार्च में लंदन ऑब्ज़र्वर के माइकेल डेविसन से उन्होंने कहा, "हम कश्मीर को न तो भारत के साथ सम्मिलित करना चाहते हैं और न पाकिस्तान के साथ। हम उसे दोनों अधिराज्यों के बीच एक स्वतंत्र 'बफर-स्टेट' के रूप में ही रहने देना चाहते हैं।"

शेख़ अब्दुल्ला ने अपनी अभीप्सित-पूर्ति के लिए जहाँ एक ओर संविधान सभा से इस प्रकार के निर्णय कराए हैं, वहीं दूसरी ओर भारत के साथ सम्मिलन के पक्षपाती सभी वर्गों के प्रति दमन की नीति भी बरती है। जम्मू की प्रजा परिषद् के नेताओं को बराबर कोई-न-कोई बहाना लेकर जेल में डाल दिया जाता है। इतना ही नहीं तो संविधान सभा के चुनावों के समय जम्मू के सभी प्रजा परिषद् के उम्मीदवारों के नामज़दगी के परचे खारिज करवा दिए, जिसके फलस्वरूप संविधान सभा में नेशनल कॉन्फ्रेंस का ही एकाधिपत्य है। लद्दाख के नेता कौशिक बकुल की बात को दबा दिया जाता है। यहाँ तक कि उन्हें अपनी भाषा में बोलने तक नहीं दिया जाता। शेख़ अब्दुल्ला इस प्रकार अपनी स्वतंत्रता की ही इच्छा को पूर्ण नहीं कर रहे बल्कि छिपी सांप्रदायिकता का परिचय दे रहे हैं।

कश्मीर समस्या की सही पृष्ठभूमि

कश्मीर की समस्या को हमारी सरकार ने पग-पग पर ग़लती करके पेचीदा बना दिया है। इतना ही नहीं तो उसे सही पृष्ठभूमि में समझा ही नहीं गया। "कश्मीर कोई अलग राज्य नहीं बल्कि भारत का ही एक अंग है। भौगोलिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से कश्मीर भारत का ही एक अंग रहा है तथा राजनीतिक दृष्टि से भी कुछ थोड़े से कालखंड को छोड़कर—जबकि वह काबुल से शासित अफगान साम्राज्य के अंतर्गत रहा—विगत हज़ारों वर्षों से भारत का ही अंग रहा है। कश्मीरी भली-भाँति जानते हैं और इतिहास इस बात का साक्षी है कि कश्मीर को जब-जब भारत से कुछ भी इधर-उधर पृथक् किया गया है, उसकी भीषण आर्थिक तथा भौतिक क्षति हुई है। सौंदर्य का मूर्त स्वरूप कश्मीर अपनी जननी भारत के स्निग्ध अंक में ही सुखी एवं समृद्ध रह सकता है, अन्यत्र नहीं।" कश्मीर को अलग राष्ट्र मानकर उसे आत्मनिर्णय का अधिकार देना एक प्रकार से द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत को मानना है। एक देश में एक संविधान सभा

हो सकती है; एक ही राज्यध्वज हो सकता है तथा एक ही राष्ट्रगीत। केवल तीन विषयों के लिए सम्मिलन का कोई अर्थ नहीं। ये वे विषय हैं, जिनमें संपूर्ण ख़र्चा और ज़िम्मेदारी भारत पर होगी, कश्मीर पर कोई उत्तरदायित्व नहीं रहेगा। हमारी सेनाएँ कश्मीर की रक्षा करने एक स्वतंत्र राज्य के नाते नहीं अपितु मातृभूमि का अंग समझकर ही गई थीं और इसलिए ही उन्होंने सब प्रकार के बलिदान किए।

कश्मीर के महाराजा को हटाने का निर्णय कश्मीर की संविधान सभा नहीं अपितु भारतीय संसद् कर सकती है। यदि वंशानुगत शासक हटाने हैं तो भारत के अन्य राज्यों से भी ये शासक हटाए जाएँ। हैदराबाद की जनता निज़ाम को नहीं चाहती, फिर भी वे राजप्रमुख बने हुए हैं। भारतीय संसद् को अपने इस अधिकार की रक्षा करनी होगी।

कश्मीर के संबंध में भारतीय संसद् भी सभी विषयों पर नियम नहीं बना सकती तो फिर कश्मीर के सदस्य क्योंकर भारत के सभी विषयों पर अपना मत दे सकेंगे। क़श्मीर के वासी भारत के नागरिक हैं अथवा कश्मीर के। यदि वे भारत के नागरिक हैं तो उन्हें भारत के सुप्रीम कोर्ट से न्याय पाने का अधिकार है। यदि नहीं हैं तो ऐसा कोई भी व्यक्ति जो भारत का नागरिक न हो, भारत की संसद् का सदस्य कैसे हो सकेगा?

विघटनकारी प्रवृत्ति

कश्मीर की इस विघटनकारी प्रवृत्ति को हमें रोकना होगा। भारतमाता के अंगच्छेद के पाप का प्रायश्चित्त भी अभी हम नहीं कर पाए हैं। क्या हम अब शिरच्छेद कर कलंक कालिमा के लिए फिर तैयार हो जाएँ? स्वतंत्र कश्मीर का नारा देश की अन्य विघटनकारी शक्तियों को बल देगा और इसीलिए देश के टुकड़े-टुकड़े कर देने को लालायित कम्युनिस्टों को छोड़कर अन्य किसी दल ने इस योजना का समर्थन नहीं किया। सरदार पटेल की आत्मा स्वर्ग में एक बारगी कराह उठेगी। निज़ाम ने भी स्वतंत्रता के स्वप्न देखे थे। क्या आज भारतभूमि में कोई सरदार नहीं, जो शेख़ साहब की स्वतंत्रता की स्वप्निल आँखों को खोलकर सत्य सृष्टि का साक्षात्कार करा सके?

राष्ट्रीय समस्या

कश्मीर समस्या किसी वर्ग, दल अथवा संप्रदाय की समस्या नहीं, वह तो संपूर्ण राष्ट्र की समस्या है। अत: आवश्यक है कि सभी लोग एक स्वर से माँग करें कि—

(1) कश्मीर का भारत में पूर्ण विलयन हो तथा वह अन्य राज्यों के समान ही स्थान प्राप्त करे।

(2) कश्मीर प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र संघ से वापस लिया जाए।

(3) कश्मीर का जो 2/5 हिस्सा पाकिस्तान के क़ब्ज़े में रह गया है, उसे वापस

लेने के लिए सक्रिय क़दम उठाया जाए।

''कश्मीर समस्या के बीज, विकास तथा वर्तमान स्थिति के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उसको सुलझाने के लिए एक निर्भीक तथा यथार्थवादी नीति की नितांत आवश्यकता है। कश्मीर में अथवा अन्य कहीं परिस्थितियों के रुख़ अथवा अन्य किसी एक व्यक्ति अथवा दल की ओर, जिसे गत पाँच वर्षों में सातवें आसमान पर चढ़ा दिया गया हो, निस्सहाय हो देखते रहने की नीति न तो भारत के हित और प्रतिष्ठा को शोभा देती है और न वह जम्मू और कश्मीर की वर्तमान परिस्थितियों के उपयुक्त होगी। भारत की एकता और उसकी समस्त सेना की प्रतिष्ठा तथा आत्मसम्मान का प्रश्न भी कश्मीर समस्या में निहित है। अत: समस्या के प्रति एक निर्भीक तथा सुनिश्चित नीति अपनाने के मार्ग में किसी भी व्यक्तिगत अथवा असंगत विचारों को बाधा के रूप में नहीं खड़ा होना चाहिए। यह भारत की शक्ति और राजनीतिक दक्षता की एक अग्निपरीक्षा है। भारत की सशस्त्र फ़ौजों ने संसार को अपनी शक्ति का प्रबल परिचय दिया है। उन्होंने कार्य का अपना भाग अतीव उत्तमता से संपादित किया है और यदि राजनीतिज्ञ बीच में न आते तो वह उसे पूरा करके ही छोड़ती। अब हमारे राजनीतिज्ञों तथा राज्याधिकारियों पर यह उत्तरदायित्व आ पड़ा है कि जो कुछ हमारी सशस्त्र फ़ौजों के पराक्रम से शेष रहा है, न केवल उसे सुरक्षित रखें अपितु अभी जो प्राप्त करना शेष है, उसकी योजना कार्यान्वित करें।'' इसके लिए हमारे नेताओं को अपनी नीति में आमूल परिवर्तन करना होगा।

फिर वही ग़लती

किंतु मालूम देता है कि पं. नेहरू ग़लत क़दम को वापस लेने के लिए तैयार नहीं। 21 जून के पत्रकार सम्मेलन में उन्होंने कश्मीर को एक पृथक् इकाई माना है तथा उसके आत्मनिर्णय के अधिकार को भी स्वीकार किया है। साथ ही सुरक्षा समिति को दिए गए वादों पर डटे रहने का वचन दिया है। हम अपने किसी वादे को तोड़ना नहीं चाहते, किंतु सुरक्षा परिषद् ने कश्मीर प्रश्न को न्याय और पक्षपात रहित दृष्टि से सुलझाने की कोशिश नहीं की। पाकिस्तान को आक्रमणकारी घोषित करने के बजाय उसको भारत ही के समान मुक़दमे का एक फ़रीक मानकर समझौते की कोशिश की जा रही है। निश्चित है कि इसमें भारत को अपना न्याय अधिकार छोड़ना पड़ेगा। यह न्याय नहीं। अब स्वयं सुरक्षा परिषद् ने प्रश्न के मूल आधार को छोड़ दिया, तब हमारे वादों का क्या मूल्य रह जाता है।

कश्मीर के आत्मनिर्णय का सिद्धांत उतना ही ग़लत एवं घातक है, जितना मुसलिम लीग का आत्मनिर्णय का सिद्धांत था। यह आत्मघाती सिद्धांत है। इस ग़लत नजीर का सहारा लेकर देश के अन्य राज्य भी अलग हो सकते हैं। यदि हम कश्मीर को आत्मनिर्णय

का अधिकार देते हैं तो क्या कारण है कि जम्मू और लद्दाख को उनकी इच्छा के विरुद्ध कश्मीर घाटी के साथ भारत से अलग रहने को विवश किया जाए। जब उन पर अत्याचार किया जाता है और हमारे प्रधानमंत्री भी शेख़ अब्दुल्ला की पीठ थपथपाते हैं तो हमें विवश होकर कहना पड़ेगा कि पंडितजी मित्रता की वेदी पर देशहित की बलि चढ़ा रहे हैं।

कर्तव्य की पुकार

माता का मस्तक कट रहा है। उसके सभी सपूतों को सचेत हो जाना चाहिए। क्या कांग्रेस जन इस समय भी मौन रहकर उसी प्रकार आत्मप्रवंचना करेंगे, जिस प्रकार देश विभाजन के समय की थी? क्या वे पंडितजी को सही रास्ते पर नहीं ला सकते? यदि नहीं तो देश इस बार चुप नहीं रहेगा। वह उस सरकार और उन नेताओं को बरदाश्त नहीं कर सकता, जो देश की एकता और उसके सम्मान की रक्षा नहीं कर सकते। 29 जून को भारत के कोने-कोने में मनाया जाने वाला कश्मीर दिवस उस दिशा में पहला क़दम है, जिसके दिल में दर्द हो वह हिम्मत के साथ आए और 'कश्मीर हमारा है' की गगनभेदी घोषणा को सत्य-सृष्टि में परिणत करने के लिए अग्रसर हो।

परिशिष्ट (अ)

अखिल भारतीय जनसंघ की कार्यसमिति द्वारा 15 जून, 1952 को दिल्ली की बैठक में स्वीकृत प्रस्ताव

कार्यसमिति ज़ोरदार शब्दों में अपना यह मत व्यक्त करती है कि जम्मू एवं कश्मीर राज्य भारत का अभिन्न अंग है। राज्य की आर्थिक और सामाजिक प्रगति की माँग भी यही है कि यह राज्य भारत में पूर्ण रूपेण विलीन हो। भारतीय संविधान में कश्मीर के बारे में जो कुछ व्यवस्था की गई है, वह तो तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप निश्चित ही अस्थायी व्यवस्था थी। आशा तो यह की जाती थी कि कुछ काल बाद, जबकि कश्मीर भारत में मिल जाता, उसकी स्थिति ठीक वैसी ही होती जैसी कि अन्य 'ख श्रेणी' के राज्यों की है। जम्मू और कश्मीर राज्य की संविधान सभा ने हाल ही में जो निर्णय लिए हैं कि राज्य का प्रधान तथा ध्वज अलग होगा और मूलभूत सिद्धांत समिति ने जो सुझाव दिए हैं कि कश्मीर एक गणराज्य के अंदर स्वतंत्र गणराज्य के रूप में रहेगा, वे सब भारतीय सार्वभौमिकता का तथा भारतीय संविधान की आत्मा का खुले रूप से उल्लंघन कर रहे हैं।

राज्य संविधान सभा के इस निर्णय ने राज्य की एकता के लिए ख़तरा उत्पन्न कर दिया है, जैसा कि जम्मू और लद्दाख ने अपने प्रतिनिधियों के द्वारा अपना निश्चय स्पष्टतया व्यक्त किया है कि वे कश्मीर की घाटी की जनता की इच्छाओं की चिंता न करते हुए भारत में पूर्ण रूप से मिलना चाहते हैं। उनकी इस माँग का हवाला देते हुए कश्मीर के मुख्यमंत्री शेख़ अब्दुल्ला ने भी, जैसा कि पत्रों में प्रकाशित हुआ है, एक सार्वजनिक भाषण में कहा है कि ये क्षेत्र यदि चाहते हैं, तो अलग हो सकते हैं।

अखिल भारतीय जनसंघ की कार्यसमिति इस स्थिति को बहुत गंभीरता से देखती है और भारत की जनता तथा सरकार को स्मरण दिलाना चाहती है कि सन् 1945 के 'कैबिनेट मिशन' की उस योजना को, जिसमें बतलाया गया था कि तीन विषयों को

लेकर केंद्र में एक दुर्बल सरकार बने, उसके भारत की एकता तथा हितों की विरोधी होने के कारण देश के बहुमत और कांग्रेस ने ठुकरा दिया था। किंतु मुसलिम लीग की विघटनकारी प्रवृत्तियों ने देश का विभाजन कराने में सफलता पाई, जिसके परिणाम भी भीषण ही हुए। जम्मू व कश्मीर को उसी मार्ग पर चलने की अनुमति देना इतिहास की घटनाओं को दोहराना मात्र होगा। इसका यह भी अर्थ हो जाता है कि शेष भारत की जिस एकता व अखंडता को इतने महान् त्याग व बलिदानों के साथ प्राप्त किया गया है, उसे विध्वंसकारी प्रवृत्तियों को जगाकर विनष्ट कर दिया जाए।

यदि कश्मीर में वंशानुगत शासक का पद समाप्त करना है तो यह निर्णय-भारतीय संसद् द्वारा लिया जाए और फिर उसे भारतीय संघ के प्रत्येक भाग पर लागू किया जाए। समिति का यह मत है कि कश्मीर के महाराज व हैदराबाद के निज़ाम में अंतर समझने का कोई कारण नहीं। हैदराबाद के निज़ाम को, जिन्होंने भारत सरकार के आदेशों की अवज्ञा की, आज भी हैदराबाद की जनता की इच्छा के विरुद्ध शासन करने दिया जा रहा है।

उपरोक्त सभी विचारों के आधार पर यह समिति भारत सरकार से अनुरोध करती है कि वह सावधान होकर इस संबंध में तब तक कोई निर्णय न ले जब तक कि संसद् में पूर्ण रूप से विचार विनिमय न कर ले तथा जम्मू और लद्दाख की जनता राज्य संविधान सभा से स्वतंत्र रहकर भारत में मिलने के बारे में अपना मत व्यक्त न कर ले।

समिति भारत की समस्त जनता से अनुरोध करती है कि कश्मीर के बारे में वर्तमान नीति के विरुद्ध वह ज़ोरदार आवाज़ उठाए और भारतीय जनसंघ ने जो नया क़दम उठाया है, उसका पूर्ण रूप से समर्थन करे।

समिति यह निश्चय करती है कि भारत भर में 29 जून को ''कश्मीर दिवस मनाकर सार्वजनिक सभाएँ कर तथा जुलूस निकालकर जनसंघ की इस नीति का समर्थन किया जाए।''

20 मई, 1947 को जम्मू की सभा में जम्मू प्रजा परिषद् की कार्यकारिणी समिति द्वारा पास किए गए प्रस्ताव का सार

"जम्मू प्रजा परिषद् अत्यंत विचारपूर्वक अपने इस मत की घोषणा करती है कि भारत के साथ पूर्णतया बिना शर्त सम्मिलन द्वारा ही जम्मू-कश्मीर तथा उसके अन्य विभिन्न हिस्सों के निवासियों का सामाजिक उत्थान, आर्थिक विकास तथा राजनीतिक सुरक्षा संभव हो सकती है। ...जम्मू और कश्मीर राज्य का भारत के बाहर एक स्वतंत्र देश के रूप में रहना वे उतना ही घातक समझते हैं, जितना कि उसका पाकिस्तान के साथ मिलना।"

—पुस्तक, 1953

□

परिशिष्ट

टैक्स या लूट? जनसंघ आंदोलन छेड़ेगा

लखनऊ। विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है कि भारतीय जनसंघ उत्तर प्रदेश के मंत्री श्री दीनदयाल उपाध्याय ने एक गश्ती पत्र द्वारा जनसंघ की सभी जनपद (ज़िला) समितियों से आग्रह किया है कि उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा लागू किए गए नए करों के विरोध में सर्वत्र जनमत संगठित किया जाए और कर विरोधी आंदोलन छेड़ने की तैयारी की जाए।

यह भी पता लगा है कि उत्तर प्रदेश जनसंघ शीघ्र ही 'टैक्स या लूट'[1] नामक एक पुस्तिका भी प्रकाशित कर रहा है।

—पाञ्चजन्य, सितंबर 14, 1952

□

1. दीनदयालजी द्वारा लिखित 'टैक्स या लूट' पुस्तक खंड 3 में प्रकाशित है।

परिशिष्ट-II

जनसंघ व्यापक जनांदोलन शीघ्र ही संगठित करेगा

लखनऊ। स्थानीय गंगाप्रसाद स्मारक भवन में दिनांक 24 सितंबर को सायंकाल लखनऊ नगर के विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक तथा व्यावसायिक संगठनों तथा संस्थाओं के प्रतिनिधियों की एक सभा हुई, जिसमें उत्तर प्रदेश सरकार की वर्तमान कर-नीति के विरुद्ध व्यापक तथा संगठित जन-आंदोलन करने का तर्क-सम्मत दृढ निश्चय किया गया। सभा की अध्यक्षता वयोवृद्ध समाजवादी तथा भूतपूर्व कांग्रेस कार्यकर्ता श्री हरकरननाथ मिश्र एडवोकेट ने की। सभा भारतीय जनसंघ, लखनऊ के शिक्षा अध्यक्ष श्री हरगोविंद दयाल श्रीवास्तव एडवोकेट के संयोजकत्व में हुई।

श्री दीनदयाल उपाध्याय, मंत्री भारतीय जनसंघ उत्तर प्रदेश, श्री ठाकुर उम्मेद सिंह एम.एल.ए. उत्तर प्रदेश, श्री त्रिलोचन सिंह, हिंदू महासभा, श्रीकृष्ण गोपाल मंत्री, मंत्री लखनऊ किराना कमेटी, श्री तेजनारायण एडवोकेट ने बड़े ओजस्वी तथा दृढ निश्चययुक्त पत्रों में राज्य सरकार द्वारा बनाए गए या लगाए जाने वाले नए करों और पुराने करों में वृद्धि की तीव्र भर्त्सना की और उपस्थित प्रतिनिधियों से सरकार की इस जनहित-घातक तथा रक्तशोषक नीति के विरुद्ध जनमत संगठित कर उसकी समाप्ति के लिए ज़ोरदार आंदोलन करने की अपील की। इस संबंध में उपस्थित सभी प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए।

एक प्रस्ताव के द्वारा सभा में स्वीकृत प्रस्तावों को कार्य रूप में परिणत करने तथा जन आंदोलन की रूपरेखा तथा पद्धति आदि निर्धारित करने हेतु नगर के निमित्त प्रतिनिधियों की एक 'कार्रवाई समिति' (एक्शन कमेटी) के निर्माण की भी घोषणा की गई।

—पाञ्चजन्य, सितंबर 28, 1952

□

परिशिष्ट-III

गोरखपुर के अकाल पीड़ितों में जनसंघ का सेवाकार्य

कानपुर। श्री दीनदयाल उपाध्याय, मंत्री, भारतीय जनसंघ, उत्तर प्रदेश तथा श्री ठाकुरदास साहनी, मंत्री, भारतीय जनसंघ, गोररखपुर ने यहाँ एक पत्रकार सम्मेलन में बताया कि गोरखपुर ज़िले की महराजगंज तथा फरेंदा तहसीलों को विशेष रूप से और अन्य जिलों के अकाल को साधारणतया दृष्टि में रखकर समाचार-पत्रों में बड़ा विवाद चल रहा है। भारतीय जनसंघ ने इस ओर अन्य सभी दलों से पहले ध्यान दिया था और तभी से वह इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से किसी प्रकार का लाभ उठाए बिना जनता के कष्टों तथा कठिनाइयों को दूर करने में अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ कार्यरत है।

गोरखपुर जिला भारतीय जनसंघ के मंत्री श्री ठाकुरदासजी साहनी ने प्रेस सम्मेलन में बताया कि आजकल गोरखपुर ज़िले की महराजगंज तथा फरेंदा तहसील को विशेष रूप से और अन्य ज़िलों के अकाल को साधारणतया दृष्टि में रखकर समाचार-पत्रों में बड़ा विवाद चल रहा है। भारतीय जनसंघ ने इस ओर अन्य सभी पार्टियों से पहले ध्यान दिया था और तभी से वह इस दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति से किसी प्रकार का लाभ उठाए बिना जनता की कठिनाइयों को दूर करने में अपनी सारी शक्ति के साथ संलग्न है। निम्नलिखित तथ्यों से वह बात स्पष्ट हो जाएगी :

1. इन तहसीलों में धान की फ़सल ही मुख्य फ़सल है और वह अधिकांशतः वर्षा के ऊपर अवलंबित है। सिंचाई के लिए यहाँ के किसान अधिकतर वर्षा पर ही निर्भर रहते हैं। परंतु अंग्रेज़ी सरकार तथा कांग्रेसी सरकार ने कृत्रिम साधनों द्वारा सिंचाई का कोई प्रबंध नहीं किया। केवल ट्यूबवेल्स तथा यांत्रिक कुओं का निर्माण किया है, जो आवश्यकता को देखते हुए नगण्य हैं। पिछले दो वर्षों से वर्षा न होने से धान की फ़सल को भारी नुक़सान पहुँचा है। यह स्वाभाविक है कि इसी कारण वहाँ पर धान तथा अन्य खाद्यान्न का अभाव है।
2. प्रांतीय तथा ज़िला भारतीय जनसंघ की कमेटियों ने बहुत पहले फरवरी 1952 में प्रस्ताव पास करके किसानों को बीज देने तथा तकाजी क़र्ज़ देने के लिए कहा था। जनसंघ के ज़िले के अनेक कर्मचारी इसी विषय को लेकर ज़िला अधिकारियों

से भी मिले थे तथा तार भी किए थे।

3. बुआई के बाद किसानों ने हमारे कार्यकर्ताओं से ए.पी. की दुकानों से राशन दिलाने की व्यवस्था करने का अनुरोध किया। हमारे कार्यकर्ता ज़िला अधिकारियों से मिले और ए.पी. की योजना का विस्तार कराने का अनुरोध किया।
4. अभाव की स्थिति में बुआई के पश्चात् लोगों में बड़ा असंतोष फैला। लोगों ने खेतीबारी का काम करना बंद कर दिया और राशन की दुकानों की ओर जाने लगे। उन किसानों के पास, जिनके पास भूमि नहीं थी, राशन ख़रीदने के लिए भी रुपया नहीं था और इसी कारण परिस्थिति ने और भी उग्र स्वरूप ग्रहण कर लिया।
5. इस विषय में मैं स्वयं ज़िला अधिकारियों से मिला और उन्हें बतलाया कि प्रांतीय सहायता अपर्याप्त है। प्रतिदिन 6000 मन खाद्यान्न की आवश्यकता होने पर केवल 7000 मन ही वितरित किया जा सकता था। मैं उसी शाम को खाद्यमंत्री श्री चंद्रभानु गुप्त से भी मिला और खाद्यान्न सहायता में वृद्धि कर देने का अनुरोध किया। उन्होंने आश्वासन भी दिया। मैंने उनसे कृत्रिम सिंचाई की व्यवस्था को भी लागू करने का अनुरोध किया। अन्यथा अकाल पड़ने के भयंकर दुष्परिणाम से भी अवगत कराया।
6. हमारे कार्यकर्ता ने जब देखा कि कुछ लोगों के पास राशन ख़रीदने तक को पैसे नहीं हैं, तब हम लोगों ने खिचड़ी वितरण करना आरंभ किया तथा धन-संचय करने की भी योजना बनाई। इस संबंध में भी हनुमान प्रसाद पोद्दार तथा गीता प्रेस के जयदयालजी से वार्त्ता हुई और उन्होंने भी परिस्थिति का अध्ययन किया। धन-एकत्र किया गया और स्थान-स्थान पर सहायता केंद्र खोले गए। श्री कुमारप्पा तथा श्री शिब्बनलालजी ने भी सहायता कार्य में रत जनसंघीय कार्यकर्ताओं के समक्ष भाषण दिए और उनके कार्य की प्रशंसा की।
7. कुल मिलाकर जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने प्राय: एक हज़ार गाँव में कीचड़ तथा पानी में सहायता पहुँचाई। उन्होंने 20 हज़ार व्यक्तियों को प्रति व्यक्ति 4 सेर के हिसाब से राशन दिया तथा नंगों में वस्त्रों का वितरण किया। गीता प्रेस ने धन से इसमें सहायता की।
8. वक्तव्यों तथा प्रतिवादों के झमेले से दूर जनसंघ यह अनुभव करता है कि स्थिति बड़ी गंभीर है। विशाल पैमाने पर भुखमरी फैली थी और राजस्व तथा खाद्य विभाग के कर्मचारियों के भ्रष्टाचार के कारण वह और बढ़ गई। जब तक सरकार प्रत्येक गाँव में सिंचाई की सुविधाएँ देने की अविलंब व्यवस्था नहीं करती, तब तक अकाल का संकट सदैव बना रहेगा।

—पाञ्चजन्य, अक्तूबर 5, 1952

बिहार में जनसंघ

मुंगेर, बिहार प्रदेशीय जनसंघ सम्मेलन में बोलते हुए डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने पूर्वी बंगाल के हिंदू निष्क्रमण की समस्या को अविलंब सुलझाने के लिए भारत सरकार का आह्वान किया और क़ानूनन गोवधबंदी की माँग की। अपने प्रांतों के पुनर्निर्माण पर अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि प्रशासकीय आर्थिक और सामरिक सभी दृष्टियों से विचार कर प्रांतों का पुनर्निर्माण किया जाना चाहिए। भाषा का प्रश्न उनमें से एक हो सकता है, परंतु वही सबकुछ नहीं है।

आपने कहा कि जनसंघ समाज की सांस्कृतिक और आर्थिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए मैदान में उतरा है। यह केवल चुनाव लड़ने के लिए उत्पन्न नहीं हुआ था। चूँकि अब चुनाव की हलचल समाप्त हो गई है, अतः हम अपना संगठन इस रूप में दृढ कर रहे हैं, जिससे कि हम समाज की अधिक-से-अधिक सेवा और देश की राजनीतिक रिक्तता को पूर्ण कर सकें।

जनसंघ के आर्थिक कार्यक्रमों को विस्तृत रूप से प्रस्तुत करते हुए आपने जापान के नमूने पर कुटीर उद्योगों की स्थापना पर बल दिया और कहा कि पूँजीवाद को विकसित न होने देने का यही अंतिम उपाय है। आपने कहा कि तात्कालिक रूप में पूँजीवाद को नियंत्रित और नष्ट करने के लिए अन्य उपाय अपनाए जा सकते हैं, परंतु उसके स्थान पर कम्युनिज़्म को प्रतिष्ठित करना ठीक न होगा।

संसद् के वयोवृद्ध सदस्य बाबू राम नारायण सिंह ने जनसंघ को आशीर्वाद दिया। आपने 50,000 की जनसभा में भाषण करने के पश्चात् जो नारे लगवाए, उनसे संपूर्ण मुंगेर नगर गूँज उठा।

उ.प्र. जनसंघ के मंत्री पं. दीनदयाल उपाध्याय का भाषण विशेष मौलिक और विद्वत्तापूर्ण हुआ। आपने जनसंघ के सभी पक्षों का तर्कसम्मत विवेचन किया।

—पाञ्चजन्य, नवंबर 5, 1952

□

परिशिष्ट-V

भारतीय जनसंघ की पहली कार्यसमिति

भारतीय जनसंघ के पहले वार्षिक राष्ट्रीय अधिवेशन, कानपुर (29-31 दिसंबर, 1952) को जो पहली कार्यसमिति बनाई गई, वह इस प्रकार थी–

1. डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, प्रधान
2. श्री मौलिचंद्र शर्मा, महामंत्री
3. श्री दीनदयाल उपाध्याय, महामंत्री
4. श्री उमाशंकर त्रिवेदी, कोषाध्यक्ष
5. श्री आचार्य रामदेव (पंजाब) सदस्य
6. श्री गुरुदत्त वैद्य (दिल्ली) सदस्य
7. श्री राजकुमार (लखनऊ) सदस्य
8. श्री हरिदत्त (राजस्थान) सदस्य
9. श्री लाल सिंह शक्तावत (राजस्थान) सदस्य
10. श्री पी.बी. गोले (मध्य प्रदेश) सदस्य
11. कर्नल भादुड़ी (पश्चिम बंगाल) सदस्य
12. श्री शिवकुमार दुबे (बिहार) सदस्य
13. श्री राजा नारायण लाल बंशीलाल (बंबई) सदस्य
14. श्री जगन्नाथ राव जोशी (कर्नाटक)
15. श्री बसंत राव (दिल्ली)
16. श्री महावीर (दिल्ली)
17. श्री बलराज मधोक (दिल्ली)
18. श्री केशव देव वर्मा (दिल्ली)
19. श्री ताराकांत झा (बिहार)
20. श्री मानसिंह (उत्तर प्रदेश)
21. श्री देवेंद्र प्रसाद घोष (बंगाल)। (शेष 8 नाम बाद में घोषित किए जाएँगे।)

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 31, 1952

दीनदयालजी द्वारा उत्तर प्रदेश मंत्री पद से त्यागपत्र

लखनऊ। उत्तर प्रदेश भारतीय जनसंघ की कार्यसमिति बैठक प्रादेशिक प्रधान श्री राजकुमार की अध्यक्षता में हुई। समिति ने अनेक संगठन संबंधी विषयों पर विचार किया और तय किया कि कानपुर अधिवेशन में स्वीकृत जनसंघ के विधानानुसार स्थानीय समितियाँ स्थापित की जाएँ। कार्यसमिति के प्रत्येक सदस्य को ज़िलों के गुट बनाकर उनका काम सौंपा गया। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में महिलाओं का संगठन करने के लिए उपसमितियों की स्थापना का निश्चय किया गया और श्रीमती हीराबाई अय्यर को इसका उत्तरदायित्व सौंपा गया।

अ.भा. जनसंघ के महामंत्री पद के लिए मनोनीत पं. दीनदयाल उपाध्याय का प्रादेशिक मंत्री पद से त्यागपत्र स्वीकार किया गया और कुंजबिहारी लाल राठी को उनके स्थान पर मंत्री चुना गया।

समिति ने स्थानीय संस्थाओं के आगामी चुनाव लड़ना तय किया और ज़िला समितियों को निर्देश दिया कि प्रत्येक नगरपालिका चुनाव के लिए घोषणा-पत्र तैयार करें तथा प्रादेशिक संसदीय मंडल के लिए उम्मीदवारों के नामों के लिए सिफ़ारिश करें।

एक प्रस्ताव स्वीकार कर पंजाब में जनसंघ, रा.स्व. संघ तथा हिंदू महासभा के कार्यकर्ताओं की गिरफ़्तारियों की निंदा की गई है। समिति ने अनुभव किया कि शांत नागरिकों के विरुद्ध सरकार ने निवारक निरोध अधिनियम जैसी दमनकारी कार्रवाइयों का उपयोग कर उनको वैध उपायों से जनमत व्यक्त करने से रोक दिया है। समिति मत में यह कार्रवाई देश में लोकतंत्र परंपराओं के स्वस्थ विकास के लिए बाधक है।

समिति को उन सब कार्यों की भी जानकारी दी गई, जो जम्मू समस्या का शांतिपूर्ण तथा सम्मानजनक हल निकालने के लिए किए जा रहे हैं। समिति में जम्मू में चलने वाले प्रजा परिषद् के आंदोलन के प्रति पूर्ण सहानुभूति व्यक्त की गई। भारत की अखंडता तथा भारत के राष्ट्रपति, विधान, ध्वज और संसद् की प्रभुसत्ता बनाए रखने के लिए, जिसके प्रति पूर्ण निष्ठा व्यक्त करने से शेख़ अब्दुल्ला ने इनकार कर दिया है, परिषद् का यह

आंदोलन बनाया गया है और इसे प्रत्येक भारतीय की सहायता मिलनी आवश्यक है। समिति ने अ.भा. जनसंघ की कार्यसमिति को विश्वास दिलाया है कि जनता की इस न्यायसंगत माँग के लिए वह जो भी क़दम उठाने का निश्चय करेगी, उसे पूर्ण सहायता दी जाएगी। समिति ने समस्त मंडल समितियों को आदेश दिया है कि इस संबंध में जनता को शिक्षित करने तथा कांग्रेस तथा अन्य विरोधी संस्थाओं का शरारतपूर्ण मिथ्या प्रचार नष्ट करने के लिए, जो वास्तविक और आधारभूत प्रश्नों को सामने लाने के बजाय पीछे हटाने तथा जनता को भ्रमित करने के उद्देश्य से ही किया जा रहा है, उचित क़दम उठाया जाए।

एक प्रस्ताव के द्वारा समिति ने पटवारियों तथा निम्न श्रेणी के कर्मचारियों की माँगों का समर्थन किया और कहा कि उनमें प्रचलित भ्रष्टाचार की दुहाई देकर उन्हें पूर्ण न करना अनुचित है। समिति ने अनुभव किया कि भ्रष्टाचार को रोकना ज़रूरी है, परंतु इस कार्य के लिए सर्वप्रथम उचित वेतनों की व्यवस्था ज़रूरी है, जिससे ईमानदारी से कर्तव्य निभाए जा सकें। प्रस्ताव में यह भी माँग की गई है कि निम्न श्रेणी के कर्मचारियों के वेतन तथा जीवन-दशा की जाँच करने के लिए एक आयोग नियुक्त किया जाए।

प्रादेशिक कार्यसमिति ने अन्य प्रस्ताव में प्रदेश के पूर्वी ज़िलों में ओले गिरने के कारण जो नुक़सान हुआ, उसके संबंध में चिंता प्रकट की, कारण—वहाँ फिर निकट भविष्य में ही अकालग्रस्त स्थिति के स्पष्ट लक्षण दिख रहे हैं। उसके लिए सरकार को अभी से ठोस क़दम उठाने चाहिए। जनसंघ समिति के विचार में सरकार ने पूर्वी ज़िलों में हमेशा आने वाले संकटों से बचाव के लिए कोई परिणामजनक कार्रवाई नहीं की है। सरकार को उस क्षेत्र में सिंचाई की विशेष तथा तत्काल व्यवस्था, खेतिहरों के लिए सरकार को विशेष सुविधा निर्माण करनी चाहिए। अब भी सरकार को चाहिए कि वह उस क्षेत्र में पोखरे, तालाब तथा काठकुएँ बरसात आने के पहिले खुदवाने का प्रबंध करे। समिति ने उस क्षेत्र की अपनी शाखाओं को भी स्थानीय लोगों के सहयोग से इस कार्य को प्रारंभ करवाने के आदेश भेजे हैं।

इस समिति ने यह अनुभव किया कि गन्ना सहकारी समितियों और चीनी मिलों की कार्रवाइयों के ख़िलाफ़ कर्मचारियों तथा गन्ना उत्पादकों में असंतोष बढ़ रहा है तथा उसके परिणामस्वरूप घुघली तथा अन्य मिलों में हड़तालें तथा भिन्न-भिन्न प्रदर्शन हो रहे हैं। यह आंदोलन सरकार के लिए घातक है। अतः यह समिति सरकार से अनुरोध करती है कि वह गन्ना सहकारी समितियों के कार्य की जाँच कर उनमें सुधार करने के उपाय खोज निकालने के हेतु एक विशेष समिति नियुक्त करे।

यह समिति खेद प्रगट करती है कि चीनी मिलें गन्ना-उत्पादकों तथा कर्मचारियों को क्रमशः गन्ने की क़ीमत तथा वेतन समय से देते नहीं। अतः यह समिति सरकार से

माँग करती है कि "वह कड़ा-से-कड़ा क़दम उठाकर मिलों को, गन्ना उत्पादकों को गन्ने की क़ीमत तथा कर्मचारियों को उनकी तनख्वाह" देने के लिए बाध्य करे और इसके लिए आवश्यकता पड़े तो उनकी संगृहीत चीनी ज़ब्त करे।

समिति ने अपनी सभी शाखाओं को आगामी 'होली' को राष्ट्रीय महोत्सव के रूप में सुसंस्कृत एवं सामूहिक रूप से मनाने का आदेश दिया।

—पाञ्चजन्य, फरवरी 22, 1953

□

जोड़ें कश्मीर
मुखर्जी-नेहरू और अब्दुल्ला का पत्र व्यवहार
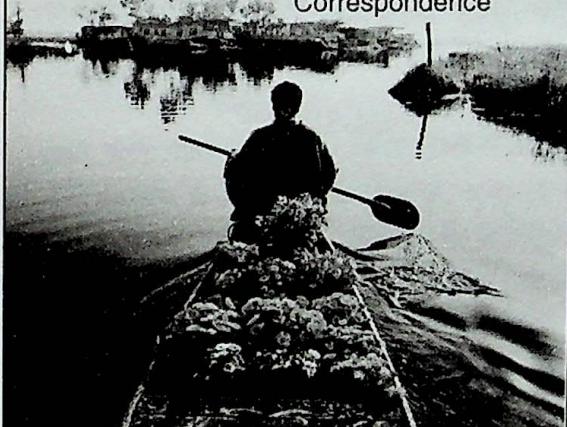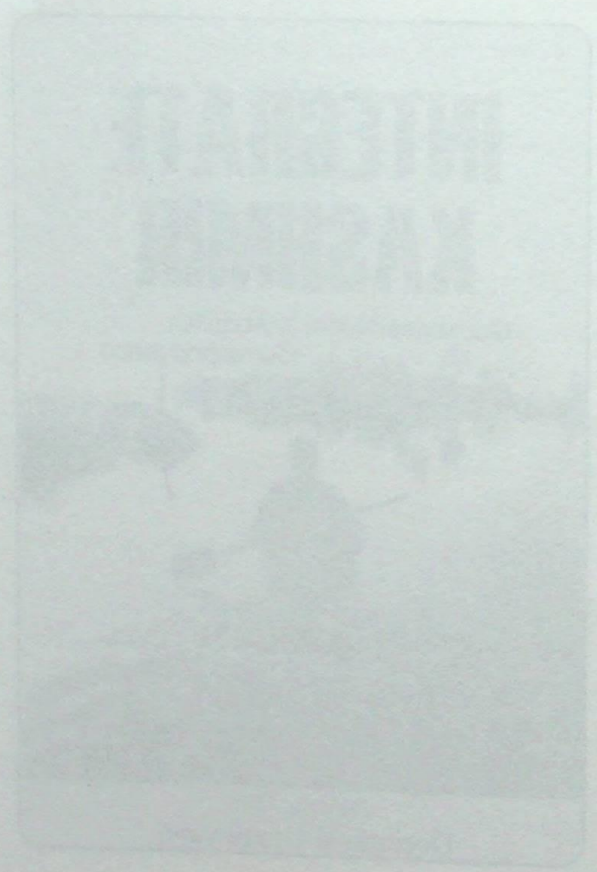
प्रकाशक की टिप्पणी

कश्मीर की स्थिति और जम्मू में सत्याग्रह पर भारतीय जनसंघ के कानपुर अधिवेशन में पारित संकल्प के अनुसरण में जनसंघ के अध्यक्ष डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने भारत के प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू और जम्मू-कश्मीर राज्य के मुख्यमंत्री शेख़ मो. अब्दुल्ला को पत्र लिखे थे। यह पत्राचार लंबा चला था, कुछ तो इस कारण, क्योंकि जनसंघ के नेता की इच्छा थी कि जम्मू गतिरोध का शांतिपूर्ण समाधान हो और कुछ इस कारण, क्योंकि पं. नेहरू और शेख़ मो. अब्दुल्ला मुद्दों से बचते रहे; उन्होंने तर्क का उत्तर तर्क द्वारा देने से इनकार कर दिया।

लेकिन सारे विषयों का अच्छी तरह से विश्लेषण कर लिया गया है और पत्रों से यह स्पष्ट हो जाएगा कि दोनों दृष्टिकोणों के बीच एक मूलभूत अंतर है।

यह पत्राचार प्रकाशित किया जा रहा है और यह फ़ैसला जनता के लिए छोड़ दिया है कि दोनों दृष्टिकोणों में सही कौन है। यह फ़ैसला लोगों को करना होगा कि वे एक सुगठित और संयुक्त भारत चाहते हैं या अर्ध स्वतंत्र राज्यों का एक ऐसा ढीला महासंघ चाहते हैं, जैसा जम्मू-कश्मीर के होने का दावा शेख़ मो. अब्दुल्ला करते हैं।

यह अफ़सोस की बात है कि जम्मू आंदोलन के शांतिपूर्ण और सम्मानजनक समाधान तथा कश्मीर मुद्दे पर एक संयुक्त मोर्चा बनाने के जनसंघ के सभी प्रयास विफल रहे हैं। सरकार यह समझने में विफल रही है कि जम्मू के लोग भावनाओं की किस गहराई के साथ संघर्ष जारी रखे हुए हैं; इसके विपरीत सरकार ने आंदोलन को दबाने के लिए अमानवीय तरीक़ों का सहारा लिया।

—दीनदयाल उपाध्याय,

महामंत्री

1

77, आशुतोष मुखर्जी रोड,
कलकत्ता 25
9 जनवरी, 1953

प्रिय जवाहरलालजी,

क्या मैं जम्मू की स्थिति पर आपसे कुछ चर्चा कर सकता हूँ? हमने भारतीय जनसंघ के कानपुर अधिवेशन में इस मुद्दे पर चर्चा की है और हर एक की सर्वसम्मति से यह इच्छा थी कि मुझे इस विषय पर सीधे आपसे और शेख़ अब्दुल्ला से संपर्क करना चाहिए। मैं जानता हूँ कि इस मुद्दे पर हममें से कई लोगों के साथ आपकी ज़रा भी सहमति नहीं है। इसके बावजूद मैं इस आशा से आपको लिख रहा हूँ कि आप खुले मन से उन लोगों का दृष्टिकोण समझने का प्रयास करेंगे, जिनकी राय इस मामले पर आप से अलग होना संभव है। यह निर्णायक तौर पर महत्त्वपूर्ण है कि जिन परिस्थितियों का परिणाम वर्तमान आंदोलन में निकला है, उनकी निष्पक्ष समीक्षा की जानी चाहिए और एक ऐसा त्वरित एवं शांतिपूर्ण समाधान निकालने का प्रयास किया जाना चाहिए, जो निष्पक्ष हो और सभी संबंधित पक्षों के लिए न्यायसंगत हो।

यह आंदोलन कमज़ोर नहीं पड़ रहा है, हालाँकि इसे प्रारंभ हुए छह सप्ताह से अधिक समय बीत चुका है। इसका व्यापक और विस्तृत प्रसार हुआ है, और इसे शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में जनता के बड़े वर्ग का समर्थन मिल रहा है। स्पष्ट है कि वे सभी प्रजा परिषद् के सदस्य नहीं हैं।

यह कहना सही नहीं है कि आंदोलन जम्मू-कश्मीर राज्य से बाहरी दलों या व्यक्तियों के समूह द्वारा उकसाया गया है। जो मुद्दे उठाए गए हैं, वे सीधे जनता से जुड़े हैं और आंदोलन का मार्गदर्शन करने की ज़िम्मेदारी उनके अपने प्रतिनिधियों पर आ गई है। निस्संदेह हममें से कई लोग उस लक्ष्य से सहानुभूति रखते हैं, जिसके लिए आंदोलन शुरू किया गया है, क्योंकि हम ईमानदारी से महसूस करते हैं कि आंदोलन का उद्देश्य न्यायसंगत और सही है; लेकिन दुष्परिणाम अब मुख्य रूप से स्थानीय लोगों को भुगतने

पड़ रहे हैं, जो मूलत: अपने स्वयं के संसाधनों पर निर्भर रहे हैं।

यह कहना भी सही नहीं है कि आंदोलन के प्रायोजकों ने लापरवाही से काम किया और संकट पैदा कर दिया है। प्रजा परिषद् के नेताओं और अन्य लोगों द्वारा संवैधानिक तरीक़ों से सौहार्दपूर्ण समाधान के प्रयास बार-बार किए गए थे। डॉ. राजेंद्र प्रसाद के पास, आपके पास, राज्य मंत्री के पास और शेख़ अब्दुल्ला के पास प्रतिनिधि मंडल भेजे गए थे। उनमें से कुछ से मिलने के लिए समय माँगा गया था, लेकिन इस तरह के अनुरोध अधिकतर स्वीकार नहीं किए गए। समय-समय पर सम्मेलन हुए थे और परिपक्व विचार-विमर्श के बाद प्रजा परिषद् तथा उसका समर्थन कर रहे अन्य लोगों के दृष्टिकोण को सार्वजनिक रूप से व्यक्त किया गया था। स्पष्ट है कि संबंधित प्राधिकारियों ने जनमत की ऐसी अभिव्यक्तियों पर कोई ध्यान नहीं दिया और यहाँ तक कि उनसे अपमानजनक व्यवहार किया। दूसरी ओर, कुछ ऐसे मामलों को स्वयं प्राधिकारियों ने अनावश्यक जल्दबाज़ी के साथ बढ़ावा दिया, जिनको लेकर तीव्र विवाद पैदा किए गए, जिसके परिणामस्वरूप संकट पैदा हुआ।

इस आंदोलन के प्रायोजकों और समर्थकों के ख़िलाफ़ हिंसा, हथियारों क प्रयोग और विध्वंसक गतिविधियों के आरोप बेधड़क लगाए गए हैं। इससे दृढतापूर्वक इनकार किया गया है। यदि इस विषय की जाँच की जानी है, तो यह जाँच किसी निष्पक्ष प्राधिकारी द्वारा की जानी चाहिए और प्रजा परिषद् के प्रवक्ता घोषणा कर चुके हैं कि वे स्वतंत्र जाँच का सामना करने के लिए तैयार हैं। प्राधिकारियों द्वारा हिंसक तरीक़ों के उपयोग का हवाला बार-बार केवल स्वयं उनके द्वारा की गई हिंसा को उचित ठहराने के लिए दिया जा रहा है।

पिछले छह हफ़्तों के दौरान हमने निरंतर एक दमनचक्र देखा है। वास्तव में, संसद् में आप यह कहने की हद तक पहुँच गए हैं कि अगर मामला आपके हाथों में छोड़ दिया गया होता तो आपने इससे भी अधिक बल का प्रयोग किया होता और आंदोलन को कुचल दिया होता। हमें मिल रहे समाचारों की प्रकृति इससे विपरीत है। जहाँ आधिकारिक रिपोर्टों का प्रयास आंदोलन के विस्तार और उस पर चल रहे दमनचक्र से जुड़ी जानकारियाँ दबाने का होता है, वहीं ग़ैर-सरकारी सूत्रों के माध्यम से प्राप्त समाचार बिल्कुल भिन्न स्थिति की ओर इंगित करते हैं। बताया गया है कि लगभग 1300 व्यक्तियों की गिरफ़्तारी, लाठीचार्ज, आँसू गैस से प्रहार, मामूली कपड़े पहने क़ैदियों को बेहद ठंडे क्षेत्रों में भेजा जाना, संपत्तियाँ ज़ब्त करने जैसी युक्तियाँ अपनाई गई हैं। इस सबसे भी आंदोलन को दबाया नहीं जा सका है। आंदोलन इससे और तेज़ ही हुआ है।

समय आ गया है, जब आप और शेख़ अब्दुल्ला दोनों इस बात को स्वीकार कर लें कि बलप्रयोग या दमन से इस आंदोलन को दबाया नहीं जा सकेगा। कुछ आधारभूत

माँगें की गई हैं, भय और संदेह व्यक्त किए गए हैं और उनका उचित तरीक़े से निराकरण किया जाना चाहिए। हाल के अपने कुछ बयानों में आपने एक-दूसरे की बात को समझने की आवश्यकता पर, सहिष्णुता पर, लोगों को सरकार के साथ लाने के लिए बल नहीं,बल्कि सदिच्छा और समझ के प्रयोग पर बहुत बल दिया है। लेकिन जब बात वास्तविक प्रशासन की आती है, तो प्रतीत होता है कि वही पुराने तरीक़े, कभी-कभी तो पहले से भी अधिक जोश के साथ आज भी प्रयोग में हैं, जिन्होंने ब्रिटिश प्रशासन को विरूपित कर दिया था। जम्मू-कश्मीर की समस्या को एक पार्टी के मुद्दे के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। यह एक राष्ट्रीय समस्या है और एक संयुक्त मोर्चा प्रस्तुत करने के लिए हर प्रयास किया जाना चाहिए।

बहुत बार इस मुद्दे को प्रजा परिषद् के कथित अतीत की गतिविधियों की चर्चा करते हुए संदिग्ध बनाने की चेष्टा की जाती है। स्पष्टत: बेहतर यही होगा कि वास्तविक मुद्दों से उनके गुण-दोषों के आधार पर निपटा जाए। अगर एक बार हम एक-दूसरे के इरादों पर सवाल उठाना शुरू करते हैं, तो माहौल और अधिक प्रदूषित हो जाएगा। कृपया इस बात की अनदेखी न करें कि जम्मू में बड़ी संख्या में मुसलमान भी आंदोलन में शामिल हो गए हैं। मैं आपसे ज़ोर देकर आग्रह करूँगा कि भारत के बाक़ी हिस्सों पर आंदोलन के प्रभाव पर विचार करें। जम्मू और कश्मीर राज्य भारतीय संघ का एक हिस्सा है और इस नाते यह शेष भारत के लोगों के लिए पूरी तरह से खुला हुआ है कि वे राज्य के मामलों में स्वयं रुचि लें। इस विशेष राज्य के लिए भारत ने अच्छा-ख़ासा जोखिम लिया है। उसके लिए किसी कोने में कोई अफ़सोस नहीं है। लेकिन साथ ही हमें इस बारे में बहुत सावधान रहना होगा कि भारत द्वारा किया गया बलिदान अधिकारियों द्वारा अपनाई गई ग़लत नीति से व्यर्थ न जाए।

हमारी चिंता यह है कि जम्मू-कश्मीर राज्य के भारत में विलय के प्रश्न का अंतिम और अपरिवर्तनीय समाधान किया जाना चाहिए। माना जा रहा है कि यह अभी भी जनमत संग्रह पर निर्भर है। सुरक्षा परिषद् में हाल के घटनाक्रम से संकेत मिलता है कि उस ओर से हम किसी न्यायपूर्ण निष्कर्ष की आशा नहीं कर सकते। लोगों की इच्छा का निर्धारण करने के लिए सामान्य जनमत संग्रह कराने का कोई सवाल ही नहीं होना चाहिए। जम्मू-कश्मीर राज्य में गठित विधानसभा वयस्क मताधिकार पर आधारित है। हालाँकि चुनावों में से कुछ की, विशेष रूप से जम्मू से वैधता के संबंध में संदेह व्यक्त किया गया है, फिर भी यह निकाय भारत में विलय के पक्ष में एक प्रस्ताव पारित कर सकता है और इसे लोगों की इच्छा का निर्धारण करने के लिए पर्याप्त माना जा सकता है। इससे राज्य के भारत में अंतिम रूप से परिग्रहण के प्रश्न पर बनी सारी अनिश्चितताओं का समापन हो जाएगा। शेख़ अब्दुल्ला ने मुझसे कहा था कि वह और उनके सहयोगी

इस प्रक्रिया को अपनाने के लिए तैयार थे, लेकिन आप इसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। संभवत: उस समय आपको आशा रही होगी कि सुरक्षा परिषद् के माध्यम से एक संतोषजनक समाधान की कुछ संभावना हो सकती है। अब जब यह निष्फल साबित हो चुकी है, तो हमें अपनी अगली कार्रवाई की घोषणा जितनी जल्दी संभव हो, कर देनी चाहिए, और इस प्रकार विदेशी और घरेलू दोनों जटिलताओं से बचना चाहिए।

प्रजा परिषद् ने एक प्रासंगिक प्रश्न उचित ढंग से उठाया है। अगर राज्य का भारत में अंतिम रूप से परिग्रहण अनिश्चित बना रहा और निर्णय लोगों के सामान्य जनमत संग्रह के आधार पर ही होना होगा, तो अगर बहुसंख्यक लोगों ने, जो मुसलमान हैं, भारत के ख़िलाफ़ वोट दिया, तो जम्मू का हश्र क्या होगा? मेरा निवेदन है कि आप इस बिंदु को काल्पनिक मानकर अनदेखा न करें। हम न तो भारत के जीवच्छेदन के बारे में अपने कटु अनुभव भूल सकते हैं और न ही ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार खान तथा उनके योग्य भाई के देशभक्त एवं प्रगतिशील नेतृत्व के बावजूद उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांत के दुर्भाग्य को अनदेखा कर सकते हैं। एक बेहद विवादास्पद मुद्दे पर एक सामान्य जनमत संग्रह, जो विशेष रूप से पाकिस्तानी प्रचार के कारण आसानी से सांप्रदायिक भावनाओं में बदल सकता है, लोगों की वास्तविक इच्छा को जानने की एक सुरक्षित कसौटी बिल्कुल नहीं हो सकता। स्वाभाविक रूप से जम्मू के लोग शरणार्थियों के रूप में निर्धनता का सामना करने की संभावना को नापसंद करते हैं। चाहे जनमत संग्रह हो या न हो, वे किसी भी परिस्थिति में भारत के साथ अपने संबंध तोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। इस विवादास्पद प्रश्न पर एक बार में और हमेशा के लिए फ़ैसला करने में जितनी अधिक देरी होगी, जटिलताएँ और अशांति की आशंकाएँ उतनी ही अधिक होती जाएँगी।

जब एक बार यह तय हो जाए कि विलय के प्रश्न पर अंतिम निर्णय लिया जा चुका है, तब दो मामलों को उठाना होगा। एक मामला जम्मू-कश्मीर के एक-तिहाई क्षेत्र को फिर से वापस पाने से संबंधित है, जो अब पाकिस्तान के क़ब्ज़े में है। भले ही पाकिस्तान आक्रमणकारी सिद्ध हो चुका है, सुरक्षा परिषद् इस संबंध में हमारी मदद नहीं करेगी। पाकिस्तान स्वेच्छा से इस क्षेत्र से अपने नियंत्रण का परित्याग नहीं करेगा। ऐसे में, यह पूछा जाता है कि हम कैसे इस क्षेत्र को वापस पाने जा रहे हैं? आप इस प्रश्न को हमेशा टालते रहे हैं। समय आ गया है, जब हमें पता होना चाहिए कि आपका इसके बारे में ठीक-ठीक क्या करने का प्रस्ताव है। अगर हम अपने ही क्षेत्र के इस खोए हुए हिस्से को वापस प्राप्त करने में विफल रहते हैं तो यह राष्ट्रीय लज्जा और अपमान से कम नहीं होगा।

दूसरा प्रश्न भारत में जम्मू-कश्मीर राज्य के विलय की सीमा से संबंधित है। कोई संदेह नहीं कि अनुच्छेद 370 में कहा गया है कि रक्षा, विदेश संबंध और संचार के

अलावा अन्य मामलों के संबंध में परिग्रहण जम्मू-कश्मीर सरकार की पूर्व सहमति से निर्धारित किया जाएगा। जैसा कि आपको याद होगा, यह एक अस्थायी प्रावधान है और इस अनुच्छेद को स्वीकार करने के लिए प्रस्तावित करने वाले श्री गोपाल स्वामी आयंगर ने स्पष्ट संकेत दिया था कि यह ऐसा ही है और सभी चिंतित लोगों की यह आशा और इच्छा थी कि जम्मू-कश्मीर राज्य का आख़िरकार भारत में उसी तरह विलय हो जाएगा, जैसे अन्य राज्यों का हुआ था। इसलिए अगर जम्मू के लोग माँग करते हैं कि परिग्रहण उसी तर्ज पर होना चाहिए, जैसे अन्य राज्यों के मामले में हुआ है, तो वे ऐसा कुछ भी नहीं कहते हैं, जो मनमाना या असाधारण हो। यह उनकी स्वाभाविक इच्छा है और वे देशभक्ति तथा राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित हैं। वे तो स्वतंत्र और संयुक्त भारत की एक संगठित संरचना को बनाए रखने की आवश्यकता मात्र पर ज़ोर दे रहे हैं।

शेख़ अब्दुल्ला और उनके सहयोगियों में से कुछ लोग उस संविधान सभा के सदस्य थे, जिसने भारत का संविधान तैयार किया है। लिहाज़ा अगर वे दावा करते हैं कि जम्मू-कश्मीर राज्य के साथ विशेष व्यवहार होना चाहिए और उनके मामले में परिग्रहण एक लचर स्वभाव का होना चाहिए, तो यह ज़िम्मेदारी उनकी होती है, उनकी नहीं, जो उनसे मतभेद रखते हैं। एक निर्वाचित राष्ट्रपति या एक अलग ध्वज का उपबंध उन लोगों के दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए, जो ईमानदारी से महसूस करते हैं कि यह भारत की राजनीतिक एकता के लिए विनाशकारी हो सकते हैं, जिसे हर क़ीमत पर बनाए रखना हर नागरिक का और हर राज्य का कर्तव्य होना चाहिए। अगर इसी तरह की माँगें अन्य राज्यों द्वारा की गईं, तो इससे अलगाववाद की ख़तरनाक प्रवृत्तियों को गति मिलेगी।

पुनश्च, सहमति वाले प्रस्तावों में से कुछ को, जैसे कि नागरिकता, मौलिक अधिकार, सुप्रीम कोर्ट, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियाँ आदि, जिनकी घोषणा आपने पिछले साल जुलाई में की थी, लागू करने में हो रही देरी लोगों के मन में भारी ग़लतफ़हमी पैदा कर रही है।

जम्मू के लोग आज जो मौलिक प्रश्न पूछ रहे हैं—दमन उसका कोई जवाब नहीं हो सकेगा। सीधे शब्दों में यह कि क्या उन्हें यह माँग करने का जन्मसिद्ध अधिकार नहीं है कि उन पर भी उसी संविधान के तहत शासन होना चाहिए, जो शेष भारत के लिए लागू किया गया है? अगर कश्मीर घाटी के लोगों की राय इससे भिन्न है, तो क्या उनकी अनिच्छा के कारण जम्मू को भी भारत के साथ पूरी तरह से विलय करने में पीड़ा भुगतनी चाहिए? 'एक निशान, एक विधान, एक प्रधान'—एक अत्यंत देशभक्तिपूर्ण और भावनात्मक नारे का प्रतिनिधित्व करता है, जिसके साथ लोग अपना संघर्ष जारी रखे हुए हैं। आप या शेख़ अब्दुल्ला क़ैद और गोलियों से इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते। इसे कैसे किया जाए, यह बातचीत और राजनीति का विषय है।

जम्मू-कश्मीर राज्य के विभिन्न भागों के विशिष्ट अभिलक्षणों को आपसे बेहतर कोई नहीं जानता है। कश्मीर घाटी, जम्मू और लद्दाख विभिन्न प्रकार के लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं; उनकी भाषा, उनका दृष्टिकोण, उनका वातावरण, उनकी आदतें और जीवन के तरीक़े, उनके व्यवसाय कई महत्त्वपूर्ण मामलों में एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। ऐतिहासिक और राजनीतिक तौर पर उन्हें एक समरूप इकाई में एकजुट नहीं किया जा सकता, जिसे बाधित या नष्ट करना हम स्वाभाविक रूप से पसंद नहीं करेंगे। इस तरह के लोगों के बीच एकता के प्राकृतिक बंधनों को बनाए रखने का कार्य बलप्रयोग या दबाव से नहीं, बल्कि सद्भावना और विश्वास का एक साझा वातावरण बनाकर ही किया जा सकता है। यह एक बड़ी मनोवैज्ञानिक समस्या है और इससे संवेदनशीलता एवं सावधानी के साथ निपटने की आवश्यकता है। आप और शेख़ अब्दुल्ला इस संबंध में बहुत कुछ कर सकते थे, अगर आप केवल सही रास्ते पर बढ़े होते और आपने उस हर व्यक्ति को ग़लत न समझा होता, जो राज्य की भविष्य की व्यवस्था के विषय पर कुछ महत्त्वपूर्ण मामलों के संबंध में आपसे मतभेद रखता था।

जैसा कि आप जानते हैं, पहले राज्य के पाकिस्तान के क़ब्ज़े वाले क्षेत्र में रहने वाले कई हज़ार लोग भारत में शरणार्थी के रूप में रह रहे हैं। वे अधिकांशतः जम्मू के रहने वाले हैं। किसी-न-किसी बहाने से राज्य के भीतर उनके उचित पुनर्वास को ही संभव नहीं छोड़ा गया है और वे बहुत बुरे समय से गुज़र रहे हैं। उन्हें श्रीनगर में स्टेट बैंक से अपनी ही जमा राशि निकालने की अनुमति से भी तकनीकी आधार पर इनकार कर दिया गया है। फिर एक बार पाकिस्तानी हमलावरों द्वारा इस क्षेत्र से चार हज़ार से अधिक हिंदू और सिख महिलाओं का अपहरण कर लिया गया है। उन्हें वापस लाने के लिए कुछ भी नहीं किया गया है। शेख़ और उनके सहयोगियों द्वारा एक वर्ग के तौर पर डोगरा लोगों का निरंतर अपमान और उन पर हमलों ने अविश्वास और कड़वाहट का वातावरण उत्पन्न कर दिया है। राज्य में भूमि क़ानूनों में काफ़ी बदलाव कर दिया गया है और वे निस्संदेह बहुत अधिक महत्त्व के हैं। लेकिन किसी ने भी यह जाँच करने की आवश्यकता नहीं समझी कि उनका जम्मू के तुलनात्मक रूप से ग़रीब लोगों पर क्या प्रभाव पड़ा है, जिनका आर्थिक अस्तित्व ही इससे अत्यंत कठिन हो गया है। अगर हम समस्या के शांतिपूर्ण और स्थायी समाधान की आशा रखते हैं, तो हमें ये और इसी तरह के अन्य मामलों को ध्यान में अवश्य रखना चाहिए।

मैंने इस पत्र में उन अन्य गंभीर आरोपों का उल्लेख नहीं किया है, जो शेख़ अब्दुल्ला की सरकार की भेदभाव की नीति और प्रशासन से संबंधित हैं। इन मामलों पर तथ्यों और आँकड़ों के आधार पर किसी निष्पक्ष प्राधिकारी द्वारा विचार किया जा सकता है, जो आपको शेख़ अब्दुल्ला द्वारा दिए जा सकते हैं।

जो लोग ख़ुशी-ख़ुशी त्याग और कष्टों का सामना कर रहे हैं, वे भारत के या जम्मू-कश्मीर के दुश्मन नहीं हैं। उन्हें पाकिस्तान के मित्र के रूप में पेश करना बेतुका है। पाकिस्तान बहुत अच्छी तरह से जानता है कि अगर उनके रुख़ को स्वीकार कर लिया जाता है, तो उसके द्वारा कभी भी जम्मू-कश्मीर को हड़पकर अपने क्षेत्र में जोड़ लेने की कोई सांसारिक संभावना नहीं रह जाएगी। मैं आपसे ईमानदारी से अनुरोध करता हूँ कि आप शेख़ अब्दुल्ला से परामर्श करें और पहले क़दम के तौर पर उन सभी को रिहा करें, जिन्हें गिरफ़्तार किया गया है तथा उन पर लगाए गए प्रतिशोधात्मक दंड एवं आदेशों को वापस लें। इसके बाद एक सम्मेलन किया जाना चाहिए, जिसमें विवाद के मामलों पर विचार-विमर्श किया जाए और एक ऐसे समाधान तक पहुँचने की कोशिश की जानी चाहिए, जो संपूर्ण भारत के हित में हो, और जो हर तरह से जम्मू-कश्मीर के लोगों के अधिकारों व कल्याण के साथ सुसंगत हो। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप झूठी प्रतिष्ठा पर अड़े न रहें या ब्रिटिश प्रशासकों द्वारा अपनाए गए तरीक़ों की नक़ल न करें, जिन्होंने सिखाया था कि क्रूर दमन से वे लोगों के अधिकारों और स्वतंत्रताओं को प्रभावित करने वाले किसी भी मामले को हल कर सकते हैं। आपने विवादों को सुलझाने में गांधीवादी तकनीक के बारे में बहुत वाक्कुशल ढंग से बात की है। मेरी आपसे अपील है कि आपको इस गतिरोध को हल करने में यह तरीक़ा लागू करना चाहिए, जो न केवल जम्मू-कश्मीर की शांति के लिए एक ख़तरा है, बल्कि इसके ऐसे गंभीर प्रभाव भी हो सकते हैं, जो पूरे भारत को प्रभावित कर सकते हैं। यदि प्राधिकारियों की समझ में एकमात्र उपाय दमनचक्र चलाना ही है, तो आंदोलन का विस्तार हो रहा है और इसका और अधिक विस्तार होगा तथा यह फैलकर भारत के अन्य भागों में भी जा पहुँचेगा।

मैं जानता हूँ कि आपने हमारे साथ दुर्व्यवहार किया है; आपने हमारा उपहास किया है और आपको हमारी आलोचना में कुछ भी अच्छा नज़र नहीं आता है। इस मुद्दे पर आपसे तमाम मतभेदों के बावजूद मैंने आपके दृष्टिकोण, आपके डर और आपकी उम्मीदों को समझने की कोशिश की है। इसी दृष्टिकोण से मैंने आपको यह पत्र लिखने और आपसे यह कहने का जोखिम उठाया है कि अपने विरोधियों के विचारों को समझें तथा उस ढंग से आगे बढ़ें, जो आपके आज तक के तरीक़े से भिन्न हो। मैं आशा और विश्वास करता हूँ कि आपसे मेरी अपील व्यर्थ नहीं जाएगी और यह कि आप जम्मू में तेज़ी से विकसित हो रही गंभीर स्थिति से निपटने के लिए तत्काल क़दम उठाएँगे।

मैंने यह पत्र आपको प्रजा परिषद् के नेताओं के अनुरोध पर नहीं लिखा है। मुझे पूरी आशा है कि यदि आप उचित दृष्टिकोण बनाते हैं और उनकी मूलभूत माँगों को समझने की दिशा में आगे बढ़ते हैं, तो एक सम्मानजनक समाधान प्राप्त किया जा सकता

है और प्राप्त किया जाएगा।

मैं इस पत्र की एक प्रति शेख़ अब्दुल्ला को भेज रहा हूँ। अगर आप चाहते हों कि मैं इस विषय पर व्यक्तिगत रूप से आपके और शेख़ अब्दुल्ला के साथ चर्चा करूँ, तो आप मुझे सूचित कर सकते हैं और मैं ख़ुशी-ख़ुशी आपकी इच्छा का पालन करूँगा।

सादर,

(ह.)

श्यामाप्रसाद मुखर्जी

श्री जवाहरलाल नेहरू
भारत के प्रधानमंत्री
नई दिल्ली

2

77, आशुतोष मुखर्जी रोड,
कलकत्ता 25
9 जनवरी, 1953

प्रिय शेख़ साहब,

मैं उस पत्र की प्रति संलग्न कर रहा हूँ, जो मैंने श्री जवाहरलाल नेहरू को लिखा है। पत्र में जो कुछ कहा गया है, उसमें से अधिकांश आपके लिए भी है, और मैं वह दोहराना नहीं चाहता, जो मैंने इसमें कहा है। मैं विनम्रतापूर्वक अनुरोध करता हूँ कि आप पहल करें और जम्मू आंदोलन को समाप्त कराएँ। स्वयं अपने कॅरिअर के माध्यम से आपने साबित कर दिया है कि दमन कभी भी एक लोकप्रिय आंदोलन को नहीं दबा सकता है। इस मामले में भी इतिहास स्वयं को दोहराएगा। आपको अपने विरोधियों का दृष्टिकोण समझना होगा, और एक लोकतांत्रिक नेता होने के नाते आपको उन लोगों की न्यायसंगत तथा वैध माँगें माननी होंगी, जो आपके और पं. नेहरू के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं। जो मुद्‌दे दाँव पर हैं, वे न केवल राज्य बल्कि समूचे भारत को प्रभावित करते हैं और मैं उम्मीद करता हूँ कि स्थिति और ख़राब हो, इससे पहले ही आप क़दम उठाएँगे।

मैं उम्मीद करता हूँ कि आप उस भावना की सराहना करेंगे, जिस भावना से मैं आपको और पं. नेहरू को लिख रहा हूँ। अपशब्दों के आदान-प्रदान से हमें कोई समाधान नहीं मिलेगा। विषय समझ और सद्‌भाव की भावना के साथ चर्चा करने योग्य हैं और उनका ऐसा समाधान निकाला जा सकता है, जो निष्पक्ष और सभी संबंधित पक्षों के लिए न्यायसंगत हो।

सादर,

(ह.)

श्यामाप्रसाद मुखर्जी

शेख़ मोहम्मद अब्दुल्ला
मुख्यमंत्री,
जम्मू और कश्मीर

3

नई दिल्ली
10 जनवरी, 1953

प्रिय श्यामाप्रसाद,

9 जनवरी का लिखा आपका पत्र मुझे आज प्राप्त हुआ है। मैं इसका तुरंत जवाब दे रहा हूँ, क्योंकि मैं जल्द ही हैदराबाद जाने के लिए दिल्ली से दूर जाने वाला हूँ।

जम्मू में स्थिति से हमारे निपटने के मामले में प्रतिष्ठा का प्रश्न ही नहीं है। अगर कोई दिशा हमें सही प्रतीत होगी, हम निश्चित रूप से उसका पालन करेंगे। आप कहते हैं कि जम्मू में दमन का राज चल रहा है और आगे यह कि प्रजा परिषद् या उनके समर्थकों की ओर से हिंसा नहीं हुई है। निश्चित रूप से इस तथ्य को पुष्ट करने के लिए किसी सबूत की आवश्यकता नहीं है कि प्रजा परिषद् के लोग व्यापक पैमाने पर हिंसा में लिप्त हैं। यह तथ्य कि बड़ी संख्या में अधिकारी और पुलिसकर्मी घायल हुए हैं और सार्वजनिक भवनों को नुक़सान पहुँचाया गया है, हिंसा का पर्याप्त सबूत है।

जम्मू के घटनाक्रमों में मेरी स्वाभाविक रूप से दिलचस्पी है और मैं उन पर बारीक़ी से नज़र रखे हुए हूँ। मेरे पास सिर्फ़ वही नहीं है, जिसे सरकारी रिपोर्ट कहा जाता है, बल्कि जानकारी के पर्याप्त अनधिकृत स्रोत भी हैं। ये सभी इस बात से सहमत हैं कि जम्मू-कश्मीर सरकार ने दमनकारी उपायों से बचने की कोशिश की और परिस्थितियों को देखते हुए काफ़ी संयम दिखाया है। विषय के गुण-दोषों से बहुत परे, मैं चाहूँगा कि आप किसी भी सरकार में स्वयं को पद पर रखकर देखें, जिसे हिंसा के साथ इस प्रकार के आंदोलन के सामना करना पड़ता हो। या तो कोई सरकार पदत्याग कर दे या वह स्थिति को नियंत्रित करे। बीच का कोई रास्ता नहीं है। यह सच है कि किसी स्थिति को नियंत्रित करने के प्रयास में प्राधिकारियों की ओर से ज़्यादतियाँ हुई हो सकती हैं, लेकिन जैसा मैंने ऊपर कहा है, मेरी सूचना इससे विपरीत है। निश्चित रूप से मैं हर विषय पर विस्तारपूर्वक बात नहीं कर सकता हूँ।

आपने कहा है कि आपने हमसे मिलने के लिए समय माँगा था, जो आपको नहीं दिया गया था। हाल के महीनों के दौरान मिलने के लिए माँगे गए समय की मुझे कोई जानकारी नहीं है। मैंने जो देखा है, वह सभी सार्वजनिक प्रेस में दी गई धमकियाँ थीं।

मुझे लगता है, मैं एक खुला मन रखने में सक्षम हूँ। ख़ैर, मैं ऐसा करने की कोशिश करता हूँ और मैं किसी भी सुझाव पर विचार करने के लिए तैयार हूँ। किसी भी अन्य मामले की तुलना में, मुझे इस मामले में हर घटनाक्रम पर बहुत बारीक़ी से विचार करना होगा। जम्मू में जो होता है, वह कोई स्थानीय मामला नहीं है। उसका पूरे कश्मीर मुद्दे पर, जम्मू और कश्मीर राज्य के भविष्य पर, संयुक्त राष्ट्र आदि पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। इस प्रश्न को उस व्यापक संदर्भ में देखा जाना चाहिए। मुझे आश्चर्य होता है कि उन लोगों द्वारा, जो जम्मू आंदोलन का समर्थन करते हैं, यह संदर्भ भुला दिया गया है, या उसकी अनदेखी की गई है या वे इसे कोई महत्त्व नहीं देते हैं। मुझे यह पूरी तरह साफ़ लगता है कि अगर जम्मू आंदोलन सफल रहा, तो वह राज्य से संबंधित हमारे पूरे पक्ष को बरबाद कर देगा। वास्तव में प्रजा परिषद् द्वारा घोषित उद्देश्यों के लिए इस आंदोलन से अधिक हानिकारक कुछ भी नहीं हो सकता है। वे इस ढंग से अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने की उम्मीद कैसे करते हैं, यह मेरी समझ से परे है। आपको इस पूरे कश्मीर मुद्दे की पृष्ठभूमि का कुछ ज्ञान है और मैं चाहता हूँ कि आप इस पूरे प्रश्न पर विचार करें।

कल्पना करें कि कश्मीर की घाटी में मुसलिम लीग के कुछ बचे हुए लोग एक आंदोलन शुरू कर दें, जो भारत विरोधी और पाकिस्तान समर्थक हो, तो हमें उससे कैसे निपटना चाहिए? आपको क्या लगता है कि प्रजा परिषद् के आंदोलन का घाटी में या अन्यत्र ऐसे व्यक्तियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा? अगर आप समस्याओं का पिटारा खोल देते हैं, तो सभी प्रकार की अप्रत्याशित और अवांछनीय बातें उससे बाहर निकलती हैं। दोनों ही मामलों में एक सुसंगत नीति का पालन किया जाना है।

आपने भारत सरकार और जम्मू-कश्मीर राज्य सरकार के बीच कुछ महीने पहले हुए समझौते का हवाला दिया है तथा उसकी आलोचना की है। हमने उस समय इस विषय पर पूरी तरह विचार किया था और मैंने इसके कारणों की व्याख्या करने की कोशिश की थी। स्पष्ट रूप से, जम्मू और कश्मीर राज्य के मामले को बिल्कुल उसी प्रकाश में नहीं देखा जा सकता, जिसमें भारत में अन्य राज्यों को देखा जाता है। इसके लिए किसी तर्क की आवश्यकता नहीं है। यह हमारी इच्छा या कामनाओं का नहीं, बल्कि तथ्यों और उससे भी बढ़कर जटिल तथ्यों का सवाल है। इन सभी तथ्यों पर विचार करने के बाद हम किसी निर्णय पर पहुँचे थे, जो मुझे लगता है कि न्यायसंगत था और जिसने राज्य को बहुत मज़बूती से भारत के साथ जोड़ दिया था। अंततः राज्य का सवाल किसी क़ानूनी निर्णय या संविधान में किसी तरह के परिवर्तन से नहीं सुलझना है।

संवैधानिक कारकों पर अधिभावी अन्य कारक हैं, जो सक्रिय हैं और जिनमें अंतरराष्ट्रीय कारक शामिल हैं। विदेश नीति केवल हमारी इच्छाओं का आईना नहीं है, न ही यह मात्र ग़ुस्से की एक प्रदर्शनी है। इसे ज़मीनी तथ्यों और अपनी इच्छा को लागू कर लेने के लिए देश की ताक़त के साथ जोड़ना होता है।

आपने उल्लेख किया है कि शेख़ अब्दुल्ला आपको बता रहे थे कि वह और उनके सहयोगी उनकी संविधान सभा से भारत में राज्य के विलय के बारे में एक संकल्प पारित करने के लिए तैयार थे, लेकिन मैंने इसे स्वीकार नहीं किया था। यह कुछ हद तक सच है; लेकिन यह एक विशेष समय के संदर्भ में है। जब संविधान सभा ने पहले कामकाज शुरू किया था, तब इस प्रस्ताव पर विचार किया गया था। तब हमारी सलाह यह थी कि इन प्रस्तावों को तुरंत पारित करना बुद्धिमानी नहीं होगी, क्योंकि इससे निष्कर्ष निकाला जाएगा कि विधानसभा सिर्फ़ इस उद्देश्य के लिए बुलाई गई है, और अन्य प्रयोजनों के लिए नहीं। तथ्य यह है कि हमारे अनुसार परिग्रहण पूर्ण था और संविधान सभा का संकल्प हालाँकि स्वागत योग्य था, लेकिन इसे और अधिक पूर्ण नहीं कर सकता था। प्रश्न उस परिग्रहण में एक और बात जोड़ने का नहीं, बल्कि संयुक्त राष्ट्र के प्रति हमारे दृष्टिकोण का था। हमने इसे स्पष्ट कर दिया था और हम उस बात पर टिके रहना चाहते थे, जो हमने कही थी। यह एक बड़ा मुद्दा है। निश्चित रूप से संविधान सभा इस तरह का कोई संकल्प पारित करने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र है : तथ्य यह है कि भारत सरकार और जम्मू-कश्मीर राज्य सरकार के बीच कुछ महीने पहले हुआ समझौता न केवल विलय का एक पुष्टीकरण था, बल्कि उसे लागू करने का भी था। परिग्रहण के बिना यह नहीं हो सकता था।

आपने समझौते पर अमल नहीं होने की बात कही है। यह सच है। लेकिन मार्ग में कुछ कठिनाइयाँ थीं, जिनसे मामलों में देरी हुई है। जो सबसे पहला प्रश्न हाथ में लिया गया था, उस पर फ़ैसला करने में ही कुछ महीने लग गए। कोई संदेह नहीं कि अन्य मामलों पर भी विचार किया जाएगा।

जम्मू-कश्मीर राज्य के मुखिया का एक तरह का प्रतिद्वंद्वी राष्ट्रपति होने का कोई सवाल ही नहीं है। वह सिर्फ़ उसी तरह एक राज्य के प्रमुख हैं, जैसे भारत में किसी भी अन्य राज्य के प्रमुख होते हैं। उन्हें केवल भारत के राष्ट्रपति के अनुमोदन के बाद नियुक्त किया जा सकता है।

जम्मू के लोगों की किसी भी शिकायत पर विचार करने और जहाँ भी संभव हो, उसे दूर करने का प्रयास करने के लिए मैं तैयार हूँ, और मुझे विश्वास है कि शेख़ अब्दुल्ला भी तैयार हैं। लेकिन प्रजा परिषद् की माँगें बुनियादी संवैधानिक मुद्दे हैं, जिन्हें अत्यंत स्पष्ट कारणों से लागू नहीं किया जा सकता है। वे एक बहुत ही मुश्किल और

जटिल संवैधानिक प्रश्न को युद्ध के तरीक़ों से सुलझाने की कोशिश कर रहे हैं। यह दिखाने के लिए ज़्यादा विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि इस विधि से वे परिणाम प्राप्त नहीं किए जा सकते हैं, चाहे उनके गुण-दोष कुछ भी हों। यह केवल जम्मू-कश्मीर राज्य के पूरे उद्देश्य को क्षति पहुँचा सकता है और विशेष रूप से जम्मू के लोगों की कुछ संभावित माँगों को। आप अलगाववाद की बात करते हैं। मैं पूरी तरह आपसे सहमत हूँ कि हमें इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। लेकिन प्रजा परिषद् का आंदोलन जो कर रहा है, वह वास्तव में यही है।

आपको पता होना चाहिए कि मैं पूरे जम्मू-कश्मीर राज्य के मामले को अंतिम रूप से सुलझाने के लिए कितना उत्सुक हूँ। ऐसा न केवल राज्य के कारण है, बल्कि इसलिए भी कि इसके भारत में व्यापक प्रभाव होंगे। लेकिन यह मुद्दा काफ़ी जटिल हो गया है और डिक्री देकर या संसद् के अधिनियम द्वारा इसके हल का कोई जादुई तरीक़ा नहीं है, जैसा कि कुछ लोग कल्पना करते प्रतीत होते हैं। आज दुनिया में कई अन्य मुद्दे हैं, जो अनसुलझे हैं, इसके बावजूद कि सबसे बड़ी शक्तियाँ उन्हें हल करने की इच्छुक हैं। हमें इन सभी विभिन्न कारकों को ध्यान में रखना होगा और अपनी इच्छाओं को हम पर हावी होने से रोकना होगा।

आपने शरणार्थियों के पुनर्वास की और साथ ही अपहृत महिलाओं की बात की है। इतने वर्षों से हम लगातार इन मामलों से निपटने की कोशिश कर रहे हैं। बड़ी संख्या में अपहृत महिलाओं को बरामद कर लिया गया है और भारत में शरणार्थियों की बड़ी संख्या को भी पुनर्वास के लिए वापस भेज दिया गया है और राज्य में बसा दिया गया है। यह कहना सही नहीं है कि कुछ भी नहीं किया गया है।

जम्मू के प्रश्न के लिए सही दृष्टिकोण यही है कि इस आंदोलन को पूरी तरह रोका जाए और फिर जो भी शिकायत बची हो, उससे निपटा जाए। मैं उम्मीद करता हूँ कि आप इस दिशा में प्रजा परिषद् पर अपने प्रभाव का प्रयोग करेंगे।

अगर आप चाहें तो मैं ख़ुशी-ख़ुशी आपसे मिलूँगा। लेकिन मैं दूर जा रहा हूँ (बंबई और हैदराबाद) और लगभग दस दिनों तक दूर रहूँगा। मैं समझता हूँ कि शेख़ अब्दुल्ला भी हैदराबाद जा रहे होंगे।

सादर,

(ह.)

जवाहरलाल नेहरू

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, संसद् सदस्य
77, आशुतोष मुखर्जी रोड
कलकत्ता-25

4

77, आशुतोष मुखर्जी रोड
कलकत्ता 25
3 फरवरी, 1953

प्रिय जवाहरलालजी,

मैं आपके और शेख़ अब्दुल्ला द्वारा दिए गए भाषणों को पढ़ता रहा हूँ। इस मामले पर आपके साथ एक लंबा पत्राचार जारी रखने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। लेकिन इसमें निहित मुद्दे इतने गंभीर हैं कि मैं आपको फिर से लिख रहा हूँ। इन भाषणों की एक आम विशेषता अपशब्दों और दुर्वचनों की वह बहुतायत है, जो आप उन लोगों के लिए व्यक्त करते हैं, जो आपसे असहमत होते हैं। आपने हमें सभी प्रकार के छिछले इरादों के लिए ज़िम्मेदार ठहराया है और यहाँ तक कि हमें देश के हितों से विश्वासघात करने वाला करार दिया था। मेरी इस संबंध में आपसे स्पर्धा करने की कोई इच्छा नहीं है। क्रोध और जुनून के विस्फोट किसी भी बड़ी समस्या को हल करने में हमारी मदद नहीं करेंगे। यह स्पष्ट है कि हम इस महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर एक-दूसरे के साथ ज़रा भी सहमत नहीं हैं। फिर भी, हमें एक-दूसरे के साथ बहस करने की और तार्किक ढंग से आगे बढ़ने की कोशिश करनी चाहिए, और यह पता करने की कोशिश करनी चाहिए कि किसी समाधान तक पहुँचा जा सकता है या नहीं।

मैंने आपका उत्तर और आपके तथा शेख़ अब्दुल्ला के भाषणों को काफ़ी ध्यान से पढ़ा है, लेकिन दुर्भाग्यवश उनमें असली मुद्दे से बचने की कोशिश की गई है।

मैं सबसे पहले हमारे विरुद्ध सांप्रदायिकता और संकीर्णता के आपके बार-बार दोहराए जाने वाले आरोपों के बारे में बात करना चाहता हूँ। यह सबसे अनुचित आरोप है और अनजाने में आप हाल ही में इस तरह के हमलों में केवल अपने पक्ष की कमज़ोरी को छिपाने के लिए लिप्त रहे हैं। समस्या के प्रति हमारा दृष्टिकोण सर्वोच्च राष्ट्रीय और देशभक्तिपूर्ण विचारों से प्रेरित है। हम जिस समाधान की माँग कर रहे हैं, वह सांप्रदायिक होने से कोसों दूर है—और यह भारत के विभाजन या बिखराव की माँग भी कदापि नहीं

कर रहा है। मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप जब कभी शांत मुद्रा में हों, तब यह विचार करें कि आपके जीवन के इतिहास में, भारत में मुसलिम सांप्रदायिकता के विरुद्ध खड़े होने में आपकी असफलता का परिणाम कैसे विनाशकारी रूप में सामने आया है। शायद आप और अन्य लोगों ने बहुत अच्छे इरादों के साथ रियायतें देने व तुष्टीकरण करने की नीति का पालन किया होगा, लेकिन अंतिम परिणाम में आपकी ख़ुद की बार-बार दोहराई गई घोषणाओं के विपरीत देश विभाजित हुआ था। उस समय बहुत महत्त्व का एक पहलू एक विदेशी शक्ति का अस्तित्व था, जो हमारे ख़िलाफ़ काम करती थी और जो बाँटो और राज करो की नीति पर कार्य करना चाहती थी। अगर आज हम सतर्क होना चाहते हैं और अतीत की दुःखद ग़लतियों से बचना चाहते हैं, तो हम ऐसा देश के सर्वोच्च हित में चाहते हैं, न कि किसी संकीर्ण सांप्रदायिक लक्ष्य या किसी वर्ग के हित के लिए।

आपको कश्मीर के संदर्भ में जिन बिंदुओं का समाधान करना ही होगा, वे निम्नानुसार हैं—

1. प्रजा परिषद् को काफ़ी जनसमर्थन प्राप्त है। जनता के मन को जानने वाले एक व्यक्ति के तौर पर, आपको अहसास होगा कि किसी भी लोकप्रिय आंदोलन को बल से नहीं कुचला जा सकता। आप भले ही प्रजा परिषद् की माँगों से सहमत न हों, आपको स्वयं को आंदोलन के समर्थकों और संरक्षकों की स्थिति में रखकर देखने और उनके दृष्टिकोण को समझने की कोशिश करनी चाहिए। आपने और शेख़ अब्दुल्ला, दोनों ने प्रजा परिषद् के कथित पुराने इतिहास का विस्तृत उल्लेख किया है। मेरी इस बात पर आपके साथ किसी विवाद में पड़ने की कोई इच्छा नहीं है, लेकिन आपने जो कुछ कहा है, उसमें से अधिकतर तथ्यों पर आधारित नहीं है। इस तरह का प्रेक्षण वास्तव में इस मोड़ पर अप्रासंगिक है। फ़ैसला प्रजा परिषद् द्वारा उठाए गए मुद्दों के गुण-दोषों का होना है।
2. उठाया गया पहला सवाल यह है कि जम्मू-कश्मीर राज्य का भारत में परिग्रहण अंतिम तौर पर कब और कैसे तय किया जाएगा? यदि यह जनमत संग्रह पर निर्भर करता है, तो इस तरह के जनमत संग्रह का रूप क्या होगा? हम नहीं चाहते कि यह संयुक्त राष्ट्र संघ के हस्तक्षेप या पाकिस्तान के साथ समझौते पर निर्भर हो। हम संयुक्त राष्ट्र संघ परिग्रहण के मुद्दे के समाधान के लिए नहीं, बल्कि पाकिस्तान द्वारा भारत पर किए गए आक्रमण के ख़िलाफ़ संरक्षण के लिए गए थे, जिसमें हमने दावा किया था कि जम्मू-कश्मीर राज्य शामिल था। संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से किसी भी न्यायसंगत समाधान की कोई उम्मीद नहीं है। कोई संदेह नहीं कि आपने यह बात बार-बार व्यक्त की है कि परिग्रहण

जम्मू-कश्मीर के लोगों की इच्छा के अनुसार किया जाएगा। हमारी सीधी-सी माँग यह है कि लोगों की यह इच्छा अब एक बार और हमेशा के लिए व्यक्त की जानी चाहिए, और इसे अनिश्चित भविष्य के लिए नहीं छोड़ दिया जाना चाहिए। मेरा अपना सुझाव यह है कि जम्मू-कश्मीर की विधानसभा, जो वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित की गई है, वह अंतिम परिग्रहण को स्वीकार करने वाला एक प्रस्ताव पारित कर सकती है, जिससे जहाँ तक भारत का संबंध है, इस मामले को अंतिम और अपरिवर्तनीय तौर पर निर्णीत माना जा सकता है। आपकी व्यक्तिगत घोषणाएँ या शेख़ अब्दुल्ला के भाषण पर्याप्त नहीं होंगे। मुद्दे को निपटाने का संवैधानिक प्रयास होना चाहिए। आप और शेख़ अब्दुल्ला सुझाव को स्वीकार क्यों नहीं करते हैं और प्रजा परिषद् द्वारा उठाए गए मुख्य बिंदुओं में से एक का निपटारा क्यों नहीं करते हैं? कृपया इस मुद्दे का साफ़-साफ़ उत्तर दें और यदि यह सुझाव स्वीकार्य नहीं है, तो हमें बताएँ कि परिग्रहण को अंतिम रूप देने के लिए आपके पास वैकल्पिक प्रस्ताव क्या है?

3. दूसरा सवाल जम्मू-कश्मीर राज्य के एक-तिहाई क्षेत्र के संबंध में है, जो अब पाकिस्तान के क़ब्ज़े में है। आपने उन लोगों के ख़िलाफ़ गरजने की भाषा में अपने आपको व्यक्त किया है, जो जम्मू-कश्मीर राज्य को विभाजित करना चाहते हैं। हम विभाजन नहीं चाहते और आपके आरोप काल्पनिक हैं। लेकिन लगता है कि आप यह भूल गए हैं कि पाकिस्तान ने पहले ही जम्मू-कश्मीर राज्य का विभाजन कर दिया है और असली सवाल यह है कि क्या आप और शेख़ अब्दुल्ला का प्रस्ताव इस विभाजन को चुपचाप स्वीकार करने का है। आपने इस सवाल को हमेशा टाल दिया है। कृपया इस मुद्दे से बचने की कोशिश न करें और भारत की जनता को पता होने दें कि अगर हम अपने लाड़ले क्षेत्र के इस हिस्से को वापस लेने जा रहे हैं, तो कैसे और कब।

4. तीसरा बिंदु उन विषयों से संबंधित है, जिनके अधीन परिग्रहण होगा। प्रजा परिषद् चाहती है, और हम तहेदिल से सहमत हैं कि पूरा जम्मू-कश्मीर राज्य उसी संविधान के अनुसार शासित होना चाहिए, जो शेष भारत पर लागू होता है। क्या इसमें कोई सांप्रदायिक या प्रतिक्रियावादी या राष्ट्रविरोधी बात है? यदि भारत का संविधान शेष भारत पर लागू किए जाने के लिहाज़ से अच्छा है, तो यह जम्मू-कश्मीर राज्य को स्वीकार्य क्यों नहीं होना चाहिए? यह प्रत्युत्तर देना शेख़ अब्दुल्ला की आदत हो गई है कि संविधान का अनुच्छेद 370 जम्मू-कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा देता है। इस अनुच्छेद का इतिहास आप और मैं पूरी तरह से जानते हैं। अगर यह मानकर चलें कि रक्षा, विदेशी मामले और

संचार के अलावा अन्य विषयों के संबंध में परिग्रहण जम्मू-कश्मीर सरकार की सहमति से होगा, तो हम उस सरकार को उसी संविधान का पालन करने के लिए सहमत होने के लिए राज़ी क्यों नहीं कर सकते, जिससे शेख़ अब्दुल्ला और उनके सहयोगी भारत की संविधान सभा के सदस्य के रूप में एक पक्ष के तौर पर संबद्ध रहे थे? अगर ऐसे कुछ मामले हैं, जिनके संबंध में हमारे संविधान को जम्मू-कश्मीर राज्य की विशेष ज़रूरतों को पूरा करने के लिए संशोधित किया जाना चाहिए, तो इसकी पूरी तस्वीर रखी जाए और हमें बताया जाए कि वे विशेष प्रावधान क्या हैं, जिन्हें संशोधित किया जाना चाहिए। हम इस मामले पर खुले दिमाग़ से चर्चा करने के लिए तैयार हैं। लेकिन ऐसे कुछ मूलभूत विषय हैं, जिनके संदर्भ में भारत की एकता किसी भी क़ीमत पर बनाए रखी जानी चाहिए। वे मौलिक अधिकार, नागरिकता का अधिकार, सुप्रीम कोर्ट का न्यायक्षेत्र, हाई कोर्ट का कार्य और गठन, राष्ट्रपति की शक्तियाँ, राष्ट्रीय योजना और वित्तीय एकीकरण जैसे विषयों से संबंधित हैं। इनमें से कुछ मामलों के संबंध में, हमारे संविधान के उपबंधों को लागू करने के लिए पिछले साल जुलाई में भारत सरकार और शेख़ अब्दुल्ला की सरकार के बीच एक समझौता हुआ था। हम इस परिवर्तन से संतुष्ट नहीं हैं, लेकिन संविधान के इस संशोधित अनुप्रयोग में भी अनुचित और अनावश्यक रूप से देरी की गई है, जिससे जनता के मन में संदेह और ग़लतफ़हमी पैदा हुई है। राज्य प्रमुख का पद और पूरे भारत के लिए एक ध्वज अपनाया जाना भी भारत की एकता की विशेष आवश्यकताएँ हैं। यह आश्चर्यजनक है कि किस प्रकार शेख़ अब्दुल्ला और उनके सहयोगियों द्वारा चली जा रही अलगाववाद की चाल की आप राष्ट्रीय और देशभक्तिपूर्ण कहकर सराहना कर रहे हैं और कैसे भारत की मौलिक एकता एवं अखंडता को सुरक्षित रखने तथा आम भारतीय नागरिक की हैसियत से शासित होने की प्रजा परिषद् की एक न्यायसंगत इच्छा को आप विश्वासघाती आचरण कहकर पेश कर रहे हैं। आपका पत्र और आपके भाषण प्रजा परिषद् द्वारा उठाए गए इन मूलभूत बिंदुओं का कोई संतोषजनक जवाब नहीं देते।

5. जम्मू के लोगों की कई शिकायतें उनकी आर्थिक प्रगति, उनके रोज़गार, शरणार्थियों के पुनर्वास, सीमावर्ती ज़िलों का सांप्रदायिक आधार पर विभाजन, जिसकी एक निष्पक्ष आयोग द्वारा तत्काल जाँच की आवश्यकता है, जैसे मामलों से संबंधित हैं। इन मामलों से निपटने में देरी आंदोलन को तेज़ करेगी।

6. यह निस्संदेह सच है कि हमें ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए, जिससे भारत की स्थिति कमज़ोर होती हो, या हमारे दुश्मन के हाथ मज़बूत होते हों। भारत के

प्रधानमंत्री के रूप में यह पहलू किसी भी और व्यक्ति से अधिक आपको ध्यान में रखना चाहिए। आपकी ग़लत नीतियों और जो लोग आपसे असहमत हों, उनके दृष्टिकोण को समझने में आपकी असफलता के कारण यह देश आपदा के कगार पर ले जाया जा रहा है।

मैंने आपको यह पत्र केवल यह जानने की इच्छा से लिखा है कि क्या जम्मू आंदोलन को समाप्त करने के लिए कोई रास्ता अभी भी निकाला जा सकता है। एकमात्र रास्ता गिरफ़्तार किए गए सभी लोगों को रिहा करने और एक सम्मेलन बुलाने का है, जिसमें सभी समस्याओं पर शांतिपूर्ण वातावरण में और सभी संबंधित पक्षों के लिए न्यायसंगत तथा निष्पक्ष निर्णय पर पहुँचने की एकमात्र इच्छा के साथ विचार विमर्श किया जा सकता हो। दमन, कारावास, लाठीचार्ज और गोलियाँ आंदोलन को कभी नहीं कुचल सकेंगी। वास्तव में आंदोलन फैलेगा, गहरा होगा और भारत को भी प्रभावित करेगा। हाल ही में कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्ति यह देखने के लिए जम्मू की यात्रा करना चाहते थे कि वहाँ क्या हो रहा है और आपकी सरकार ने उन्हें राज्य की यात्रा करने की अनुमति देने से इनकार करना उचित समझा। इसके बावजूद आप दावा करते हैं कि यह भारतीय संघ का एक हिस्सा है और शेख़ अब्दुल्ला का दावा है कि वहाँ छिपाने के लिए कुछ नहीं है।

कश्मीर की स्थिति पर चर्चा करने के लिए जनसंघ की कार्यसमिति की 6, 7 और 8 फरवरी को दिल्ली में बैठक हो रही है। हम महान् और न्यायसंगत लक्ष्य लेकर चल रहे अपने देशवासियों के एक वर्ग की पीड़ा के मूक दर्शक बनकर अनिश्चितकाल तक बैठे नहीं रह सकते, जबकि वह ऐसी किसी भी सरकार द्वारा सहानुभूतिपूर्वक विचार किए जाने योग्य हैं, जिसके मन में देश की भलाई हो। यह कि मैं आपकी धमकियों, गालियों और आपके इनकार के बावजूद फिर से आपको पत्र लिख रहा हूँ, इस बात को स्पष्ट दरशाता है कि हमारी इच्छा संकट पैदा करने की नहीं है। मैं अभी भी आशा करता हूँ कि शांतिपूर्ण समाधान का कोई रास्ता निकाल लिया जाएगा, ताकि हम अपने राजनीतिक मतभेदों के बावजूद इस मामले पर एकजुट हो सकें। मैं 5 तारीख़ की शाम को दिल्ली पहुँच जाऊँगा। अगर आपको लगता है कि मेरे लिए 6 तारीख़ की सुबह आपके पास आना और आपके साथ बात करना बेहतर होगा, तो आप कृपया मेरे दिल्ली के पते 30, तुगलक क्रीसेंट, नई दिल्ली पर मुझे एक संदेश भेज सकते हैं।

सादर,

(ह.)

श्यामाप्रसाद मुखर्जी

श्री जवाहरलाल नेहरू
भारत के प्रधानमंत्री,
नई दिल्ली

5

77, आशुतोष मुख़र्जी रोड,
कलकत्ता 25
3 फरवरी, 1953

प्रिय शेख़ साहिब,

मैंने श्री जवाहरलाल नेहरू को 9 जनवरी को लिखे अपने पहले पत्र की प्रतिलिपि आपको भेजी थी। मुझे उनका विधिवत् जवाब मिल गया है, लेकिन आपकी ओर से मुझे पत्र प्राप्ति की स्वीकृति भी प्राप्त नहीं हो सकी है। इसके बावजूद मैं श्री नेहरू को दिए गए अपने उत्तर की प्रतिलिपि आपको भेज रहा हूँ।

मैं 5 फरवरी की शाम को दिल्ली पहुँच जाऊँगा। यह दुःखद है कि आप उन लोगों को पूरी तरह ग़लत समझ रहे हैं, जो आपसे असहमत हैं और आप जिस तरीक़े से आगे बढ़ रहे हैं, वह जम्मू-कश्मीर राज्य सहित भारत के लिए विनाशकारी हो सकता है। मैं अब भी आशा करता हूँ कि आप इस अवसर पर खरे उतरने और शांतिपूर्ण समाधान का रास्ता खोजने में सक्षम होंगे।

सादर,

(ह.)
श्यामाप्रसाद मुखर्जी

शेख़ मोहम्मद अब्दुल्ला
मुख्यमंत्री,
जम्मू-कश्मीर

6

जम्मू तवी
4 फरवरी, 1953

प्रिय डॉक्टर साहब,

9 जनवरी को हैदराबाद से लौटने पर मुझे आपका पत्र मिला, जिसके साथ आपने श्री नेहरू को लिखे अपने पत्र की एक प्रति संलग्न की है। नतीजतन, इसका जवाब देने में कुछ देर हुई है।

जम्मू की स्थिति पर, जिस पर आपने इतनी ज़्यादा दिलचस्पी दिखाई है, आपको लिखने का यह अवसर मुझे देने के लिए धन्यवाद। पिछले साल सितंबर में श्रीनगर में जब मैंने आपसे मुलाक़ात की थी, तब मैंने जम्मू-कश्मीर राज्य से संबंधित कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दों के संबंध में अपना दृष्टिकोण आपको विस्तार से बताया था। मुझे संतोष था कि उस बैठक के परिणामस्वरूप आपने कुछ हद तक हमारी स्थिति की सराहना की थी, क्योंकि उसके बाद जल्द ही आपने सार्वजनिक रूप से उन कठिनाइयों के बारे में और थोड़े-बहुत सहानुभूतिपूर्ण शब्दों में बात की थी, जिनका मुझे और मेरे साथियों को सामना करना पड़ रहा था।

लेकिन इस अवसर पर मुझे यह कहते हुए खेद है कि आप जम्मू में वर्तमान में चल रही विशेष स्थिति को निष्पक्ष दृष्टि से नहीं देख रहे हैं। इसके विपरीत, आप सरकार पर आंदोलनकारियों के ख़िलाफ़ दमनकारी उपायों का उपयोग करने का आरोप लगाते हैं। ऐसा लगता है कि आपकी राय में इस स्थिति की ज़िम्मेदारी हम पर है। मैं अपेक्षा करता हूँ कि आप इस तरह जल्दबाज़ी में निष्कर्ष न निकालें।

आपने प्रजा परिषद् की वैध माँगों का उल्लेख किया है और निवेदन किया है कि उन्हें स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। इसके पहले कि मैं इस पहलू पर बात करूँ, हमें प्रासंगिकता के साथ परिग्रहण के ही सवाल पर परिषद् के रवैये की जाँच कर लेनी चाहिए। यह साबित करने के लिए निर्णायक सबूत हैं कि प्रजा परिषद् पूरे कश्मीर मुद्दे

का समाधान सांप्रदायिक आधार पर करने के लिए मजबूर करने को आमादा है। उसके नेताओं ने इस आशय के अपने विचार सार्वजनिक रूप से व्यक्त किए हैं और मैं नीचे उनके भाषणों से कुछ अंश दे रहा हूँ। ये विचार वर्तमान आंदोलन में अंतर्निहित असली इरादों के बारे में कोई संदेह नहीं छोड़ते हैं—

'हमारा रास्ता कश्मीर के साथ नहीं है। शेख़ हमें क़बूल नहीं है। हम जम्मू और लद्दाख का हवा में फना हो जाना बरदाश्त नहीं कर सकते हैं। हम चाहते हैं कि लोग प्रजा परिषद् में आँख मूँदकर विश्वास करें और अपने लक्ष्य को पाने के लिए कफन ओढ़ने के लिए तैयार रहें।'

(श्री मदन लाल, सचिव,
जिला प्रजा परिषद्, 20-10-52 को सांबा में।)

'हम शेख़ अब्दुल्ला और नेशनल कॉन्फ्रेंस के अन्य कार्यकर्ताओं को समाप्त कर देंगे। हम उनका ख़ून चूस लेंगे। हम इस सरकार को उखाड़ फेंकेंगे और उन्हें कश्मीर भेज देंगे। हमें यह राज पसंद नहीं है।'

(श्री ऋषिकुमार कौशल, सदस्य,
प्रजा परिषद् कार्य समिति, 23-11-52 कोरियासी में)

वास्तव में जो इरादा है, उसे प्रजा परिषद् के हाल के एक प्रकाशन में स्पष्ट किया गया है। उसमें कहा गया है—'....वर्तमान संविधान सभा में 75 सदस्य हैं। इसका विवरण इस प्रकार है—

प्रांत	*सामान्य*	*मुसलिम*	*बौद्ध*	*कुल*
कश्मीर	3	41	...	44
जम्मू	21	8	...	29
लद्दाख	...	1	1	2
कुल	24	50	1	75

ये आँकड़े स्पष्ट बताते हैं कि शेख़ अब्दुल्ला के मुसलिम वर्चस्व को जम्मू और लद्दाख के हिंदू बौद्धों पर जबरन थोपा नहीं जा सकता है और थोपा नहीं जाना चाहिए'

(प्रचार सचिव, ऑल जम्मू-कश्मीर प्रजा परिषद्,
जम्मू द्वारा जारी किए गए 'जम्मू और कश्मीर राज्य के लिए एक अलग संविधान को जम्मू ख़ारिज करता है' शीर्षक वाले पैंफलेट का पृष्ठ 12)

आपने वर्तमान आंदोलन में मुसलमानों की भागीदारी का उल्लेख किया है। मुझे हैरत होती है कि प्रजा परिषद् के इन खुले सांप्रदायिक विचारों और मुसलमानों के प्रति अतीत के उनके व्यवहार को देखते हुए, कोई समझदार मुसलमान वर्तमान आंदोलन के साथ गंभीरता से जुड़ने के बारे में सोचता होगा। इसके विपरीत सरकार को अशांत क्षेत्रों में रहने वाले मुसलमानों से परिषद् के आतंकवाद के ख़िलाफ़ संरक्षण के लिए आवेदन प्राप्त हुआ है।

अब मैं उस बारे में बात करता हूँ, जिसे आपने प्रजा परिषद् की वैध माँगें कहा है। आपने जम्मू के भविष्य के संबंध में असुरक्षा की भावना की बात की है, जिससे यहाँ लोग पीड़ित हैं। यह अनिश्चितता अकेले जम्मू तक ही सीमित नहीं है। कश्मीर और लद्दाख के लोगों के साथ भी यही भावना है। लेकिन इसका समाधान क्या है? जो विवाद संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष लंबित है, उसे सुलझाना मेरे या हमारी सरकार के वश की बात नहीं है। निश्चित रूप से हम सब उत्सुक हैं कि एक संतोषजनक और त्वरित समाधान पर पहुँचा जाना चाहिए। लेकिन प्रजा परिषद् ने इस माँग को इस तरह से रखा है, जैसे मैं इस समस्या के समाधान के रास्ते में खड़ा हूँ।

मैं यहाँ उल्लेख करना चाहूँगा कि कश्मीर समस्या के प्रति भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों के दृष्टिकोण में एक मूलभूत अंतर दिखाई देता है। आप कश्मीर के प्रश्न का उल्लेख एक राष्ट्रीय प्रश्न के रूप में करते हैं। इसमें स्वाभाविक रूप से मानकर चलना होगा कि भारत में अलग-अलग पार्टियों के दृष्टिकोण में एकरूपता होगी। लेकिन दुर्भाग्य से, राज्य की स्थिति के संबंध में अधिकतर ग़लत जानकारी पर आधारित और परस्पर विरोधी टिप्पणियाँ की गई हैं। न केवल उद्देश्य के संबंध में मतैक्य का अभाव है, बल्कि इसे प्राप्त करने के लिए सुझाई गई विधियों में भी बहुत भिन्नता है। इससे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मुद्दे की अस्पष्टता में इजाफा होता है।

कश्मीर समस्या को ठीक से समझना हर भारतीय का एक वैध अधिकार है। लेकिन जब ऐसी समझ दूषित हो जाती है, तो यह स्वाभाविक रूप से निर्णय को भी ख़राब करती है। मैं समझता हूँ कि जनसंघ ने अकाली नेता मास्टर तारा सिंह का सहयोग प्राप्त किया है। मास्टरजी कश्मीर के बारे में क्या कहना चाहते हैं, यह देखना दिलचस्प है। लखनऊ में अपने भाषण में उन्हें यह कहते हुए बताया गया है :

'कश्मीर पाकिस्तान का है। यह मुसलिम राज्य है। लेकिन शरणार्थियों ने पश्चिमी पाकिस्तान में जो संपत्ति छोड़ दी है, मैं उसके एवज में इस पर दावा करता हूँ।'

उनके पास इस समस्या का एक समाधान है, जैसा कि वह कश्मीरी मुसलमानों के बारे में कहते हैं कि उन्हें पाकिस्तान खदेड़ दिया जाना चाहिए, 'जिस देश के कश्मीरी मुसलमान वास्तव में हैं।'

मैं नहीं जानता कि ज्ञान और राजनीति के इस बिंदु पर मैं क्या कहूँ।

फिर हिंदू महासभा के अध्यक्ष श्री एन.सी. चटर्जी भोपाल में अपने अध्यक्षीय भाषण में संविधान को हिंदू आदर्शों के अनुरूप लाने के लिए बदलने की अपील करते हुए कहते हैं कि कश्मीर के संबंध में हिंदू महासभा प्रयास करेगी कि

'संयुक्त राष्ट्र संघ से कश्मीर मुद्दे की वापसी की माँग और साथ ही जम्मू-कश्मीर राज्य के भारत में पूर्ण परिग्रहण की माँग और भारतीय संविधान की स्वीकृति की माँग।'

राज्य के भविष्य के संबंध में जनसंघ के भी अपने विचार हैं, जिनमें से कुछ विचार आपने समय-समय पर व्यक्त किए हैं। हाल ही में एक संवाददाता सम्मेलन में आपको यह कहते हुए बताया गया है—

'अगर कश्मीर घाटी के लोगों का सोचना कुछ भिन्न हो, तो कुछ समय के लिए इस क्षेत्र के लिए विशिष्ट प्रावधान किया जा सकता है। हम घाटी को, जिसका नेतृत्व शेख़ अब्दुल्ला के पास है, किसी भी विशेष तरीक़े से, जितना समय वह चाहें, उतने समय तक स्वीकार करने के लिए ख़ुशी-ख़ुशी तैयार हैं, लेकिन लोगों की इच्छा के अनुसार जम्मू और लद्दाख को पूरी तरह से भारत के साथ एकीकृत किया जाना चाहिए। मैं दोहराना चाहता हूँ कि मैं जम्मू-कश्मीर को विभाजित करना नहीं चाहता हूँ। लेकिन अगर शेख़ अब्दुल्ला अड़े रहते हैं तो जम्मू और लद्दाख का बलिदान नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि घाटी भारतीय संघ के भीतर एक अलग राज्य बनाई जा सकती है, जिसे सभी आवश्यक सरकारी अनुदान मिलेंगे और उसे संवैधानिक रूप से वैसा ही व्यवहार मिलेगा, जैसी शेख़ अब्दुल्ला और उनके सलाहकारों की इच्छा होगी।'

इस तरह के मौलिक रूप से धुर विरोधी दृष्टिकोणों के आधार पर, मुझे नहीं लगता कि कश्मीर के प्रश्न को एक राष्ट्रीय प्रश्न के रूप में लिया जा रहा है। इस दृष्टिकोण में कोई एकरूपता नहीं है और इसके परिणामस्वरूप मैं नहीं जानता कि किस दृष्टिकोण को हमारे द्वारा उचित या प्रतिनिधि दृष्टिकोण माना जाना चाहिए। कश्मीर के बारे में विचारों की इस विविधता का उल्लेख इसलिए प्रासंगिक है, क्योंकि आपने 'प्रजा परिषद् की न्यायसंगत और वैध माँगों' का उल्लेख किया है, जो कि आपके कहे अनुसार इन माँगों की पूर्ति के लिए श्री नेहरू और मेरे ख़िलाफ़ संघर्ष कर रहे हैं।

जम्मू के हिंदुओं में सुरक्षा की भावना बहाल करने के लिए आपने सुझाव दिया है कि राज्य संविधान सभा को एक संकल्प पारित करना चाहिए, जो राज्य के भारत में परिग्रहण को अंतिम कहता हो। लेकिन साथ ही आप यह भी महसूस करते हैं कि यह विधानसभा जम्मू के लोगों की प्रतिनिधि नहीं है। यह मेरी समझ से बाहर है कि परिग्रहण के बारे में निर्णय इसे अचानक प्रतिनिधि कैसे बना सकता है। लेकिन इसके अतिरिक्त,

इस पर विचार करना होगा कि जब विवाद संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष लंबित है, तब ऐसा निर्णय लिए जाने से भारत को और राज्य को क्या लाभ प्राप्त होगा। हम संकल्प पारित करने के लिए तैयार हैं, लेकिन जवाब में भारत सरकार को उन सभी दायित्वों को पूरा करने की स्थिति में होना चाहिए, जो इस फ़ैसले से उत्पन्न होते हैं। आप शायद सहमत होंगे कि अगर भारत सरकार ने घोषित कर दिया कि संविधान सभा का निर्णय बदला नहीं जा सकता तो उसे इसके साथ ही यह भी विचार करना होगा कि यह घोषणा संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ टकराव पैदा करेगी। वह (भारत सरकार) मामला वापस लेने की स्थिति में नहीं है। भारत के लिए विकल्प यह रहेगा कि वह (संयुक्त राष्ट्र) संघ से बाहर आ जाए और सभी अन्य सदस्यों से अपमान सहन करे। प्रश्न यह है कि क्या भारत अलग-थलग होकर खड़ा करने की स्थिति में है, ख़ासकर जब विदेशी शक्तियों की सारी सहानुभूति पाकिस्तान के पक्ष में होगी। अलग-थलग पड़ने की इस हालत में सशस्त्र संघर्ष के जोखिम से भी इनकार नहीं किया जा सकता।

यदि संविधान सभा के निर्णय की वैधता बनाए रखने के लिए भारत सरकार ऐसा क़दम उठाने के लिए तैयार हो, तो यह निर्णय ज़्यादा समय गँवाए बिना लिया जा सकता है। लेकिन अगर यह नहीं किया जा सकता हो, तो क्या मैं पूछ सकता हूँ कि यदि राज्य के भविष्य के बारे में राजनीतिक अनिश्चितता विधानसभा के संकल्प के बाद जारी रही तो इससे क्या भला होगा? केवल एक औपचारिकता की पूर्ति उन लोगों को संतुष्ट नहीं करेगी, जो इस सवाल का एक स्थायी समाधान निकालने के लिए चिंतित हैं।

ऊपर कही गई बातों के अलावा परिग्रहण की अंतिम पुष्टि करने के लिए एक साधन के रूप में संविधान सभा का उपयोग करने का आपका सुझाव स्पष्ट रूप से समस्या का पिछले दरवाज़े से निकाला गया एक समाधान प्रतीत होगा। इसके ठीक विपरीत, हम इस समाधान का सुझाव मात्र इस कारण देते हैं, क्योंकि एक निष्पक्ष जनमत संग्रह के लिए आवश्यक शर्तें अब तक पूरी नहीं की गई हैं।

मेरे मन में कोई संदेह नहीं है कि अगर ये शर्तें उपलब्ध हों और लोगों की इच्छा दर्ज कराने के लिए आवश्यक माहौल बनाया जाए तो फ़ैसला हमारे पक्ष में होना निश्चित है।

आप शायद राज्य की एकता में खलल डालकर किसी निर्णय के लिए मजबूर किए जाने के पाकिस्तान और अन्य इच्छुक पक्षों द्वारा किए जा रहे प्रयासों से अनजान नहीं हैं। अगर हम इस दुश्मनी के ख़िलाफ़ मज़बूती से डटे रहने में सक्षम हो सके हैं तो ऐसा केवल इस कारण हो सका है, क्योंकि हम एकता की ज़रूरत पर बल देते हुए राज्य की स्थिरता को बनाए रखने के लिए उत्सुक थे। एक बार अगर राज्य के विभिन्न वर्गों के लोग जनता के स्तर पर विभाजित हो गए तो कोई भी समाधान उन पर थोपा जा सकता है। लेकिन

लगता नहीं कि आप इस बात को स्पष्ट रूप से समझ सके हैं कि इस एकता को कैसे हासिल किया जा सकता है। आप इस बात से तो सहमत हैं कि [illegible] में संतुलन के साथ छेड़छाड़ नहीं की जानी चाहिए, लेकिन साथ ही आप जम्मू के पूर्ण विलय की प्रजा परिषद् की माँग को माने जाने का आग्रह करते हैं, चाहे राज्य के बाक़ी हिस्सों के साथ जो हो। आप यह भी विश्वास करते हैं कि यह प्रयास अंततः पाकिस्तान को अपना दावा छोड़ने के लिए मजबूर करेगा। मैं यह नहीं समझ सका हूँ कि इस जीत को कैसे हासिल किया जा सकता है। हम इस बात की अनदेखी नहीं कर सकते कि प्रजा परिषद् की गतिविधियाँ, जिन्हें आप सही ठहराते हैं, इस बीच राज्य की एकता और अखंडता के ख़िलाफ़ एक ख़तरनाक प्रभाव के रूप में काम कर रही हैं। आप कश्मीर में उस आंदोलन के संभावित नतीजों से अनजान नहीं हो सकते, जो एक उग्रवादी हिंदू नेतृत्व में चल रहा है और जो नेतृत्व अतीत में मुसलमानों के प्रति अपना दृष्टिकोण बहुत स्पष्ट कर चुका है। अगर यह आंदोलन बढ़ता है तो अज्ञात ताक़तें सक्रिय हो सकती हैं, जो राज्य की नींव के लिए गंभीर ख़तरा पैदा कर देंगी। मैं अपने आपको इस धारणा से सहमत नहीं कर सकता हूँ कि आप कश्मीर समस्या का समाधान विघटन और अराजकता के माध्यम से चाहते हैं।

मैं नहीं जानता कि राज्य की वर्तमान संवैधानिक स्थिति का तालमेल विलय की माँग के साथ किस तरह बैठाया जा सकता है। आप इस स्थिति से किसी भी और व्यक्ति से अधिक परिचित हैं। यहाँ सरकार द्वारा जो भी किया गया है, वह भारतीय संविधान के अनुरूप है। फिर भी आप इस स्थिति के बारे में इस तरीक़े से बोलते हैं, जिससे लगता है कि हम संविधान का उल्लंघन कर रहे हैं। यह देखना मेरे लिए पीड़ाजनक है कि आप जैसा प्रतिष्ठित व्यक्ति भी एक प्रधान, एक विधान, एक निशान जैसे एक भावनात्मक नारे में बह गया है। लगता है, आप सोचते हैं कि हम इन प्रतीकों के विरुद्ध हैं। राज्य के विलय और भारत के साथ इसके संवैधानिक संबंधों के नाते, यह सभी प्रतीक हमारे राज्य में भी उतने ही सर्वोच्च हैं, जितने किसी अन्य राज्य में हैं। यदि आंतरिक रूप से राज्य सरकार की नीतियों में कुछ बदलाव कर दिया गया है, तो ऐसा ठीक उस अधिकार के कारण है, जो भारतीय संविधान द्वारा विशेष रूप से राज्य को दिया गया है। यह व्यवस्था अभी नहीं की गई है, बल्कि 1949 से चली आ रही है, जब आप सरकार का एक हिस्सा होते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि आपको इस संवैधानिक स्थिति के निहितार्थों का अहसास नहीं है। मैं इस पत्र के साथ एक नोट भेज रहा हूँ, जिसे हमारे द्वारा प्रकाशित किया गया है। मुझे उम्मीद है कि आप प्रश्न के इस पहलू पर कुछ विचार करेंगे, ताकि आप राज्य सरकार के संविधान द्वारा निर्धारित अधिकारों और दायित्वों का निष्पक्ष रूप से मूल्यांकन कर सकें। इस स्थिति और संविधान के विशिष्ट प्रावधान के बारे में कोई अस्पष्टता नहीं है, जिससे वह नींव बनी है, जिस पर भारत के साथ राज्य का रिश्ता मज़बूती से टिका

हुआ है। जब संवैधानिक पहलू के बारे में बात की जाती है, तो यह बात कभी-कभी सुविधाजनक ढंग से भुला दी जाती है कि प्रजा परिषद् की चाहत के अनुसार अनुच्छेद 370 को संविधान से निकाल देना चाहिए। जहाँ तक हमारा संबंध है, हम लगातार कहते आ रहे हैं कि राज्य को दी गई विशेष स्थिति मात्र ही राज्य और भारत के बीच बढ़ती एकता और नज़दीकी संबंधों का स्रोत हो सकती है। भारत की संविधान सभा ने राज्य में प्रभावी विशेष परिस्थितियों का जायजा लिया था और तदनुसार प्रावधान किए थे। लेकिन यदि इस संबंध के आधार को बदलने की कोशिश की जाएगी तो उसके कुछ न कुछ परिणाम तो निकलेंगे ही, जिनके लिए हम सभी को तैयार रहना चाहिए।

इस संबंध में यह बात ग़ौर करने योग्य है कि कई दल, जो वर्तमान में प्रजा परिषद् का समर्थन कर रहे हैं, भारतीय संविधान की वर्तमान पद्धति से संतुष्ट नहीं हैं। उनमें से कुछ ने खुले तौर पर माँग की है कि भारतीय संविधान को हिंदू आदर्शों के अनुरूप होना चाहिए। अन्य अपने-अपने दल के झंडों को लेकर उतने ही उत्साहित रहे हैं। ऐसे एक प्रवक्ता ने हाल ही में कहा कि उनकी पार्टी वर्तमान राष्ट्रीय ध्वज के स्थान पर भगवा ध्वज की स्थापना कराने का प्रयास करेगी। साथ ही ये सभी दल और तत्त्व कथित एक विधान, एक प्रधान, एक निशान के लिए प्रजा परिषद् के आंदोलन का समर्थन कर रहे हैं। इस तरह के सुविधाजनक हथकंडे कुछ समय के लिए कुछ लोगों को आंदोलित कर सकते हैं, लेकिन इसमें कोई शक नहीं हो सकता कि प्रजा परिषद् के इन समर्थकों में से कई की संविधान और उसके प्रतीकों के प्रति निष्ठा संदिग्ध है।

आपने समझौतों का उल्लेख किया और शिकायत की है कि उन्हें लागू करने में विलंब हुआ है। इस पर स्पष्टीकरण की ज़रूरत है। आप पूरे राज्य या इसके एक भाग के भारत के साथ एकीकरण की प्रजा परिषद् की माँग का समर्थन करते हैं। ऐसी स्थिति में वर्तमान समझौतों की कोई बात नहीं हो सकती है, क्योंकि ये समझौते ठोस ढंग से उस विशेष स्थिति की पुष्टि करते हैं, जो संविधान द्वारा राज्य को प्रदान की गई है। प्रजा परिषद् ने इसका हमेशा विरोध किया है और वर्तमान आंदोलन उस विशेष स्थिति को समाप्त करने के उद्देश्य से शुरू किया गया है, जो वर्तमान में राज्य को प्राप्त है। मैं नहीं जानता कि इस विरोधाभास का क्या अर्थ माना जाए।

जहाँ तक हमारा संबंध है, हम इन समझौतों के प्रति प्रतिबद्ध हैं और सभी निर्णय निश्चित रूप से लागू किए जाएँगे। लेकिन आपने शायद इस बात पर विचार नहीं किया है कि हमने इन फ़ैसलों में से एक को बस लागू ही किया था, सदर-ए-रियासत के चुनाव के फ़ैसले को, कि प्रजा परिषद् ने ठीक इसी फ़ैसले के ख़िलाफ़ आंदोलन शुरू कर दिया, जबकि यह समझौतों का एक हिस्सा है। प्रजा परिषद् ने स्पष्ट कहा है कि वह पूरी तरह से समझौतों के ख़िलाफ़ है और आपने सार्वजनिक रूप से उनके इस दृष्टिकोण

का समर्थन किया है। मुझे नहीं पता कि इस विरोध को देखते हुए समझौतों के क्रियान्वयन में देरी के संबंध में शिकायत करना जायज है या नहीं। समस्या साधारण सी है। अगर प्रजा परिषद् समझौतों के क्रियान्वयन में तेज़ी चाहती है, तो उसे वह स्वीकार करना होगा, जो संविधान द्वारा स्वीकार किया गया है, अर्थात् राज्य की भारत संघ में एक विशेष स्थिति है। अगर इसे स्वीकार नहीं किया जाता है, तो इसका स्वाभाविक अर्थ होगा कि समझौते भी स्वीकार्य नहीं हैं और जम्मू-कश्मीर राज्य के विशेष दर्जे को समाप्त करने के लिए भारतीय संविधान में संशोधन किए जाने की कोशिश की जानी है। मैं समझता हूँ कि इन दोनों पहलुओं में कोई भ्रम की स्थिति नहीं है।

चूँकि आपने समझौतों का उल्लेख किया है, तो मैं कह सकता हूँ कि हमारी ओर से जरा भी देरी नहीं हुई है। जैसा कि आप जानते हैं, समझौते पिछले साल जुलाई में हुए थे, और संसद् के दोनों सदनों द्वारा उनका अनुमोदन अगस्त की शुरुआत में किया गया था। 11 अगस्त को राज्य की संविधान सभा ने उनकी पुष्टि की और इसके तुरंत बाद, सदर-ए-रियासत के चुनाव का मुद्दा भारत सरकार के साथ उठाया गया था, ताकि संविधान में आवश्यक समायोजन लागू किए जा सकें। इसमें काफ़ी लंबा समय लगा, क्योंकि भारत सरकार के क़ानूनी विशेषज्ञों ने प्रक्रिया के सवाल की जाँच की और यह 16 नवंबर तक घिसटता गया। 17 नवंबर को जाकर राज्य विधानसभा ने सदर-ए-रियासत का निर्वाचन किया, सदर-ए-रियासत 22 नवंबर को जम्मू पहुँचे ही थे कि प्रजा परिषद् ने अपना आंदोलन शुरू कर दिया, जिसकी शुरुआत सदर-ए-रियासत के ख़िलाफ़ काले झंडे के प्रदर्शनों के साथ की गई थी। उसके बाद से स्थिति ऐसी रही है, जिसमें सरकार का पूरा ध्यान क़ानून-व्यवस्था बनाए रखने पर उलझा रहा है। स्वाभाविक रूप से हमसे इन असामान्य परिस्थितियों में संविधान निर्माण के लिए बैठने की उम्मीद नहीं की जा सकती है।

मैं कामना करता हूँ कि आप इस स्थिति को समझेंगे। क्या मैं पूछ सकता हूँ कि ऐसे नाजुक मुद्दों को ज़बरदस्ती या धमकी के ज़रिए हल किया जा सकता है? हालाँकि मेरे मन में कोई संदेह नहीं है कि परेशानी समझौतों के अनुसार फ़ैसले लेने में ऐसी किसी देरी में नहीं है, जो हुई हो सकती है या नहीं हुई हो सकती है। संघर्ष का स्रोत मूलभूत है, और जैसा कि आपके द्वारा स्वीकार किया गया है, यह उस अनिश्चितता में निहित है, जिसमें राज्य का भाग्य वर्तमान में झूल रहा है। हमने स्वेच्छा से भारत के साथ ख़ुद को संबद्ध करने की पेशकश की थी और बुनियादी सिद्धांतों से समझौता किए बिना हम इस सहयोग को बाध्यकारी करना चाहते हैं। लेकिन दुर्भाग्य से प्रजा परिषद् बीच में ही जम्मू के हिंदुओं के लिए एक निर्णय चाहती है। चिंता की जो भावना कुछ लोगों को शीघ्र निर्णय की इच्छा करने के लिए प्रेरित करती है, वह समझी जा सकती है, लेकिन उसे

अमल में लाने के लिए सुझाए गए तरीक़े गंभीर परिणाम से भरे हुए हैं। मैं नहीं जानता कि जो ख़ुद सांप्रदायिक आधार पर राज्य का विभाजन करना चाहते हैं, क्या हम उन लोगों के द्वारा अलगाववाद का आरोप लगाए जाने के योग्य हैं। प्रजा परिषद् के नेताओं ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वे तब तक चैन से नहीं बैठेंगे, जब तक जम्मू के हिंदुओं को, जिसे वे कश्मीरियों के मुसलिम वर्चस्व का भय कहते हैं, उससे छुटकारा नहीं दिला देंगे। इस तरह के एक दृष्टिकोण का मैं क्या उत्तर दे सकता हूँ?

आज से दो महीने से अधिक समय से, जब से सरकार जम्मू आई है, तबसे उसे अपने प्राधिकार को लेकर गंभीर और लगातार चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जिसका घोषित प्रयोजन प्रशासन में खलल डालना है। इनका परिणाम हिंसा और अराजकता के खुले कृत्यों में निकला है। सार्वजनिक सेवाओं को भी बख़्शा नहीं गया है और सरकारी कर्मचारियों पर हमला किया गया है तथा दिनदहाड़े धमकी दी गई है। इस आतंकवाद और अराजकता के परिणामों से उत्पन्न होने वाले प्रभावों की कल्पना अच्छी तरह से की जा सकती है। सामान्य प्रशासन के संचालन का काम बेहद मुश्किल बना दिया गया है। व्यापार और वाणिज्य को गंभीर रूप से प्रभावित किया गया है। आंदोलन ने तेज़ी से कई असामाजिक और क़ानून विरोधी तत्त्वों की भागीदारी को आकर्षित किया है।

गंभीर उकसावे के सामने सरकार ने बहुत ज़्यादा संयम और सहनशीलता बरती है। प्रशासन की ज़िम्मेदारी सँभालने वाली कोई सरकार अपने कर्मचारियों, सार्वजनिक संस्थाओं और संपत्ति को सुरक्षा उपलब्ध कराए बिना प्रभावी ढंग से कार्य नहीं कर सकती है। हमें या तो क़ानून-व्यवस्था बहाल करने के लिए उपयुक्त क़दम उठाने होते हैं, या क़ानून विरोधी तत्त्वों के समक्ष आत्मसमर्पण करना होता है। अधिकारियों को काफ़ी अनिच्छा के साथ कुछ अवसरों पर, जब अन्य तरीक़े स्थिति को नियंत्रण में लाने में विफल रहे, बलप्रयोग करने के लिए बाध्य होना पड़ा। यह बात निष्पक्ष गवाहों द्वारा स्थापित की गई है कि अधिकारियों का आचरण कठोर या अत्याचारी नहीं था। छंब की घटनाओं की न्यायिक जाँच राज्य के एक वरिष्ठ न्यायाधीश श्री बृजनंदन लाल द्वारा की गई थी, और उन्होंने वहाँ के अधिकारियों द्वारा स्थिति से निपटने के तरीक़े को जायज़ ठहराया है। अपने निष्कर्षों में उन्होंने टिप्पणी की है :

'प्रदर्शनकारी संख्या में पुलिस दल से बहुत अधिक थे और तहसीलदार-मजिस्ट्रेट ने जीवन और संपत्ति के लिए आसन्न ख़तरे के भय से गोलियाँ चलाने का आदेश दिया। इन परिस्थितियों में मुझे लगता है कि ग़ैर-क़ानूनी जमावड़े को तितर-बितर करने के लिए गोलियाँ चलाने का आदेश देने का पर्याप्त औचित्य था। जीवन और संपत्ति के लिए गंभीर और आसन्न ख़तरे को देखते हुए आत्मरक्षा में भी गोलियाँ चलाना न्यायोचित था।'

आपने जम्मू की स्थिति के बारे में जिस तरह से लिखा है, उससे लगता है कि जैसे

प्रजा परिषद् का आंदोलन सरकार द्वारा किए गए दमन का परिणाम है। मैं आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि हमने लोकप्रिय आंदोलनों के ख़िलाफ़ दमनकारी उपायों के इस्तेमाल में कभी विश्वास नहीं किया है। लेकिन इस बात की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए कि यहाँ जम्मू में आंदोलन आम आदमी के जीवन को छूने वाली बुनियादी समस्या से दूर-दूर तक संबंधित नहीं है। हिंसा के हथियार का प्रयोग करके प्रजा परिषद् एक वैध सरकार के सभी निशान उखाड़ फेंकने की कोशिश कर रही है। अधिकारियों की ओर से किसी भी ढिलाई का नतीजा निश्चित रूप से अराजक स्थिति में निकलेगा।

आपने जम्मू के लोगों की कुछ शिकायतों और उनके ख़िलाफ़ भेदभाव के आरोपों का उल्लेख किया है। अगर आपने उन्हें मेरे पास भेजा होता, तो मैं उसका स्वागत करता। इससे मुझे यह जानने का एक अवसर मिलता कि हमारे प्रशासन ने कहाँ ग़लती की। मैं यह दावा नहीं कर सकता कि हमारा प्रशासन एकदम सही है, लेकिन अगर त्रुटियाँ हमें साफ़-साफ़ बताई जाएँगी, तो हम उन्हें ख़ुशी-ख़ुशी दूर करेंगे। हममें से कोई भी व्यक्ति प्रतिष्ठा की किसी झूठी भावना से ग्रस्त नहीं है।

लेकिन मैंने स्वयं अपने स्तर पर इस पहलू पर अच्छी तरह से विचार किया है। इस संदर्भ में यह देखने के लिए एक विस्तृत जाँच की गई थी कि क्या जम्मू के लोगों के ख़िलाफ़ अनजाने में किसी भी तरह का भेदभाव किया गया था। इस तरह की किसी छवि को स्पष्ट करने के लिए हमने एक पुस्तिका प्रकाशित की है, जिसकी एक प्रति भेज रहा हूँ। मैं उम्मीद करता हूँ कि आपको इसे देखने से लाभ होगा। तथ्य यह है कि अगर कोई भेदभाव किया गया है, तो वह जम्मू के लोगों के पक्ष में किया गया है, न कि उनके ख़िलाफ़।

इसके साथ-साथ, आप संभवतः उन कार्यों के परिमाण का अनुमान करेंगे, जिनका सामना करने का दायित्व हमें दिया गया है। हमें युद्ध की स्थितियों, शरणार्थियों के पुनर्वास, बाढ़, अकाल और अन्य भारी-भरकम समस्याओं का भी सामना करना पड़ा था। 1947 की विभीषिका के बाद राज्य की सर्वोपरि आवश्यकता स्थिरता की थी। हमें अपने सभी अल्प संसाधनों को इस दिशा में लगाना पड़ा था। इस कठिन परीक्षा में भारत की सरकार और जनता से जो उदार मन सहायता प्राप्त हुई है, वह हमारे लिए महान् शक्ति का स्रोत रही है।

इन बहुत भारी-भरकम कार्यों को देखते हुए, हम इस बात से इनकार नहीं करते कि जम्मू में और अन्यत्र भी कई समस्याएँ ऐसी होंगी, जिन पर हमारे ध्यान देने की ज़रूरत अभी भी होगी। सरकार उन्हें सुलझाने के तरीक़े खोजने के प्रति उत्सुक है। जब भी अवसर मिलता है, तब सरकार अपनी स्वयं की पहल पर कार्य करती है। जैसा कि आपको पता चला होगा, पिछले पाँच वर्षों के दौरान सरकार द्वारा किए गए कुछ उपायों के काम-काज पर रिपोर्ट करने के लिए सरकार ने अभी हाल ही में मुख्य न्यायाधीश श्री

जानकी नाथ वजीर की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया है। अगर यह समिति कहीं भी कोई शून्यता या कमियाँ पाती हैं, तो सरकार निश्चित रूप से उसके लिए उपयुक्त उपाय करेगी। सरकार जनता के सभी शुभचिंतकों के रचनात्मक सुझावों और साथ ही उनकी सहायता और सहयोग के लिए भी उत्सुक है। सरकार आम लोगों के लाभ के लिए जो भी उपाय कर रही है, हम उसके प्रति लोगों की अधिकतम सदिच्छा प्राप्त करने के प्रति उत्सुक हैं।

आपके पत्र में पश्चिमोत्तर सीमावर्ती प्रांतों के उल्लेख पर मैं ध्यान दे रहा हूँ। वहाँ हुए सामान्य जनमत संग्रह के परिणामों पर आपके आँसू उस 'बदक़िस्मती' से उठे प्रतीत होते हैं, जो उस प्रांत पर आ पड़ी है। मुझे यह कहने के लिए खेद है कि यह संदर्भ उस महान् आंदोलन के प्रति ज़रा भी न्यायसंगत नहीं है, जो गांधीजी की प्रेरणा से ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ान द्वारा वहाँ किया गया था। सीमांत प्रांत में जनमत संग्रह के दुःखद परिणाम, जैसा कि अब सभी लोग जानते हैं, प्रांत में राष्ट्रवादी आंदोलन की कमज़ोरियों के कारण नहीं थे, बल्कि उन परिस्थितियों के कारण थे, जिनसे यह पाकिस्तान के लिए एक सौगात बन गई। सीमांत प्रांत को पहले भारत के शेष हिस्सों से पूरी तरह अलग कर दिया गया था और फिर उस अभागे प्रांत के लोगों से भारत और पाकिस्तान में से एक को पसंद करने को कहा गया—पसंद करने की एक ऐसी कवायद, जिसे भारत के पक्ष में करना असंभव था। इन प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद पाकिस्तान बहुत मामूली बहुमत से जनमत संग्रह जीत सका।

जहाँ तक जम्मू-कश्मीर राज्य के लोगों का संबंध है, उन्होंने भारत का विभाजन होने के भी काफ़ी समय पहले पंथनिरपेक्ष आदर्शों को अपनी पसंद बनाया है। उन्होंने पाकिस्तानी नेतृत्व के घातक आक्रमणों, उनके लालच और बल प्रयोगों और अंततः 1947 में उनके निर्दयतापूर्ण हमलों का सफलतापूर्वक सामना किया है। जब पाकिस्तानी हमलावर ख़ुद श्रीनगर के दरवाज़े पर आ गए थे, तब कश्मीर के मुसलमानों ने अपने सबसे बहादुर बेटों को पंथनिरपेक्षता और मानवीय भाईचारे के अपने प्रिय आदर्शों की रक्षा के लिए बलिदान के रूप में पेश किया था। यह ऐसे समय में हुआ था, जब उनके पास उनकी सहायता करने के लिए कोई भी नहीं था, जब अँधेरा उन्हें चारों तरफ़ से घेरे हुए था, जब उनके अपने धर्म के लोगों की प्रजा परिषद् के उन्हीं नेताओं के हाथों निर्दयतापूर्वक हत्या की जा रही थी, जो आज भारत के पंथनिरपेक्ष आदर्शों के प्रति अपनी वफ़ादारी का दावा कर रहे हैं। उस समय से ही भारत और कश्मीर के बीच अपनेपन के तार काफ़ी मज़बूत किए गए हैं। भारत के सबसे बहादुर बेटों ने, चाहे वह किसी भी जाति,धर्म या रंग के हों, भारत और कश्मीर के लोगों के साझा आदर्शों की रक्षा करने के लिए अपना ख़ून बहाया है। भारत में हमारे लाखों भाइयों और बहनों ने कश्मीर में कठिन

दौर से गुज़र रहे अपने भाइयों को सहायता प्रदान की है। इस तरह के संदेहों पर ध्यान देना कि कश्मीर के मुसलमान अब अपने पंथनिरपेक्ष आदर्शों को त्याग देंगे, एक बेमुरव्वती होगी, हालाँकि भारत में सांप्रदायिक दलों के नेताओं द्वारा समय-समय पर दिए जा रहे बयान और घोषणाएँ, और जम्मू में प्रजा परिषद् के नेतृत्व को वे जो प्रेरणा और मार्गदर्शन प्रदान कर रहे हैं, उससे निस्संदेह उन्हें एक कठोर आघात मिल रहा है। लेकिन मैं आपको और भारत के लोगों को विश्वास दिलाता हूँ कि कश्मीर के मुसलमान अपने आदर्शों से नहीं लड़खड़ाएँगे, भले ही पंथनिरपेक्षता और मानवीय भाईचारे के इस महायुद्ध में उन्हें अकेला छोड़ दिया जाए।

सादर,

(ह.)

एस.एम. अब्दुल्ला

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, संसद् सदस्य
77, आशुतोष मुखर्जी रोड,
कलकत्ता-25

7

नई दिल्ली,
5 फरवरी, 1953

प्रिय श्यामाप्रसाद,

3 फरवरी का आपका पत्र मुझ तक कल पहुँचा। लेकिन मैं राज्यपालों के सम्मेलन में इतना अधिक व्यस्त था कि मैं इसे आज ही पढ़ सका हूँ और अब देर रात को यह जवाब दे रहा हूँ।

मुझे लगता है कि आपका पत्र मुझ पर और हम जो नीति अपना रहे हैं, उस पर एक अभियोग है। आप मुझसे इस विषय पर बहस में शामिल होने की उम्मीद शायद ही कर सकें। अगर आपको लगता है कि मैंने एक ग़लत नीति अपनाई है, तो मैं भी उतना ही आश्वस्त हूँ कि आपने जम्मू-कश्मीर और कुछ अन्य मामलों के संबंध में जो नीति अपनाई है, वह भारत के हितों और हमने हमेशा जिन आदर्शों की बात की है, उनके प्रति पूरी तरह हानिकारक है। अगर मेरे जीवन का इतिहास विफलता को दरशाता है, तो यह मेरा दुर्भाग्य है। फिर भी, हर हाल में मैंने जो कुछ भी किया है, वह पूरी तरह जनता के सामने है और वह मेरे बारे में अपनी इच्छानुसार निर्णय कर सकती है। मैं उन लोगों के निर्णय से शायद ही प्रभावित हो सकूँ, जो पूरी तरह विपरीत राय रखते हैं, और जिनका उद्देश्य भी मुझसे अलग है।

मेरी सोच के अनुसार जम्मू में प्रजा परिषद् का आंदोलन न केवल सांप्रदायिक है, बल्कि भारत में सांप्रदायिक और संकीर्ण विचारधारा वाले तत्त्वों द्वारा समर्थित है। मुझे रत्ती भर भी संदेह नहीं है कि अगर यह संकीर्ण दृष्टिकोण हमारे पूरे देश में अपनाया गया होता, तो वह अपने साथ केवल जम्मू-कश्मीर राज्य के लिए ही नहीं, बल्कि भारत के व्यापक हितों के लिए भी आपदा ले आया होता। इस पर विश्वास करते हुए, जो कि मैं करता हूँ, मेरे पास इस पूरी तरह ग़लत आंदोलन का विरोध करने के अलावा कोई रास्ता नहीं रह जाता है। यह हमारी सरकार की राय है और उनका कहना है कि वे इसी का

पालन करते रहेंगे और इसी नीति को आगे बढ़ाएँगे।

मैं नहीं जानता कि क्या आपके इस पत्र का आशय कोई धमकी देना है। यह आंदोलन निश्चित रूप से, जैसा कि विकसित हुआ है या संभवत: इसके जैसा होने की संकल्पना की गई थी, भारत के लिए एक ख़तरा है। मैं अकसर कहता रहा हूँ कि जम्मू के लोगों की कुछ शिकायतें हो सकती हैं, जैसे कि भारत में बहुत से लोगों की हो सकती हैं, जिन पर विचार किया जाना चाहिए। लेकिन यह स्पष्ट है कि इन शिकायतों का आंदोलन के वास्तविक उद्देश्य के साथ कोई संबंध नहीं है। वास्तव में, हाल ही में जम्मू-कश्मीर सरकार ने इन शिकायतों की जाँच करने के लिए एक आयोग नियुक्त किया है। अगर आंदोलन मुख्य रूप से इनसे संबंधित रहा होता, तो इस आयोग की नियुक्ति का स्वागत किया गया होता। इसके बजाय यह सार्वजनिक रूप से कहा गया है कि आंदोलन जारी रहेगा।

इससे यह अपरिहार्य निष्कर्ष निकलता है कि जो लोग इस आंदोलन से जुड़े हैं, लोगों की आर्थिक या अन्य मामलों से संबंधित किसी भी शिकायत में उनकी विशेष रुचि नहीं है, बल्कि वे दूसरे ही ढंग से सोचते हैं। जम्मू-कश्मीर का प्रश्न संसद् के समक्ष अकसर आया है और अब तक जो कुछ भी किया गया है, संसद् की स्पष्ट मंजूरी से किया गया है। इसलिए यह आंदोलन संसद् के संवैधानिक मामलों से संबंधित उन निर्णयों के ख़िलाफ़ है। यह आंदोलन सीधे तौर पर भी स्वयं को, आपके पत्र की तरह, उन सभी जटिलताओं के साथ जोड़ता है, जो आप जानते हैं कि एक अंतरराष्ट्रीय मुद्दा है। इस प्रकार जम्मू के लोगों का एक निश्चित वर्ग अपने आंदोलन से अंतरराष्ट्रीय मामलों में और भारत की विदेश नीति में दख़ल देने की कोशिश कर रहा है और यहाँ तक कि उसे आपका समर्थन भी मिल रहा है। आपको याद होगा कि संसद् में एक अवसर पर मैंने यहाँ तक कहने की हिम्मत की थी कि इस सदन में कुछ लोग जम्मू-आंदोलन का समर्थन कर रहे हैं। आपने और कुछ अन्य लोगों ने इस बयान को चुनौती दी थी और इसका खंडन किया था। मैं सोचता हूँ कि मैंने जो कुछ कहा था, उसका अब फिर कोई खंडन नहीं होगा।

वास्तव में, यह आंदोलन एक महत्त्वपूर्ण मामले में हमारी संसद् के प्राधिकार और उसकी सर्वोच्चता को चुनौती देता है। यह अंतरराष्ट्रीय मामलों में हस्तक्षेप करने का भी प्रयास है, जिसके भी दूरगामी परिणाम हैं। मैं वास्तव में हैरान हूँ कि आपको मुझसे या हमारी सरकार से ऐसे किसी प्रयास का पालन करने की उम्मीद कैसे कर सकते हैं, जो लोकतांत्रिक सरकार की जड़ों और नीति के स्वीकृत क़ानूनों पर हमला करता हो।

आपने अपने पत्र में जो प्रश्न उठाए हैं, उनका संसद् में बार-बार सदन की संतुष्टि योग्य जवाब दिया गया है। मैं संसद् के फ़ैसलों का उल्लंघन करने के लिए राज़ी नहीं हूँ,

जिसके आदेशों को मुझे प्रधानमंत्री के रूप में पूरा करना होता है। ज़ाहिर है, संसद् और उसके फ़ैसलों के प्रति आपके मन में कोई बहुत महान् सम्मान नहीं है। संवैधानिक और लोकतांत्रिक सिद्धांतों के अलावा, मुझे समझना चाहिए था कि किसी भी समझदार व्यक्ति के लिए व्यावहारिक दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होना चाहिए कि जम्मू में यह आंदोलन केवल भारत के दुश्मनों को लाभ पहुँचा सकता है। यह संभवतः आंदोलन के प्रायोजकों द्वारा घोषित उद्देश्यों को भी प्राप्त नहीं कर सकता। अगर ऐसा है, तो मैं यह नहीं समझ पाता हूँ कि यह मूर्खता जारी क्यों रहनी चाहिए, अगर इसका असली उद्देश्य कुछ अन्य और कुछ अलग नहीं है। धीरे-धीरे आप इस निष्कर्ष पर पहुँचने लगते हैं कि यह शिकायतों के निवारण के लिए किया जा रहा कोई सामान्य आंदोलन नहीं है, न केवल जम्मू बल्कि भारत के बाक़ी हिस्सों को प्रभावित करने के लिए एक विध्वंसक आंदोलन शुरू करने का प्रयास है। ऐसे आंदोलन को कोई भी सरकार केवल एक ही उत्तर दे सकती है।

जिन लोगों को गिरफ़्तार किया गया है, आपने उनकी रिहाई की और सभवतः उन्हीं के साथ एक सम्मेलन करने की सलाह दी है। न तो भारत सरकार और न ही जम्मू-कश्मीर सरकार की इच्छा किसी भी व्यक्ति को गिरफ़्तार करने की है, जब तक ऐसी परिस्थितियाँ न पैदा कर दी जाएँ, जो उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य करती हों। लेकिन ऐसी परिस्थितियाँ मौजूद होंगी, तो उनको अपना कर्तव्य निभाना है।

आप जो सुझाव दे रहे हैं, वर्तमान में उसका अर्थ है कि भारत सरकार और साथ ही राज्य सरकार भी काम करना बंद कर दे और सत्ता उन लोगों को सौंप दें, जो उन्हें इन मूलभूत संवैधानिक मुद्दों पर एक ऐसे आंदोलन द्वारा चुनौती दे रहे हैं, जो तेज़ी से हिंसक और विध्वंसक बन गया है। हमारा सत्ता छोड़ने और उस कर्तव्य से दूर भागने का कोई इरादा नहीं है, जो हमें लोगों द्वारा और संसद् द्वारा सौंपा गया है। इस आंदोलन को जारी रखना और साथ ही जो लोग इन गतिविधियों में लिप्त हैं, उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता देना और सम्मेलन में बुलाया जाना एक असाधारण बात होगी। मुझे खेद है कि मैं प्रजा परिषद् या उसके सहयोगियों से इस तरह पेश आने में असमर्थ हूँ। अगर आंदोलन वास्तव में जारी रहा, तो यह विचार हमें करना होगा कि सरकार को इस मामले में आगे और दूसरे क्या क़दम उठाने चाहिए। भारत के साथ ही जम्मू और कश्मीर राज्य के लोगों का व्यापक हित, जिसका दायित्व हमें सौंपा गया है, हमारे लिए ऐसे व्यक्तियों के एक समूह की इच्छा से अधिक महत्त्वपूर्ण है, जो संकीर्ण और धर्मांध तरीक़े से ही सोच सकते हैं और काम कर सकते हैं, और जो किसी कल्पित सामूहिक लाभ की खातिर भारत के हितों पर गहरी चोट पहुँचाने में संकोच नहीं करते हैं।

आपने अपने पत्र में कहा है कि आप आज शाम दिल्ली आ रहे हैं और कल सुबह

मुझ से मिल सकते हैं। अगर मुझे समय मिल सका तो मैं हमेशा आपसे या उन अन्य लोगों से मिलने के लिए तैयार हूँ, जो मुझसे मतभेद रखते हैं। लेकिन मुझे खेद है कि कल और अगले एक या दो दिन मेरे पास ज़रा भी समय नहीं है। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि आपका पत्र पढ़ने के बाद, मुझे बातचीत के लिए कोई भी साझा बिंदु खोजना थोड़ा कठिन लगता है। आपने स्वयं ही कहा है कि यह स्पष्ट है कि इस महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर हम एक-दूसरे से सहमत नहीं हो सकते हैं।

सादर,

(ह.)

जवाहरलाल नेहरू

8

30, तुगलक क्रीसेंट
नई दिल्ली
8 फरवरी, 1953

प्रिय जवाहरलालजी,

विश्वास करें कि आपके साथ अनावश्यक रूप से एक लंबा पत्राचार जारी रखने का मेरा कोई इरादा नहीं है। मेरी एकमात्र इच्छा यह पता लगाने की थी कि क्या इस बात की कोई संभावना है कि दोनों पक्ष एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझें और एक ऐसे समझौते तक आने की कोशिश करें, जो जम्मू एवं कश्मीर सहित देश के हित में हो। स्पष्ट है कि आप उन लोगों के विचारों को समझने के लिए भी तैयार नहीं हैं, जो आपसे मतभेद रखते हैं, उनसे बात करना तो दूर की बात है। आपने अपने पत्र में कई अपशब्द कहे हैं और मैं उनका जवाब देना नहीं चाहता हूँ। मुझे विश्वास है कि जब आपका दिमाग़ शांत होगा, आप स्वयं अफ़सोस करेंगे कि आप तर्कों का उत्तर तर्कों से दे सकते थे, लेकिन आपने उन लोगों पर सिर्फ़ लांछन लगाए, ऊल-जलूल आक्षेप किए, जो आपकी अधिकृत नीति से मतभेद रखते हैं। गठित किए गए आयोग से कोई उम्मीद या विश्वास नहीं जगा है। उसकी शर्तें और संदर्भ संकीर्ण हैं। उसकी संरचना दोषपूर्ण है। उसे दोषपूर्ण और अविश्वास से भरे माहौल में काम करना होगा। उसे ऐसे माहौल में काम करना होगा, जो अविश्वास और कड़वाहट से भरा है। वह स्पष्ट रूप से मूलभूत राजनीतिक और संवैधानिक मामलों से नहीं निपट सकता।

मैं और कई अन्य लोग ईमानदारी से महसूस करते हैं कि जम्मू-कश्मीर राज्य में रहने वाले हमारे अपने देशवासियों के एक वर्ग की ये माँगें न तो देशभक्ति विहीन हैं, न विभाजनकारी या सांप्रदायिक चाल हैं कि उनके राज्य का भारत के साथ पूर्ण एकीकरण हो और उसका शासन स्वतंत्र भारत के संविधान के अनुसार हो। आप इस स्वाभाविक आग्रह को सरासर बल या दमन के बूते नहीं कुचल सकते हैं। अगर आपके और शेख़

अब्दुल्ला के अनुसार, इस माँग को तुरंत और पूर्ण रूप से लागू करने में व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं, तो इससे निपटने के तरीक़े हैं, ताकि भय और संदेह से मुक्त आपसी समझ और विश्वास का माहौल पैदा किया जा सके। जम्मू-कश्मीर से संबंधित मामले का अधिकारियों द्वारा कई बार और कई महत्त्वपूर्ण अवसरों पर जिस तरह से बिगुल फूँका गया है, उससे उनके द्वारा एक ग़लत मनोवैज्ञानिक तरीक़ा पैदा किया गया है।

वर्तमान आंदोलन लोगों की विवशता है, क्योंकि उन्हें संवैधानिक तरीक़ों से कोई समाधान नहीं मिल सका है। यह आंदोलन व्यापक स्थानीय समर्थन वाला एक सहज-स्वाभाविक आंदोलन है। हमने इसे कभी राज्य के बाहर से नहीं उकसाया। यह आपके द्वारा लगाया गया आरोप था और जिसका हमने संसद् में जवाब दिया है, और मैं एक बार फिर से दे रहा हूँ। निस्संदेह, सत्याग्रह का कोई आंदोलन एक सामान्य प्रक्रिया नहीं है और इसका सहारा हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए। लेकिन अगर वे यह पाते हैं कि उनके महत्त्वपूर्ण मसलों को बातचीत के आधार पर सुलझाने के उनके लगातार प्रयासों को प्राधिकारियों से कोई उत्तर नहीं मिल रहा है, तो उनके पास क्या उपाय है? यहाँ तक कि आज भी जब वे ख़ून से खेल रहे हैं और उन चीज़ों के लिए कष्ट उठा रहे हैं, जिन्हें वह अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं, तब भी उन्हें आपसे कोई सहानुभूति या उनके लिए विचार तक पैदा नहीं होता। आपकी और शेख़ अब्दुल्ला की नज़र में वे राजनीतिक अछूत हैं। त्रासदी इस तथ्य से बढ़ जाती है कि वे उस समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो अपनी देशभक्ति, साहस और सैनिक शक्ति के लिए विख्यात है।

आपने लोकतंत्र के बारे में बात की है। क्या लोकतंत्र का मतलब अल्पसंख्यकों पर बहुसंख्यकों की इच्छा को पाशविक बल प्रयोग द्वारा थोपा जाना है? मैं सहमत हूँ कि अल्पसंख्यकों को सत्ता में अवरोधक के रूप में व्यवहार नहीं करना चाहिए और गतिरोध पैदा नहीं करना चाहिए। एक वास्तविक लोकतांत्रिक राज्य में इससे बचा जा सकता है और बचा जाना चाहिए; जहाँ बहुसंख्यक विपक्ष के दृष्टिकोण को समझने की इच्छा और क्षमता दरशाता हो और दोनों साझी भलाई के लिए तर्कसंगत समायोजन करने को तैयार हों। संसद् एक लोकतांत्रिक मंच न रह जाने के ख़तरे में है, जहाँ अधिनायकवादी प्रवृत्तियों के कारण से यह मूलभूत दृष्टिकोण ग़ायब हो रहा है। संसद् स्वयं देश से बड़ी नहीं है और किसी भी समय लोगों को चेतावनी दिया जाना या सरकार की किसी भी ग़लत नीति के ख़िलाफ़ उनसे अपील करने की कोशिश करना निश्चित रूप से संसद् के अधिकारों के ख़िलाफ़ कोई अपराध नहीं है।

मुझे नहीं पता था कि आप मेरे पत्र को एक धमकी के रूप में भी ले सकते हैं। किसी भी तरह की धमकी देने का हमारा कोई इरादा नहीं है और न ही हमारे पास धमकी देने के साधन हैं। हमारा संघर्ष अगर अपरिहार्य हो जाता है, तो निश्चित रूप से अहिंसक

चरित्र का हो सकता है और उसका इरादा उस सरकारी नीति के ख़िलाफ़ अपना विरोध दर्ज कराना होगा, जिसे और किसी तरह से परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। इस तरीक़े से हम केवल जनता की राय को प्रभावी ढंग से जगाने की उम्मीद कर सकते हैं। कौन जानता है, इससे स्वयं आपके और शेख़ अब्दुल्ला के मन में भी एक परिवर्तन लाने में मदद मिल सकती हो?

जहाँ तक धमकियों और बल प्रयोग का संबंध है, सरकार के सारे संसाधन आपके और शेख़ साहब के हाथों में हैं। आपके पत्र के स्वर से प्रतीत होता है कि आप इन संसाधनों का प्रयोग अपने राजनीतिक विरोधियों के ख़िलाफ़ करने का पक्का इरादा कर चुके हैं। मैं आपको आश्वस्त करता हूँ कि हम आपके क्रोध और रोष के परिणामों का सामना करने के लिए तैयार हैं। कल पंजाब में हमारे अनेक सदस्यों और कार्यकर्ताओं की गिरफ़्तारी निवारक नज़रबंदी अधिनियम के तहत किया जाना आने वाली स्थितियों का संकेत है। यह भारत में लोकतंत्र की एक अजीब कार्यशैली को दरशाता है। कांग्रेस पार्टी, शेख़ अब्दुल्ला और उनकी पार्टी के लोगों को और जो अन्य लोग वर्तमान कश्मीर नीति का समर्थन करते हैं, उन्हें अपना प्रचार जारी रखने के लिए अबाध अवसर दिए जाएँगे। अब तक, हालाँकि कश्मीर पर आपकी नीति के विरोध में बैठकें और प्रदर्शन भारत भर में किए गए हैं, लेकिन एक भी मौक़ा ऐसा नहीं रहा है, जिसमें हिंसक तरीक़ों को अपनाया गया हो, या कोई विध्वंसक गतिविधियाँ हुई हों। फिर भी उन लोकतांत्रिक सिद्धांतों के अनुसार, जो आज के भारत में लागू हैं, वैध राजनीतिक विरोध को रोकने के लिए निवारक नज़रबंदी अधिनियम का उपयोग किया जाना होता है। आप बहुत बार गांधीवाद, गांधीवादी तकनीक और 'हीलिंग टच' की बात करते हैं और दावा करते हैं कि आप और आपकी सरकार बल या हिंसा के प्रयोग में विश्वास नहीं करती है, बल्कि हमेशा चर्चा और वार्त्ता के आधार पर आगे बढ़ने के लिए उत्सुक रहती है। यह सोचना दुःखद है कि उस विषय के संबंध में, जिसके गंभीर प्रभाव पड़ सकते हैं, आपको आपके बहुघोषित सिद्धांत पर आगे बढ़ने के लिए के लिए राज़ी करने के मेरे प्रयास अब तक आपसे कोई उत्तर प्राप्त करने में विफल रहे हैं।

अगर मैं जम्मू आंदोलन के परिणामस्वरूप संभव अंतरराष्ट्रीय जटिलताओं के आपके बार-बार दोहराए गए उल्लेख की सराहना करने में विफल रहूँ, तो आप मुझे माफ़ कर दें। आज कोई भी यह दावा नहीं कर सकता कि कश्मीर समस्या को सँभालने के आपके तरीक़े ने हमारी अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा में वृद्धि की है या हमारे लिए व्यापक अंतरराष्ट्रीय समर्थन और सहानुभूति अर्जित की है। इसके विपरीत, इस संबंध में आपकी नीति ने देश और विदेश दोनों में जटिलताएँ बढ़ाई हैं। राजनीतिक सूझबूझ की आवश्यकता यह है कि आप शांति से पूरे मामले की फिर से जाँच करें, और एक झूठी अंतरराष्ट्रीयता

से त्रस्त रहने के बजाय दृढतापूर्वक राष्ट्रीय एकजुटता के लिए स्थितियाँ पैदा करें, जो अलग-अलग दृष्टिकोणों और हितों के निष्पक्ष समायोजन पर आधारित हों। अगर आप इसमें सफल होते हैं, तो यह आपको अंतरराष्ट्रीय व्यवहार में भी अधिक-से-अधिक शक्ति और प्रतिष्ठा देगा।

आपके पत्र में एक स्पष्ट ग़लतफ़हमी है, जिसे मुझे सही करना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि आप समझते हैं कि मैंने यह सुझाव दिया था कि जम्मू आंदोलन जारी रहेगा और उसी समय क़ैदियों की रिहाई के लिए आदेश जारी होना चाहिए, जिसके बाद जम्मू के प्रतिनिधियों के साथ एक सम्मेलन आयोजित होना चाहिए। यह सही नहीं है। ज़ाहिर है, अगर आप प्रजा परिषद् के नेताओं और अन्य लोगों के साथ विचार-विमर्श शुरू करने का निर्णय करते हैं, तो उस अवधि के दौरान आंदोलन जारी नहीं रहना चाहिए और उसे निलंबित किया जाना चाहिए। अतीत में इस तरह के सभी अवसरों पर ऐसा किया गया है, जिसे आप अपने अनुभवों से स्वयं को याद दिला सकते हैं।

आपको एक लंबा पत्र लिखकर कष्ट देने की मेरी इच्छा नहीं है। मैं केवल अपने इस गहरे अफ़सोस के साथ इस पत्राचार को बंद करना चाहता हूँ कि आपके उत्तरों की भारत में ब्रिटिश सरकार के प्रमुखों के साथ हुए इसी तरह के संवादों से एक दर्दनाक समानता है, जो शक्ति और प्रतिष्ठा की भावना में बहते हुए संबोधित किया करते थे तथा लोगों की इच्छा की अभिव्यक्ति पर ग़ौर करने से भी इनकार कर देते थे। एकमात्र अंतर केवल इतना ही है कि जब हम कुछ महत्त्वपूर्ण मामलों पर असहमत हों, तो यह समझें कि हम एक ही माँ की संतान हैं, और दोनों पक्षों में थोड़ी सी सद्भावना तथा सहनशीलता के साथ एक गंभीर दरार पैदा होने से रोकने में हमें सक्षम होना चाहिए। अगर आपको महसूस हो कि देश के सर्वोपरि हित में आपको प्रतिष्ठा और पक्षपात के सवालों को परे रख देना चाहिए और एक शांतिपूर्ण समाधान की संभावनाओं की तलाश करनी चाहिए, तो हमारा पूर्ण सहयोग आपको हमेशा उपलब्ध रहेगा। यहाँ तक कि इन अंतिम क्षणों में भी मैं दृढता से यह विश्वास करता हूँ कि यह संभव है और यह आप हैं, जो यह पहल कर सकते हैं।

सादर,

(ह.)

श्यामाप्रसाद मुखर्जी

9

नई दिल्ली,
10 फरवरी, 1953

प्रिय श्यामाप्रसाद,

8 फरवरी का आपका पत्र मुझे प्राप्त हुआ है। इसे पढ़ने के बाद मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे लगता है कि हम कुछ भिन्न मानसिक दुनिया में बढ़ रहे हैं और एक ही शब्द का आपके लिए और मेरे लिए अलग-अलग अर्थ है। आप लगातार मुझ पर अंधाधुंध आक्षेप लगाने का आरोप लगा रहे हैं। आपके स्वयं के पत्र उस भाषा में पगे हुए नहीं हैं, जिसे कोमल और प्रेरक भाषा कहा जा सके।

यह स्पष्ट है कि मेरी और मेरे सहयोगियों की, और मुझे विश्वास है कि शेख़ अब्दुल्ला और उनके सहयोगियों की जम्मू में इस दुर्भाग्यपूर्ण संघर्ष को जारी रखने की इच्छा नहीं है। हमारे लिए इसकी तुलना में ज़्यादा प्रसन्नता की बात और कुछ नहीं होगी कि यह ख़त्म हो जाना चाहिए, न केवल इसलिए कि यह अपने आपमें बुरा है, बल्कि उससे भी अधिक यह कि यह अपने पीछे कड़वाहट और घृणा के निशान छोड़ देता है। यह संघर्ष कोई हमारी इच्छा से नहीं हुआ था। यह हो सकता है कि भारत सरकार द्वारा या जम्मू-कश्मीर राज्य सरकार द्वारा अपनाई गई कुछ नीतियों को जम्मू में लोगों के एक ख़ास वर्ग द्वारा अनुमोदित न किया गया हो। मुझे यक़ीन है कि उनके विचारों को अभिव्यक्ति देने के लिए तथाकथित सत्याग्रह की इस पद्धति की तुलना में, जिसका परिणाम संघर्ष के रूप में सामने आया है, दूसरे कई और बेहतर तरीक़े अपनाए जा सकते थे। उन सौ से अधिक वरिष्ठ और कनिष्ठ अधिकारियों के पूरे ब्योरे के साथ एक विस्तृत सूची मेरे सामने है, जिनमें जिला मजिस्ट्रेट, पुलिस अधीक्षक और कांस्टेबल शामिल हैं, जो तथाकथित सत्याग्रहियों की भीड़ द्वारा अधिक या कम गंभीरता से घायल हुए हैं। यह किसी शांतिपूर्ण आंदोलन का सबूत तो नहीं है।

लेकिन वह सब चाहे जो हो, इस सबका अंत करने से ज़्यादा प्रसन्नतादायक मेरे

लिए कुछ भी नहीं होगा। आपने कहा है कि आर्थिक और अन्य शिकायतों की जाँच के लिए नियुक्त आयोग दोषपूर्ण है और उसके कामकाज की शर्तें संकीर्ण हैं। आपने इसके अलावा यह भी कहा है कि यह स्पष्ट रूप से मूलभूत राजनीतिक और संवैधानिक मामलों से नहीं निपट सकता है और इसे अविश्वास और कड़वाहट से भरे माहौल में काम करना पड़ेगा। मैं अंतिम दो बिंदुओं से पूरी तरह सहमत हूँ, जो मूलभूत संवैधानिक मामलों और माहौल के बारे हैं। इस माहौल को कैसे बेहतर बनाया जा सकता है? निश्चित रूप से इस अविवेकपूर्ण आंदोलन को रोककर और इन आर्थिक तथा ऐसी ही अन्य समस्याओं का सामना करके। दूसरा विकल्प यह है कि जब तक आंदोलन समाप्त नहीं हो जाता, तब तक आयोग नियुक्त न किया जाए। अगर वह रास्ता अपनाया गया होता, तो लोग उचित ही सही क़दम न उठाने के लिए हमारी आलोचना कर सकते हैं, क्योंकि कुछ और ही हो रहा था।

जहाँ तक आयोग की संरचना का प्रश्न है, मुझे संदेह है कि किसी भी और तरह का आयोग आपको बेहतर प्रतीत हो पाता। यह एक आधिकारिक आयोग है, जो मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में है, जिन पर एक निष्पक्ष दृष्टिकोण के लिए भरोसा किया जा सकता है। अगर ग़ैर-सरकारी व्यक्ति नियुक्त किए गए होते, तो निस्संदेह आलोचना इस बात के लिए होती कि वे प्रतिनिधि नहीं हैं। इसलिए बेहतर यही था कि एक उच्चस्तरीय सरकारी आयोग बनाया जाए, जो पार्टियों और इस तरह की चीज़ों के साथ असंबद्ध हो।

संदर्भ की शर्तें व्यापक हैं, लेकिन निश्चित रूप से वे राजनीतिक और संवैधानिक मुद्दों से संबंधित नहीं हैं। क्या आप एक ऐसा आयोग बनाएँगे, जो संसद् के फ़ैसले पर विचार करता हो और गंभीर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मुद्दों पर निर्णय करता हो? मैं इस आलोचना पर वास्तव में आश्चर्यचकित हूँ।

कश्मीर मुद्दे से निपटते हुए मैंने राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अतीत में ग़लतियाँ की हैं या नहीं, उसकी वर्तमान संदर्भ में शायद ही कोई प्रासंगिकता हो। हमें परिस्थितियों को उस रूप में लेना होगा, जैसी वे अब हैं और इसी रूप में उनसे निपटना होगा। यह समझ सकने में मैं पूरी तरह विफल हूँ कि ये भारी-भरकम संवैधानिक मामले, जो पूरे भारत को प्रभावित करते हैं और अंतरराष्ट्रीय मुद्दों को प्रभावित करते हैं, एक स्थानीय आंदोलन का विषय कैसे बनाए जा सकते हैं। न ही मैं यह समझ पाता हूँ कि हम कुछ स्थानीय समूह के साथ इन मामलों पर चर्चा कैसे कर सकते हैं, इस तथ्य से काफ़ी परे होकर कि वह स्थानीय समूह एक आक्रामक और विध्वंसक आंदोलन में लिप्त है।

मुझे लगता है कि यह महत्त्वपूर्ण है। प्रभाव में, इसका अर्थ होता है, संसद् के अधिकार के ख़िलाफ़ आंदोलन। निश्चित रूप से संसद् देश से बड़ी नहीं है, लेकिन सामान्य रूप से यह माना जाता है कि संसद् देश का प्रतिनिधित्व करती है। निश्चित रूप

से, जम्मू में एक ख़ास समूह भी देश से बड़ा नहीं है। क्या पूरे देश को और संसद् को एक स्थानीय समूह द्वारा उस बात पर बाध्य किया जा रहा है, जो पूरे देश को प्रभावित करती है? मुझे विश्वास है कि अगर इस विषय पर विचार करेंगे, तो आप स्वीकार करेंगे कि यह एक ऐसा प्रस्ताव है, जिस पर आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। मुझे भारत के संविधान के अनुरूप और संसद् के अधिकार के तहत कार्य करना है। अगर संसद् कुछ ऐसा निर्णय करती है, जो मुझे लगता है कि मूलभूत मामलों में मेरी प्रतिबद्धता के विपरीत है तो यह मेरा कर्तव्य है कि मैं अपना पद छोड़ दूँ और किसी अन्य को उसे सँभालने दूँ। किसी भी हालत में मैं संसद् के निर्णय के ऊपर निर्णय नहीं ले सकता हूँ। आम तौर पर, हर राज्य में, चाहे वह जम्मू-कश्मीर हो या कोई अन्य राज्य, भारत में राज्य को कुछ मामलों से निपटने के लिए संविधान के तहत अधिकार और शक्ति प्राप्त है। केंद्र सरकार कुछ मामलों में हस्तक्षेप कर सकती है और कुछ मामलों में सलाह दे सकती है। वह राज्य की स्वायत्तता पर हावी नहीं हो सकती। आप मुझ पर अधिनायकवादी प्रवृत्तियों का आरोप लगाने के लिए स्वतंत्र हैं। मैं सोचता था कि यह आरोप ज़्यादा प्रासंगिक ढंग से उन लोगों पर लगाया जा सकता है, जो अपनी इच्छा संसद् पर और पूरे देश पर थोपना चाहते हैं।

मैं वास्तव में किसी भी बहस में शामिल होने का इच्छुक नहीं हूँ, क्योंकि जैसा कि मैंने कहा, हम भिन्न मानसिक क्षेत्रों में विचरण करते दिखाई दे रहे हैं, भारत के संबंध में अपने उद्देश्यों के संदर्भ में मैं स्थितियों को अपनी सर्वश्रेष्ठ क्षमता के अनुरूप समझने की कोशिश कर रहा हूँ। मैं इस दिशा में मुझमें जितनी भी शक्ति है, उसके साथ काम करने का प्रयास कर रहा हूँ। मुझे इसमें कोई शक नहीं है कि आप भारत का हित चाहते हैं, लेकिन तथ्य यह है कि भारत के लिए सबसे अच्छा क्या है, इस बारे में हमारी धारणाएँ अलग-अलग दिखाई देती हैं। इसी कारण से हमारा पिछला जीवन काफ़ी हद तक विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ा है। हममें से कोई भी उस अतीत को न तो मिटा सकता है, न उसकी अनदेखी कर सकता है, जिसने इस वर्तमान को उत्पन्न किया है। मैं भारत की समस्याओं या किसी अन्य समस्या पर सांप्रदायिक दृष्टिकोण से विचार को स्वाभाविक रूप में बुरा, संकीर्ण और व्यक्ति, समूह एवं राष्ट्र के लिए हानिकारक मानता हूँ। आप मेरे द्वारा सांप्रदायिक शब्द का उपयोग करने पर आपत्ति करते हैं और मेरे आरोप से इनकार करते हैं। ज़ाहिर है, हम अलग ढंग से सोचते हैं और हमारे कार्य संभवतः हमारी सोच के परिणाम हैं।

लेकिन, यह सारी बातें वर्तमान स्थिति में ज़्यादा मददगार नहीं होतीं। मैं आपको आश्वासन दे सकता हूँ कि मैं पूरे दिल से भारत में शांति चाहता हूँ। किसी भी काम को करने के लिए यह एक पूर्व शर्त है। लेकिन आप मुझसे ऐसा कुछ करने की उम्मीद न

करें, जिसे मैं पूरी तरह ग़लत और भारत के हितों के लिए हानिकारक मानता हूँ। अगर मैं आपको सलाह दे सकूँ, तो यह सुझाव दूँगा कि जम्मू में इस आंदोलन को समाप्त करने के लिए अपने प्रभाव का उपयोग करें, जो संभवत: कुछ भला नहीं कर सकता है और जो निश्चित रूप से बहुत नुक़सान कर सकता है।

सादर,

(ह.)
जवाहरलाल नेहरू

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी,
संसद् सदस्य

10

30, तुगलक क्रीसेंट,
नई दिल्ली
12 फरवरी, 1953

प्रिय जवाहरलालजी,

10 फरवरी के आपके पत्र के लिए धन्यवाद। इस पत्राचार में हमारे द्वारा हम दोनों के अलग-अलग मानसिक क्षेत्रों में विचरण के औचित्य पर चर्चा करने या ऐसे क्षेत्रों की ख़ूबियों पर चर्चा करने से भी कोई सार्थक उद्देश्य पूरा नहीं होगा। मेरा मानना है कि हमारे देश की वास्तविक आवश्यकताओं के संदर्भ में आपके और मेरे बीच बहुत सी बातें साझी हैं और होनी चाहिए। हम बेशक कुछ महत्त्वपूर्ण मामलों के संबंध में ईमानदारी से असहमत होने पर सहमत हो सकते हैं, लेकिन कोई कारण नहीं कि इस क्षेत्र में भी हमें, एक-दूसरे के लिए घटिया इरादों का लांछन लगाने या एक-दूसरे पर परस्पर आरोप लगाने का सहारा लिए बिना एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझने की कोशिश क्यों नहीं करनी चाहिए।

मैं इस बात पर आपके साथ पूरी तरह सहमत हूँ कि जम्मू विवाद के संदर्भ में ये सारी चर्चाएँ कुछ हद तक अवास्तविक और अप्रासंगिक हैं। आपके और मेरे दोनों के हिसाब से आंदोलन जितनी जल्दी संभव हो, समाप्त हो जाना चाहिए। प्रश्न यह है कि ऐसा किसी भी मूलभूत सिद्धांत का त्याग किए बिना कैसे किया जा सकता है।

राज्य को किसी के द्वारा आक्रामक और विध्वंसक तरीक़ों से कोई भी निर्णय करने के लिए मजबूर करने का कोई प्रश्न ही नहीं है। यह आंदोलन इसलिए शुरू हुआ, क्योंकि सभी संवैधानिक साधन संबंधित पक्षों के बीच एक संयुक्त चर्चा सुनिश्चित कर पाने में भी सफल नहीं हो सके। आपने कहा है कि आपके सामने उन 100 अधिकारियों की सूची है, जो पिछले कुछ हफ्तों के दौरान भीड़ के हाथों घायल हुए हैं। मेरे पास अत्याचारों और नृशंसताओं के विशिष्ट मामलों की एक सूची है, जो अधिकारियों के लिए किसी श्रेय को प्रतिबिंबित नहीं करती है, इनके अलावा लगभग 30 से 40 व्यक्तियों की पुलिस द्वारा गोली मारकर हत्या कर दी गई है। सरकारी पक्ष के एक भी व्यक्ति की मौत नहीं हुई

है। यह निश्चित रूप से जताता है कि भीड़ द्वारा जो भी कुछ किया गया हो, आंदोलन के प्रायोजकों ने अहिंसक तरीक़ों का कड़ाई से पालन करने का निर्देश दिया है। हालाँकि, मेरा उद्देश्य अभी इन पहलुओं में जाने का नहीं है। मैं आप जितना ही चिंतित हूँ कि वर्तमान आंदोलन को समाप्त होना चाहिए। आपने इस आंदोलन को ख़त्म करने के लिए अपने प्रभावों का प्रयोग करने को मुझसे कहा है। मैं ऐसा करने के लिए तैयार हूँ, बशर्ते आप और शेख़ अब्दुल्ला ऐसा कर सकने के लिए उपयुक्त परिस्थितियों का निर्माण करें।

ऐसा कर सकने का एकमात्र तरीक़ा यह है कि आंदोलन के प्रायोजकों को सहमत कराया जाए कि आप और शेख़ अब्दुल्ला उन लोगों के साथ सभी मामलों पर खुले दिमाग़ से चर्चा करने और ऐसे निर्णय पर पहुँचने के लिए तैयार हैं, जो उनकी जायज माँगों को पूरा करे। मेरा सुझाव है कि आपको और शेख़ अब्दुल्ला को दिल्ली में कुछ नेताओं से मिलना चाहिए। अगर यह प्रस्ताव उन्हें भेजा जाता है, तो मुझे आशा है कि वे आंदोलन स्थगित करने के लिए सहमत होंगे। दूसरी तरफ़ अगर आपको लगता है कि मुख्य मुद्दों और आंदोलन की वापसी पर अंतिम समझौते की संभावना के बारे में कुछ अग्रिम समझ होने के पहले इस प्रक्रिया से जटिलताएँ पैदा हो सकती हैं, तो हम उठाए गए कई बिंदुओं पर चर्चा कर सकते हैं और विचार कर सकते हैं कि उनके समाधान के लिए उचित दृष्टिकोण क्या होना चाहिए। स्वाभाविक रूप से मैं प्रजा परिषद् की ओर से आश्वासन नहीं दे सकता हूँ, लेकिन जैसा कि मैं कुछ हद तक उनके दिमाग़ को समझता हूँ, मैं कुछ सुझाव आपको विचार करने के लिए दे सकता हूँ। अगर एक आम सहमति हो जाती है तो मैं अपनी सलाह के साथ एक संदेश पंडित प्रेमनाथ डोगरा को भेज सकता हूँ।

विचारार्थ बिंदु इस प्रकार हैं—

1. जम्मू एवं कश्मीर की संविधान सभा द्वारा पारित एक संकल्प के माध्यम से भारत में विलय का अंतिम निर्णय।
2. मौलिक अधिकारों, नागरिकता, वित्तीय एकीकरण, सीमा शुल्क उन्मूलन, सुप्रीम कोर्ट, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियाँ और चुनाव संचालन जैसे मामलों के बारे में भारतीय संविधान के प्रावधानों को राज्य द्वारा स्वीकार किया जाना। यह एक घोषित समय-सीमा के भीतर लागू किए जाने हों।
3. भारतीय संविधान के शेष प्रावधानों के संबंध में शेख़ अब्दुल्ला को संकेत देना चाहिए कि अगर वह कोई परिवर्तन चाहते हैं, तो क्या हैं। इन पर गुण-दोषों के आधार पर विचार किया जाएगा।
4. अंतिम समझौते के तौर पर जम्मू-कश्मीर का संविधान भारतीय संविधान का हिस्सा होगा।
5. सीमाओं के परिवर्तन के बिना जम्मू और लद्दाख के लिए प्रांतीय स्वायत्तता।

6. भारतीय ध्वज की सर्वोच्चता की स्वीकृति।
7. पाकिस्तान के क़ब्ज़े वाले क्षेत्र की मुक्ति और नियंत्रण के संबंध में नीति।
8. धर्मार्थ ट्रस्ट, पुलिस द्वारा किए गए अत्याचारों और पीड़ितों के परिजनों को मुआवजे, विशेष रूप से जिनकी गोली मारकर हत्या की गई है, सहित सभी शिकायतों के संदर्भ में जाँच आयोग का गठन, जिसमें अधिकतर न्यायाधीश राज्य के बाहर से हों।
9. उन सभी लोगों की पेंशन, संपत्तियों की बहाली, जिनके ख़िलाफ़ ज़ब्ती के आदेश पारित किए गए हो सकते हैं।

दोनों पक्ष खुले दिमाग़ के साथ आगे बढ़ें तो उल्लिखित मामलों में से कोई भी ऐसा नहीं है, जिसका उचित समाधान न हो सकता हो। अगर आपको लगता है कि मेरा दृष्टिकोण ठीक है तो हम एक विस्तृत चर्चा कर सकते हैं और निर्णय कर सकते हैं कि कश्मीर और पूरे देश के सर्वोत्तम हितों में कार्रवाई की क्या दिशा अपनाई जानी चाहिए।

आप और शेख़ अब्दुल्ला झूठी प्रतिष्ठा पर अड़े बिना अवसर पर खरे उतर सकते हैं और एक नया माहौल बना सकते हैं, जो किसी भी अन्य मतभेद के बावजूद सभी दलों के लिए कश्मीर मुद्दे पर हमारी एक राष्ट्रीय सोच प्रस्तुत करना संभव कर देगा। मैं उम्मीद करता हूँ कि जिस भावना से आपको पत्र लिखा गया है, आप उसे स्वीकार करेंगे और गतिरोध को समाप्त करने के लिए कार्रवाई करेंगे।

सादर,

(ह.)

श्यामाप्रसाद मुखर्जी

11

नई दिल्ली,
12 फरवरी, 1953

प्रिय श्यामाप्रसाद,

12 फरवरी के आपके पत्र के लिए धन्यवाद। मैं आपसे मिलने और किसी भी मामले पर चर्चा करने के लिए हमेशा तैयार हूँ। लेकिन आपने जो बिंदु विचारार्थ सुझाए हैं, उनमें से अधिकांश स्वयं सरकार द्वारा ही विचार करने लायक़ नहीं हैं, और ग़ैर-सरकारी संगठनों या व्यक्तियों के साथ विचार करने लायक़ तो और भी नहीं हैं। जम्मू और कश्मीर राज्य की संविधान सभा के लिए भारत में विलय की पुष्टि के संकल्प का अनुमोदन करना या उसे पारित करना काफ़ी आसान है। वे निश्चित रूप से ऐसा कर सकते हैं। लेकिन उससे वह अंतिम रूप से निश्चित नहीं हो सकता, जो शायद आपका आशय है। वह अंतिम निश्चय उन अन्य कारणों के साथ बँधा हुआ है, जो पूरी तरह हमारे नियंत्रण में नहीं है। तथ्य यह है कि जम्मू और कश्मीर राज्य की संविधान सभा पहले ही विभिन्न मामलों के संबंध में जो कार्रवाई कर चुकी है, विशेष रूप से भारत सरकार के साथ किए गए समझौते की पुष्टि में, वह अपने आपमें पिछले परिग्रहण की पुष्टि करने की तुलना में काफ़ी अधिक है। वह कई मायनों में इससे कहीं आगे जाती है।

आपने जिन मामलों का उल्लेख किया है, उनमें से कुछ को उस संविधान में शामिल कर लिया गया है, जिसे जम्मू-कश्मीर संविधान सभा द्वारा तैयार किया जा रहा है। ऐसा करने में देरी का एक कारण, मैं कल्पना करता हूँ कि स्वयं यह आंदोलन ही है, जिसने जम्मू-कश्मीर राज्य की सरकार के लिए इन मामलों में तेज़ी लाना कठिन कर दिया है।

यह बहुत स्पष्ट रूप से कहा गया है और कुछ अवसरों पर इस पर काम किया जा चुका है कि भारतीय ध्वज सर्वोच्च है।

जहाँ तक पाकिस्तान अधिकृत क्षेत्र की मुक्ति और उस पर क़ब्ज़े के लिए नीति का

संबंध है, यह निश्‍चित रूप से ऐसा प्रश्‍न नहीं है, जिस पर चर्चा की जा सकती हो, क्योंकि यह सभी प्रकार के राजनीतिक और सैन्य मामलों पर निर्भर करता है। आप इस बात को स्वीकार करेंगे कि कोई भी सरकार, चाहे जितनी भी शक्तिशाली हो, जो करना चाहती है, वह नहीं कर सकती है। उसे सीमा में बाँधने वाले कारक हैं। यहाँ तक कि महाशक्तियाँ भी वह नहीं कर सकती हैं, जो वह करना चाहती हैं और इसलिए एक-दूसरे से टकराव होता है, और गतिरोध होता है, जिससे दुनिया की शांति के लिए ख़तरे पैदा होते रहते हैं। वास्तव में जम्मू आंदोलन ने पाकिस्तान अधिकृत क्षेत्र के प्रश्‍न से निपटना और अधिक कठिन बना दिया है, क्योंकि इसने वहाँ के लोगों पर दूरगामी असर पैदा कर दिया होगा। हम किसी भी क्षेत्र पर हथियारों के बल द्वारा नियंत्रण करने के बारे में नहीं सोचते हैं और हमें संबंधित लोगों की सदिच्छा पर विश्‍वास करने की आवश्यकता है।

यहाँ तक कि जम्मू-कश्मीर के अलावा अन्य राज्यों में भी, हमें प्रांतीय स्वायत्तता का सम्मान करना होता है, हालाँकि हम वहाँ अपने सहयोगियों को सलाह देते हैं, फिर भी हस्तक्षेप नहीं करते। अगर केंद्रीय सत्ता द्वारा अधिरोहण किया जाएगा, तो कोई भी राज्य सरकार कामकाज जारी नहीं रख सकती है।

मैं निश्‍चिंत हूँ कि इस आंदोलन के लिए उचित मार्ग इसे वापस लिया जाना और स्थितियाँ सामान्य करने एवं सद्‌भावना स्थापित करने के लिए सभी दिशाओं में प्रयास किया जाना ही है। कोई भी प्रगति करने और शिकायतों या परेशानियों को समाप्त करने का यही आधार है।

आपको निश्‍चित रूप से जानकारी होगी कि वर्तमान में हमारे प्रतिनिधि गिरिजा शंकर बाजपेयी द्वारा डॉ. ग्राहम और जिनेवा में पाकिस्तानी प्रतिनिधि के साथ बातचीत की जा रही है। इस तरह के अंतरराष्ट्रीय मामले में कोई भी देश शर्तें थोपने का रवैया नहीं अपना सकता। यहाँ तक कि सबसे महान् शक्तियाँ भी ऐसा नहीं कर सकती हैं, और हमें सावधानी से तथा धैर्य के साथ और साथ ही जहाँ तक हमारे सिद्धांतों का संबंध है, उन पर दृढता के साथ आगे बढ़ना है। आप कल्पना कर सकते हैं कि वर्तमान जम्मू आंदोलन का हमसे शत्रुता रखने वालों ही नहीं, बल्कि अन्य देशों पर और विशेष रूप से जिनेवा में हो रही बातचीत पर क्या प्रभाव पड़ रहा होगा।

सादर,

(ह.)

जवाहरलाल नेहरू

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी,
संसद् सदस्य

12

30, तुगलक क्रीसेंट
नई दिल्ली,
13 फरवरी, 1953

प्रिय शेख़ साहब,

आपने श्रीनगर में कुछ महीने पहले आपके साथ हुई मेरी वार्त्ता का संदर्भ दिया है। हालाँकि बुनियादी समस्याओं में से कुछ पर आपके दृष्टिकोण के साथ मैं अपने आपको सहमत नहीं पाता हूँ, फिर भी मैंने आपके दृष्टिकोण को और आपके रास्ते में आ रही कठिनाइयों को समझने की कोशिश की है। यदि हम एक-दूसरे की मंशा पर शक शुरू कर देंगे और इस विवाद को परस्पर दुर्वचनों और आलोचनाओं के स्तर पर ले जाएँगे तो हम किसी समाधान की अपेक्षा नहीं कर सकते हैं। इस दृष्टिकोण से मैं आपके हाल के भाषणों में से कुछ को समझ सकने में नाकाम रहा हूँ, जिसमें आपने अपने आलोचकों को धोखेबाज़ और देश का दुश्मन करार दिया है।

एक मौलिक बिंदु, जिस पर मैं आप से असहमत हूँ, वह प्रजा परिषद् के प्रति आपका दृष्टिकोण है। आपको याद होगा, जब मैं आपसे श्रीनगर में मिला था, तब मैंने आपसे आग्रह किया कि आप जम्मू में भावनाओं की गहराई का अहसास करें और लोगों के मन से सभी भय और संदेहों को दूर करने के लिए पहल करें। मैंने आपको सलाह दी थी कि आप प्रजा परिषद् के प्रति असहयोग का दृष्टिकोण न अपनाएँ या मनमुटाव को और पनपने की अनुमति न दें। लेकिन आपने इस आधार पर इस सलाह को मानने से इनकार कर दिया था कि प्रथम तो प्रजा परिषद् का कोई जनाधार नहीं है और दूसरे यह कि इसका अतीत इतना स्याह है कि आप इसके प्रवक्ताओं के साथ कभी संबद्ध नहीं हो सकते थे। पहले बिंदु के संदर्भ में आपका अनुमान ग़लत साबित हो चुका है। प्रजा परिषद् द्वारा शुरू किया गया आंदोलन और जिस तरीक़े से यह फैला है, इस बात का पर्याप्त संकेत है कि इसका व्यापक जनाधार है। किसी भी स्थिति में यह आंदोलन लोगों

के विभिन्न वर्गों को एक साथ लाने में सफल रहा है, जो आप सोचते थे कि कभी इस संगठन का समर्थन नहीं करेंगे। एक लोकतांत्रिक नेता के रूप में आपको अपने राजनीतिक विरोधियों की शक्ति और प्रभाव को मान्यता देनी होगी। जहाँ तक कथित अतीत की गतिविधियों के कारण परिषद् के साथ बातचीत करने से इनकार करने की दूसरी बात का प्रश्न है, यह शायद ही तर्कसंगत हो।

इतिहास में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं, जिनमें इस तरह के दृष्टिकोण का परिणाम विनाशकारी रहा है। हम याद करें कि भारत में या यहाँ तक कि जम्मू-कश्मीर राज्य में क्या हुआ है। क्या ब्रिटिश सरकार अपनी इस ज़िद पर अड़ी रह सकी कि वह उस कांग्रेस के साथ नहीं मिलेगी, जिसने ब्रिटिश शासकों के अधिकार को ललकारा था? क्या गांधीजी और अन्य लोग भी श्री जिन्ना और अन्य लोगों के साथ समझौता करने के प्रयास में हद से आगे नहीं निकले थे, जिनका रवैया राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति देशभक्तिपूर्ण तो ज़रा भी नहीं था? स्वयं आपके मामले में क्या हुआ था? हालाँकि आपने श्री महाराजा के ख़िलाफ़ बग़ावत का झंडा उठाया था, लेकिन क्या राष्ट्रीय संकट की स्थिति में आप दोनों एक साझा मंच पर नहीं मिले थे और क्या आपने राज्य और देश के भावी हितों के लिए उनसे वफ़ादार सहयोग की पेशकश नहीं थी? गंभीर राजनीतिक मुद्दों के प्रति अपने वर्तमान रवैये का आधार पूरी तरह अपने विरोधियों के साथ अतीत के रिश्तों को बनाना सुरक्षित नहीं है। मैं आपके अतीत के बारे में अच्छी तरह नहीं जानता हूँ, लेकिन मैंने कुछ काग़ज़ात और दस्तावेज़ देखे हैं। स्वयं आपने शुरुआत एक सांप्रदायिक पार्टी के नेता के रूप में की थी। यहाँ तक कि महत्त्वपूर्ण ब्रिटिश अधिकारियों ने एक हिंदू महाराजा के शासन का अंत करने के लिए आपका और आपके आंदोलन का उपयोग करने के लिए अपनी व्यग्रता खुले तौर पर व्यक्त की है, फिर भी आपके वर्तमान उद्देश्यों को अलीगढ़ में आपके दिनों से शुरू करके आपके अतीत के बारे में विस्तृत शोध करके आँकना अत्यधिक अनुचित होगा।

आप महाराजा के शासन के ख़िलाफ़ या कुछ अन्य लोगों की किसी भी आक्रामक हिंदू भावनाओं के ख़िलाफ़ चाहे जो कह सकते हैं, लेकिन तथ्य यह है कि इसी महाराजा के समय में, जब स्वतंत्रता के ठीक पहले के उस दुर्भाग्यपूर्ण दौर में भारत के कई हिस्से सांप्रदायिक रोष और जुनून से दहक रहे थे, जिनका परिणाम सभी प्रकार के अत्याचारों में निकल रहा था, तब जम्मू और कश्मीर राज्य ऐसे बदसूरत विस्फोटों से पूर्णतः मुक्त था। उस समय आपका राजनीतिक आंदोलन बेरोक-टोक चल रहा था और आप राज्य के प्रशासन में किसी स्थिति में नहीं थे। हमें इन सारी अतीत की बातों में नहीं जाना चाहिए। 1936 और 1947 में ऐसी बहुत सी बातें हुई हैं, जिनकी ज़िम्मेदारी हमेशा विशेष रूप से किसी एक पार्टी या एक समुदाय की नहीं है। क्रिया के जवाब में प्रतिक्रियाएँ हुई

हैं और हम एक दुष्चक्र में फँसे हैं। हमें उस अध्याय को भूलना होगा, हालाँकि हमें उस भीषण त्रासदी के सबक ध्यान रखने होंगे, ताकि भविष्य में ग़लतियाँ न हो सकें। हमारा दृष्टिकोण मुख्य रूप से प्रत्येक विवाद से पूरी तरह उसके गुण-दोषों के आधार पर निपटने और एक समझौते तक पहुँचने का प्रयास करने की एक वास्तविक इच्छा पर आधारित होना चाहिए।

आप और कुछ अन्य लोग जिस तरीक़े से भाषण दे रहे हैं और डोगराओं के संदर्भ में बयान दे रहे हैं, उसके प्रति अपना अफ़सोस मैंने आपसे छिपाया नहीं था। परिस्थितियों ने आपको अपने राज्य की नियति का दायित्व सौंपा है और आप जम्मू-कश्मीर में रहने वाले लोगों के सभी वर्गों के मन में विश्वास और भरोसा पैदा करके इस अवसर की कसौटी पर खरे उतर सकते हैं। डोगरा कई पीढ़ियों से राज्य के शासक रहे थे और जब आप सत्ता में आए तब स्थिति अचानक उलट गई थी। आप महाराजा के प्रति अपमानजनक अंदाज़ में बात करने जिस तरह हद से बाहर गए, वह मुझे पसंद नहीं आया; हालाँकि आपने महाराजा को अपने पूरे समर्थन, सहयोग और वफ़ादारी का लिखित आश्वासन दिया था, जब आपको पूर्ण राजनीतिक शक्तियों का अधिकार उनकी कार्रवाई और उनके निर्णयों के ज़रिए मिला था। आधुनिक व्यवस्था में वंशानुगत शासन की सुदृढता या कमज़ोरी के अलावा महाराजा के प्रति शत्रुता का ऐसा रवैया, जो अपने ही निर्णय की मार से राजनीतिक शक्तिहीन बन गए हैं, वास्तव में अनावश्यक था। लेकिन जब कभी यह अपनी सीमाओं का उल्लंघन कर जाता है और सभी डोगराओं पर हमले तक बढ़ जाता है, तो यह ख़तरनाक घटनाक्रम का स्रोत बन जाता है। इस कारण मैंने ज़ोर देकर आपसे अनुरोध किया था कि आप राज्य में एक नया मनोवैज्ञानिक माहौल बनाने के लिए हर संभव क़दम उठाएँ, ताकि सभी वर्गों के लोग अनायास ही आपको ऐसे नेता के रूप में स्वीकार करें, जिसके हाथों में उनके हित पूरी तरह से सुरक्षित हों। जब मैं जम्मू में था, तब मैंने आपके प्रशासन के ख़िलाफ़ भावनाओं की तीव्रता देखी है और देखा है कि कैसे संदेह और भय अनसुलझे बने हुए थे। मैंने उस समय स्वीकार किया था, और आज भी बिना शर्त स्वीकार करता हूँ कि पाकिस्तान की स्थापना के बुनियादी सिद्धांत को चुनौती देने के लिए आप ज़बरदस्त कठिनाइयों के बावजूद हिम्मत से आगे बढ़े हैं। इस संदर्भ में एक महान् प्रयोग किया जा रहा था, जिसे भारत के राष्ट्रीय नेता स्वयं सफल नहीं कर सकते थे, जिनकी इच्छा शक्तिहीन नीति का परिणाम देश के विभाजन में निकला है। मैं इस महान् कार्य के लिए आपका सम्मान करता हूँ। लेकिन मैंने आपको निजी तौर पर चेतावनी दी थी और सार्वजनिक तौर पर ऐसा कहा कि स्थिति से निपटने के अपने तरीक़े में आपको, शब्दों और कर्मों द्वारा, न तो अलगाववाद की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करना चाहिए, और न ही जम्मू की विशेष समस्याओं को नज़रअंदाज़ करना चाहिए। मैंने जम्मू

और श्रीनगर से लौटने के बाद पंडित नेहरू को अपनी धारणाओं से अवगत कराया था। यदि आप दोनों इस तरीक़े से आगे बढ़े होते, तो शायद कुछ भी न हुआ होता।

वर्तमान गतिरोध को समाप्त करने के लिए एक पहली शर्त के रूप में, जो किसी भी उस व्यक्ति के लिए अच्छा नहीं है, जो पूरे भारत की भलाई का इच्छुक हो, मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि आप झूठी प्रतिष्ठा पर अड़े न रहें, बल्कि इस अंतिम चरण में भी प्रजा परिषद् के नेताओं के साथ सभी विवादों पर चर्चा करने के लिए सहमत हो जाएँ। अगर आप ऐसा करते हैं तो कोई भी आप पर कमज़ोर पड़ने का आरोप नहीं लगाएगा, बल्कि हाथो-हाथ आपकी राजनीतिक सूझबूझ और दृढ यथार्थवाद को स्वीकार करेगा।

आपके पत्र में क़ानूनी और संवैधानिक बिंदु उठाए गए हैं। मैं उनके महत्त्व को कम करके नहीं देखता हूँ, लेकिन वे उन बड़े विवादों को निपटाने के लिए परम पक्ष नहीं हैं, जिन्हें केवल एक मानवीय दृष्टिकोण से हल किया जा सकता है। आपने अपने आलोचकों के विभिन्न बयानों और भाषणों से कुछ अंश उद्धृत किए हैं और उनकी विसंगतियों को दिखाने की कोशिश की है। उनमें से कुछ सी.आई.डी. की रिपोर्टों से लिए गए हैं, बाक़ी को संदर्भ से काटकर उद्धृत किया गया है और बाक़ी अन्य मात्र हवाला रहे हैं। मैं इसी तरह आपके अपने भाषणों और बयानों से अंश उद्धृत कर सकता हूँ और गंभीर विसंगतियों का संकेत दे सकता हूँ, लेकिन बात इस मुद्दे पर नहीं हो रही है। मुख्य बिंदुओं में से एक यह है कि भारत में जम्मू-कश्मीर के विलय के प्रश्न को अंतिम तौर पर और पूरी तरह कैसे सुलझाया जाए। आप और पं. नेहरू कभी ज़बरदस्त भाषण देकर घोषणा करते हैं कि राज्य पहले ही भारतीय संघ का एक हिस्सा है और इसलिए इसके बारे में कोई विवाद होने की आवश्यकता नहीं है। जो मैं चाहता हूँ, वह यह है कि इस प्रश्न को एक बार संवैधानिक रूप से हमेशा के लिए सुलझा दिया जाए, और यह काम जितना जल्दी किया जाएगा, उतना ही यह सभी संबंधित पक्षों के लिए बेहतर रहेगा। यह कहा गया है कि इस प्रश्न को जम्मू-कश्मीर के लोगों की इच्छा के अनुसार तय किया जाना होगा। यह सुविधा विशेष रूप से आपके राज्य को देने की पेशकश नहीं की गई थी। 1947 में ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाई गई कपटी और चालाक नीति के कारण सभी 500 या उससे अधिक भारतीय राज्य, जैसा कि उन्हें कहा जाता था, सिद्धांततः स्वतंत्र इकाई हो गए थे, और ब्रिटिश सरकार ने ज़ोर दिया था कि भारत या पाकिस्तान के साथ उनका संघ स्वैच्छिक आधार पर होना चाहिए। अंग्रेज़ सिर्फ़ उसका विभाजन भारत और पाकिस्तान में करके संतुष्ट नहीं थे, जो एक महान् राजनीतिक इकाई माने अविभाजित भारत था। वे भारत के भीतर लगभग 500 छोटी और बड़ी इकाइयों के संबंध में, जिन्हें भारतीय राज्यों के रूप में जाना जाता है, संप्रभुता का एक मिथक पैदा करके भावी विघटन के बीज बोने में उत्सुक थे। कांग्रेस इस स्थिति को स्वीकार करने के लिए बाध्य हुई थी, और उसने उस

समय के बाद से इन राज्यों को मुक्त भारत के ढाँचे में अवशोषित करने का कठिन और नाजुक काम शुरू किया था। सरदार पटेल की शासन कला और गतिशील व्यक्तित्व के बूते, एकता का यह महान् कार्य तीन अपवादों—जम्मू एवं कश्मीर, हैदराबाद और जूनागढ़—को छोड़कर, सभी मामलों में, बिना रक्तपात के पूरा किया गया। अंतत: हैदराबाद और जूनागढ़ को भी भारत में शामिल किया गया। अपने मामलों का निर्णय स्वयं करने के लिए इन सभी राज्यों को वही सैद्धांतिक अधिकार प्राप्त थे, जैसे आपके राज्य को। लेकिन वे न केवल विदेशी संबंधों, रक्षा और संचार के संबंध में, बल्कि अन्य मामलों के संबंध में भी भारत में आए और इस प्रकार पूरे देश के लिए भारतीय संविधान का एक पैटर्न विकसित हुआ।

आपके प्रकरण में विलय की निश्चयात्मकता पाकिस्तान के साथ युद्ध के कारण नहीं की जा सकी। अब आपके राज्य की इच्छा को सुनिश्चित करने की इस औपचारिकता को कैसे घोषित किया जा सकता है? मेरा अपना व्यावहारिक सुझाव है कि आपने वयस्क मताधिकार के आधार पर जिस संविधान सभा का गठन किया है, उसे इस प्रश्न का निर्णय करना चाहिए और भारत को उस निर्णय को स्वीकार करना चाहिए। आपने यह कहकर मेरा उपहास करने की कोशिश की है कि यह सुझाव, विशेष रूप से जम्मू के संबंध में चुनाव की वैधता की प्रजा परिषद् की चुनौती के कारण शायद ही तर्कसंगत है। इस चुनौती को आपने और पं. नेहरू ने अस्वीकार कर दिया है। इसलिए आप दोनों तरफ़ की बात नहीं कर सकते। आज आप सत्ता में हैं और आप इस आधार पर काम कर रहे हैं कि संविधान सभा पूरी तरह से प्रतिनिधि है। आपके विरोधी भी आपको एक प्रस्ताव पारित करने के लिए आमंत्रित करते हैं और फिर वे कम-से-कम भविष्य में इस निर्णय पर प्रश्न खड़ा करने में सक्षम नहीं होंगे। फिर रह जाता है इस तरह के निर्णय का संयुक्त राष्ट्र संघ और पाकिस्तान के संबंध में संभावित प्रभाव। मेरी विनम्र राय में विलय के प्रश्न से इनमें से किसी का भी कोई लेना-देना नहीं है। भारत विलय के मुद्दे पर संयुक्त राष्ट्र संघ नहीं गया है, बल्कि पाकिस्तान द्वारा भारत पर आक्रमण के संबंध में गया है, जिसमें जम्मू-कश्मीर शामिल है। यहाँ भारत के मामले में न्याय बिल्कुल भी नहीं हुआ है। यह सच है कि भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ को आश्वासन दिया है कि अंतिम परिग्रहण का निर्धारण लोगों की इच्छा के अनुसार किया जाएगा। यदि लोगों की वह इच्छा आज वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संविधान सभा के माध्यम से व्यक्त की जाती है, तो कोई भी तार्किक और वैध तरीक़े से इस तरह के निर्णय को चुनौती नहीं दे सकता है। इस क़दम के महत्त्व और इसकी अत्यावश्यकता को कम नहीं किया जा सकता। एक बार जब यह पता चल जाएगा कि इस मामले को अंतिम तौर पर निपटा दिया गया है, तो भविष्य के बारे में सभी संदेह और भय समाप्त हो जाएँगे और सभी पक्ष मतभेदों पर

ध्यान दिए बिना, संयुक्त रूप से जम्मू और कश्मीर राज्य के पुनर्निर्माण के लिए आगे अभियान चला सकते हैं।

अगला महत्त्वपूर्ण प्रश्न उन विषयों के संबंध में है, जिनके संबंध में परिग्रहण होना चाहिए। यहाँ अनुच्छेद 370 की आपकी विस्तृत व्याख्या और आपका यह दावा कि आपको 'अवशिष्ट संप्रभुता' उपलब्ध है, जो शेष भारत को नहीं दी गई है, अनावश्यक वैमनस्य और ख़तरनाक जटिलताएँ पैदा करता है। प्रजा परिषद् की माँग क्या है और वास्तव में आपसे हमारा अनुरोध क्या है? प्रार्थना यह है कि स्वतंत्र भारत के संविधान को स्वीकार करें और इसे जम्मू-कश्मीर राज्य के लिए लागू करें, जैसा कि सभी भाग 'ख' राज्यों के संबंध में किया गया है। क्या इस तरह के अनुरोध में कुछ भी सांप्रदायिक और प्रतिक्रियावादी है? यहाँ तक कि इसमें भी मैंने एक समझौता फॉर्मूले का प्रस्ताव किया है और मुझे कोई कारण नज़र नहीं आता है कि यह किसी को अस्वीकार्य क्यों होना चाहिए। संविधान के कुछ बुनियादी प्रावधान हैं, जो पूरे भारत में लागू होने चाहिए। वे मौलिक अधिकारों, नागरिकता, सुप्रीम कोर्ट, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों, सीमा शुल्क के उन्मूलन सहित वित्तीय एकीकरण, चुनाव कराने और राष्ट्रीय योजना से संबंधित हैं। इनमें से कुछ के संबंध में आप भारतीय संविधान को या तो वर्तमान रूप में या संशोधित रूप में स्वीकार करने के लिए सहमत हो गए हैं। कृपया प्रासंगिक प्रावधानों को पूर्ण रूप से स्वीकार करें। भूमि के संबंध में आपके पास एक विशेष प्रावधान हो सकता है। अन्य मामलों के संबंध में आप कुछ समय ले सकते हैं और एक व्यापक ज्ञापन तैयार कर सकते हैं, जिसमें इंगित किया गया हो कि आप किस संदर्भ में भारतीय संविधान के प्रावधानों में संशोधन चाहते हैं। आपको इसे अपने राज्य के सर्वश्रेष्ठ हित में आवश्यक के तौर पर उचित साबित करना होगा, जो भारत की एकता और एकजुटता के संरक्षण के लिए हानिकारक नहीं होगा। आपके प्रस्तावों पर निष्पक्ष रूप से विचार किया जा सकता है और परस्पर विचार-विमर्श से योग्यता के आधार पर उन पर निर्णय लिया जा सकता है। मेरा आशय यह नहीं है कि संविधान ऐसा अलंघनीय है कि इसके प्रावधानों में से किसी को भी बदला नहीं जा सकता है, तब जबकि आपका राज्य ऐसी माँग करता है और इसकी आवश्यकता है।

इस तरह तर्कसंगत ढंग से आगे बढ़ने के बजाय आपने स्वयं अपने लिए और अपने राज्य के लिए एक अलग स्थिति बनाने की प्रवृत्तियाँ प्रदर्शित की हैं। एक निर्वाचित राज्य प्रमुख और एक अलग ध्वज के प्रावधान की इस बिंदु से जाँच की जानी चाहिए। ध्वज एकता का प्रतीक है। आपने किसी विपक्षी नेता द्वारा दिए गए किसी भाषण का उल्लेख किया है, जिसमें उसने घोषणा की है कि वर्तमान ध्वज को भगवा झंडे द्वारा प्रतिस्थापित किया जाएगा, इससे पता चलता है कि आपने उन लोगों के दृष्टिकोण को नहीं समझा है,

जो अकेले जम्मू-कश्मीर के लिए एक अलग झंडे का विरोध कर रहे हैं। यह किसी ने नहीं कहा है कि जिन राज्यों में भगवा ध्वज का पक्ष लेने वाली पार्टी सत्ता में होगी, वहाँ भगवा ध्वज हो जाएगा और भारत के बाक़ी राज्यों में प्रत्येक राज्य में सत्ताधारी पार्टी विशेष की इच्छा के अनुसार एक या एक से अधिक झंडे होंगे। अगर राष्ट्रीय ध्वज का डिज़ाइन लोगों के प्रतिनिधियों की इच्छा के अनुसार किसी भी समय बदला जाएगा, तो वह पूरे भारत में लागू होगा। यह कोई अलगाववाद या एकता का अभाव पैदा नहीं करेगा। लेकिन अगर प्रत्येक राज्य सत्तारूढ़ पार्टी की इच्छा के अनुसार अपना झंडा रखना शुरू कर देता है, तो यह भारत की राष्ट्रीय और राजनीतिक एकता के लिए एक झटका होगा। और आप जो करने की कोशिश कर रहे हैं, वह यही है।

आप अपने आपको जम्मू-कश्मीर का प्रधानमंत्री कहते हैं। प्रधानमंत्री एक ही हो सकता है, एक ही होना चाहिए और वह पूरे भारत के प्रधानमंत्री के रूप में है। सभी राज्यों में प्रथम कार्यकारी नागरिक मुख्यमंत्री के रूप में जाना जाता है, लेकिन आपने एक अलग नामकरण स्वयं के लिए कर लिया है! आपके राज्य के प्रमुख को सदर-ए-रियासत (राष्ट्रपति) कहा जाना चाहिए,भारत में केवल एक ही राष्ट्रपति हो सकता है और वह भारत का राष्ट्रपति है। अन्य राज्यों के प्रमुख राज्यपाल, राजप्रमुख या किसी अन्य नाम से जाने जा सकते हैं, जैसी कि संविधान में व्यवस्था की गई हो। एक गणतंत्र के भीतर गणतंत्र नहीं हो सकता। एक और केवल एक संप्रभु संसद् हो सकती है और वह भारत की संसद् है। जान-बूझकर या अनजाने में, आप जम्मू-कश्मीर राज्य के लिए एक नई संप्रभुता पैदा कर रहे हैं। दो राष्ट्र सिद्धांत से भारत दो फाड़ हो गया है। अब आप एक तीन राष्ट्र सिद्धांत विकसित कर रहे हैं, जिसमें तीसरा राष्ट्र कश्मीरी है। ये ख़तरनाक लक्षण हैं और आपके राज्य का या पूरे भारत का भला नहीं कर रहे हैं।

मैंने इस बारे में आपका कोई तर्कपूर्ण बयान नहीं देखा है कि भारतीय संविधान आपके राज्य में लागू क्यों नहीं किया जाना चाहिए। आपका एकमात्र उत्तर रहा है कि अगर यह काम तेज़ी से किया गया, तो कश्मीर के मुसलमान पाकिस्तान की ओर झुक सकते हैं। मैं मुसलमानों के मन में पूरी समझ और विश्वास का माहौल बनाने की आवश्यकता को नज़रअंदाज़ नहीं करता। लेकिन एक सीमा है, जहाँ तक ही इस तरह के प्रयासों को सीमित रखा जाना चाहिए, और न ही ये प्रयास इस तरह से किए जाने चाहिए, जो राज्य में रह रहे ग़ैर-मुसलमानों के मन में गंभीर संदेह और भय का कारण बन सके और एक निश्चित अल्पसंख्यक बना दें। मुझे खेद है कि कई स्तरों पर आपकी नीतियों की उनके दिमाग़ों पर संभावित प्रतिक्रिया को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ किया गया है। अगर मुसलमानों का भारत पर भरोसा करना बंद करने और पाकिस्तान जाने का हौआ खड़ा करना अनियंत्रित ढंग से जारी रहता है, तो यह वैसी ही जटिलताएँ पैदा करेगा, जैसी

श्री जिन्ना के रुख़ ने की थी। भारत एक संविधान के अनुसार शासित है, जो किसी भी सांप्रदायिक या वर्गीय विचार पर आधारित नहीं है। अगर भारत में चार करोड़ मुसलमानों से संविधान के तहत सुरक्षा और सम्मान के साथ जीने की उम्मीद की जा सकती है, तो कश्मीर के 30 लाख मुसलमान, जो अपने राज्य में बहुसंख्यक समुदाय होंगे, उन्हें भारत के बाहर जाने के मूड में क्यों होना चाहिए, जब तक वे ईमानदारी से यह महसूस न करते हों कि उनका भविष्य पाकिस्तान जैसे एक इसलामी देश के साथ जुड़ा हुआ है। पंथनिरपेक्ष लोकतंत्र बाज़ारू तरीक़ों का पालन करके विकास नहीं कर सकता। मैं पूरी गंभीरता से विश्वास करता हूँ कि समय के साथ इस बात का अहसास होगा कि धार्मिक आधार पर देश के विभाजन ने किसी भी समुदाय का भला नहीं किया है, बल्कि केवल देश की प्रगति के हाथों को पीछे खींचा है। मैं चाहता हूँ कि आप शासन कला की भावना से हमारे खोए हुए क्षेत्र सहित पूरे जम्मू एवं कश्मीर के राज्य के प्रमुख के तौर पर काम करें, जिसे राज्य के सभी हिस्सों का विश्वास सहर्ष प्राप्त हो, और इसे भारतीय एकता और स्वतंत्रता के अग्रणी रक्षकों में से एक बनाएँ।

पंडित नेहरू के साथ पिछले साल जुलाई में हुए अपने समझौते को लागू करने में देरी के लिए आपने जो स्पष्टीकरण दिया है, वह वास्तव में बहुत कमज़ोर है। नवंबर 1952 में, यानी समझौते के चार महीने के बाद आप समझौते के सिर्फ़ अपनी पसंद के हिसाब से उपयुक्त हिस्सों को लागू करने का रास्ता निकाल सके, जिन्होंने बड़े पैमाने पर विरोध उकसाया, क्योंकि यह भारतीय संविधान के साझे पैटर्न से राज्य को और परे करते हैं। समझौते के बाक़ी हिस्सों को लागू करने में हुई देरी का कोई औचित्य मुझे नज़र नहीं आता। अगर कुछ औपचारिकताओं को पूरा किया जाना बाक़ी था, तो आप आसानी से एक-दो महीने या और अधिक समय तक प्रतीक्षा कर सकते थे, और समझौते को टुकड़ों-टुकड़ों में लागू कर सकते थे। देखिए, हमें और बाक़ी अन्य लोगों को समझौता पसंद नहीं है और लिहाज़ा इसका क्रियान्वयन होने या न होने से हमें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। यह एक घटिया तर्क है और समस्या के प्रति एक पूरी तरह ग़लत दृष्टिकोण है। हमारा मानना है कि भारतीय संविधान के कुछ प्रावधानों को जम्मू-कश्मीर में लागू करने के संबंध में किए गए समझौते में सुधार करने और उसका विस्तार करने की गुंजाइश है। लेकिन फिर भी यह निश्चित रूप से इसकी तुलना में बेहतर है कि आप सभी इस दिशा में कुछ भी नहीं कर रहे हैं, और इस तरह के क्रियान्वयन का कोई विरोध भी न करे।

मुझे जम्मू के लोगों पर नृशंसताओं और अत्याचारों की गंभीर रिपोर्टें प्राप्त हो रही हैं। ऐसी रिपोर्टों की जाँच करना मेरे लिए संभव नहीं है। मैं ज़िम्मेदार व्यक्तियों का एक छोटा सा तथ्यान्वेषी प्रतिनिधिमंडल भेजना चाहता था, जिनमें से तीन विधायक थे, लेकिन उनको आपके अपने राज्य में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी गई है। यह एक

अजीब स्थिति है कि हम विशेष अनुमति के बिना भारतीय संघ के एक हिस्से में प्रवेश नहीं कर सकते हैं। दमन, गोलियों और जेल से समस्या हल नहीं होगी। आंदोलन गहरा फैल रहा है और कड़वाहट और आक्रोश बढ़ रहा है। सामान्य तौर पर इस तरह का आंदोलन शुरू ही नहीं होना चाहिए। लेकिन लोग इसके लिए मजबूर तब हो गए, जब आप और अन्य लोगों ने उन्हें उनकी शिकायतों के समाधान के लिए सभी संवैधानिक तरीक़ों से वंचित कर दिया था। आपको मूल कारणों की जाँच करनी होगी और एक सम्मानजनक निपटारे के लिए प्रयास करना होगा।

मैंने आपके प्रशासन के ख़िलाफ़ आरोपों के बारे में विस्तार से उल्लेख नहीं किया है। यह कुछ आर्थिक मामलों, पुनर्वास,भेदभावपूर्ण नीति आदि से संबंधित है। सीमावर्ती ज़िलों का आपने जो पुन: विभाजन किया है, वह समझदारी भरा नहीं है। कारण चाहे जो भी रहे हों, परिणामस्वरूप उन क्षेत्रों में से कुछ में सांप्रदायिक विभाजन हो गया है। यहाँ कोई गंभीर घटनाक्रम घटना संभव है। आपका ज्ञापन इस आरोप का कोई जवाब नहीं देता है। इससे आसानी से बचा जा सकता था और ग़ैर सांप्रदायिक आधार पर विभाजन किया जा सकता था। आपने तो किसी भी हालत में अपने प्रशासन के ख़िलाफ़ किसी भी आरोप की जाँच कराने के लिए हमेशा अपनी तत्परता व्यक्त की है। अगर यह काम किसी आयोग को करना है, तो उसके कर्मी राज्य के अधिकारियों के प्रभाव से परे होने चाहिए और उसका कार्य संदर्भ पर्याप्त व्यापक होना चाहिए ।

मैंने आपके संविधान के भविष्य के पैटर्न का भी उल्लेख नहीं किया है। पूरे जम्मू को और लद्दाख को और कश्मीर घाटी को स्वायत्तता देने की वांछनीयता पर बाद की किसी स्थिति में उनकी योग्यता के आधार पर विचार विमर्श किया जा सकता है। अब आवश्यकता इस बात की है कि आंदोलन को तेज़ी से समाप्त किया जाए और भविष्य के सहयोग के लिए उचित माहौल बनाया जाए। आपको पहल करनी चाहिए और इस संबंध में मेरी सेवाएँ आपको हमेशा उपलब्ध रहेंगी। अगर किसी भी समय आपको लगता है कि आप एक संतोषजनक समाधान तक पहुँचने के लिए मेरी मदद चाहते हैं, तो अतीत के सारे विवादों को भूलकर, मुझे आपकी कोई भी सहायता करके बहुत ख़ुशी होगी। लेकिन किसी अन्य के हस्तक्षेप से कहीं बेहतर यह होगा कि आप स्वयं जम्मू के प्रतिनिधियों को एक सम्मेलन में आमंत्रित करें, जहाँ आपको और पंडित नेहरू को मौजूद होना चाहिए। कृपया इस संबंध में कल की तारीख़ का पंडित नेहरू को लिखा मेरा पत्र देखें। अगर हम कश्मीर मुद्दे पर एकजुट होते हैं—और कोई कारण नहीं है कि हमें क्यों नहीं होना चाहिए केवल तभी हम जम्मू-कश्मीर की एकता की रक्षा करने में सक्षम हो सकते हैं, और राज्य के अपने एक-तिहाई इलाके को वापस लाने के लिए क़दम उठाने में सक्षम हो सकते हैं, जो कि हमारे राष्ट्रीय अपमान के तौर पर दुश्मन के हाथों में

अब भी बना हुआ है। मुझ पर विश्वास करें; मैं अविश्वास और कड़वाहट के वर्तमान माहौल के समाप्त होने के प्रति सबसे अधिक उत्सुक हूँ। पहल पंडित नेहरू और आपके हाथों में है। प्रार्थना है कि ब्रिटिश शासकों की नक़ल न करें और झूठी प्रतिष्ठा पर न अड़ें। सहनशीलता और आपसी समझ के साथ, और इस दृढ संकल्प के साथ कि उस त्रासद मूर्खता को नहीं दोहराया जाएगा, जिसका परिणाम भारत के विभाजन में निकला है, हम वर्तमान गतिरोध का समाधान इस तरह से करें, जो पूरे जम्मू एवं कश्मीर और भारत के लिए हितकारी हो।

सादर,

(ह.)

श्यामाप्रसाद मुखर्जी

शेख़ एम. अब्दुल्ला
मुख्यमंत्री, जम्मू एवं कश्मीर
जम्मू तवी

13

30, तुगलक क्रीसेंट,
नई दिल्ली
14 फरवरी, 1953

प्रिय श्री जवाहरलालजी,

12 फरवरी के आपके पत्र के लिए धन्यवाद।

मेरा मानना है कि मुद्दा काफ़ी हद तक सीमित हो चुका है और अगर हम वास्तव में ऐसा चाहें तो एक शीघ्र और सौहार्दपूर्ण समाधान कर सकते हैं। मैंने अपने पत्र में जिन विशेष बिंदुओं का उल्लेख किया है, वे जम्मू के लोगों के मन के भय और संदेह से उत्पन्न होते हैं। इस भय का जिस तरीक़े से नाश किया जाना चाहिए, वह उन पर की जाने वाली एक खुली चर्चा पर निर्भर करेगा। आपको और शेख़ अब्दुल्ला को पहले तय करना है कि आप उनसे बात करने को तैयार हैं या नहीं। मैं ऐसा करने के लिए आपसे प्रार्थना करूँगा। आप कह चुके हैं कि आंदोलन के लिए सही मार्ग यह है कि इसे वापस ले लिया जाना चाहिए और सभी पक्षों द्वारा सामान्य और सद्भावना लाने का प्रयास किया जाना चाहिए। प्रश्न यह है कि इसे किया कैसे जाए। जब कोई आंदोलन चल पड़ता है और उसके संचालकों को लगता है कि वे एक उचित कारण के लिए संघर्ष कर रहे हैं और बलिदानों एवं जीवन की हानि सहित पीड़ाओं से गुज़रे हैं, तो उसे सुलझाने का कोई भी तरीक़ा परस्पर समझ के आधार पर मानवीय दृष्टिकोण से आगे बढ़ना चाहिए। इसलिए मेरा सुझाव है कि आप दोनों को प्रजा परिषद् के कुछ चुनिंदा प्रतिनिधियों से मिलने के लिए सहमत होना चाहिए और इसके तत्काल बाद आंदोलन निलंबित कर दिया जाना चाहिए। मुझे विश्वास है कि, परिस्थितियों को सामान्य बनाने और सद्भावना उत्पन्न करने की प्रक्रिया स्वचालित रूप से चल पड़ेगी। अगर उनके दृष्टिकोण निष्पक्ष और न्यायपूर्ण ढंग से मिलते हैं तो कोई कारण नहीं होना चाहिए कि उनका पूरे मन से प्रत्युत्तर न दिया जाए।

मैंने अपने पिछले पत्र में कुछ विशिष्ट बिंदुओं का उल्लेख किया था, ताकि आपको पता हो कि किन मामलों से निपटना हो सकता है। मेरी आपके पत्र का विस्तार से जवाब

देने की इच्छा नहीं है, लेकिन आपके द्वारा उठाए गए बिंदुओं के कुछ पहलुओं का संकेत ज़रूर दे सकता हूँ। पहला बिंदु परिग्रहण की निश्चयात्मकता से संबंधित है। यह महत्त्वपूर्ण बात है, न केवल जम्मू के लिए बल्कि पूरे राज्य के लिए और वास्तव में पूरे भारत के लिए। मैं आपसे और शेख़ अब्दुल्ला से आग्रहपूर्वक अनुरोध करता हूँ कि मेरे द्वारा दिए गए सुझाव को स्वीकार करें और परिग्रहण का समर्थन करते एक संकल्प को जम्मू-कश्मीर संविधान सभा द्वारा पारित किए जाने की अनुमति दें। हमें संयुक्त राष्ट्र संघ और पाकिस्तान से जिन बाधाओं का सामना करना पड़ेगा, उनका स्वभाव चाहे जो हो, इस क़दम से हमारी स्थिति कमज़ोर नहीं होगी, दूसरी ओर भारत और कश्मीर के भीतर आपके पास एक ठोस राय होगी, जो सभी दलों द्वारा समर्थित होगी। सत्य कहा जाए, तो परिग्रहण वह मुद्दा नहीं था, जिसे लेकर हम संयुक्त राष्ट्र संघ गए थे। आज अगर संयुक्त राष्ट्र संघ जानना चाहता है कि लोगों की इच्छा किस प्रकार व्यक्त की जा रही है, तो हम निश्चित रूप से अपने उत्तर को जायज़ ठहरा सकते हैं कि यह इच्छा संविधान सभा के माध्यम से व्यक्त की गई है और इस मामले का समाधान भारत और कश्मीर के बीच हुआ है। संयुक्त राष्ट्र संघ और पाकिस्तान के साथ गतिरोध अभी भी जारी रह सकता है और हो सकता है, बाद में किसी अन्य तरीक़े से इसका समाधान हो।

मैं मानता हूँ कि जब जिनेवा में वार्त्ता चल रही है, ठीक उस समय एक ऐसी घोषणा विवेकहीन हो सकती है। लेकिन हालाँकि अगर इस आशय का एक आश्वासन जम्मू के प्रतिनिधियों को दे दिया जाता है, तो मैं स्वयं उनसे कहूँगा कि वे इस बात से संतुष्ट हो जाएँ, और वर्तमान स्थिति में किसी खुली घोषणा के लिए दबाव न डालें। जब जिनेवा वार्त्ता समाप्त हो जाए, तब इसे सामान्य तरीक़े से लागू किया जा सकता है।

पाकिस्तान के क़ब्ज़े वाले क्षेत्र की मुक्ति और उस पर पुनः आधिपत्य के संदर्भ में भी कोई सार्वजनिक घोषणा किए जाने की ज़रूरत नहीं है, बल्कि संबंधित लोगों के साथ आपकी चर्चा के परिणामस्वरूप स्थिति का एक समग्र मूल्यांकन ज़रूर किया जा सकता है।

अगर जैसा कि आप कहते हैं, भारतीय झंडा सर्वोच्च है, तो इसका दैनिक सरकारी उपयोग ठीक उसी तरीक़े से करने पर सहमति हो सकती है, जिस प्रकार झंडा देश भर में प्रतिदिन प्रयोग किया जाता है। विशेष अवसरों पर राज्य का झंडा इसके अलावा इस्तेमाल किया जा सकता है।

संविधान के प्रावधानों को लागू करने के संदर्भ में, हमें सभी तकनीकी बिंदुओं को एक तरफ़ रख देना चाहिए और एक व्यावहारिक तरीक़े से आगे बढ़ने के लिए सहमत होना चाहिए। जैसा कि आप जानते हैं, शेख़ अब्दुल्ला के साथ आपके समझौते को परिवर्धित करना ही होगा, क्योंकि कई सारे बिंदु जिन पर आम सहमति हो गई है, उन्हें स्पष्ट नहीं

किया गया है, मैं नहीं समझता कि हमें उन विषयों की न्यूनतम संख्या के लिए सहमत होने में किसी भी कठिनाई का सामना करना होगा, जिन्हें जम्मू-कश्मीर में तुरंत लागू करना होगा। जहाँ तक बाक़ी विषयों का संबंध है, हम उन पर विचार तब तक के लिए स्थगित कर सकते हैं, जब तक हमें यह पता न चले कि राज्य के अधिकारी इस प्रयोजन के लिए क्या ठोस प्रस्ताव देते हैं।

जहाँ तक शिकायतों और अन्य स्थानीय विषयों का संबंध है, शेख़ अब्दुल्ला ने बार-बार घोषणा की है और मुझे लिखा भी है कि वह एक स्वतंत्र जाँच के लिए तैयार हैं। एकमात्र प्रश्न सिर्फ़ एक व्यापक दृष्टि से कार्यक्षेत्र संदर्भ तैयार करने और एक न्यायाधिकरण के गठन का है, जिसे सभी संबंधित पक्षों का विश्वास प्राप्त हो। क़ैदियों की रिहाई और प्रतिबंधों तथा दंड की समाप्ति में कोई भी कठिनाई आने का तुक नहीं है।

मैं ईमानदारी से महसूस करता हूँ कि अगर हम सभी एक नया माहौल बनाने के लिए वास्तविक इच्छा के साथ आगे बढ़ें तो स्थिति को सँभाला जा सकता है। विश्वास करें कि मैं आपके इन विचारों से सहमत हूँ कि इस आंदोलन का जारी रहना या भारत के किसी भी हिस्से में इसका विस्तार होने के गंभीर प्रभाव हो सकते हैं। मेरी वास्तविक चिंता यह पता लगाने में है कि क्या इससे किसी तरह बचा जा सकता है। आपका अंतिम पत्र मुझे आशा देता है कि यह संभावना की सीमा से परे नहीं है। आपके और शेख़ अब्दुल्ला के हाथों में सरकार की शक्ति है और स्वाभाविक रूप से आप दोनों अधिक प्रभावी पक्ष हैं। सिद्धांतों का त्याग किए बिना, आप निश्चित रूप से उदार तालमेल की भावना से आगे बढ़ सकते हैं और एक ऐसा माहौल बना सकते हैं, जिसमें अन्य मतभेदों के बावजूद हम सब कश्मीर मुद्दे पर एक संयुक्त मोर्चा प्रस्तुत करने पर सहमत हो सकते हैं।

मैं कल सुबह कलकत्ता जा रहा हूँ और सोमवार दोपहर को यहाँ वापस लौट आऊँगा। अगर आपको लगता है कि इस स्थिति में एक व्यक्तिगत चर्चा सहायक हो सकती है, तो मैं आज किसी समय आपके पास आने और आपसे मिलने के लिए तैयार हूँ। आपको शेख़ अब्दुल्ला को अपने विचार सूचित करने होंगे या आपको अपने विचारों को अंतिम रूप देने से पहले भी उनसे परामर्श करना होगा। आज आपकी सुविधा से, किसी भी समय, जो आपको उपयुक्त होता हो, उम्मीद है कि शाम के 6 से 7-30 बजे के बीच, आपके पास आने और आपसे मिलने में मुझे ख़ुशी होगी।

सादर,

(ह.)

श्यामाप्रसाद मुखर्जी

पं. जवाहरलाल नेहरू
प्रधान मंत्री

14

नई दिल्ली,
15 फरवरी, 1953

प्रिय श्यामाप्रसाद,

14 फरवरी के आपके पत्र के लिए धन्यवाद। मैं कल इतना अधिक व्यस्त था कि मैंने देर रात तक आपका पत्र नहीं पढ़ा था। अब जाकर मैंने देखा कि आपने शाम को हमारे मिलने का सुझाव दिया था, लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी और अब आप कलकत्ता चले गए हैं।

इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती कि हम जम्मू में स्थितियों को सामान्य करने के बारे में और इस निंदनीय आंदोलन और संघर्ष का अंत करने के लिए पूरी तरह उत्सुक हैं। लेकिन आपने अपने पत्र में जिन कई प्रश्नों को उठाया है, वे इतने अधिक दीर्घगामी और जटिल हैं कि इन पर लापरवाह और जल्दबाज तरीक़े से विचार नहीं किया जा सकता है। जहाँ तक उनमें से कुछ का संबंध है, हम भारत सरकार और जम्मू-कश्मीर राज्य की सरकार के बीच बहुत परिपूर्ण और लंबी बहस के बाद निर्णय पर पहुँचे हैं, और मैं यह नहीं समझ पाता हूँ कि उन पर हम कैसे चर्चा कर सकते हैं, जब तक इसका समय नहीं आता, क्योंकि यह दो सरकारों के बीच की चर्चा है।

जैसा कि मैंने आपको इंगित किया था, प्रत्येक राज्य सामान्य तौर पर इन समस्याओं से ख़ुद निपटता है और केंद्र सरकार कभी-कभार दी गई सलाह के माध्यम को छोड़कर हस्तक्षेप नहीं करती। कोई भी अन्य तरीक़ा हमारी संवैधानिक प्रक्रिया के ख़िलाफ़ ही नहीं होगा, बल्कि राज्य की ही ज़िम्मेदारी के रास्ते में बाधा बनेगा।

जम्मू-कश्मीर राज्य की संविधान सभा की निकट भविष्य में किसी समय बैठक होगी। मुमकिन है, यह उसके द्वारा नियुक्त कुछ समितियों की रिपोर्टों पर विचार करे। वे समितियाँ अभी मौजूद हैं, और मैं नहीं समझ पाता हूँ कि यहाँ तक कि कश्मीर सरकार भी इस पूरी प्रक्रिया को नज़रअंदाज़ कर सकती है। जहाँ तक संविधान सभा द्वारा परिग्रहण के समर्थन में एक प्रस्ताव पारित करने की बात है, अगर वह ऐसा करना पसंद करती है, तो वह निश्चित रूप से ऐसा कर सकती है। तथ्य यह है कि उसकी सारी कार्रवाई परिग्रहण

के आधार पर चल रही है और इसी धारणा पर आगे बढ़ रही है। इसमें एक संकल्प के द्वारा अधिक कुछ नहीं जोड़ा जा सकता है। इस तरह के किसी संकल्प के लिए मुझे कोई आपत्ति नहीं है। कठिनाई यह बिंदु पैदा नहीं करता है, बल्कि यह कहना कि इस तरह का संकल्प संयुक्त राष्ट्र को भेजे गए संदर्भ को अंतत: समाप्त कर देता है। हमने जो दृष्टिकोण अब तक अपनाया है और सार्वजनिक रूप से व्यक्त किया है, वह यह है कि जम्मू-कश्मीर संविधान सभा को इस विषय पर और साथ ही अन्य विषयों पर अपने विचार व्यक्त करने का पूरा अधिकार है, लेकिन हमने संयुक्त राष्ट्र को जो आश्वासन दिए हैं, वे हमारी ज़िम्मेदारी हैं और उन पर विचार उसी के अनुसार किया जाना होगा।

वास्तविक कठिनाई, जैसा कि मैंने आपको पहले भी बताया है, इस मामले की पूरी पृष्ठभूमि है। किसी की मंशा जो भी रही हो, यह निस्संदेह एक अत्यंत सांप्रदायिक रंग का है, जिसमें वे सारे दोष हैं, जो इस तरह के दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप होते हैं। इसलिए यह भारत की उन बुनियादी नीतियों के ख़िलाफ़ है, जिन्हें हमने थोड़ी-बहुत सफलता के साथ लागू करने का प्रयास किया है।

इस आंदोलन के साथ जुड़े अधिकतर लोगों ने अतीत में इन सरकारी नीतियों का विरोध किया है और वह दिशा अपनाई है, जिसे हम सांप्रदायिक और देश के हितों के लिए हानिकारक मानते हैं। इस आंदोलन के समर्थन में दिए गए भाषण अतिवादी और हिंसक भी रहे हैं और वे इस बुनियादी सांप्रदायिक तत्त्व को सामने लाए हैं। मैं दिल्ली में पिछले रविवार को हुई बैठक में दिए गए भाषणों के समाचारों को पढ़कर बहुत व्यथित था। भाषणों की इन पढ़ी गई रिपोर्टों में जम्मू का प्रश्न तो पृष्ठभूमि में चला गया था, और नीति के अन्य प्रमुख सवालों पर ज़ोर दिया गया था। इन दो बुनियादी दृष्टिकोणों के बीच कोई साझा रास्ता नहीं है। अपने सिद्धांतों पर दृढता से अड़े रहने की शर्त पर, जो हमें निर्देशित करते रहे हैं, और उन नीतियों पर, जिन्हें हमने आगे बढ़ाया है, सरकार जम्मू और कश्मीर राज्य में सामान्य और शांतिपूर्ण सहकार लाने के लिए ख़ुशी-ख़ुशी वह सब करेगी, जो उसके वश में होगा। मुझे विश्वास है कि शेख़ अब्दुल्ला और उनकी सरकार का भी यही विचार है। लेकिन हम यह आंदोलन नहीं चाहते और पहला क़दम आंदोलन पूरी तरह से वापस लेने का होना चाहिए।

सादर,

(ह.)

जवाहरलाल नेहरू

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी,
30, तुगलक क्रीसेंट,
नई दिल्ली

15

30, तुगलक क्रीसेंट,
नई दिल्ली
17 फरवरी, 1953

प्रिय जवाहरलालजी,

जिन बिंदुओं पर आपके द्वारा विचार करने के लिए मैं अपने पिछले पत्रों में पहले ही आग्रह कर चुका हूँ, उनको पढ़ने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि हम सभी जम्मू-कश्मीर में सामान्य और शांतिपूर्ण सहयोग लाने के प्रति उत्सुक हैं, लेकिन हम उस प्रक्रिया पर सहमत नहीं हो रहे हैं, जो वर्तमान गतिरोध समाप्त करने के लिए अपनाई जाने वाली हो।

आपने फिर से अपने राजनीतिक विरोधियों के ख़िलाफ़ सांप्रदायिकता के आरोप लगाए हैं। मैं पहले ही इसका खंडन कर चुका हूँ और कुछ बुनियादी समस्याओं के प्रति हमारे दृष्टिकोण का संकेत देने की कोशिश कर चुका हूँ, जहाँ हमारे विचार आपसे अलग हो सकते हैं। जब हम मानसिक दृष्टिकोण के बारे में बात शुरू करते हैं, जो विशिष्ट मामलों के लिए असंबंधित हो, तो चर्चा एक अमूर्त रूप अपना लेती है और काल्पनिक आरोप लगाए जाने लगते हैं। शायद किसी दिन आप और हममें से कुछेक, जिन पर आप सांप्रदायिकता का आरोप लगाते हैं, किसी शांत वातावरण में मिलें और विचारों का खुलकर आदान-प्रदान करें, ताकि एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझ सकें और यह अनुमान लगा सकें कि आपका या हमारा दृष्टिकोण देश के व्यापक हित के लिए किस सीमा तक हानिकारक है, और वास्तव में वे मुद्दे क्या हैं, जिन पर हम असहमत हैं। लेकिन इस तरह की बातें आपके तात्कालिक उद्देश्य के लिए कुछ हद तक अनादरपूर्ण हैं। एक-दूसरे की मंशा पर लगातार शक करके हम जम्मू आंदोलन को तेज़ी से समाप्त करने का मार्ग प्रशस्त नहीं कर रहे होंगे।

आपने दिल्ली में चुनावी सभा के दौरान दिए गए भाषणों की कुछ रिपोर्टों का

उल्लेख किया है। मैं केवल तीन बैठकों में स्वयं जाकर शामिल हुआ हूँ। सभी अवसरों पर दिए गए विस्तृत भाषणों के संबंध में मुझे कोई व्यक्तिगत जानकारी नहीं है। भाषणों में से कुछ निस्संदेह कड़े थे और कुछ वक्ताओं द्वारा प्रस्तुत किए गए दृष्टिकोण के संबंध में ईमानदार मतभेद हो सकते हैं। लेकिन सीआईडी की रिपोर्टों पर या कुछ निहित हित वाले लोगों के द्वारा आपको क्या अवगत कराया गया हो सकता है, उस पर विश्वास करना सुरक्षित नहीं है। संदर्भ से अलग करके भाषणों से अंश पढ़ना कई बार बहुत गुमराह करने वाला होता है। मुझे कांग्रेस के मंच से दिए गए भाषणों में से कुछ की रिपोर्ट मिली है, जिनसे न केवल बदमिज़ाजी का संकेत मिलता है बल्कि वे झूठी और विकृत भी हैं। मैंने स्वयं कांग्रेस प्रदर्शनकारियों द्वारा बोले गए कुछ नारे सुने हैं, जब मेरी कार उनके जुलूस के पीछे की तरफ़ आ गई थी। वे नारे भड़काऊ और आपत्तिजनक थे। मैंने उन पर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया, क्योंकि मैं जानता हूँ कि कभी-कभी पार्टी का उत्साह लोगों को अति उत्साह की स्थिति में ला सकता है और उन्हें बहुत गंभीरता से लिए जाने की ज़रूरत नहीं है। निस्संदेह इन सभी से विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं और कार्यकर्ताओं के सार्वजनिक व्यवहार के बारे में महत्त्वपूर्ण सवाल उठते हैं। यदि इस देश में सार्वजनिक जीवन को ठीक से विकसित करना है, तो हमें एक आम सभ्य मानक को मानने की आवश्यकता है। तथापि इस तरह की बातों से जम्मू आंदोलन को सुलझाने का हमारा तत्काल कार्य प्रभावित नहीं हुआ है, न होना चाहिए।

ऐसा लगता है, जैसे आप सोच रहे हैं कि मैंने यह सुझाव दिया था कि आप महत्त्वपूर्ण संवैधानिक मामलों पर प्रतिबद्धताएँ जताने के लिए उनमें निहित मुद्दों पर समुचित विचार के बिना, या इस तरह के विचार के लिए निर्धारित सामान्य प्रक्रिया से गुज़रे बिना तुरंत सहमत हो जाएँ। निस्संदेह इन मामलों को व्यवस्थित अंततः सरकार को ही करना होगा। यदि फिर भी उन लोगों के मन में संदेह और भय है, जो इस तरह के निर्णयों से महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित होंगे, या अगर कुछ मामलों में सरकार की नीति को इस प्रकार के निहित रुचि वाले लोग बहुत तीव्रता से नापसंद करते हैं, तो उनके प्रतिनिधियों के साथ विचार-विमर्श का कोई माध्यम होना चाहिए, ताकि एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास हो सके। सामान्य तौर पर कहा जाए, तो दोनों पक्षों के बीच खुले मन से इस तरह की वार्त्ता नहीं होनी चाहिए, ऐसा कोई कारण नहीं है, और कोई कारण नहीं कि सरकार को अपनी नीति को संशोधित करने के लिए भी क्यों सहमत नहीं होना चाहिए, अगर यह पाया जाता है कि राष्ट्रीय हित में संशोधन ज़रूरी हैं। यहाँ संवैधानिक तकनीकी बिंदुओं का कोई प्रश्न ही नहीं है। निश्चित रूप से विशेष समितियाँ हैं और संविधान सभा एवं अन्य निकाय हैं, जिन्हें इन सभी मामलों पर विचार करना होगा। भारत और जम्मू-कश्मीर,दोनों में सरकार की शक्ति सुगठित राजनीतिक

दलों द्वारा नियंत्रित है, जिनके पास भारी बहुमत है, और अगर कोई सही निर्णय नेताओं द्वारा लिया जाता है, तो यह अपेक्षा करने का कोई कारण नहीं है कि संबंधित संगठन द्वारा इसे अस्वीकार कर दिया जाएगा।

वास्तविक प्रश्न यह है कि इस आंदोलन की समाप्ति कैसे की जाए। मैंने आपको एक प्रक्रिया का सुझाव दिया था, जो ज़ाहिर तौर पर आपको स्वीकार्य नहीं है। दुर्भाग्य से, आपने यह दोहराने के अलावा कोई वैकल्पिक सुझाव नहीं दिया है कि आंदोलन पूरी तरह से वापस लिया जाना चाहिए। आपने यह भी कहा है कि जब यह हो जाएगा, तो उसके बाद, अपने उन सिद्धांतों और नीतियों पर दृढता से अड़े रहने की शर्त पर, जिनका आप अतीत में पालन करते रहे हैं, आप सामान्य और शांतिपूर्ण सहकार लाने के लिए वह सब करेंगे, जो आपके वश में होगा। आप सहमत होंगे कि इससे समझौते के लिए एक माहौल बनाने में मदद नहीं मिलेगी। जब कोई आंदोलन कई सप्ताह जारी रहता है, और जिसके परिणामस्वरूप प्राणों की हानि होती है और विभिन्न प्रकार के कथित उत्पीड़न और अत्याचार होते हैं, तो ऐसे आंदोलन को तब तक वापस नहीं लिया जा सकता जब तक यह समझाने का कोई आधार न हो कि जिन उद्देश्यों के लिए संघर्ष शुरू किया गया था, उन पर अधिकारियों द्वारा ठीक से विचार किया जाएगा। आपको यह भी अहसास होगा कि यह आंदोलन वापस लेना मेरे या भारत में किसी और के अधिकार में नहीं है। यह उन्हीं लोगों द्वारा किया जाना चाहिए, जिन्होंने इसे शुरू किया था, और उन नेताओं में से कई अब जेल की सलाखों के पीछे हैं। इस विषय पर उनसे संपर्क किया जाना होगा और उन्हें कुछ संकेत भेजे जाने होंगे कि भविष्य में क्या करने का विचार है।

इस पूरे मामले पर विचार करने के बाद और आपके इस दृढ संकल्प पर भी विचार करने के बाद कि पहले क़दम के रूप में आंदोलन को पूरी तरह वापस लिया जाना चाहिए, क्या मैं आपके विचारार्थ निम्नलिखित प्रक्रिया की सलाह दे सकता हूँ—

1. आंदोलन वापस ले लिया जाता है।
2. क़ैदियों की रिहाई का आदेश दिया जाता है और उन्हें प्रताड़ित नहीं किया जाएगा।
3. आप और शेख़ अब्दुल्ला, मान लें कि एक पखवाड़े के बाद, एक सम्मेलन आहूत करें, जिसमें सभी राजनीतिक और संवैधानिक मामलों पर खुले दिमाग़ के साथ चर्चा की जाए।
4. दोनों पक्ष दोहराएँगे कि जम्मू और कश्मीर राज्य की एकता पूरे जम्मू प्रांत के लिए भी लागू की जाएगी और निश्चित रूप से लद्दाख और कश्मीर घाटी के लिए भी।
5. नया संविधान जितनी जल्दी हो सके, लागू किया जाएगा और जल्द से जल्द,

मान लीजिए कि छह महीने के भीतर चुनाव करा लिए जाएँगे।

6. ध्वज के प्रश्न को स्पष्ट किया जाएगा और भारतीय ध्वज का प्रयोग हर दिन किया जाएगा, जैसे कि भारत के अन्य सभी भागों में किया जाता है।
7. अस्पष्ट-छोड़े जाने के विषय को ठीक से स्पष्ट किया जाने के बाद जुलाई के समझौते का क्रियान्वयन जम्मू-कश्मीर संविधान सभा के अगले सत्र में किया जाएगा। मौलिक अधिकारों, नागरिकता, सुप्रीम कोर्ट, राष्ट्रपति की शक्तियाँ, वित्तीय एकीकरण, चुनाव संचालन के संबंध में भारतीय संविधान के प्रावधानों को लागू किया जाएगा। हालाँकि भूमि अधिग्रहण के संबंध में शर्तों के मामले में इसके अपवाद हो सकते हैं।
8. जाँच आयोग के कार्यक्षेत्र को विस्तृत किया जाएगा और सभी शिकायतों की इसके द्वारा जाँच की जाएगी।
9. आयोग में इस समय चार व्यक्ति शामिल हैं—मुख्य न्यायाधीश, महालेखाकार, मुख्य वन संरक्षक और राजस्व आयुक्त। इनमें से अंतिम तीन सज्जन जम्मू-कश्मीर राज्य के अंतर्गत आने वाले प्रशासनिक अधिकारी हैं और वे शायद ही विश्वास पैदा कर सकते हों। आयोग को भारत से दो न्यायाधीशों और जम्मू-कश्मीर के मुख्य न्यायाधीश के साथ पुनर्गठित किया जाना चाहिए, ताकि इसकी निष्पक्षता और इसके प्रतिनिधि चरित्र पर प्रश्न न किया जा सके।
10. परिग्रहण की निश्चयात्मकता और अन्य राजनीतिक मामलों के बारे में सम्मेलन हर पहलू से इन बिंदुओं पर विचार करेगा और ऐसे समझौते पर पहुँचने का प्रयास किया जाएगा, जो जम्मू-कश्मीर सहित भारत के सर्वोत्तम हितों के अनुरूप हो।

अगर समस्या के प्रति कोई सामान्य दृष्टिकोण अपनाने के संबंध में कोई समझौता होता है, तो पंडित प्रेमनाथ डोगरा के साथ संपर्क किया जाना होगा। अंतिम निर्णय उन्हें ही लेना होगा। निश्चित रूप से हम उन्हें सलाह देंगे कि हमारी राय में एक शांतिपूर्ण और शीघ्र समाधान के लिए क्या किया जाना चाहिए। मुझे विश्वास है कि वह और अन्य लोग कोई प्रतिरोधी रवैया नहीं अपनाएँगे और हर संभव तरीक़े से सहयोग करने के लिए तैयार हो जाएँगे।

अभी चल रहे उत्पीड़न की प्रकृति के बारे में, महिलाओं पर अत्याचारों सहित मुझे चौंकाने वाली रिपोर्टें मिल रही हैं। आंदोलन को दबाने के लिए राष्ट्रीय मिलिशिया को भी बुला लिया गया है। जैसा कि आप बहुत अच्छी तरह से जानते हैं कि इस मिलिशिया में अधिकतर शेख़ अब्दुल्ला की पार्टी के लोग हैं, जिनमें से अधिकांश मुसलिम हैं। पहले

ही प्रभावित क्षेत्रों में उनकी गतिविधियों की रिपोर्ट हमें मिल चुकी है, जो परेशान करने वाली प्रकृति की है। अब यदि आधिकारिक तौर पर उनका प्रयोग करने का प्रस्ताव है, तो यह एक बहुत ही गंभीर मोड़ ले सकता है, अभी तक एक भी सांप्रदायिक घटना घटित नहीं हुई है और सरकारी पक्ष के एक भी व्यक्ति की मौत नहीं हुई है। अगर आज सरकार आंदोलन को दबाने के लिए सेना, पुलिस और अर्ध-सैनिक बलों पर निर्भर होने का फ़ैसला करती है, तो इसके विनाशकारी परिणाम हो सकते हैं।

किसी समझौते तक पहुँचने के लिए मैं जो कुछ कर सकता हूँ, उसकी हद तक जा चुका हूँ। मैं प्रजा परिषद् की ओर से किसी को भी कोई वादा नहीं कर सकता। मैंने जो कुछ भी कहा है, वह मेरी स्वयं की ज़िम्मेदारी पर है, लेकिन मैंने दृष्टिकोण की एक सामान्य दिशा का संकेत दिया है, जो मुझे लगता है कि एक दुर्भाग्यपूर्ण अध्याय को समाप्त करा सकती है।

यदि आपको लगता है कि उपरोक्त सुझाव आपके द्वारा गंभीर विचार किए जाने के योग्य हैं और यह कि उन पर व्यक्तिगत रूप से चर्चा की जानी चाहिए, तो मुझे आपके लिए सुविधाजनक किसी भी समय आने में ख़ुशी होगी। लेकिन अगर आप अंतिम तौर पर निर्णय कर चुके हैं कि आंदोलन को बिना शर्त समाप्त किया जाना है, और किसी भी अन्य बिंदु के बारे में कोई सहमति नहीं हो सकती है, तो मुझे अपनी बात को इस गहरे अफ़सोस के साथ समाप्त करना होगा कि मैं अपने प्रयासों में विफल रहा हूँ।

सादर,

(ह.)

श्यामाप्रसाद मुखर्जी

पं. जवाहरलाल नेहरू,
प्रधान मंत्री
नई दिल्ली

16

प्रधान मंत्री
जम्मू और कश्मीर
जम्मू तवी,
18 फरवरी, 1953

प्रिय डॉ. मुखर्जी,

13 फरवरी के आपके पत्र के लिए धन्यवाद, जो मुझ तक पिछले शनिवार को पहुँचा। मैंने इसे ध्यान से पढ़ा है और मेरा यह कहना है कि आपने हमारी स्थिति को आवश्यक समझ के साथ नहीं समझा है और इसके परिणामस्वरूप जम्मू-कश्मीर राज्य की पूरी समस्या के प्रति हमारे अपने-अपने दृष्टिकोण में एक बुनियादी फ़र्क़ नज़र आता है, मेरा मानना है कि इस समस्या में कुछ बुनियादी सिद्धांत शामिल हैं, जिनको मान्यता देना और स्वीकार करना राज्य की स्थिति के संयमित और निष्पक्ष मूल्यांकन के लिए ज़रूरी है। लेकिन दुर्भाग्य से कुछ अलग-थलग पड़े कारण आपको एक ऐसे निर्णय की ओर ले गए प्रतीत होते हैं, जो हमारी समस्याओं के रचनात्मक समाधान के लिए न्यायपूर्ण या सहयोगकारी समाधान से कोसों दूर है।

अपने पत्र में मैंने आपको अपना दृष्टिकोण समझाने का प्रयास किया था, जिसके बारे में हम आश्वस्त हैं कि वह भारत के साथ इस राज्य के संबंधों के अंतर्निहित बुनियादी सिद्धांतों के अनुरूप है। लेकिन यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आप हमारे दृष्टिकोण के अपने मूल्यांकन में निष्पक्ष नहीं रहे हैं। भारतीय संविधान को पूरी तरह लागू करने का उल्लेख करते हुए आप यह मानकर चलते हैं कि हम इसका इस आधार पर विरोध करते हैं कि 'कश्मीर के मुसलमान पाकिस्तान की ओर झुक सकते हैं।' यह कश्मीर के लोगों की राजनीतिक परिपक्वता के प्रति पूरी तरह ग़लत धारणा है।

आप मुसलिम सांप्रदायिकता के ख़िलाफ़ हमारे संघर्ष की ख़ूबियों को स्वीकार कर चुके हैं और मैं इस संबंध में मेरे बारे में आपकी प्रशंसात्मक टिप्पणी के लिए आपका आभारी हूँ। उस संघर्ष की ख़ूबियों को स्वीकार करते हुए आप शायद सांप्रदायिकता के

ख़िलाफ़ कश्मीरियों की गहरी आस्था की अनदेखी कर गए हैं। यह ऊँचे सिद्धांतों की लड़ाई थी और हमारे मन में पूरे पाकिस्तान के लोगों के ख़िलाफ़ कोई द्वेष नहीं था, बल्कि हम उस देश के सांप्रदायिक और प्रतिक्रियावादी नेतृत्व के ख़िलाफ़ लड़े थे, जो हमारे लोगों पर बलपूर्वक अपनी इच्छा थोपना चाहता था। अब जब मैंने हिंदुओं के एक वर्ग की सांप्रदायिकता की निंदा की है, तो मैं नहीं जानता कि मुझे एक अलग नज़रिए से क्यों देखा जाना चाहिए और मेरे इरादों पर शक़ क्यों किया जाना चाहिए? सांप्रदायिकता एक समुदाय के लिए बुरी और किसी अन्य के लिए अच्छी नहीं हो सकती, जैसा कि आप स्वयं स्वीकार करते हैं कि यह एक दुष्चक्र है और जब यह एक छोर में शुरू होती है, तो दूसरे छोर में एक समान और विपरीत प्रतिक्रिया पैदा करती है। स्वाभाविक रूप से, इसके एक प्रकार की निंदा और दूसरे प्रकार के साथ मिलीभगत नहीं की जा सकती है।

लंबे समय से कश्मीर के लोगों का यह विश्वास रहा है। विश्वास की यही भावना थी, जिसने कश्मीर के लोगों को भारत के लिए एक निर्णायक चुनाव करने के लिए निर्देशित किया था, जिस समय परिस्थितियाँ इस तरह के विकल्प के लिए अत्यंत प्रतिकूल लग रही थीं। मुसलिम सांप्रदायिकता के ख़िलाफ़ लड़ते हुए, उन्हें भारत में इस प्रकार के ख़तरे की जानकारी थी। लेकिन वे आश्वस्त थे कि गांधीजी के नेतृत्व में भारत में लोगों का विशाल बहुमत स्वयं इस बुराई से लड़ रहा था। आदर्शों के इस समूह ने हमें लोकतांत्रिक और प्रगतिशील भारत के साथ अपने भाग्य से जोड़ने के लिए हमारा नेतृत्व किया था।

अब जब हमारे बीच बंधन और मज़बूत कर दिए गए हैं, इन आदर्शों और सिद्धांतों में हमारा विश्वास और गहरा हो चुका है। यह ज़्यादा-से-ज़्यादा स्पष्ट हो चुका है कि भारत के लोगों ने कुल मिलाकर सांप्रदायिक तरीक़े को ख़ारिज कर दिया है। लेकिन अगर भारत कभी लड़खड़ाता है और किसी भी समय इन आदर्शों को छोड़ देता है, तो मुझे कोई संदेह नहीं है कि फिर भी कश्मीर के लोग सांप्रदायिकता की ओर नहीं झुकेंगे। इसके लिए किसी सबूत की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि 1947 में उनका आचरण उनके विश्वास, उनके दृढ संकल्प और जो सही है, उस पर डटे रहने और जो ग़लत है, उससे घृणा करने के उनके साहस के एक पर्याप्त साक्ष्य के रूप में खड़ा है।

आपने बार-बार भारत की एकता और एकजुटता का उल्लेख किया है। इस तरह की भावनाएँ हमारे लिए कम प्रिय नहीं हैं। लेकिन इस एकता को प्राप्त करने के लिए जो तरीक़ा आपने सुझाया है, क्या उसका परिणाम इस उद्देश्य में निकलेगा? कश्मीर के लोगों ने स्वेच्छा से ख़ुद को भारत के प्रगतिशील लोगों के साथ जोड़ने की पेशकश की है, क्योंकि वे महसूस करते हैं कि स्वतंत्रता-प्रेमी भारतीयों द्वारा उनके अधिकारों और स्वतंत्रताओं का सम्मान किया जाएगा, जिनके साथ उन्होंने साम्राज्यवाद और सामंतवाद से मुक्ति के लिए लड़ाई लड़ी थी। भारत में प्रबुद्ध मत उनके महत्त्वपूर्ण मानवीय आग्रहों

को मान्यता देता है और भारत की संविधान सभा ने उन्हें इन राजनीतिक और सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के अवसर उपलब्ध कराए हैं। एक-दूसरे के दृष्टिकोणों का इस परस्पर समायोजन की, जिसे संवैधानिक मंजूरी दी गई है, व्याख्या अलगाववाद की इच्छा के रूप में नहीं की जानी चाहिए। आख़िरकार, एक लोकतांत्रिक देश में, वह परम कारक, जो विभिन्न इकाइयों के बीच संबंध का निर्धारण करता है, सभी के हित के लिए इन इकाइयों में से प्रत्येक की एक-दूसरे के क़रीब आने की इच्छा का मानदंड ही है। उनके बीच एकता नीचे से आती है और अगर इसे (ऊपर से) थोपने की कोशिश की जाएगी, तो यह उस सद्भावना और समझ को नुक़सान पहुँचाएगी, जो एक स्वैच्छिक भागीदारी और सहयोग के लिए ज़रूरी है। यह समस्या के प्रति मानवीय दृष्टिकोण है और हमारी राय में सही दृष्टिकोण है जो हमारे देश में उद्देश्यों और कार्य की एकता ला सकता है। इतिहास ने हमें सिखाया है कि एकरूपता और अनुरूपता की झूठी धारणाएँ अकसर कई राष्ट्रों के जीवन में विनाशकारी परिणाम का कारण रही हैं।

मैं चाहता हूँ कि आप मानवीय संबंधों के इन बुनियादी सिद्धांतों को समझें। आख़िरकार आपने दो-राष्ट्र सिद्धांत को अस्वीकार क्यों किया था? ऐसा ठीक इस कारण था कि हम महसूस करते थे कि यह सिद्धांत लोगों के बीच एक कृत्रिम विभाजन पैदा करता है और उन पर विचारों का एक समान ढर्रा लागू करने की कोशिश करता है। हम पाकिस्तान में शामिल होने के इच्छुक नहीं थे, क्योंकि हम महसूस करते थे कि वहाँ एक सांप्रदायिक राज्य के संकुचित ढाँचे में हमारे लोगों के लिए विकसित होने की कोई गुंजाइश नहीं होगी, हमारी पसंद भारत होना जायज था, हमें लोकतांत्रिक और प्रगतिशील उद्देश्यों को प्राप्त करने के प्रयासों के अवसर मिले थे। हमारी आंतरिक स्वतंत्रता के दायरे को संकुचित करने के संबंध में आपके सुझाव का अर्थ होगा—राज्य को इस तरह के अवसर देने से इनकार करना।

जब अनुच्छेद 370 तैयार किया गया था, तब इस तरह की सभी बातों पर पूरी तरह से विचार किया गया था। आपने रियासतों के एकीकरण के स्व. सरदार पटेल के सफल प्रयासों का उल्लेख किया है। मैं इस बात को रेखांकित करना चाहता हूँ कि हमारे राज्य को वर्तमान में जिस विशेष स्थिति का लाभ प्राप्त है, वह स्व. सरदार की दूरदर्शिता और राजनीति का परिणाम है। वास्तव में संघ के साथ राज्य के संबंधों का वर्तमान आधार तैयार करने में उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। अनुच्छेद 370 उनके मार्गदर्शन में संविधान में शामिल किया गया था और उस समय श्री नेहरू भारत से बाहर थे। मैं इस संबंध में सरदार पटेल के ठीक उन शब्दों को उद्धृत करना चाहता हूँ, जो उन्होंने भारत के साथ कश्मीर के संवैधानिक संबंधों को स्पष्ट करते हुए प्रयोग किए थे—

'जम्मू एवं कश्मीर सरकार को जिस विशेष समस्या का सामना करना पड़ रहा है,

उसे देखते हुए हमने वर्तमान आधार पर संघ के साथ राज्य के संबंधों को जारी रखने के लिए विशेष प्रावधान किया है।'

आम तौर पर दो सरकारों के बीच निर्णय उनके प्रतिनिधियों के माध्यम से लिए जाते हैं, और हमारे मामले में भी सभी फ़ैसले परस्पर संवैधानिक अनुमोदन के बाद लिए गए हैं। यह लोकतांत्रिक तरीक़ा है; और इस संबंध में हमारी स्थिति पूरी तरह न्यायोचित है। लेकिन ऐसा लगता है कि आप इस तरह के सभी निर्णयों की वैधता को चुनौती दे रहे हैं। आप हमसे उन्हें रद्द करने की उम्मीद नहीं कर सकते। ऐसे नाज़ुक मुद्दों को दबाव से या इस तरह की धमकियों से नहीं सुलझाया जा सकता, जिसका सहारा बाहरी प्रेरणा, समर्थन और मार्गदर्शन के बूते जम्मू के लोगों के एक समूह ने लिया है।

आपको भय है कि राज्य के संबंधों का वर्तमान स्वरूप अलगाववाद की ओर जाता है और इस संबंध में आपने 'तीन-राष्ट्र सिद्धांत' की उक्ति का प्रयोग किया है। मैंने अपने किसी भी पिछले पत्र में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि हमारे सभी निर्णय किसी भी रूप में भारत की एकता के लिए हानिकारक नहीं हैं, क्योंकि हमारे सभी निर्णय भारतीय संविधान से उत्पन्न होते हैं। कुछ दिशाओं में हमारी नीतियों में परिवर्तन, जिनका आपने फिर से उल्लेख किया है, अन्य राज्यों में अपनाई गई व्यापक नीतियों के साथ किसी भी तरह असंगत नहीं हैं और हमारे राज्य के अनूठे, विशेष और राजनीतिक चरित्र द्वारा विवश किए गए हैं। आप संभवत: स्वीकार करेंगे कि इस संबंध में हमारे निर्णय 'लोकतांत्रिक और प्रगतिशील' रहे हैं। उदाहरण के लिए जब आप सदर-ए-रियासत का चुनाव करने का उल्लेख करते हैं, तब आप संभवत: भूल जाते हैं कि अन्य राज्यों के राज्यपाल भी राज्य सरकारों के परामर्श से नियुक्त किए जा रहे हैं। हमने इस अधिकार को सरकार तक ही सीमित नहीं किया है; बल्कि विधायिका तक इसका विस्तार किया है। यह वह सिद्धांत है, जिसका सभी लोकतंत्रवादियों को स्वागत करना चाहिए। फिर आप हमारे राज्य के प्रमुख के नाम पर आपत्ति करते हैं। संभवत: आपको जानकारी नहीं है कि सदर-ए-रियासत स्थानीय भाषा में एक नाम है, जिसे उत्तरी भारत में लोगों द्वारा समझा जाता है। जब आप 'गवर्नर' का अंग्रेज़ी पदनाम पसंद करते हैं, तो मैं समझने में विफल हूँ कि सदर-ए-रियासत के हिंदुस्तानी नामकरण पर आपत्ति क्यों की जानी चाहिए।

इस संबंध में आपने 'गणराज्य के भीतर एक गणराज्य' का निर्माण होने का उल्लेख किया है। आप शायद 'गणराज्य के भीतर एक राजशाही' को स्वीकार कर लेंगे। लेकिन क्या मैं यह इंगित कर सकता हूँ कि हमारे संप्रभु अधिकारों को उसी संप्रभु संसद् द्वारा गारंटी दी गई है और संरक्षित किया गया है, जो देश के भाग्य का मार्गदर्शन कर रही है? मैं नहीं समझ पाता हूँ कि इस तरह की गारंटियाँ भारत की एकता का ध्वंस कैसे कर सकती हैं और अलग राष्ट्रीयताओं का निर्माण कैसे कर सकती हैं। संसद् के अधिनियम

द्वारा आंध्र राज्य का गठन करने का परिणाम एक और राष्ट्र के निर्माण में नहीं निकलेगा।

मैं आपसे मात्र यह अनुरोध करूँगा कि विषय को सांप्रदायिक इरादों से ऊपर उठाएँ। यहाँ हिंदुओं और मुसलमानों का कोई सवाल नहीं है। इस स्तर पर आकर विवाद अवास्तविक और अप्राकृतिक जटिलताओं में शामिल हो जाता है। आपने ऐसा आभास दिया है, जैसे हिंदू और मुसलमान विपरीत दिशाओं में जा रहे हों। लेकिन समस्या साधारण सी है। जम्मू-कश्मीर राज्य प्रगति और लोकतंत्र की दिशा में आगे जाना चाहता है, और हम मानते हैं कि इस कार्य में किसी भी प्रकार की सांप्रदायिकता एक बड़ा ख़तरा है। मुझे खेद है कि आप इन सिद्धांतों को समझ नहीं सके हैं, जो हमारे निर्णयों का मार्गदर्शन कर रहे हैं। भगवा ध्वज का उल्लेख करते हुए आपने सुझाव दिया है कि अगर देश इसका चुनाव करता है, तो इसे अपनाने में कुछ भी ग़लत नहीं होगा। मुझे नहीं पता है कि आपने यह विचार किया है या नहीं कि ऐसा तभी हो सकता है, जब भारत में उग्रवादी हिंदू सांप्रदायिकता की जीत हो जाए। ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में कश्मीर कहाँ खड़ा हो सकता है? मैं यह दोहराना चाहता हूँ कि ऐसी स्थिति में भी कश्मीर के लोग अंत तक गांधीजी की विचारधारा के लिए लड़ाई जारी रखेंगे। राष्ट्रपिता ने अपना जीवन व्यर्थ में नहीं गँवाया था। यह महान् बलिदान हमें हमेशा प्रेरणा देगा और प्रमाणित करता रहेगा, जैसा उसने 1947 के महत्त्वपूर्ण दिनों में किया था।

प्रजा परिषद् का उल्लेख करते हुए आपने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के साथ उसके संबंध का उल्लेख नहीं किया है। 1947 में जम्मू में आर.एस.एस. के नेताओं द्वारा निभाई गई भूमिका से हर व्यक्ति परिचित है, ठीक उस समय, जब हम कश्मीर में मुसलिम सांप्रदायिकता का विरोध कर रहे थे। मैं इस बात से सहमत हूँ कि इस दर्दनाक अध्याय को भूलना होगा। लेकिन आपने स्वयं कहा है कि 'हमें इस बड़ी त्रासदी के सबक को मस्तिष्क में रखना होगा, ताकि भविष्य में ग़लतियाँ न हों।' मैं ईमानदारी से चाहता हूँ कि आप यह सलाह प्रजा परिषद् के नेताओं को भी देंगे, जो जम्मू में 1947 की दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के साथ गहराई से जुड़े हुए थे। हमारी ओर से, हम उनके प्रति प्रतिशोधात्मक कभी भी नहीं रहे हैं। इसके विपरीत, हम चाहते थे कि अपनी पुरानी ग़लती का परिमार्जन करें। लेकिन आर.एस.एस. के नेता इस भावना को समझने में पूरी तरह विफल रहे हैं। जब गांधीजी की हत्या के बाद, इस संगठन पर प्रतिबंध लगा दिया गया था, तो यह उसी कार्यक्रम और उसी नेतृत्व के साथ प्रजा परिषद् के वेश में उभर आया। प्रजा परिषद् के प्रति मेरी धारणा किसी पूर्वग्रह पर नहीं, बल्कि इसकी वर्तमान गतिविधियों पर आधारित है। मुझे कोई संदेह नहीं है कि इसका नेतृत्व राज्य को विघटनकारी दिशा में ले जा रहा है, और इस प्रकार इसकी नींव के लिए और साथ ही भारत की नींव के लिए ख़तरा पैदा कर रहा है। कुछ भ्रामक नारों को अपनाकर, जो आम लोगों की भावनाओं को भड़काने के

लिए गढ़े गए हैं, इस नेतृत्व को एक लोकतांत्रिक या पंथनिरपेक्ष चरित्र उधार नहीं दे सकते हैं।

आपने उल्लेख किया है कि वर्तमान आंदोलन प्रजा परिषद् द्वारा इस कारण शुरू किया गया है, क्योंकि उसके नेताओं को अपनी शिकायतों का समाधान किसी भी संवैधानिक साधन के माध्यम से नहीं मिल रहा था। इन नेताओं ने जो संवैधानिक साधन अपनाए थे, वे कौन से थे? आमतौर पर हिंसा, धमकी, नागरिक अधिकारों के भारी-भरकम दुरुपयोग वे हथियार रहे हैं, जिनसे उन्होंने सरकार को धमकी दी है। हर वर्ष किसी-न-किसी बहाने से आंदोलन शुरू किए गए। इस तरह के तरीक़े संवैधानिक होने से बहुत परे हैं।

अतीत के और वर्तमान के इस आचरण को देखते हुए, सरकार और प्रजा परिषद् के नेतृत्व के बीच कोई साझा आधार कैसे हो सकता है? आप हमसे प्रजा परिषद् के दृष्टिकोण को समायोजित करने के लिए हमारे बुनियादी सिद्धांतों से समझौता करने की उम्मीद नहीं कर सकते हैं, जिसके लिए हम इतने वर्षों से लड़ते आ रहे हैं। जब तक यह संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नेताओं के हाथ में एक औजार बना रहेगा, मुझे खेद है कि हमारे लिए इस संगठन को मान्यता देना संभव नहीं होगा। निश्चित रूप से, हम उन सभी व्यक्तियों से मिलने के लिए तैयार हैं, जिनके हमारे साथ उचित मतभेद हों, लेकिन उनके लिए नहीं, जिनकी राज्य की संरचना के बारे में बुनियादी अवधारणा ही हमारे साथ मेल नहीं खाती। मैं उन्हें अपना दृष्टिकोण समझाने के लिए तैयार हूँ। लेकिन धमकी,ज़बर्दस्ती और हिंसा से भरे माहौल में यह संभव नहीं है। मैं स्पष्ट रूप से कहूँगा कि प्रजा परिषद् का वर्तमान नेतृत्व अपने लक्ष्य और उद्देश्यों में खुलकर विघटनकारी और सांप्रदायिक है। इसके परिणामस्वरूप हमारे लिए उन लोगों के साथ कोई भी साझा आधार होना संभव नहीं होगा।

डोगराओं पर हमले करने का आरोप हम पर लगाना बहुत ही अन्यायपूर्ण है। मैं पूरी विनम्रता से कहना चाहूँगा कि हम कभी भी नस्ली पूर्वग्रहों में नहीं बहे और न ही हम लोगों के किसी भी वर्ग पर हावी रहने की इच्छा से प्रेरित हुए हैं। मुझे यह बताने की ज़रूरत नहीं है कि शक्ति के बूते शासन स्थायी नहीं हो सकता। मैंने हमेशा समाज के सभी वर्गों की एकता पर आपसी सम्मान और उन समस्याओं के समाधान में बराबरी की भागीदारी के आधार पर, जो हर जगह के लोगों के लिए आम होती है, बल दिया है, चाहे वे लद्दाख में हों, अथवा जम्मू या कश्मीर में हों। हमें इस बात का अहसास हुए काफ़ी समय हो गया है कि आम लोग, भले ही उनका धर्म या जाति कुछ भी हो, स्वयं के लिए सम्मान का स्थान तभी प्राप्त कर सकते हैं, जब वे अन्याय और सामाजिक उत्पीड़न के ख़िलाफ़ एकजुट हों। इसमें कोई संदेह नहीं है कि शोषित डोगरा जनता से बात करते हुए,

जो डोगरा शासन की तमाम कृपाओं के बावजूद, अभी भी कठिन परिश्रम और दुर्दशा का जीवन जी रहे हैं, हो सकता है कि हमने उन अमानवीय परिस्थितियों का उल्लेख किया हो, जो ज़मींदारों के एक छोटे से वर्ग ने उन पर थोपी थीं, लेकिन किसी भी स्थिति में आप हमसे सभी डोगरा लोगों की निंदा करने की अपेक्षा नहीं कर सकते हैं। हम उन्हें सरल मन वाले, ईमानदार, वफ़ादार और बहादुर लोगों के रूप में जानते हैं। अगर कुछ लोग उनकी सादगी का लाभ उठाते हैं और उन्हें ग़लत दिशा में गुमराह करने का प्रयास करते हैं, तो यह दुःख की बात है।

आपने महाराजा के प्रति मेरे विरोध का उल्लेख किया है। सांप्रदायिक धारणाओं के कारण भारत में कुछ लोगों द्वारा उनके प्रति बहुत अधिक चिंता दरशाई गई है। निरंकुशता के ख़िलाफ़ हमारे संघर्ष में कुछ गरिमा को हमने बनाए रखा है, क्योंकि हम हमेशा सचेत थे कि लड़ाई व्यवस्था के ख़िलाफ़ है, न कि एक व्यक्ति के ख़िलाफ़। यह बात बहुत सुविधाजनक ढंग से नज़रअंदाज़ कर दी गई है कि भारत और राज्य वर्तमान में जिन जटिलताओं में उलझे हुए हैं, उनकी ज़िम्मेदारी महाराजा पर है। राज्य के भविष्य के बारे में समय रहते लोगों से परामर्श करने का विकल्प उनके लिए खुला था। लेकिन अपनी 'चिरकालिक अनिश्चितता' के कारण वह ऐसा करने में विफल रहे, जिसका परिणाम वर्तमान जटिलताओं में निकला। उन अभागे दिनों में जब समूचे देश के भविष्य को एक अंतिम रूप दिया जा रहा था, महाराजा ने राज्य के भीतर की सभी देशभक्त और राष्ट्रवादी ताक़तों को जेल में बंद कर दिया था, जिन्होंने भारत में राष्ट्रवादी ताक़तों के साथ एक साझा गठजोड़ कर लिया था। इस प्रकार कश्मीर पर आक्रमण की पूर्व संध्या तक, राज्य के भीतर सभी सांप्रदायिक और विघटनकारी तत्त्वों के लिए मैदान खुला छोड़ दिया गया था। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में—जो राज्य के लिए दुर्भाग्यपूर्ण थी और साथ ही भारत के लिए भी—हस्तक्षेप करने के लिए गांधीजी, सरदार पटेल, जवाहर लाल नेहरू और तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष श्री कृपलानी सहित भारत के शीर्ष नेताओं द्वारा किए गए सभी प्रयासों को राज्य के भीतर देशभक्त और राष्ट्रवादी ताक़तों के साथ किसी भी तरह का संबंध रखने से उनके लगातार इनकार ने नाकाम कर दिया था। जैसा कि आपको पता होगा, महाराजा ने चारों ओर खाई खोदकर सुरक्षित की गई शक्ति और हैसियत के कई हवाई महल बना रखे थे और यहाँ तक कि राज्य को गंभीर संकट में डालने का जोखिम होने पर भी वह भारतीय नेताओं की सलाह को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे।

उन अभागे दिनों के दौरान उन्होंने स्वयं को विदेशियों की एक मंडली द्वारा निर्देशित किए जाने की अनुमति दी थी, जिनकी राज्य के बारे में अपनी स्वयं की योजना थी और जो उस समय शक्तिशाली पदों पर क़ाबिज थे। इस मंडली ने उन्हें श्री नेहरू को भी कोहाला में गिरफ़्तार कर लेने की हिम्मत दे दी थी, जब वह उस निर्णायक मोड़ पर राज्य को सहायता

प्रदान करने के लिए कश्मीर के लिए रास्ते में थे। पूरे भारत के लोगों ने इस अशिष्टता को भारतीय राष्ट्र के विरुद्ध एक उपद्रव के रूप में देखा था, और इसके परिणामस्वरूप दूर दक्षिण में भी प्रतिक्रिया हुई, जहाँ महाराजा की कार्रवाई के ख़िलाफ़ विरोध प्रदर्शनों का परिणाम फायरिंग में निकला, जिसमें कई लोगों के जीवन की हानि हुई।

विभाजन के परिणामस्वरूप राज्य की सीमाएँ दहल उठीं, जिससे राज्य की ही स्थिति बेहद कठिन हो गई। लेकिन इस महत्त्वपूर्ण चरण में भी महाराजा ने राज्य की भावी संबद्धता पर निर्णय करने से मना कर दिया। इस बीच पाकिस्तान से कश्मीर पर आक्रमण किया गया था। महाराजा ने लोगों के साथ बहादुरी से आक्रमणकारियों के हमले का सामना करने के बजाय, उन्हें छोड़ दिया और जम्मू में एक सुरक्षित स्थान पर चले गए, जहाँ उन्होंने ख़ुद को उग्रवादी हिंदू सांप्रदायिकता के साथ जोड़ लिया, जिससे पहले से ही गंभीर स्थिति और गंभीर हो गई। आप जिन महाराजा के लिए इतनी चिंता दिखा रहे हैं, यह उनका देशद्रोही और राष्ट्र विरोधी रिकार्ड है।

अपने पिछले पत्र में मैंने जम्मू के संबंध में उठाए गए विभिन्न मुद्दों के संबंध में अपने दृष्टिकोण की व्याख्या करने की कोशिश की थी। सरकार ने पूरे तथ्य प्रस्तुत किए हैं, जो बताते हैं कि जम्मू के लोगों के साथ किसी तरह का भेदभाव नहीं किया गया है और न ही सरकार अपने प्रशासनिक कार्यों में किसी भी तरह के सांप्रदायिक या प्रांतीय विचार से प्रेरित रही है। दुर्भाग्य से इस सबके बावजूद आप इन स्पष्टीकरणों से आश्वस्त होते प्रतीत नहीं होते हैं, और अब आपने सामान्य शब्दों में आरोपों को दोहराया है। मैं नहीं जानता कि ऐसी प्रवृत्ति के लिए क्या कहा जाए, जिसमें हमारा दृष्टिकोण समझने की कोई गंभीर इच्छा प्रतीत नहीं होती है। अपने सर्वश्रेष्ठ प्रयासों के बावजूद, हमारे इरादों पर अभी भी संदेह किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में हमें फ़ैसला करने के लिए मामला लोगों पर छोड़ देना चाहिए।

आपने भारत-कश्मीर समझौतों के क्रियान्वयन में देरी करने का फिर से उल्लेख किया है। इन समझौतों को भारत सरकार द्वारा और संसद् द्वारा और साथ ही राज्य सरकार द्वारा और राज्य की संविधान सभा द्वारा स्वीकार किया गया है। स्वाभाविक रूप से इन समझौतों पर वापस जाने का कोई सवाल ही नहीं हो सकता है। उन्हें उचित समय पर लागू किया जाएगा। लेकिन दिनांक 12 फरवरी 1953 को श्री नेहरू को लिखे अपने पत्र में आपने जो बिंदु उठाए हैं, उनमें आप इन समझौतों को पूरी तरह से ख़ारिज करने का प्रस्ताव करते हैं। मैं नहीं जानता कि इन विरोधाभासों का क्या अर्थ निकाला जाए। समझौते आपको स्वीकार्य नहीं हैं और फिर भी आप उन्हें तेज़ी से लागू किया जाना चाहते हैं।

चूँकि आपने फिर इस सरकार के उपायों को 'दमनकारी' कहा है, इसलिए मैं

दोहराना चाहूँगा कि इसे किसी भी अवसर पर बलप्रयोग करने से हमें कोई ख़ुशी नहीं मिलती है। लेकिन ऐसा नहीं लगता है कि आपको जम्मू में ढहाई गई हिंसा की तीव्रता का अहसास है। स्वाभाविक रूप से आप हमसे अपेक्षा रखेंगे कि प्रशासन की ज़िम्मेदारियों का ठीक से निर्वहन किया जाए, ताकि क़ानून और व्यवस्था की संरक्षा हो और सामान्य गतिविधियाँ न रुकें।

हमने कुछ धैर्य दिखाया है, लेकिन यह दर्दनाक है कि आप हमारी स्थिति को नहीं समझ रहे हैं। आप यहाँ तक कि एक 'निष्पक्ष जाँच' की माँग का समर्थन करते हैं। यह कहना किसी भी राज्य के आत्मसम्मान के लिए असम्मानजनक है कि यहाँ तक कि उसका मुख्य न्यायाधीश भी निष्पक्ष नहीं हो सकता है।

मैं सहायता के आपके प्रस्ताव के लिए आपका सचमुच आभारी हूँ। मैं समझता हूँ कि आप राज्य को जो सर्वश्रेष्ठ सहायता दे सकते हैं, वह हमारा दृष्टिकोण समझना और शांति से हमारी स्थिति को समझने की है। इस समझ के अभाव में राज्य की समस्या के लिए एक रचनात्मक और शांतिपूर्ण दृष्टिकोण की दिशा में आगे बढ़ना मुश्किल है।

सादर,

(ह.)

एस.एम. अब्दुल्ला

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, संसद् सदस्य
30 तुगलक क्रीसेंट,
नई दिल्ली

17

30, तुगलक क्रीसेंट,
नई दिल्ली
23 फरवरी, 53

प्रिय शेख़ साहब,

18 फरवरी के आपके पत्र के लिए आपको धन्यवाद, जिसे मैंने बहुत ध्यानपूर्वक पढ़ा। स्वाभाविक रूप से मैं केवल पत्र-व्यवहार के लिए आपके साथ यह लंबा पत्राचार खींचने को उत्सुक नहीं हूँ। लेकिन आपके पत्र में कई महत्त्वपूर्ण बिंदु हैं, जिन पर मुझे उत्तर देने की आवश्यकता है। मेरा आपसे और श्री नेहरू से संपर्क करने का मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना था कि क्या हम सब वर्तमान गतिरोध को शांतिपूर्ण ढंग से समाप्त कर सकते हैं, एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझ सकते हैं, और क्या एक ऐसा माहौल बनाने का प्रयास कर सकते हैं, जिसमें हम सभी हमारे अन्य मतभेदों के बावजूद, जम्मू-कश्मीर राज्य का भारतीय संघ के एक अभिन्न अंग के रूप में निर्माण के लिए एक साथ काम कर सकते हैं।

आपने भारत के साथ अपने राज्य के संबंधों में अंतर्निहित बुनियादी सिद्धांतों को मेरे द्वारा सही ढंग से समझने की ज़रूरत का उल्लेख किया है। दुर्भाग्य से आपका पूरा सिद्धांत 1947 में ब्रिटिश सरकार द्वारा बनाई गई एक क़ानूनी कल्पना को बहुत कड़ाई से स्वीकार करने के आधार पर टिका है, जब उन्होंने न केवल भारत को दो अलग-अलग देशों में विभाजित करने का, बल्कि 500 से ज़्यादा बड़ी और छोटी इकाइयों को भी तथाकथित संप्रभु क्षेत्रों के रूप में अस्तित्व में लाने का फ़ैसला किया। जब अंग्रेज़ों ने 1947 में भारत से वापस जाने का फ़ैसला किया था तो सामान्य तौर पर, ब्रिटिश ताज और ब्रिटिश संसद् के पूरे अधिकार उत्तराधिकारी सरकार को अपने आप हस्तांतरित हो जाने चाहिए थे। अविभाजित भारत को दो भागों में विभाजित किया गया था, तो स्पष्ट तरीक़ा यही होना चाहिए था कि विभाजित भारत की सरकार, पाकिस्तान के नवगठित

राज्य को छोड़कर, पूरे अविभाजित क्षेत्र के संबंध में उत्तराधिकारी सरकार होती। अविभाजित भारत का एक राजनीतिक इकाई होना पहले से ही एक स्थापित तथ्य था और वास्तव में यह ब्रिटिश शासन के दौरान किया गया सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान था। किसी भी परिस्थिति में भारत के भीतर की इकाइयों में से किसी के अलग होने का अधिकार होने का दावा करने का कोई सवाल ही नहीं था। इस प्रकार के प्रयास को अंग्रेज़ों द्वारा राजद्रोह माना गया होता। अंग्रेज़ों ने जिस समय सत्ता हस्तांतरण का फ़ैसला किया, उस समय उन्होंने इस एकीकृत राजनीतिक संरचना को कई टुकड़ों में तोड़ने की कोशिश की थी। ऐसा उन्होंने न तो किसी प्रेमवश किया था, और न ही भारत के लोगों या अतीत में भारतीय राज्यों के कहे गए लोगों के प्रति सहानुभूतिवश। उनका मुख्य उद्देश्य था अब भारत को एक वास्तविक संकट का सामना कराना, न सिर्फ़ पाकिस्तान का एक अत्यधिक सांप्रदायिक राज्य गठित करके, बल्कि बड़ी संख्या में तथाकथित स्वतंत्र क्षेत्र बनाकर भी, जो भारत के साथ एकीकृत होने के लिए आसानी से तैयार नहीं किए जा सकते हों। उस समय कांग्रेस इस स्थिति को स्वीकार करने के लिए मजबूर थी, क्योंकि वह किसी भी तरह से भारत में ब्रिटिश शासन का अंत होता देखने के लिए उत्सुक थी। ब्रिटिश योजना में निम्नलिखित तीन विशेषताएँ थीं :

1. अधिसत्ता (Paramountcy) तथा उससे जुड़े हुए जो भी अर्थ हों, उन सब की समाप्ति।
2. इस प्रकार स्वतंत्र हुए राज्यों को परिग्रहण के संबंध में अपने भविष्य के बारे में स्वयं फ़ैसला करना हो।
3. परिग्रहण तीन विषयों के संबंध में होना था—विदेशी संबंध, संचार और प्रतिरक्षा, और बाक़ी मामलों के संबंध में उनकी सहमति के बिना कुछ भी नहीं किया जाए।

स्पष्ट है कि इन सभी बातों का एक और मात्र एक उद्देश्य था, और वह यह कि ऐसी परिस्थितियाँ बनाई जाएँ, जो नई सरकार के लिए एक मज़बूत और एकीकृत भारत की स्थापना करना कठिन कर दें।

आपने उन दिनों का उल्लेख ठीक ही किया है, जब आप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं के निकट सहयोग से अपने राज्य में लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए लड़ रहे थे, जो इसी तरह से उसमें व्यस्त थे, जिसे ब्रिटिश भारत कहा जाता था। ज़ाहिर है, उस समय सभी का संयुक्त इरादा एक वास्तविक लोकतांत्रिक संविधान पर आधारित भारत का निर्माण करना था। उन दिनों किसी ने दूर-दूर तक यह कल्पना भी नहीं की थी कि भारत किसी भी विचार के आधार पर विभाजित किया जाएगा, चाहे वह विचार सांप्रदायिक हो या कुछ और या उसकी कोई भी इकाई अलग संवैधानिक अधिकारों की माँग करेगी।

आज आपकी सारी परिकल्पनाएँ 1947 में ब्रिटिश शासन के अंत में संप्रभु शक्तियों के इस अचानक पुनरुद्धार पर टिकी हुई हैं, उन शक्तियों पर, जो आपको हस्तांतरित भी नहीं की गई थीं, बल्कि महाराजा को हस्तांतरित की गई थीं। हालाँकि परिस्थितियाँ उनके ख़िलाफ़ हो गईं। आज आप जिन संप्रभु अधिकारों का दावा कर रहे हैं, उन्हें आपने महाराजा से प्राप्त किया था, जिन्होंने या तो स्वेच्छा से या घटनाओं के आगे विवश होकर अपने सभी क़ानूनी और संवैधानिक अधिकार का त्याग कर दिया। उनके कथित संवैधानिक अधिकारों की किसी ने भी परवाह नहीं की।

निस्संदेह स्वतंत्र भारत की सरकार उस कल्पित क़ानूनी कथा के आधार पर आगे बढ़ती जा रही है, जो उन पर ब्रिटिश सरकार द्वारा थोपी गई थी। लेकिन हैदराबाद, जूनागढ़ और जम्मू-कश्मीर को छोड़कर, अन्य सभी राज्यों, उनके शासकों और उनके लोगों ने इस बात को समझा कि उनका भाग्य बहुत नज़दीकी से भारत के साथ जुड़ा हुआ है तथा अपनी सुरक्षा व देश के कल्याण के लिए उन सभी को भारत में विलय कर लेना चाहिए और नए संविधान द्वारा शासित होना चाहिए। हैदराबाद और जूनागढ़ का इतिहास आप जानते हैं और मुझे यहाँ उसे दोहराने की ज़रूरत नहीं है; आज वे भी भारतीय संघ की अखंडनीय इकाइयाँ हैं। जम्मू-कश्मीर के मामले में ऐसा नहीं किया जा सका, क्योंकि पाकिस्तान के साथ युद्ध छिड़ गया था। भारत के संविधान को अंतिम रूप दिया जा रहा था। इसलिए सामान्य प्रक्रिया की उस क़ानूनी स्वीकृति को, जिसे अन्य सभी मामलों में एकीकरण के लिए अपनाया गया था, उसे जम्मू और कश्मीर के संबंध में भी हमारे संविधान में स्थान दिया जाना था। यहीं से अनुच्छेद 370 की उत्पत्ति हुई थी। संविधान सभा में यह संकल्प प्रस्तुत करते हुए श्री गोपाल स्वामी आयंगर ने बिल्कुल स्पष्ट कर दिया था कि यह एक अस्थायी प्रावधान था और अंततः जम्मू-कश्मीर राज्य भारतीय संघ में उसी तरह आ जाएगा, जैसे अन्य सभी राज्य आए हैं।

इसलिए जब आप यह सोचते हैं कि जम्मू-कश्मीर राज्य के विलय के लिए एक विशेष प्रावधान किया गया था या यह कि आपको सीमित संप्रभुता उपलब्ध है, तो आप ऐसा उन ऐतिहासिक परिस्थितियों को पूरी तरह भुलाकर करते हैं, जिनके तहत ब्रिटिश सरकार ने एकीकरण की योजना अपनाने के लिए भारत को मजबूर किया था। आप निश्चित रूप से कह सकते हैं कि आपके तथाकथित अधिकारों की उत्पत्ति चाहे जो हो, आज वह अधिकार मौजूद है और आप अपनी इच्छा के अनुसार उसका प्रयोग कर रहे हैं। यहाँ मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि आप पूरी तरह क़ानूनपरक स्टैंड न लें। आप सबसे पहले भारतीय हैं, और कुछ भी इसके बाद में हैं। हमें इस प्रश्न पर इस भावना से विचार करना चाहिए और अपने साझा प्रयासों से उस विघटनकारी पैटर्न को पूरी तरह नष्ट कर देना चाहिए, जिसे ब्रिटिश सरकार ने हमारे लिए अपनी अंतिम विरासत के रूप में छोड़

दिया है। आपके और हमारे बीच एक और कड़ी है, जो हमें एक-दूसरे के निकट लाती है। हमारे युवाओं ने इस क्षेत्र को, जो भारत का हिस्सा है, दुश्मन के क्रूर हाथों से बचाने के लिए संयुक्त रूप से अपना रक्त बहाया है।

यहाँ तक कि यह भी मानते हुए कि अनुच्छेद 370 की आपकी व्याख्या संवैधानिक रूप से सही है, मेरी आपसे अपील है कि जितनी जल्दी संभव हो, आपको भारत के साथ राज्य के विलय को अंतिम रूप दे देना चाहिए, और उस तरह के संशोधनों के साथ, अगर कोई हो, जो राज्य के कल्याण के लिए विशेष रूप से आवश्यक हों और जो संपूर्ण भारत के हित के लिए हानिकारक न हों, भारत के संविधान द्वारा शासित होने के लिए सहमत हो जाना चाहिए। संवैधानिक ब्योरों को परे रख दें, तो मैं यह समझने में असफल हूँ कि समस्या के प्रति इस तरह के दृष्टिकोण को आप किसी भी नज़रिए से ग़लत या अन्यायपूर्ण कैसे समझ सकते हैं। यह माँग जम्मू के लोगों द्वारा की गई है और इस आधार पर प्रजा परिषद् द्वारा आंदोलन प्रायोजित किया गया है। आपके प्रयास उनके भय और संदेह को समझने वाले होने चाहिए और सभी प्रकार के बाहरी मुद्दे उठाने और उनके इरादों पर गंभीरता से संदेह किए बिना उनके साथ एक समझौते पर पहुँचने वाले होने चाहिए।

हमें कश्मीर मुद्दे को संयुक्त राष्ट्र संघ के चंगुल से बाहर लाना ही होगा। हम वहाँ आक्रमण के मुद्दे पर गए थे, न कि विलय के मुद्दे पर। हम संयुक्त राष्ट्र संघ से किसी मदद या सहानुभूति की उम्मीद नहीं करते, जिसके कारण अच्छी तरह ज्ञात हैं। कोई संदेह नहीं कि भारत सरकार द्वारा जनमत संग्रह का आश्वासन दिया गया है। हम परिग्रहण की घोषणा के बिंदुओं पर दृढ रहें कि परिग्रहण राज्य के लोगों की इच्छा के अनुसार होगा। लेकिन सामान्य जनमत संग्रह का कोई सवाल ही नहीं है, विशेष रूप से जब तक क्षेत्र का एक-तिहाई हिस्सा पाकिस्तान के क़ब्ज़े में रहता है। जब मैंने आग्रह किया कि लोगों की इच्छा का अंतिम रूप से निर्धारण आपके राज्य की संविधान सभा द्वारा एक संकल्प पारित करने के माध्यम से किया जाना चाहिए, मैंने केवल एक ऐसी प्रक्रिया का संकेत दिया था, जिस पर किसी भी निष्पक्ष निकाय द्वारा प्रश्न नहीं किया जा सकता। अगर यह प्रस्ताव अंगीकृत कर लिया जाता है और पं. नेहरू ने अपने पिछले पत्र में मुझसे कहा है कि उन्हें इसमें कोई आपत्ति नहीं है, इससे कश्मीर और भारत के बीच विलय के प्रश्न का पूरी तरह समाधान हो जाएगा। मेरी अपनी राय है कि भारत सरकार को इसे स्वीकार कर लेना चाहिए और इस मामले को बंद कर देना चाहिए।

तब सवाल बचता है संयुक्त राष्ट्र संघ और पाकिस्तान पर इसके संभावित प्रभाव का। गँवाए जा चुके क्षेत्र के भविष्य का फ़ैसला तो तब किया जा सकता है, जब अगर कभी, हम उस पर फिर से क़ब्ज़ा कर लेते हैं या पाकिस्तान स्वेच्छा से उस क्षेत्र से वापस

हट जाता है। एक बार विलय के अंतिम होने का प्रश्न तय हो जाए तो जम्मू के लोग राहत अनुभव करेंगे और उनका मुख्य संदेह व भय दूर हो जाएगा। यह सुझाव देना ग़लत है कि मेरी या प्रजा परिषद् की चाह जम्मू को कश्मीर घाटी से अलग करने की है। राज्य की अखंडता निश्चित रूप से बनाए रखी जानी चाहिए। हालाँकि मैंने जो भी कुछ कहा था, वह यह था कि अगर जम्मू के लोग भारत के साथ पूर्ण परिग्रहण चाहते हैं और कश्मीर घाटी के लोग शिथिल एकीकरण चाहते हैं, तो टकराव और संघर्ष अपरिहार्य हैं। एक संभव समाधान हो सकता है कि कश्मीर घाटी को एक अलग राज्य के रूप में गठित करें, और वह अपने विकास के लिए जो कुछ भी चाहता हो, उसे दिया जाए। यह तब भी भारतीय संघ की इकाइयों में से एक इकाई के रूप में बना रहेगा, लेकिन संविधान के विशेष उपबंधों के अनुसार कार्य करेगा। मैंने इस विकल्प का सुझाव ख़ुशी-ख़ुशी नहीं दिया था। मैंने अनुभव किया था कि अगर कोई समझौता नहीं हो पाता है, तो यह अपरिहार्य हो सकता है। लेकिन हम इस विचार को पूरी तरह से छोड़ दें और संयुक्त जम्मू-कश्मीर के रूप में विचार करें और पता करें कि इसे सभी लोगों के प्रति सहयोग की इच्छा के साथ कैसे मज़बूत किया जाए।

इसके बाद सवाल बचता है कि किन विषयों के संदर्भ में परिग्रहण होना चाहिए। प्रजा परिषद् ने माँग की है कि आपके राज्य को भारत के संविधान के अनुसार उसी प्रकार शासित होना चाहिए, जिस प्रकार भाग 'ख' का कोई भी अन्य राज्य शासित है। यहाँ भी मैं कह चुका हूँ कि पूरी तरह पवित्र कुछ भी नहीं है, और अगर संविधान में ऐसे कुछ अनुच्छेद हैं, जिनके बारे में आपको लगता है कि उन्हें आपके राज्य के संदर्भ में कुछ हद तक संशोधित किया जाना चाहिए, तो यह प्रस्ताव आपको करना है और निस्संदेह उन पर संसद् में और हर व्यक्ति द्वारा सहानुभूति और सदिच्छा के साथ विचार किया जाएगा। लेकिन कुछ मामलों के संबंध में भारत की एकता को बनाए रखना होगा, और भारत के नागरिकों के साझे अधिकारों को मान्यता देनी होगी। इनका संबंध मौलिक अधिकारों, नागरिकता, सुप्रीम कोर्ट, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों, आर्थिक और वित्तीय एकीकरण और चुनाव संचालन जैसे मामलों से है। यहाँ तक कि इनमें से कुछ के संबंध में भी, जम्मू एवं कश्मीर राज्य कुछ बदलावों की माँग कर सकता है, जिस पर उनकी योग्यता के आधार पर विचार किया जा सकता है। क्या मैं आपसे पूछ सकता हूँ कि इस दृष्टिकोण में कुछ भी ग़लत या सांप्रदायिक या प्रतिक्रियावादी है? और क्या ये मामले वास्तव में शांतिपूर्ण समायोजन और समझ के अयोग्य हैं? आपने कहा है कि परिग्रहण या भारतीय संविधान के उपबंधों की स्वीकृति के संदर्भ में कोई हिंदू और मुसलिम सवाल ही नहीं है। लेकिन क्या मैं पूछ सकता हूँ कि कौन हैं, जो इस प्रस्ताव का विरोध कर रहे हैं? निश्चित रूप से आपके राज्य के ग़ैर-मुसलमान तो नहीं। और जहाँ तक

वर्तमान संविधान का संबंध है, मुसलमानों की आशंका क्या है, यह स्पष्ट करने की आपने कभी चिंता नहीं की है।

इसके बाद प्रश्न आता है राज्य प्रमुख और ध्वज का। यहाँ हमें कोई कारण नज़र नहीं आता कि आपके राज्य के लिए अलग प्रावधान क्यों बनाए जाने चाहिए। आप संविधान सभा की कार्रवाई को देख सकते हैं और उन तर्कों को देख सकते हैं, जो स्वयं पं. नेहरू ने एक निर्वाचित राज्य प्रधान के विरुद्ध दिए थे। स्पष्टत: इस तरह से जो पार्टी सत्ता में होगी, वह इस पद को भरने के लिए किसी का चुनाव करेगी। उसके एक पार्टी का आदमी होने की संभावना है और राज्य का प्रमुख एक उत्कृष्ट व्यक्ति होना चाहिए तथा उसे अपनी नियुक्ति सीधे उस राज्य में सत्ताधारी पार्टी द्वारा दिखाई गई कृपा से प्राप्त नहीं करनी चाहिए। इसके अलावा आपात स्थिति में राज्य के प्रमुख को राष्ट्रपति की ओर से कार्रवाई करने को कहा जा सकता है। अगर वह एक पार्टी का आदमी होगा, तो कोई आपात स्थिति पैदा होने पर राष्ट्रपति और वह दोनों स्वयं को एक शर्मनाक स्थिति में पा सकते हैं। राष्ट्रपति द्वारा प्रत्येक राज्य के मुखिया का मनोनयन इस आधार पर उचित ठहराया गया था कि इस तरह से एक छोर पर प्रत्येक राज्य प्रमुख और दूसरे छोर पर संघ के राष्ट्रपति के बीच एक साझा सूत्र स्थापित किया जाएगा। लेकिन यह बदलाव आपकी माँग को पूरा करने के लिए किया गया था। मुझे अपने आपमें सदर-ए-रियासत के ख़िलाफ़ कुछ नहीं कहना है। लेकिन फिर इसमें भी, एक आम नाम, वह जो भी हो, सभी राज्यों के लिए स्वीकार क्यों नहीं कर लिया जाना चाहिए? अगर हर राज्य का अपना नामकरण होगा, तो यह भ्रम की स्थिति को और बदतर कर देगा।

ध्वज के संबंध में, एक ही ध्वज को आपकी स्वीकृति ने, जो पूरे भारत में लागू है, निस्संदेह ग़लतफ़हमी का कोई भी कारण समाप्त कर दिया होता। यहाँ तक कि अब भी आपको दिन-प्रतिदिन के लिए भारतीय ध्वज का उपयोग करने के लिए सहमत हो जाना चाहिए, जैसा कि भारत के अन्य भागों में किया जाता है, आपका राज्य ध्वज विशेष अवसरों पर भारतीय ध्वज के साथ इस्तेमाल किया जा सकता है।

संयोग से मैं भगवा ध्वज के प्रति आपकी घृणा को समझने में असमर्थ रहा हूँ। भगवा रंग का कोई सांप्रदायिक अर्थ नहीं है। यह पवित्रता, त्याग और सेवा का प्रतीक है। कई हज़ार वर्षों से स्वतंत्र भारत में ध्वज का रंग यही था। भारत में इस रंग को तुरंत स्वीकार किए जाने की कोई संभावना नहीं है। लेकिन यह अद्‌भुत है कि आप यह कहें कि यह आक्रामक हिंदू धर्म का प्रतिनिधित्व करता है। क्या पंथनिरपेक्षता का मतलब यह है कि भारत स्वयं को अपने अतीत, इतिहास और परंपराओं से काट ले? आपके झंडे का रंग उस पर एक विशेष डिजाइन के साथ पूरा लाल है। अगर आपके कठोर आलोचकों में से कोई कहे कि यह कम्युनिस्ट ध्वज का उपयोग करने के लिए एक छलावरण है, तो

निश्चित रूप से यह अनुचित होगा और आप इसका बुरा मानेंगे। मेरा निवेदन है कि हमें वर्णांध नहीं होना चाहिए।

मेरे पिछले पत्र में आपने मेरे द्वारा किए गए महाराजा के उल्लेख को पूरी तरह से ग़लत समझा है। वास्तव में मैं महाराजा को नाममात्र का ही जानता हूँ और मुझे लगता है कि मैं केवल एक बार उनसे किसी समारोह में मिला था। मैं उनके पक्ष में नहीं हूँ और न ही मैं मानता हूँ कि आधुनिक ढाँचे में भारत के किसी भी हिस्से में वंशानुगत शासन के लिए कोई स्थान है। जब हम किसी व्यक्ति की निंदा करते हैं, तब भी, हमें अगर उसका कोई अच्छा पक्ष हो, तो उसकी अनदेखी करने की आवश्यकता नहीं है। आप महाराजा को एक भयंकर अंदाज़ में रँगते प्रतीत होते हैं। इसके बावजूद अपने वर्ग से यही एकमात्र महाराज थे, जिनमें बीस वर्ष पहले लंदन में गोलमेज़ सम्मेलन (आर.टी.सी.) में खड़े होने और राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए भारत के दावे के प्रति अंग्रेज़ों द्वारा प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाने की वकालत करने के लिए कहने का साहस था। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि उनके इस कृत्य के कारण वह भारत में ब्रिटिश प्रशासकों के लिए आँख के तिनके बन गए। संभव है कि उन्होंने गंभीर ग़लतियाँ की हों और ऐसे कार्य भी किए हों, जो किसी समय उनके राज्य के कल्याण और भारत के अंतरराष्ट्रीय हितों के विरुद्ध गए हों। लेकिन निश्चित रूप से उनके अंतिम कार्य ने भारत सरकार की और मुख्य उद्देश्य को प्राप्त करने में आपकी मदद की है। आपने उनके द्वारा उस समय श्रीनगर छोड़ने का उल्लेख किया है, जब शहर पर हमला आसन्न था। यह एक निष्पक्ष और सटीक आरोप नहीं है। मैंने कुछ दस्तावेज़ देखे हैं और असंदिग्ध स्रोतों से सुना है कि यह ग़लत है और महाराजा को लॉर्ड माउंटबेटन और अन्य नेताओं की स्पष्ट इच्छा पर श्रीनगर छोड़ने के लिए कहा गया था। एक स्पष्ट कारण यह था कि कुछ औपचारिकताओं को अंतिम रूप देने के लिए उनके हस्ताक्षर आवश्यक थे और अगर किसी संयोग से श्रीनगर हाथ से निकल जाता और महाराजा दुश्मन के हाथों में पड़ जाते, तो यह नहीं किया जा सकता था। आप इस तथ्य से अनजान हों, यह शायद ही संभव है। कुछ कारणों के लिए अपने परिवार के साथ आप भी उस समय कश्मीर से दूर थे। क्या इस सबके कारणों में जाने की अब भी आवश्यकता है?

पुनश्च, क्या आपने सितंबर 1947 में किसी समय महाराजा को एक पत्र नहीं लिखा था, जिसमें आपने उन्हें आश्वासन दिया था कि आप और आपकी पार्टी उनके प्रति, उनके सिंहासन और उनके वंश के प्रति द्रोह की किसी भी भावना में कभी भी शामिल नहीं रहे हैं? क्या आपने मार्च 1948 में फिर उन्हें नहीं लिखा था, जब आपको सरकार के मामलों का प्रभार लेने के लिए कहा गया था, जिसमें आपने महाराजा के सहयोग और पूरी मदद का आदर किया था तथा उस भावना की प्रशंसा की थी, जिसके

तहत उन्होंने आपको यह प्रस्ताव दिया था? निश्चित रूप से आप मार्च 1948 के बाद से महाराजा पर किसी भी अशिष्ट या अत्याचारपूर्ण कृत्य का आरोप नहीं लगा सकते। तब संपूर्ण शक्ति स्वयं महाराजा के निर्णय द्वारा आपको हस्तांतरित की गई थी। उसके बाद वह लगभग एक रबर स्टांप थे और वह सब करने के लिए बाध्य थे, जो भारत सरकार या आप उनसे कराना चाहते थे। वफ़ादारी के तमाम आश्वासनों के बावजूद, जो आपने उन्हें व्यक्तिगत रूप से दिए थे, आपने पहला अवसर पाते ही भारत सरकार के पूर्ण समर्थन से उन्हें और उनके वंश को उनके सिंहासन से पूरी तरह से बेदख़ल कर दिया। आभार और वफ़ादारी की सभी अभिव्यक्तियों के बाद यह काम जिस तरीक़े से किया गया था, मैं उसके बारे में कुछ भी नहीं कहूँगा। शायद आप दृढता से महसूस करते होंगे कि जनता के हित की यह माँग है कि महाराजा की ओर से यह बलिदान किया जाए। किसी भी स्थिति में, अपने राजनीतिक लाभ के लिए उनका पूर्ण उपयोग कर चुकने के बाद और उसके लिए भी, जिसे आपने जम्मू-कश्मीर का हित माना है, अब अतीत के इतिहास का मुद्दा उठाने और सारा दोष उन पर मढ़ने का प्रयास करना आपके लिए शायद ही शालीन हो। आपके जैसे महान् नेता उदार हो सकते हैं और अनावश्यक रूप से अपने अतीत के विरोधियों के ख़िलाफ़ मज़बूत भावनाओं को व्यक्त नहीं कर सकते हैं। मैं उम्मीद करता हूँ कि यह सब कहने के लिए आप मुझे क्षमा कर देंगे, लेकिन इस आवश्यक सावधानी को बरत सकने में आपकी विफलता ने अकसर अनावश्यक संदेह और विवादों को जन्म दिया है। महाराजा जा चुके हैं और वर्तमान आंदोलन उसके पुनरुद्धार के लिए नहीं है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि लोगों के सभी वर्गों द्वारा पूर्ण लोकतांत्रिक अधिकारों का प्रयोग किया जा सके और अल्पसंख्यक बिना किसी भय के और समान अधिकारों के साथ रह सकें। भारत के किसी हिस्से में महाराजा का निरंकुश शासन अब मौजूद नहीं है। वे जहाँ कहीं भी कार्य करते हैं, संवैधानिक प्रमुख के रूप में करते हैं, जिनके पास उनकी मंत्रिपरिषद् द्वारा उन्हें प्रस्तुत सलाहों को छोड़कर कोई शक्ति नहीं होती।

जाँच आयोग की संरचना पर मेरी टिप्पणी के संबंध में आपने मुझे पूरी तरह ग़लत समझा है। मैंने आपके मुख्य न्यायाधीश की ईमानदारी और सच्चाई पर कुछ नहीं कहा है। मैं उन्हें व्यक्तिगत तौर पर नहीं जानता हूँ, लेकिन मैं मानता हूँ कि वह ऐसे व्यक्ति होने चाहिए, जो अपने कर्तव्यों के निर्वहन में सभी प्रभावों से ऊपर हों। जैसा मैंने पं. नेहरू को लिखा था, आयोग के अन्य सभी सदस्य आप के अधीन सेवारत प्रशासनिक अधिकारी हैं। एक महालेखाकार हैं, दूसरे मुख्य वन संरक्षक हैं और तीसरे राजस्व आयुक्त हैं। मैं उन्हें नहीं जानता। मुझे लगता है कि वे भी अपने कर्तव्यों के निर्वहन में सक्षम और ईमानदार होंगे। लेकिन स्थितियों के वर्तमान संदर्भ में, वे ऐसे व्यक्ति नहीं हो सकते, जो

सरकार की नीति और प्रशासन पर निर्णय कर सकते हों। भारत के अन्य भागों में जब भी इस तरह के गंभीर विवाद उठते हैं, तो जाँच आयोग में न्यायाधीश शामिल होते हैं, विशेष रूप से उनके सदस्यों में से अधिकतर न्यायपालिका से आए होते हैं। कभी-कभी एक विशेष राज्य से संबंधित मामलों की जाँच एक आयोग द्वारा की जाती है, जिसमें अन्य राज्यों से न्यायाधीशों को शामिल होने के लिए आमंत्रित किया जाता है। उन पर कोई टिप्पणी नहीं होती है। इसलिए मैंने पं. नेहरू को सुझाव दिया था कि आपसे आयोग को पुनर्गठित करने के लिए अनुरोध किया जाना चाहिए, जिसमें आपके मुख्य न्यायाधीश के अलावा भारत के अन्य हिस्सों से दो न्यायाधीशों को शामिल किया जा सकता है। क्या इसमें आपके मुख्य न्यायाधीश पर किसी भी कलंक या आपके अधिकार को चुनौती देने का संकेत मिलता है? आपकी स्वायत्तता स्पष्ट रूप से आपके ही नागरिकों का दमन करने के लिए भारतीय पुलिस का उपयोग करने से विक्षुब्ध नहीं होती है। तब अगर आप स्वयं ही कुछ भारतीय न्यायाधीशों से प्रशासन में मदद करने के लिए कहते हैं, तो फिर इस पर आपको एक चुनौती के रूप में क्यों विचार करना चाहिए?

क्या मैं आपको याद दिला सकता हूँ कि बीस साल पहले स्वयं आपने तब क्या किया था जब महाराजा द्वारा जम्मू-कश्मीर राज्य में गंभीर दंगे और गड़बड़ी की जाँच के लिए एक जाँच आयोग नियुक्त किया गया था, जिसके साथ आपकी पार्टी और यहाँ तक कि स्वयं आपका नाम भी जुड़ा हुआ था। आपने और आपके साथियों ने तो इस आयोग के साथ सहयोग करने से ही इनकार कर दिया था, हालाँकि इसके अध्यक्ष मुख्य न्यायाधीश दलाल थे। आपने महसूस किया और शायद ठीक ही किया था कि उन व्यक्तियों से बना एक आयोग शायद ही लोगों की शिकायतों के साथ पूरा न्याय करने में सक्षम होगा, जो राज्य सेवा में थे। अब जब बाज़ी पलट चुकी है और आज सभी अधिकार आपके पास हैं, तो आपको उन लोगों के भय और संदेह को समझना क्यों नहीं चाहिए, जो आपकी कुछ सरकारी नीतियों और कार्यों से सहमत नहीं हैं और जो एक वास्तविक रूप से निष्पक्ष और स्वतंत्र जाँच के लिए उत्सुक हो सकते हैं?

मैं प्रजा परिषद् के प्रतिनिधियों से बात करने के भी आपके इनकार को समझने में असमर्थ रहा हूँ। जो सुझाव मैंने दिया था, वह यह था कि आंदोलन वापस किया जाना चाहिए, जिसके बाद एक सम्मेलन हो, जिसमें पं. नेहरू, स्वयं आप और प्रजा परिषद् के कुछ प्रतिनिधि मौजूद हो सकते हैं। राजनीतिक और संवैधानिक सभी मामले वहाँ सुलझाए जाने चाहिए और हर संदेह और भय को समाप्त करने और शांति और सद्भावना का माहौल पैदा करने के सभी प्रयास किए जाने चाहिए। इसके अलावा क़ैदियों को मुक्त किया जाना चाहिए और सभी ज़ब्ती के आदेश वापस लिए जाने चाहिए। आयोग का पुनर्गठन किया जाना चाहिए और आर्थिक और प्रशासनिक मामलों के बारे में सभी

शिकायतों की इसके द्वारा जाँच की जानी चाहिए। सभी संबंधित पक्षों द्वारा एक संयुक्त मोर्चा बनाने के लिए हर संभव प्रयास किए जाने चाहिए, ताकि सभी के सहयोग से राज्य का निर्माण किया जा सके। मुद्दों पर स्पष्टता के बाद जुलाई समझौते के क्रियान्वयन में तेज़ी लाई जानी चाहिए; संविधान के बाक़ी हिस्सों को जल्द ही पूरा किया जाना चाहिए, जिसके बाद आम चुनाव होना चाहिए।

क्या मैं फिर से पूछ सकता हूँ कि क्या यह वह दृष्टिकोण है, जिसे प्रतिक्रियावादी, सांप्रदायिक और विश्वासघाती कहा जाना चाहिए? प्रजा परिषद् द्वारा कही गई बातों पर विश्वास क्यों नहीं किया जाना चाहिए और उन मुद्दों को क्यों नहीं सुलझाया जाना चाहिए, जो उन्होंने स्वयं उठाए हैं? आंदोलन सिर्फ़ उनके सदस्यों और समर्थकों तक ही सीमित नहीं है। यह आम जनता की भावना से जुड़ चुका है और आप बल द्वारा इसे नहीं कुचल सकते हैं। आप सभी लोग गांधीवाद और गांधीवादी तकनीक की इतनी बातें करते हैं। हालाँकि जब संकट आता है, तो इन ऊँची भावनाओं को नेपथ्य में डाल दिया जाता है और धमकियाँ और गालियाँ, जेल और ज़ब्ती, संगीनें और गोलियाँ आपके अहिंसा के हथियार बन जाते हैं। दुर्भाग्य से आप इस बात पर अड़े हुए प्रतीत होते हैं कि किसी भी परिस्थिति में आप प्रजा परिषद् के नेताओं से बात नहीं करेंगे या उनके साथ कुछ भी संबंध नहीं रखेंगे। एक लोकतांत्रिक नेता के लिहाज़ से यह एक अजीब रवैया है। प्रजा परिषद् एक राजनीतिक पार्टी के रूप में बरकरार रहेगी या नहीं, यह आपकी इच्छा पर नहीं, बल्कि उस अनुक्रिया पर निर्भर करेगा, जो उसे लोगों से प्राप्त हो सकती है। अगर आप, जो राज्य में प्रमुख राजनीतिक दल का प्रतिनिधित्व करते हैं और जिनके हाथों में आज सरकार की शक्ति है, एक विशेष राजनीतिक दल को कुचलने के लिए दृढ संकल्पित महसूस करते हैं, जो आपका विरोध कर रही हो सकती है, और इस प्रयोजन के लिए बल और अन्य तरीक़ों को अपनाने के लिए के लिए दृढ संकल्पित महसूस करते हैं, तो आप लोकतांत्रिक नेता नहीं रह जाते हैं। फिर आप एक फासीवादी हो जाते हैं, लेकिन तो भी आपकी सफलता संदिग्ध है, क्योंकि ऐसे सभी मामलों में इतिहास ने साबित कर दिया है कि आंदोलन भूमिगत हो जाता है और अंततः शक्तिशाली तानाशाह सच्ची स्वतंत्रता की लड़ाई हार जाता है। मैं कह सकता हूँ कि आप जैसा एक आदमी जिसने महान् बलिदान और कष्टों से गुज़रकर वर्तमान प्रतिष्ठा प्राप्त की है, इस तरह के ख़तरनाक और आत्म विनाशकारी तरीक़ों को अपनाने का सपना कभी नहीं देख सकता है।

उन लोगों के साथ बातचीत नहीं करने के लिए आपके कारण, मैं मानता हूँ कि प्रजा परिषद् के पिछले संगियों और गतिविधियों के आपके अनुमान पर आधारित है। आपने विशेष रूप से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का उल्लेख किया है। मैं इस संगठन का सदस्य नहीं हूँ, लेकिन मैं इसके साथ जुड़े कई लोगों को जानता हूँ और मैं उनके

आदर्शवाद, देशभक्ति और बलिदान और सेवा की भावना के लिए गहरा सम्मान और स्नेह रखता हूँ। हो सकता है, उन्होंने अतीत में कुछ ग़लतियाँ की हों, जैसे कि आपने मैंने भी कई अवसरों पर की हो सकती हैं। लेकिन हमें इस संगठन को राष्ट्र के दुश्मन के रूप में देखने की ज़रूरत नहीं है। जम्मू-कश्मीर को छोड़कर पूरे भारत ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर लगे प्रतिबंध को वापस ले लिया है, निस्संदेह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के ख़िलाफ़ कुछ साल पहले सभी प्रकार के आरोप लगाए गए थे। उनमें से कोई भी आरोप क़ानून की अदालत में या कहीं और साबित नहीं हुआ है। उनके कार्यकर्ताओं में से किसी पर भी हिंसक या विध्वंसक गतिविधियों का न तो आरोप लगाया गया है और न दोषी पाया गया है। किसी निष्पक्ष अदालत ने कभी उनके लक्ष्य, उद्देश्य और काम के ख़िलाफ़ अपना फ़ैसला नहीं दिया है। गांधीजी की दुःखद हत्या के साथ उनके संबंध को ज़रा सा भी साबित नहीं किया गया है। वह कुछ ऐसी विचारधाराओं का प्रचार कर रहा है, जिसे आप और अन्य लोग पसंद नहीं करते हैं, और स्वाभाविक रूप से आप जवाबी प्रचार करने के हकदार हैं। अगर लोग इस प्रकार आश्वस्त हो जाते हैं कि आर.एस.एस. बुरी है, तो वे स्वयं इस संगठन को अपने समर्थन से इनकार कर देंगे।

आपने आर.एस.एस. और प्रजा परिषद् के ख़िलाफ़ जो एक विशिष्ट आरोप लगाया है कि अक्तूबर 1947 के उन दुर्भाग्यपूर्ण दिनों में उन्होंने जम्मू के कुछ क्षेत्रों से मुसलमानों को बाहर धकेलने में और यहाँ तक कि उनमें से कुछ को जीवन और सम्मान से वंचित करने में शर्मनाक भूमिका अदा की है, मेरे लिए इस आरोप की सत्यता के समर्थन में सबूत प्राप्त करना संभव नहीं है। अगर इस तरह के कृत्यों को अंजाम देने वाले ख़ास व्यक्तियों को पकड़ा जा सकता है, तो मुझे नहीं पता कि आपके सत्ता में आने के बाद भी उनको कठघरे में क्यों खड़ा नहीं किया गया है। कोई जाँच आयोग तुरंत बाद स्थापित क्यों नहीं किया गया? फिर भी, चलिए मैं आपके दावे को सच मान लेता हूँ। क्या मैं पूरी ईमानदारी से आपसे पूछ सकता हूँ कि आपके राज्य में इस तरह की दुःखद घटनाएँ जिन परिस्थितियों के तहत घटी हैं, उनको नज़रअंदाज़ क्यों करना चाहिए? आपने मुसलमानों पर हमले से पहले जम्मू प्रांत में हिंदुओं और सिखों के साथ हुई त्रासदी का ज़रा भी कोई उल्लेख नहीं किया है। पंद्रह से बीस हज़ार हिंदू पाकिस्तानी आक्रमणकारियों और जम्मू राज्य के उन क्षेत्रों में रहने वाले मुसलमानों के संयुक्त कृत्यों द्वारा क़त्ल किए गए थे। आज भी पाँच हज़ार हिंदू महिलाएँ लापता हैं और उन्हें बरामद नहीं किया जा सका है। कई के साथ अत्याचार और बलात्कार हुआ और सभी प्रकार के अत्याचार निर्दोष हिंदुओं और सिखों से साथ हुए थे। ज़ाहिर है, ये हत्याएँ हिंदुओं और सिखों ने नहीं की थीं। ये हत्याएँ मुसलमानों द्वारा की गई थीं। आप उन दिनों में नेशनल कॉन्फ्रेंस के स्वीकृत नेता थे। क्या आप सत्यनिष्ठा से वचन दे सकते हैं कि हमलावरों के बीच में, जो

सभी मुसलमान थे, कोई भी आपकी नेशनल कॉन्फ्रेंस का नहीं था, जो राज्य की प्रमुख पार्टी थी? आप उस समय दिल्ली में या कहीं और क्यों रह रहे थे और इन भयानक अत्याचारों से हिंदुओं और सिखों को बचाने के लिए प्रभावित क्षेत्रों में मौजूद क्यों नहीं थे? गांधीवादी भावना के अनुरूप, आपने तब लोगों का बहादुरी से सामना क्यों नहीं किया था? जम्मू में मुसलमानों पर हमले इन अत्याचारों की घटनाओं के बाद शुरू हुए, जब हज़ारों शरणार्थी विभिन्न स्थानों पर बिखरे हुए थे, और कष्ट और शर्म की आप बीती बता रहे थे।

मेरा अनुरोध है कि एक पल के लिए भी मुझे ग़लत न समझा जाए। मैं इन दोनों घटनाक्रमों में से किसी को भी उचित नहीं ठहरा रहा हूँ। बुराई का औचित्य बुराई नहीं है। आपको और हमको यह देखना है कि भारत में भविष्य में इस तरह का ख़ून-ख़राबा न हो। मेरा मुख्य लक्ष्य यह है कि अगर हम भारत का हित चाहते हैं, तो हमें उस दुःखद काल की यादों को भूल जाना होगा। इन घटनाओं के केवल एक हिस्से का आपके द्वारा बार-बार उल्लेख किया जाना मुझे इस आश्चर्य से भर देता है कि आख़िर कब आप अतीत को भूलने और अपने राज्य की भलाई के लिए, और देश की भलाई के लिए, अपने साथ सभी वर्गों के लोगों को लेकर चलने में सक्षम हो सकेंगे? शेष भारत के बारे में क्या करें? मेरे अपने प्रांत, बंगाल के बारे में क्या करें? क्या अगस्त 1946 में कलकत्ता के महान् शहर में और मुसलिम लीग मंत्रालय और ब्रिटिश सरकार की नाक के नीचे हज़ारों हिंदुओं की नृशंस हत्या नहीं की गई थी? हिंदुओं ने जवाबी कार्रवाई बाद में की। क्या दो महीने बाद नोआख़ाली ज़िले में 30 हज़ार हिंदुओं का जबरन धर्मांतरण नहीं कराया गया, क्या सैकड़ों महिलाओं के साथ बलात्कार नहीं किया गया और कई लोगों की हत्या नहीं की गई? क्या आप यह सुझाव दे रहे हैं कि पश्चिम बंगाल के मुसलमानों ने 1946 या 1947 में जो किया, उसके लिए मैं हमेशा के लिए उनके ख़िलाफ़ नफ़रत और बदले की कार्रवाई की भावनाएँ अपने मन में बनाए रखूँ? इसी तरह की टिप्पणियाँ भारत के कई अन्य भागों के संबंध में की जा सकती हैं। आज उनमें से कई लोगों को सफ़ेद टोपी पहने कांग्रेसियों के रूप में स्वीकार किया गया है और उनके नेता, जिनमें से कुछ के ख़िलाफ़ दंगा और नरसंहार करने के गंभीर आरोप थे, महत्त्वपूर्ण पदों तक पर बैठे हैं। इसी प्रकार भारत के कुछ हिस्सों में मुसलमान भी इसी अवधि के दौरान हिंदुओं द्वारा उन पर किए गए अत्याचारों के कारण हिंदुओं के ख़िलाफ़ नफ़रत की भावनाएँ रख सकते हैं। भारत उस समय एक दुष्चक्र में फँसा हुआ था। क्रिया के जवाब में प्रतिक्रिया पैदा हुई और हम एक ख़तरनाक स्थिति की कगार पर थे। बेशक जिन क्षेत्रों में हिंदू सर्वाधिक पीड़ित थे, उनमें से कई आज पाकिस्तान में हो सकते हैं, और आज भी अल्पसंख्यक, चाहे वे पाकिस्तान में किसी भी प्रकार के हों, मुसलिम लीग सरकार के

हाथों भारी पीड़ा झेल रहे हैं, और कब्र की शांति का आनंद ले रहे हैं। भारत में कितने मुसलमान नेताओं ने उनके दु:खद हश्र पर जुबानी सहानुभूति भी व्यक्त की है?

जहाँ तक जम्मू एवं कश्मीर सहित हम भारतीयों का संबंध है, हमें इस अध्याय को बंद मानना होगा और एक-दूसरे की ओर मैत्री का हाथ बढ़ाना होगा, ताकि हम मिल-जुलकर एक देश का निर्माण कर सकें, जिसमें धर्म लोगों को युद्धरत शिविरों में विभाजित करने का काम न करे, बल्कि परस्पर सम्मान और समझ-बूझ पैदा करे, जिसमें सभी लोग आत्मविकास के लिए समान अधिकारों और समान अवसरों के साथ एक साझी मातृभूमि के साझे नागरिकों के रूप में काम करें। अगर हम अतीत के बारे में सोचते रहेंगे और विश्वास और सहयोग का माहौल पैदा करने से इनकार कर देंगे, तो हम राष्ट्रीय आत्महत्या कर रहे होंगे। लेकिन अगर कोई भी वर्ग या व्यक्ति इस विश्वास को धोखा देगा, तो उनसे उनके वास्तविक अपराधों के लिए क़ानून के तहत निपटा जाएगा, न कि अतीत के पूर्वग्रहों या यहाँ तक कि अतीत के अपराधों के लिए।

मैं अधिकारियों द्वारा किए गए अत्याचारों और नृशंसताओं की प्रकृति दरशाने वाला एक बयान संलग्न कर रहा हूँ। मेरे पास उनकी जाँच का कोई साधन नहीं है और न ही आपकी ओर से कोई इनकार मात्र या आपके अधिकारियों से किसी की एक विभागीय रिपोर्ट पर इनकार इन आरोपों का जवाब हो सकेगा। अगर उनमें से आधे भी सच हैं, तो वे बेहद गंभीर स्थिति का संकेत देते हैं। केवल एक स्वतंत्र जाँच से ही सच्चाई का पता लग सकता है।

मैं इस स्तर पर भी आपसे आग्रहपूर्वक अनुरोध करूँगा कि इसे तुरंत रोकने का आदेश दें। दमन से समस्या का समाधान नहीं होगा। इससे घृणा और कड़वाहट पैदा होगी, जिसे दूर करना आसान नहीं होगा। अपने राजनीतिक विरोधियों से बात करने से इनकार करना, जो आज जेल में हैं, हमें कोई समाधान नहीं देगा। आंदोलन को समाप्ति पर लाया जाना होगा और हमें एक नई शुरुआत करनी ही चाहिए। प्रजा परिषद् से जुड़े कई लोगों के भय और संदेह और भावनाओं की वह गहराई, जो जम्मू के लोगों के भी मन में व्याप्त है, उसे मैं जानता हूँ। मुझे विश्वास है कि अगर आप इस अवसर पर खरे उतरते हैं, और खुला दिमाग़ रखते हुए उनके साथ एक सम्मेलन में बैठने का प्रस्ताव करते हैं, तो आपसी समझ और शांति उत्पन्न होगी और प्रगति तथा समृद्धि का एक नया अध्याय शुरू करना संभव होगा—अगर आप ऐसा करते हैं, तो आप अपनी प्रतिष्ठा खोएँगे नहीं, बल्कि आपकी राजनीतिमत्ता और यथार्थवाद की समझ आपको सभी से सम्मान और प्रशंसा दिलाएगी।

आपके साथ यह पत्राचार शुरू करना मुझे अपना कर्तव्य लगा, क्योंकि मैं सोचता हूँ कि अपने सारे जीवन स्वयं एक योद्धा रहे आप उन लोगों के साथ भी संवाद शुरू

करने में संकोच नहीं करेंगे, जिनके साथ आपके उग्र मतभेद हो सकते हैं। अभी तक मैं आपको तैयार करने में, अपना रवैया बदलने के लिए राज़ी करने में नाकाम रहा हूँ। आज आप सत्ता में हैं और आपकी सही पहल पर बहुत कुछ निर्भर करता है। मैं इस गहरे अफ़सोस के साथ इस पत्राचार को बंद करता हूँ कि हम अपने आगे मौजूद एक गंभीर ख़तरे के बावजूद समझौता नहीं कर सके हैं।

सादर,

(ह.)

श्यामाप्रसाद मुखर्जी

श्री एम. अब्दुल्ला
मुख्यमंत्री
जम्मू और कश्मीर

जम्मू में दमन पर रिपोर्ट 20 फरवरी, 1953 तक

जम्मू में प्रजा परिषद् सत्याग्रह को चलते हुए अब तीन महीने हो चुके हैं। यह सब से दूरदराज के गाँवों तक फैल गया है और एक जन-आंदोलन का रूप ग्रहण कर चुका है। यह सरकार की ओर से गंभीरतम उकसावे के बावजूद शांतिपूर्वक और ग़ैर-अहिंसक ढंग से चल रहा है। इस तथ्य के बावजूद कि आंदोलन के अधिकांश नेताओं को गिरफ़्तार कर लिया गया है और जेल में डाल दिया गया है, किसी भी सरकारी कर्मचारी की जान लेने या किसी भी सरकारी भवन को आग लगाने की एक भी घटना अब तक नहीं घटी है। लेकिन इस विधिसम्मत और शांतिपूर्ण आंदोलन को दबाने के लिए सरकार की ओर से दमन की सभी हदें पार कर दी गईं। सरकार ने पुलिस और मिलिशिया के पाशविक बल का प्रयोग जम्मू के लोगों पर किया, जिनके साथ जेलों के अंदर और बाहर सबसे अमानवीय व्यवहार किया जा रहा है।

निम्नलिखित रिपोर्ट जम्मू में अभी चल रहे दमन का पूरा ब्योरा विस्तार से प्रस्तुत करती है :

अब तक लगभग 2,000 लोगों ने सत्याग्रह की पेशकश की है, लेकिन उनमें से केवल 1200 को जेल भेजा गया है। शेष सत्याग्रहियों के साथ किया गया व्यवहार यह है कि उन्हें पूरे दिन पुलिस हवालात में रखा गया और उसके बाद ट्रकों और लारियों पर लादकर रात के समय ज़बरदस्त पिटाई करने के बाद दूर और निर्जन स्थानों पर उतार दिया गया था। उनमें से कुछ लोगों को रणबीर नहर में फेंक दिया गया था, जिसके परिणामस्वरूप चार लोगों को निमोनिया हो गया, जिनमें से जम्मू तहसील से संबंधित एक व्यक्ति का बाद में निधन हो गया।

दिसंबर की सबसे कड़ाके की ठंड में, जब कश्मीर में तापमान हिमांक से नीचे चला जाता है, गिरफ़्तार किए गए लोगों में से लगभग सौ प्रमुख व्यक्तियों के एक जत्थे को जम्मू की सेंट्रल जेल से श्रीनगर जेल में स्थानांतरित कर दिया गया था। वे कश्मीर की

उस कड़ाके की ठंड को सहन नहीं कर सके, क्योंकि उसके वे आदी नहीं थे, और इसलिए तबसे भयानक पीड़ा के दौर से गुजर रहे हैं।

कुछ दिनों बाद क़ैदियों के एक और जत्थे को बनिहाल कार्ट रोड के रास्ते से श्रीनगर के लिए रवाना कर दिया गया। हिमाच्छादित होने के कारण सैन्य अधिकारियों द्वारा दर्रे को पार करने की अनुमति देने से इनकार कर दिए जाने पर क़ैदियों को बनिहाल में पीर पंजाल की तलहटी में रखा गया था, हालाँकि वहाँ कोई उप-जेल मौजूद नहीं है। सुन्न कर देने वाली ठंड और भारी बारिश में, सत्याग्रहियों को अड़तालीस घंटे तक शौच आदि के लिए भी बाहर निकलने की अनुमति नहीं थी। शुरुआती दस दिनों के दौरान उन्हें बीस बार के बजाय मात्र आठ बार और बहुत अल्प भोजन दिया गया था। इस अमानवीय व्यवहार के विरोध में क़ैदियों को भूख हड़ताल पर जाना पड़ा। उनमें से चौहत्तर को रेशम उत्पादक कीट-प्रजनन घर में रखा गया। इसके परिणामस्वरूप उनमें से कई लोग बीमार पड़ गए, जिनमें से श्री मसत राम और श्री चरण दास की हालत गंभीर हो गई है।

गिरफ़्तारी के बाद कुछ सत्याग्रही जम्मू की पुलिस लाइन में बर्बर यातना के शिकार हुए। इस तरह की यातना के उदाहरण श्री भगवत स्वरूप बी.ए., राजपूत सभा के सचिव ठाकुर नानक सिंह, हरिजन मंडल के एक प्रमुख कार्यकर्ता श्री शिवराम और श्री विश्वपाल के मामलों में देखे जा सकते हैं। उन्हें केवल जूतों से पीटा ही नहीं गया, बल्कि उनके गुप्तांगों के बाल भी खींचे गए। रिशनाल (आर.एस. पुरा तहसील) से श्री रिशेनदास को तो स्थानीय थाने में इतनी निर्दयता से पीटा गया था कि वह कई बार बेहोश हो गए। कई मामलों में सत्याग्रहियों को जबरन जुलूस से खींचा गया, सरेआम लाठियों से पीटा गया और खदेड़कर पुलिस स्टेशन ले जाया गया।

ग्यारह बार शांतिपूर्ण जुलूस पर गोलीबारी की गई और इकतीस स्थानों पर लाठी-चार्ज किया गया है। इन सबके परिणामस्वरूप कई व्यक्तियों की मौत हुई है, जिनमें से अब तक उन्नीस व्यक्तियों के अवशेषों पता लगाया जा सका है। इन लाठीचार्ज और हत्याओं की कालानुक्रमिक रिपोर्ट नीचे दी गई है :

26 नवंबर को पंडित प्रेमनाथ डोगरा की गिरफ़्तारी के तुरंत बाद, पुलिस ने उन लोगों पर लाठीचार्ज कर दिया, जो पंडित डोगरा को सुनने के लिए इकट्ठे हुए थे। लाठीचार्ज इतनी कठोरतापूर्वक और अंधाधुंध ढंग से किया गया था कि भारतीय खुफ़िया सेवा का एक निरीक्षक भी इसमें गंभीर रूप से घायल हो गया था। 29 नवंबर को ऊधमपुर में हुए लाठीचार्ज के चलते बड़ी संख्या में महिलाओं को भी गंभीर चोटें आई हैं। सबसे ज़बरदस्त लाठीचार्ज 17 जनवरी को भद्रवाह में तहसील अध्यक्ष चौधरी कुशी मोहम्मद के नेतृत्व में निकाले जा रहे एक शांतिपूर्ण जुलूस पर किया गया था। वह और बड़ी संख्या में कई अन्य

लोग गंभीर रूप से घायल हो गए। सत्याग्रहियों को नंगा कर दिया गया और कई तरीक़ों से अपमानित किया गया। 28 जनवरी को जौसियान में एक शांतिपूर्ण जुलूस पर ज़बरदस्त लाठीचार्ज किया गया था, जिसमें एक महिला की मौत हो गई।

गोलीबारी : सांबा में परिषद् के एक जुलूस पर पुलिस द्वारा पहली गोली 27 नवंबर को दागी गई थी। यद्यपि इसका कोई घातक परिणाम नहीं हुआ था।

पुलिस की गोली से मरने वाले पहले व्यक्ति श्री मेला राम थे, जो 15 दिसंबर को छंब में मारे गए थे। सरकार ने पहले तो किसी के हताहत होने से इनकार किया, लेकिन जब उनका शव जम्मू लाया गया, तो सरकार को इस तथ्य को स्वीकार करना पड़ा।

29 दिसंबर को तीन व्यक्तियों की गोली मारकर हत्या तब कर दी गई, जब पुलिस ने जम्मू से लगभग पच्चीस मील की दूरी पर एक गाँव सुंदरबन में एक शांतिपूर्ण जुलूस पर गोलीबारी की। उनके शवों को घुप्प रात में जला दिया गया, यहाँ तक कि उनके अवशेष भी उनके निकटतम परिजनों को नहीं दिए गए। यहाँ भी सरकार ने पहले तो किसी के हताहत होने से इनकार किया, लेकिन तीन दिन बाद तथ्य को तब स्वीकार करना पड़ा, जब मारे गए लोगों के नाम और पते लोगों को पता चल गए।

सबसे भयंकर गोलीबारी 11 जनवरी को जम्मू से लगभग चालीस मील दूर पठानकोट-जम्मू मार्ग पर मौजूद एक तहसील हीरानगर में राज्य के दो मंत्रियों की उपस्थिति में हुई। इस गोलीबारी में मारे गए लोगों की संख्या अभी तक पता नहीं चल सकी है। उनमें से दो लोगों—श्री बिहारी लाल और श्री भीकम सिंह—के शव अधजली स्थिति में अगली सुबह भारतीय सीमा के पास एक नाले में पाए गए। लेकिन पीपुल्स पार्टी द्वारा भेजे गए एक तथ्य अन्वेषी मिशन की रिपोर्ट के अनुसार, इस फायरिंग के परिणामस्वरूप, जो किसी विशेष वास्तविक या काल्पनिक स्थिति से निपटने के बजाय शक्ति प्रदर्शन की प्रवृत्ति अधिक दरशाती है, तेरह लोग लापता हैं और बीस घायल हो गए हैं।

पिछली गोलीबारी 30 जनवरी को जम्मू के पश्चिम में लगभग तीस मील की दूरी पर जौरियाँ गाँव में हुई। आसपास के गाँवों से आए तीन हज़ार ग्रामीणों के एक जुलूस पर पहले आँसू गैस के गोले दागे गए और उसके बाद गोलियाँ चलाई गईं, जबकि यह भीड़ उस महिला के शव को अंतिम संस्कार के लिए श्मशान घाट ले जा रही थी, जिसने पिछले दिन पुलिस लाठीचार्ज में घायल होने के बाद दम तोड़ दिया था। अधिकारियों के अनुसार, इसमें पाँच लोगों की मौत हो गई और एक घायल हुआ। लेकिन सरदार बचन सिंह पंची की रिपोर्ट के अनुसार, जिन्हें सही तथ्यों का पता लगाने के लिए घटनास्थल की यात्रा पर राज्य अकाली दल द्वारा भेजा गया था, इससे कहीं बहुत बड़ी संख्या में लोग लापता थे। उनमें से अब तक नौ के नाम और पते की जानकारी मिल सकी है। उनकी रिपोर्ट के

अनुसार, घायलों की संख्या दो सौ से अधिक तक है, जिनमें से बीस को उन्होंने अकेले एक गाँव में देखा था। एक भी शव मृतक के अभिभावकों को नहीं सौंपा गया।

महिलाओं के प्रति किए गए अपराध

इस दमनचक्र का सबसे भयंकर हिस्सा उन महिलाओं के ख़िलाफ़ क्रूरता और अपराधों का है, जिनकी आंदोलन के प्रति सहानुभूति है।

11 दिसंबर को जम्मू में महिलाओं के एक जुलूस पर बार-बार आँसू गैस के गोले दागे गए और लाठीचार्ज किया गया, जिसके कारण छोटी लड़कियों सहित कई महिलाओं को गंभीर चोटें आई हैं। एक लड़की पूरे बारह घंटे बेहोश रही। एक अन्य लड़की को उसकी नाज़ुक हालत की वजह से अस्पताल में भरती करने से इनकार कर दिया गया। जुलूस का नेतृत्व करने वाली दो महिला सत्याग्रही भी बेहोश हो गईं और उन्हें उसी हालत में जेल ले जाया गया।

6 जनवरी को पुलिस ने चार सत्याग्रही महिलाओं को गिरफ़्तार कर लिया, जो जम्मू शहर में एक जुलूस का नेतृत्व कर रही थीं। उन्हें पूरे दिन भर पुलिस हवालात में रखा गया। रात में 11.00 बजे उन्हें लॉक-अप से बाहर ले जाया गया और सड़क पर फेंक दिया गया।

26 जनवरी को दस सत्याग्रही महिलाओं के साथ, जो बस स्टैंड पर धरना दे रही थीं, पुलिस द्वारा हाथापाई की गई। एक पुलिस अधिकारी ने उन्हें बेहद गंदी गालियाँ दीं। उनकी नेता कुमारी शारदा को गिरफ़्तार कर लिया गया। जेल में दुर्व्यवहार के परिणामस्वरूप वह बीमार हो गईं। सात दिनों के बाद जब उनकी हालत नाज़ुक हो गई, तो उन्हें बेहोशी की हालत में जेल से बाहर फेंक दिया गया।

17 जनवरी को महिला कॉलेज की तीन छात्राओं पर पुलिस के एक इंस्पेक्टर द्वारा हमला किया गया, उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया, हाथापाई की गई और उन्हें बाल पकड़कर घसीटा गया।

27 जनवरी को पुलिस ने तड़के 2.00 बजे गाँव रोथुसा में एक नंबरदार के घर पर छापा मारा। वह घर पर नहीं था। पुलिस ने उसके बारे में उस समय वहाँ मौजूद दो युवतियों से पूछा। नंबरदार का ठिकाना न बता पाने पर, उन युवतियों के कपड़े उतरवा लिए गए, उन पर अपराधियों की तरह हमला किया गया, फिर उन्हें जेल ले जाया गया। उनके साथ जेल में भी दुर्व्यवहार किया गया था।

3 फरवरी को पुलिस ने जम्मू तहसील के गाँव घो-मनहस में छापा मारा। ठाकुर रछपाल सिंह, जो कि जेल में है, के घर में पुलिस जबरन घुसी और बारह तोले सोना और 500 रुपए उनकी तिजोरी से लूट लिए। पुलिस ने उनकी पत्नी के साथ दुर्व्यवहार किया

और घर की नौकरानी को नग्न किया तथा उस पर आपराधिक हमला किया।

सत्याग्रहियों, विशेष रूप से महिलाओं के साथ, जेलों के अंदर और बाहर हो रहे दुर्व्यवहार के ख़िलाफ़ ऊधमपुर में दस महिलाओं को भूख हड़ताल के माध्यम से विरोध प्रदर्शन करना पड़ा।

महिलाओं के ख़िलाफ़ इन अपराधों का सबसे बीभत्स पहलू यह है कि पुलिस को मादक पेय देने के बाद भेजा जा रहा है, ताकि वह सत्याग्रहियों के साथ विशेष रूप से क्रूर और मूर्खतापूर्ण ढंग से पेश आए, जिससे लोगों में आतंक पैदा किया जा सके।

सत्याग्रह के दूसरे चरण असहयोग और सविनय अवज्ञा आंदोलनों की शुरुआत के बाद से ही कश्मीर मिलिशिया और पुलिस ने ग्रामीण इलाकों में आतंक का राज क़ायम कर रखा है।

आतंक के इस अभियान के लिए पहले जम्मू, अखनूर और रियासी तहसीलों को चुना गया है। उन्हें पूरी तरह से पुलिस और मिलिशिया के रहमोकरम पर छोड़ दिया गया है, जो लोगों को आतंकित करने के लिए जत्थे बनाकर गाँवों पर छापे मार रहे हैं। कुछ सुस्पष्ट मामले निम्नानुसार हैं :

गाँव घो-मनहसान में श्री संतो महाजन को उनके अपने ही घर में धमकी दी गई और कान की तीन जोड़ी बालियों के साथ दो सौ रुपए लूट लिए गए।

कुलकारियाँ में कई घरों की पूरी तरह तलाशी ली गई और श्री मेवा सिंह के घर के सामान बाहर फेंक दिए गए। उन्हें बाद में गिरफ़्तार कर लिया गया था।

घो-मनहसान में श्री करतार सिंह की बेरहमी से पिटाई के कारण उनके घुटनों में फ्रैक्चर और मुँह के भीतर भारी घाव हो गए। श्री संसार सिंह छिब और श्री संतो गंभीर रूप से घायल हो गए।

18वीं माघ (फरवरी) पर गाँव गंजो में पंडित अभय राम के घर की तलाशी ली गई और घर की सभी महिलाओं को आतंकित किया गया।

उसी दिन शाम 4:00 बजे गाँव सहान में श्री बलदेव सिंह और श्री फकीर चंद महाजन के घरों पर छापे मारे गए। तलाशी के बाद छह हरिजनों को पीटा गया। उसी दिन शाम 5:00 बजे गाँव कारलोप में श्री राम और श्री नंद लाल के घरों पर छापे मारे गए। महिलाओं को मारपीट की धमकी देकर उनसे चाभियाँ जबरन छीन ली गईं। हरमुकंदपुरा के गाँव प्लोरा में शाम 7:00 बजे श्री राम चंद के घर की तलाशी ली गई और लगभग दो तोले सोने के साथ तेरह रुपए नकद छीन लिए गए। यहाँ पुलिस की पिटाई से दो व्यक्ति घायल हुए। 17वीं माघ (फरवरी) को गरोटा में श्री छज्जू राम के घर की तलाशी ली गई और घर के सदस्यों को अनैतिक ढंग से सताया गया। गाँव श्री पंडितान में पंडित सीता राम के घर की तलाशी में कुछ भी न मिलने पर हताश पुलिसकर्मियों ने घर के सभी

सदस्यों के साथ दुर्व्यवहार किया और उन्हें आतंकित किया गया। एक पड़ोसी को गिरफ़्तार कर लिया गया और उसके बाद उसे छोड़ दिया गया।

कार्यकर्ताओं की तलाश और लोगों को आतंकित करने की इस अनैतिक मुहिम में, पुलिस दल पलवल पहुँच गया और श्री राम चंद के घर की तलाशी ली गई। वहाँ कुछ भी नहीं मिलने पर यह पुलिस दल कनी कोट के लिए निकल गया। यहाँ श्री मुंशी लछमनदास और पंडित डेहरू राम के घरों की तलाशी ली गई। लेकिन कुछ भी नहीं पाया गया। बेईमान पुलिस अधिकारी इससे चिढ़कर अपना संतुलन खो बैठे और डाकपाल के साथ दस वर्ष के एक नाबालिग बच्चे को गिरफ़्तार कर लिया। उन दोनों को ज़बरदस्त पिटाई के बाद अगले दिन दोमाना में रिहा किया गया।

19वीं माघ (फरवरी) को गाँव परयाल में श्री बुधी सिंह के घर पर छापा मारा गया। उनके पुत्र श्री केओर सिंह और बहन को उनकी मौजूदगी में पीटा गया। जब उन्होंने शोर मचाया, तो उन्हें भी पीटा गया। तबसे वह बिस्तर पर पड़े हैं। उनके घर की अच्छी तरह तलाशी ली गई और नकद 800 रुपए छीन लिए गए। श्री केओर सिंह को भी गिरफ़्तार कर लिया गया। श्री वकील सिंह के घर पर छापा मारा गया और उन्होंने अपनी बेटी की शादी के लिए जो भी मिठाइयाँ और अन्य चीज़ें इकट्ठा की थीं, उन्हें जब्त कर लिया गया और 800 रुपए नकद भी ले लिए गए। श्री इंदर सिंह के घर पर छापा मारने और उनका कुछ सामान जब्त करने के बाद 'विजयी पार्टी' लौट गई।

गाँव लड्डोअर में श्री दीवान चंद के घर पर छापा मारा गया और उनके भाई को पीटा गया। एक स्थानीय हरिजन, जो पास खड़ा था, उसे उन्हें जूतों से पीटने का हुक्म दिया गया। इस तरह का अजीब आदेश मानने में अपनी झिझक के कारण उसे भी पीटा गया। लौटते समय पुलिस दल एक टिन केरोसिन तेल और ईंधन का एक पूरा ट्रक ले गया।

23 माघ (फरवरी) को सुबह दस बजे, गाँव माढ़ में श्री शत्रुघ्न के घर पर छापा मारा गया। एक कुरसी और महिलाओं के गहने ज़ब्त किए गए। श्री गाजु राम की मूँछें और उनके सिर के बालों का एक हिस्सा काट लिया गया। श्री दुर्गा दास को पीटा गया और गिरफ़्तार कर लिया गया था, लेकिन 40 रुपए की रिश्वत देने पर छोड़ दिया गया। इन आपराधिक अत्याचारों को करते हुए दिन में सभी चार ग्रामीणों के घरों पर छापा मारा गया। ग्रामीणों ने राहत की साँस तब ली, जब रात में पुलिस लौटना शुरू हुई।

24 माघ (फरवरी) को पुलिस अगौर होकर गरोटा की ओर बढ़ी। वहाँ पहुँचने पर श्री कविराज छज्जू राम के घर पर हमला बोला गया, जो निरर्थक साबित हुआ और पुलिस को ख़ाली हाथ लौटना पड़ा।

22 माघ (फरवरी) को अपने साथ किए गए अमानवीय व्यवहार के ख़िलाफ़

संग्रामपुर के निवासियों द्वारा अदालत में दिए गए आवेदनों से चिढ़कर पुलिस ने फिर 24 माघ (फरवरी) को पूरे गाँव को घेर लिया। आतंक से त्रस्त गाँव के असहाय और निर्दोष लोग, जिनमें युवा और वृद्ध पुरुष और महिलाएँ दोनों थे, गाँव से भाग गए। लेकिन श्री ढाणी सहित, जो एक महाजन हैं, उनमें से कई लोगों को पाकिस्तानी आक्रमण के दृश्य का अहसास हुआ। श्री ढाणी को तब पीटा गया, जब वह भाग रहे थे। श्री शिब राम लोंगु, श्री चत्रो दास और श्री राम दास से साथ गंभीर हाथापाई की गई। श्री चत्रो दास के सिर से रक्त बहने लगा। जम्मू से लगभग आठ मील की दूरी पर नहर के तट पर एक गाँव दोमाना में एक मिठाई विक्रेता की सभी मिठाइयाँ लूट ली गईं, जो उसके परिवार की आमदनी का एकमात्र स्रोत था।

21 माघ (फरवरी) को पुलिस ने फिर से घो-मनहस और रठुआ गाँवों में छापे मारे। श्री काला राम के बेटे को बुरी तरह पीटा गया और उनके घर की तलाशी ली गई, लेकिन सुश्री रामप्यारी को नहीं खोज सके। रठुआ में चौ. रामलाल टेंपो की दस वर्षीय बेटी से चाबियाँ छीन ली गईं और फिर उनके घर की तलाशी ली गई। रठुआ के श्री बाजुरा योगी को बुरी तरह पीटा गया। पुलिस ने वहाँ घोषणा की कि जो कोई भी उनके बैलों को पानी देता पाया जाएगा, उसे गंभीर सज़ा दी जाएगी। पुलिस ने केरोसिन तेल मँगा लिया, ताकि उनके घर में आग लगाई जा सके।

28 फागुन, 2009 (28 मार्च,1952) को, बिलवर में एक जुलूस में गिरफ़्तार किए गए 28 लोगों को आधी रात को निर्दयतापूर्वक पीटा गया। जम्मू के इस बेहद ठंडे क्षेत्र में, उन्हें बिस्तर प्रदान नहीं किए गए और उन्हें पानी तथा भोजन के बिना पूरे तीन दिन बिताने के लिए मजबूर किया गया। पुलिस और मिलिशिया के बर्फ़ीले हाथों पीटे गए सत्याग्रहियों से कुछ को सूजन हो गई है।

बशोली तहसील के गाँव बिलवर में, सेना के एक व्यक्ति की, जिसे बहुत अधिक पीटा गया था, 27 फागुन, 2009 (27 मार्च,1952) को मृत्यु हो गई।

पास के गाँव में एक दुकान तक जा रहे कुछ ग्रामीणों और बगल के ही एक और गाँव में पूजा के लिए मंदिर जा रहे ग्रामीणों के एक अन्य समूह को रास्ते में क्रूरतापूर्वक पीटा गया।

इसी तहसील में रामकोट क्षेत्र में सैकड़ों की संख्या में कश्मीर मिलिशिया और पुलिस ने गाँवों में प्रवेश किया, पुरुषों को पीटा और महिलाओं के साथ बदसलूकी की। सबको आतंकित करके उनकी संपत्ति लूट ली। परिणाम यह हुआ है कि इस क्षेत्र के लोगों ने अपने घर छोड़ दिए हैं और पुलिस के अत्याचारों से बचने के लिए भागकर जंगलों में रहने का सहारा लिया है।

जम्मू तहसील के श्री रिछपाल सिंह के घर की तलाशी के दौरान खाना पकाने वाली

उनकी एक घरेलू नौकरानी को पुलिस द्वारा पूरी तरह नग्न कर दिया गया।

पुलिस ने कैसे क्रूरतापूर्वक लाठीचार्ज किया, इसकी कल्पना इस तथ्य से अच्छी तरह की जा सकती है कि दो ग्रामीणों, भगत सिंह और श्री तेजा सिंह की खोपड़ियाँ टूट गई थीं।

अखनूर में सेना के दो जवानों श्री बैकुंठ सिंह और श्री प्रीतम सिंह को जो छुट्टी पर थे, पुलिस द्वारा उस समय गिरफ़्तार किया गया था, जब वे कैंटीन जा रहे थे, और पूरे 15 दिनों तक उन्हें हिरासत में रखा गया था।

सैकड़ों मिलिशिया सैनिकों और पुलिसकर्मियों ने इलाके के मुसलमानों की मदद से तहसील नौशेरा के गाँव कवाना पर छापा मारा और गाँव को लूट लिया।

लगभग 100 कश्मीरी मिलिशिया सैनिकों ने तहसील अखनूर में पाकिस्तान सीमा के पास गाँव कोट मेहरा पर छापा मारा और गाँव के निवासियों को बुरी तरह पीटने के बाद 4000 रुपए की संपत्ति लूट ली।

सरकार ने पाकिस्तान की सीमा पर बोकर, दादोरा, भगवान् चक, सजाना और सानिआल जैसे गाँवों में वितरित किए गए हथियारों को वापस ले लिया है। इसका नतीजा इन क्षेत्रों में पाकिस्तानी हमलों में वृद्धि के रूप में निकला है।

—पुस्तक, 1953

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

भारत के पुण्यक्षेत्र

शक्तिपीठ

हिंदू धर्म के पुराणों के अनुसार जहाँ-जहाँ सती के अंग या शरीर के टुकड़े, धारण किए वस्त्र या आभूषण गिरे, वहाँ-वहाँ तीर्थ बन गए। यही तीर्थ शक्तिपीठ कहे जाते हैं। शक्तिपीठ शाक्त मत के अनुसार साधना के अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थल हैं। ये तीर्थ पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में फैले हुए हैं।

देवी पुराण में 51 शक्तिपीठों का वर्णन है। यद्यपि देवी भागवत में 108 तथा देवी गीता में 72 शक्तिपीठों की चर्चा मिलती है। तंत्र चूडामणि में शक्तिपीठों की संख्या 52 बताई गई है। भारत-विभाजन के बाद इनमें से एक शक्ति पीठ पाकिस्तान में चला गया और 4 बांग्लादेश में। इनके अतिरिक्त 1 शक्तिपीठ श्रीलंका, 1 तिब्बत तथा 2 नेपाल में हैं। इस प्रकार आज के भारत में केवल 42 शक्तिपीठ हैं।

51 शक्तिपीठों का संक्षिप्त विवरण

1. किरीट शक्तिपीठ : पश्चिम बंगाल में हुगली नदी के तट पर लालबाग कोट पर स्थित है किरीट शक्तिपीठ। यहाँ सती माता का किरीट अर्थात् मुकुट गिरा था। यहाँ की शक्ति विमला अथवा भुवनेश्वरी तथा भैरव संवर्त हैं। कुछ विद्वान् मुकुट का निपात कानपुर के मुक्तेश्वरी मंदिर में मानते हैं।

2. कात्यायनी पीठ वृंदावन : उत्तर प्रदेश मथुरा जनपद स्थित वृंदावन में स्थित है कात्यायनी वृंदावन शक्तिपीठ। यहाँ सती का केशपाश गिरा था। यहाँ की शक्ति देवी कात्यायनी हैं। यहाँ माता सती 'उमा' तथा भगवान् शंकर 'भूतेश' के नाम से जाने जाते हैं।

3. करवीर शक्तिपीठ : महाराष्ट्र के कोल्हापुर में स्थित 'महालक्ष्मी' अथवा 'अंबाई का मंदिर' ही यह शक्तिपीठ है। यहाँ माता का त्रिनेत्र गिरा था। यहाँ की शक्ति 'महिषमर्दिनी' तथा भैरव क्रोधिश हैं। यहाँ महालक्ष्मी का निवास माना जाता है।

4. श्रीपर्वत शक्तिपीठ : यहाँ की शक्ति श्रीसुंदरी एवं भैरव सुंदरानंद हैं। कुछ विद्वान् इसे लद्दाख (जम्मू-कश्मीर) में मानते हैं, तो कुछ असम के सिलहट से 4 कि.मी.

दक्षिण-पश्चिम स्थित जौनपुर में मानते हैं। यहाँ सती के 'दक्षिण तल्प' (कनपटी) का निपात हुआ था।

5. विशालाक्षी शक्तिपीठ : उत्तर प्रदेश, वाराणसी के मीरघाट पर स्थित है। यहाँ की शक्ति विशालाक्षी तथा भैरव कालभैरव हैं। यहाँ माता सती के दाहिने कान की मणि गिरी थी।

6. गोदावरी तट शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ आंध्र प्रदेश के राजमुंद्री ज़िले में गोदावरी नदी के तट पर अवस्थित है। यहाँ माता का बायाँ कपोल गिरा था। यहाँ की शक्ति विश्वेश्वरी तथा भैरव दंडपाणि हैं।

7. शुचींद्रम शक्तिपीठ : तमिलनाडु में तीन महासागर के संगम-स्थल कन्याकुमारी से 13 किमी दूर शुचींद्रम में स्थाणु शिव का मंदिर है। उसी मंदिर परिसर में यह शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती के ऊपरी दाँत गिरे थे। यहाँ की शक्ति नारायणी तथा भैरव संहार हैं।

8. पंचसागर शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ वाराणसी के निकट स्थित है। यहाँ माता के निचले दाँत गिरे थे। यहाँ की शक्ति वाराही तथा भैरव महारुद्र हैं।

9. ज्वालामुखी शक्तिपीठ : हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा में स्थित है यह शक्तिपीठ, जहाँ सती का जिह्वा गिरी थी। यहाँ की शक्ति सिद्धिदा व भैरव उन्मत्त हैं।

10. हरसिद्धि शक्तिपीठ (उज्जयिनी शक्तिपीठ) : इस शक्तिपीठ की स्थिति को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ उज्जैन के निकट शिप्रा नदी के तट पर स्थित भैरव पर्वत को, तो कुछ गुजरात के गिरनार पर्वत के सन्निकट भैरव पर्वत को वास्तविक शक्तिपीठ मानते हैं। अत: दोनों ही स्थानों पर शक्तिपीठ की मान्यता है। इस स्थान पर सती की कोहनी गिरी थी। अत: यहाँ कोहनी की पूजा होती है।

11. अट्टहास शक्तिपीठ : अट्टहास शक्तिपीठ पश्चिम बंगाल के लाबपुर (लामपुर) रेलवे स्टेशन वर्द्धमान से लगभग 95 किलोमीटर आगे कटवा-अहमदपुर रेलवे लाइन पर है, जहाँ सती का निचला होंठ गिरा था। इसे अट्टहास शक्तिपीठ कहा जाता है।

12. जनस्थान शक्तिपीठ : महाराष्ट्र के नासिक में पंचवटी में स्थित है जनस्थान शक्तिपीठ, जहाँ माता की ठुड्डी गिरी थी। यहाँ की शक्ति भ्रामरी तथा भैरव विकृताक्ष हैं। मध्य रेलवे के मुंबई-दिल्ली मुख्य रेलमार्ग पर नासिक रोड स्टेशन से लगभग 8 कि.मी. दूर पंचवटी नामक स्थान पर स्थित भद्रकाली मंदिर ही शक्तिपीठ है। यहाँ की शक्ति भ्रामरी तथा भैरव विकृताक्ष हैं।

13. कश्मीर शक्तिपीठ : कश्मीर में अमरनाथ गुफ़ा के भीतर हिम शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती का कंठ गिरा था। यहाँ सती महामाया तथा शिव त्रिसंध्येश्वर कहलाते हैं। श्रावण पूर्णिमा को अमरनाथ के दर्शन के साथ यह शक्तिपीठ भी दिखता है।

14. नंदीपुर शक्तिपीठ : पश्चिम बंगाल के बोलपुर (शांतिनिकेतन) से 33 किमी दूर सैंथिया रेलवे जंक्शन के निकट ही एक वटवृक्ष के नीचे देवी मंदिर है। यहाँ देवी का

कंठ हार गिरा था। यहाँ की शक्ति नंदिनी तथा भैरव नंदिकेश्वर हैं।

15. श्रीशैल शक्तिपीठ : आंध्र प्रदेश की राजधानी हैदराबाद से 250 कि.मी. दूर कुर्नूल के पास श्रीशैलम है, जहाँ सती की 'ग्रीवा' गिरी थी। यहाँ की सती महालक्ष्मी तथा शिव संबरानंद हैं।

16. नलहाटी शक्तिपीठ : पश्चिम बंगाल के बीरभूम जिले में है यह शक्तिपीठ। यहाँ माता की उदरनली गिरी थी। यहाँ की शक्ति कालिका तथा भैरव योगेश हैं।

17. मिथिला शक्तिपीठ : यहाँ माता सती का बायाँ कंधा गिरा था। यहाँ की शक्ति उमा या महादेवी तथा भैरव महोदर हैं। इस शक्तिपीठ के स्थान को लेकर मतांतर हैं। मिथिला शक्तिपीठ के तीन स्थान माने जाते हैं। एक जनकपुर (नेपाल) से 51 किमी. दूर पूर्व दिशा में उच्चैठ नामक स्थान पर वन दुर्गा का मंदिर है। दूसरा बिहार के सहरसा स्टेशन के पास उग्रतारा और तीसरा समस्तीपुर के निकट जयमंगला देवी का मंदिर है। इन तीनों स्थानों को विद्वज्जन शक्तिपीठ मानते हैं।

18. रत्नावली शक्तिपीठ : रत्नावली शक्तिपीठ का निश्चित स्थान अज्ञात है, किंतु बंगाल पंजिका के अनुसार यह तमिलनाडु के मद्रास (चेन्नई) में कहीं है। यहाँ सती का दायाँ कंधा गिरा था। यहाँ की शक्ति कुमारी तथा भैरव शिव हैं।

19. अंबाजी शक्तिपीठ : यहाँ माता सती का उदर गिरा था। गुजरात में जूनागढ़ के गिरनार पर्वत पर स्थित माँ अंबाजी का मंदिर ही शक्तिपीठ है। मान्यता है कि इसी स्थान पर माता सती का ऊपरी होंठ गिरा था। यहाँ की शक्ति अवंती तथा भैरव लंबकर्ण है।

20. जालंधर शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ पंजाब के जालंधर में स्थित है। यहाँ माता सती का बायाँ स्तन गिरा था। यहाँ की शक्ति त्रिपुरमालिनी और भैरव भीषण के रूप में जाने जाते हैं। इसे त्रिपुरमालिनी शक्तिपीठ भी कहते हैं।

21. रामगिरि शक्तिपीठ : रामगिरि शक्तिपीठ की स्थिति को लेकर मतांतर हैं। कुछ विद्वान् मैहर स्थित शारदा मंदिर को शक्तिपीठ मानते हैं, तो कुछ चित्रकूट के शारदा मंदिर को। दोनों ही स्थान मध्य प्रदेश में हैं। यहाँ देवी के दाएँ स्तन का निपात हुआ था। यहाँ की शक्ति शिवानी तथा भैरव चंड हैं।

22. वैद्यनाथ का हार्द शक्तिपीठ : झारखंड के गिरिडीह जनपद में स्थित वैद्यनाथ का हार्द या हृदय पीठ शिव तथा सती के ऐक्य का प्रतीक है। यहाँ सती का हृदय गिरा था। यहाँ की शक्ति जयदुर्गा तथा भैरव वैद्यनाथ हैं।

23. बक्रेश्वर शक्तिपीठ : माता का यह शक्तिपीठ पश्चिम बंगाल के बीरभूम ज़िले में स्थित है, जहाँ माता का त्रिकूट (दोनों भौंहों के मध्य का स्थान) गिरा था। यहाँ की शक्ति महिषासुरमर्दिनी तथा भैरव बक्रनाथ हैं।

24. कन्याकुमारी शक्तिपीठ : तमिलनाडु में तीन सागरों—हिंद महासागर, अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी के संगम स्थल पर कन्याकुमारी का मंदिर है। यहीं भद्रकाली

का शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती की पीठ गिरी थी। यहाँ की शक्ति शर्वाणी तथा भैरव निमिष हैं।

25. बहुला शक्तिपीठ : पश्चिम बंगाल के बर्दवान जनपद में स्थित है बहुला शक्तिपीठ, जहाँ सती के वाम बाहु का पतन हुआ था। यहाँ की शक्ति बहुला तथा भैरव भीरुक हैं।

26. भैरव पर्वत शक्तिपीठ : इस शक्तिपीठ की स्थिति को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ उज्जैन के निकट शिप्रा नदी तट स्थित भैरव पर्वत को, तो कुछ गुजरात के गिरनार पर्वत के सन्निकट भैरव पर्वत को वास्तविक शक्तिपीठ मानते हैं। यहाँ माता सती की कुहनी का पतन हुआ था। यहाँ की शक्ति अवंती तथा भैरव लंबकर्ण हैं।

27. मणिवेदिका शक्तिपीठ : राजस्थान में अजमेर से 11 किलोमीटर दूर पुष्कर सरोवर के एक ओर पर्वत की चोटी पर स्थित है सावित्री मंदिर, जिसमें माँ की आभायुक्त, तेजस्वी प्रतिमा है तथा दूसरी ओर स्थित है गायत्री मंदिर। यह गायत्री मंदिर ही शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती के मणिबंध (कलाई) का पतन हुआ था। यहाँ की शक्ति गायत्री और भैरव सर्वानंद हैं।

28. प्रयाग शक्तिपीठ : तीर्थराज प्रयाग में माता सती के हाथ की अंगुली गिरी थी। यहाँ की शक्ति ललिता तथा भैरव भव हैं।

29. विरजा शक्तिपीठ : उत्कल (ओडीशा) में माता सती की नाभि गिरी थी। पुरी में जगन्नाथजी के मंदिर परिसर में स्थित विमला देवी का मंदिर ही यह शक्तिपीठ है। यहाँ की शक्ति विमला तथा भैरव जगत् हैं।

30. कांची शक्तिपीठ : तमिलनाडु में काँचीपुरम स्थित काली मंदिर ही शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती का कंकाल गिरा था। यहाँ की शक्ति देवगर्भा और भैरव रुद्र हैं।

31. कालमाधव शक्तिपीठ : कालमाधव में सती के वाम नितंब का निपात हुआ था। इस शक्तिपीठ के बारे में कोई निश्चित स्थान ज्ञात नहीं है। माना जाता है कि यह मध्य प्रदेश में कहीं है। यहाँ की शक्ति काली तथा भैरव असितांग हैं।

32. शोण शक्तिपीठ : मध्य प्रदेश के अमरकंटक स्थित नर्मदा मंदिर भी एक शक्तिपीठ है। यहाँ सती के दक्षिण नितंब का निपात हुआ था। यहाँ की शक्ति नर्मदा तथा भैरव भद्रसेन हैं।

33. कामाख्या शक्तिपीठ : असम के कामरूप जनपद में गुवाहाटी के पश्चिम भाग में नीलाचल पर्वत पर स्थित शक्तिपीठ कामाख्या के नाम से सुविख्यात है। यहाँ माता सती की योनि गिरी थी। यहाँ की शक्ति कामाख्या और भैरव उमानंद हैं।

34. जयंती शक्तिपीठ : मेघालय की जयंतिया पहाड़ी पर है जयंती शक्तिपीठ। यहाँ माता के वाम जंघा का निपात हुआ था। यहाँ की शक्ति जयंती और भैरव क्रमदीश्वर हैं।

35. मगध शक्तिपीठ : बिहार की राजधानी पटना में स्थित पटनेश्वरी देवी को भी

शक्तिपीठ माना जाता है, जहाँ माता की दाहिनी जंघा गिरी थी। यहाँ की शक्ति सर्वानंदकरी तथा भैरव व्योमकेश हैं।

36. त्रिस्तोता शक्तिपीठ : पश्चिम बंगाल के जलपाईगुड़ी जनपद अंतर्गत बोदागंज के निकट स्थित मैनागुड़ी में तीस्ता नदी के तट पर त्रिस्तोता शक्तिपीठ है। जहाँ सती के वाम-चरण का पतन हुआ था। यहाँ की शक्ति भ्रामरी तथा भैरव ईश्वर हैं।

37. त्रिपुरसुंदरी शक्तिपीठ : त्रिपुरा राज्य के राधा किशोरपुर ग्राम के निकट पर्वत पर यह शक्तिपीठ स्थित है। यहाँ माता सती का दक्षिण पद गिरा था। यहाँ की शक्ति त्रिपुर सुंदरी तथा भैरव त्रिपुरेश हैं।

38. विभाष शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ पश्चिम बंगाल के मिदनापुर में है। यहाँ माता सती का बायाँ टखना गिरा था। यहाँ की शक्ति कपालिनी और भैरव सर्वानंद हैं।

39. देवीकूप शक्तिपीठ : हरियाणा राज्य के कुरुक्षेत्र नगर में द्वैपायन सरोवर के पास कुरुक्षेत्र शक्तिपीठ स्थित है, जिसे श्रीदेवीकूप भद्रकाली पीठ के नाम से जाना जाता है। यहाँ माता सती का दाहिना टखना गिरा था। यहाँ की शक्ति सावित्री तथा भैरव स्थाणु हैं।

40. युगाद्या शक्तिपीठ : पश्चिम बंगाल में वर्धमान जनपद के क्षीरग्राम में स्थित है युगाद्या शक्तिपीठ। तंत्र चूड़ामणि के अनुसार यहाँ माता सती के दाहिने चरण का अँगूठा गिरा था। यहाँ की शक्ति हैं युगाद्या तथा भैरव क्षीर कंटक।

41. विराट शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ राजस्थान की राजधानी जयपुर से उत्तर में महाभारतकालीन विराट नगर के प्राचीन ध्वंसावशेष के निकट एक गुफ़ा में है। इसे भीम की गुफ़ा कहते हैं। यहीं के वैराट गाँव में शक्तिपीठ स्थित है, जहाँ सती के दाएँ पाँव की अंगुलियाँ गिरी थीं। यहाँ की शक्ति अंबिका तथा भैरव अमृतेश्वर हैं।

42. कालीघाट काली मंदिर : पश्चिम बंगाल कि राजधानी कलकत्ता के काली घाट स्थित काली माता का मंदिर ही यह शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती की शेष अंगुलियाँ गिरी थीं। यहाँ की शक्ति कलिका तथा भैरव नकुलेश हैं।

43. मानस शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ तिब्बत में मानसरोवर के तट पर है। यहाँ माता सती की दाहिनी हथेली गिरी थी। यहाँ की शक्ति दाक्षायणी तथा भैरव अमर हैं।

44. लंका शक्तिपीठ : श्रीलंका के उत्तरी प्रांत में एक स्थान है नैनातिवु। यहाँ स्थित श्री नागपूशानी अम्मन मंदिर भी एक शक्तिपीठ है। यहाँ सती का नूपुर गिरा था। यहाँ की शक्ति इंद्राक्षी तथा भैरव राक्षसेश्वर हैं।

45. गंडकी शक्तिपीठ : नेपाल में गंडकी नदी के उद्‌गमस्थल पर गंडकी शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती के दक्षिण गंड का पतन हुआ था। यहाँ की शक्ति गंडकी तथा भैरव चक्रपाणि हैं।

46. गुह्येश्वरी शक्तिपीठ : नेपाल में पशुपतिनाथ मंदिर से थोड़ी दूर बागमती नदी की दूसरी ओर गुह्येश्वरी शक्तिपीठ है। यह नेपाल की अधिष्ठात्री देवी हैं। मंदिर में एक

छिद्र से निरंतर जल बहता रहता है। यहाँ माता सती के घुटने गिरे थे। यहाँ की शक्ति महामाया और भैरव कपाली हैं।

47. हिंगलाज शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ पाकिस्तान के बलूचिस्तान प्रांत के हिंगलाज में है। हिंगलाज कराची से 144 किलोमीटर दूर उत्तर-पश्चिम दिशा में हिंगोस नदी के तट पर है। यहाँ माता सती का ब्रह्मरंध्र गिरा था। यहाँ की शक्ति कोट्टरी तथा भैरव भीमलोचन हैं। यहाँ एक गुफ़ा के भीतर जाने पर माँ आदिशक्ति के ज्योति रूप के दर्शन होते हैं।

48. सुगंधा शक्तिपीठ : बांग्लादेश के बरीसाल में सुगंधा नदी के तट पर स्थित उग्रतारा देवी का मंदिर ही यह शक्तिपीठ है। इस स्थान पर सती की नासिका का निपात हुआ था। यहाँ की शक्ति सुगंधा और भैरव त्र्यंबक हैं।

49. करतोया घाट शक्तिपीठ : यह स्थल भी बांग्लादेश में है। बोगड़ा स्टेशन से 32 किलोमीटर दूर करतोया नदी के तट पर यह शक्तिपीठ स्थित है। यहाँ माता सती का वाम तल्प गिरा था। यहाँ की शक्ति अपर्णा तथा भैरव वामन हैं।

50. चट्टल शक्तिपीठ : बांग्लादेश में चटगाँव से 38 किमी. दूर सीताकुंड स्टेशन के पास चंद्रशेखर पर्वत पर भवानी मंदिर है। यह भवानी मंदिर ही शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती की दाहिनी बाँह गिरी थी। यहाँ की शक्ति भवानी तथा भैरव चंद्रशेखर हैं।

51. यशोर शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ बांग्लादेश के खुलना ज़िले के जैसोर नामक नगर में स्थित है। यहाँ सती की बाईं हथेली गिरी थी। यहाँ की शक्ति यशोश्वरी एवं भैरव चंड हैं।

सप्तपुरी

सप्तपुरी पुराणों में वर्णित सात मोक्षदायिका पुरियों को कहा गया है। इन पुरियों में काशी, कांची (कांचीपुरम), माया (हरिद्वार), अयोध्या, द्वारका, मथुरा और अवंतिका (उज्जयिनी) की गणना की गई है।

'काशी काँची च माया यातवयोध्याद्वारातऽपि, मथुराऽवन्तिका चैताः सप्तपुर्योऽत्र मोक्षदाः';

'अयोध्या-मथुरामायाकाशी काञ्चि अवन्तिका, पुरी द्वारावतीचैव सप्तैते मोक्षदायिकाः।'

पुराणों के अनुसार इन सात पुरियों या तीर्थों को मोक्षदायक कहा गया है। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

1. अयोध्या : अयोध्या उत्तर प्रदेश में सरयू नदी के तट पर स्थित एक क़सबा है। भगवान् श्रीराम का जन्म यहीं हुआ था। यह हिंदुओं के प्राचीन और सात पवित्र तीर्थस्थलों में से एक है। अयोध्या को अथर्ववेद में ईश्वर का नगर बताया गया है और इसकी संपन्नता की तुलना स्वर्ग से की गई है। रामायण के अनुसार अयोध्या की स्थापना मनु ने की थी। कई शताब्दियों तक यह नगर सूर्य वंश की राजधानी रहा। इसे मंदिरों का शहर कहा जाता है। यहाँ आज भी हिंदू, बौद्ध, इसलाम और जैन धर्म से जुड़े अवशेष देखे जा सकते हैं।

जैन मत के अनुसार यहाँ आदिनाथ सहित पाँच तीर्थंकरों का जन्म हुआ था।

2. मथुरा : पुराणों में मथुरा के गौरवमय इतिहास का विषद विवरण मिलता है। अनेक धर्मों से संबंधित होने के कारण मथुरा में बसने और रहने का महत्त्व क्रमशः बढ़ता रहा। ऐसी मान्यता है कि यहाँ रहने मात्र से लोग पापरहित हो जाते हैं तथा मोक्ष को प्राप्त करते हैं। वराह पुराण में कहा गया है कि इस नगरी में जो लोग शुद्ध विचार से निवास करते हैं, वे मानव के रूप में साक्षात् देवता हैं। मथुरा में श्राद्ध करनेवालों के पूर्वजों को आध्यात्मिक मुक्ति मिलती है। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने मथुरा में तप करके नक्षत्रों में स्थान प्राप्त किया था। वराह पुराण में मथुरा की माप बीस योजन बताई गई है। इस मंडल में मथुरा, गोकुल, वृंदावन, गोवर्धन आदि नगर, ग्राम एवं मंदिर, तड़ाग, कुंड, वन एवं अगणित तीर्थों के होने का विवरण है। इनका विस्तृत वर्णन पुराणों में मिलता है। गंगा के समान ही यमुना के गौरवमय महत्त्व का भी विशद वर्णन किया गया है। पुराणों में वर्णित राजाओं के शासन एवं उनके वंशों का भी वर्णन प्राप्त होता है।

3. हरिद्वार : हरिद्वार उत्तराखंड में स्थित भारत के सात सबसे पवित्र तीर्थस्थलों में एक है। भारत के पौराणिक ग्रंथों और उपनिषदों में हरिद्वार को मायापुरी कहा गया है। हरिद्वार का अर्थ ही है, हरि तक पहुँचने का द्वार। सबसे पवित्र नदी गंगा के तट पर बसे इस शहर को धर्म की नगरी माना जाता है। सैकड़ों वर्षों से लोग मोक्ष प्राप्ति के लक्ष्य से इस पवित्र भूमि में आते रहे हैं। पवित्र नदी गंगा में डुबकी लगाकर अपने पापों का नाश करने के लिए साल भर यहाँ श्रद्धालुओं का आना-जाना हमेशा लगा रहता है। गंगा नदी पहाड़ी इलाकों को पीछे छोड़ती हुई हरिद्वार से ही मैदानी क्षेत्र में प्रवेश करती है। उत्तराखंड क्षेत्र के चार प्रमुख तीर्थस्थलों का प्रवेशद्वार हरिद्वार ही है। संपूर्ण हरिद्वार में सिद्धपीठ, शक्तिपीठ और अनेक नए-पुराने मंदिर बने हुए हैं।

4. काशी : वाराणसी, काशी अथवा बनारस उत्तर प्रदेश का एक प्राचीन और धार्मिक महत्ता रखनेवाला शहर है। गंगा नदी के किनारे बसे वाराणसी का पुराना नाम काशी है। दो नदियों वरुणा और असि के मध्य बसा होने के कारण इसका नाम वाराणसी पड़ा। यह विश्व का प्राचीनतम बसा हुआ शहर है। यह शहर हज़ारों वर्षों से उत्तर भारत का धार्मिक एवं सांस्कृतिक केंद्र रहा है। संस्कृत पढ़ने के लिए प्राचीन काल से ही लोग वाराणसी आया करते थे। वाराणसी के घरानों की संगीत में अपनी ही शैली है।

5. कांचीपुरम : कांचीपुरम तीर्थपुरी दक्षिण की काशी मानी जाती है, जो चेन्नई से लगभग 68 किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। कांचीपुरम को कांची भी कहा जाता है। यह आधुनिक काल में कांचीवरम के नाम से भी प्रसिद्ध है। अनुश्रुति है कि देवी के दर्शन के लिए ब्रह्माजी ने इस क्षेत्र में तप किया था। इसकी गणना मोक्षदायिनी सप्तपुरियों में की जाती है। कांची हरिहरात्मक पुरी है। इसके दो भाग शिवकांची और विष्णुकांची हैं।

6. अवंतिका : उज्जयिनी (उज्जैन) का प्राचीनतम नाम अवंतिका, अवंति नामक राजा के नाम पर था। इस जगह को पृथ्वी का नाभि देश कहा गया है। महर्षि संदीपन का आश्रम भी यहीं था। उज्जयिनी महाराज विक्रमादित्य की राजधानी थी। भारतीय ज्योतिष शास्त्र में देशांतर की शून्यरेखा उज्जयिनी से प्रारंभ हुई मानी जाती है। इसे कालिदास की नगरी के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ हर 12 वर्ष पर सिंहस्थ कुंभ मेला लगता है। भगवान् शिव के 12 ज्योतिर्लिंगों में एक महाकाल इस नगरी में स्थित है।

7. द्वारका : द्वारका का प्राचीन नाम कुशस्थली है। पौराणिक कथाओं के अनुसार महाराजा रैवतक के समुद्र में कुश बिछाकर यज्ञ करने के कारण ही इस नगरी का नाम कुशस्थली हुआ था। बाद में त्रिविक्रम भगवान् ने कुश नामक दानव का वध भी यहीं किया था। त्रिविक्रम का मंदिर द्वारका में रणछोड़जी के मंदिर के निकट है। ऐसा लगता है कि महाराज रैवतक (बलराम की पत्नी रेवती के पिता) ने प्रथम बार समुद्र में से कुछ भूमि बाहर निकाल कर यह नगरी बसाई होगी। हरिवंश पुराण के अनुसार कुशस्थली उस प्रदेश का नाम था, जहाँ यादवों ने द्वारका बसाई थी। विष्णु पुराण के अनुसार, आनर्त के रेवत नामक पुत्र हुआ, जिसने कुशस्थली नामक पुरी में रह कर आनर्त पर राज्य किया। विष्णु पुराण से सूचित होता है कि प्राचीन कुशावती के स्थान पर ही श्रीकृष्ण ने द्वारका बसाई थी—'कुशस्थली या तव भूप रम्या पुरी पुराभूदमरावतीव, सा द्वारका संप्रति तत्र चास्ते स केशवांशो बलदेवनामा'।

द्वादश ज्योतिर्लिंग

द्वादश ज्योतिर्लिंगों के संबंध में शिव पुराण की कोटि 'रुद्रसंहिता' में निम्नलिखित श्लोक दिया गया है—

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्॥
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारममलेश्वरम्॥ 1॥
परल्यां वैदयनाथं च डाकिन्यां भीमशङ्करम्॥
सेतुबन्धे तुरामेशं नागेशं दारुकावने॥ 2॥
वाराणस्यांच विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥
हिमालये तु केदारं घुश्मेशं च शिवालये॥ 3॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरूत्थाय यः पठेत्॥
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति॥ 4॥

शिव पुराण के कोटिरुद्र संहिता में वर्णित कथानक के अनुसार भगवान् शिवशंकर प्राणियों के कल्याण हेतु जगह-जगह तीर्थों में भ्रमण करते रहते हैं तथा लिंग के रूप में वहाँ निवास भी करते हैं। कुछ विशेष स्थानों पर शिव के उपासकों ने महती निष्ठा के साथ

तन्मय होकर भूतभावन की आराधना की थी। उनके भक्तिभाव के प्रेम से आकर्षित भगवान् शिव ने उन्हें दर्शन दिया तथा उनकी अभिलाषा भी पूरी की। उन स्थानों में आविर्भूत दयालु शिव अपने भक्तों के अनुरोध पर अपने अंशों से सदा के लिए वहीं अवस्थित हो गए। लिंग के रूप में साक्षात् भगवान् शिव जिन-जिन स्थानों में विराजमान हुए, वे हुए सभी तीर्थ के रूप में महत्त्व को प्राप्त हुए।

शिव द्वारा शिवलिंग रूप धारण

संपूर्ण तीर्थ ही लिंगमय है तथा सब कुछ लिंग में समाहित है। वैसे तो शिवलिंगों की गणना अत्यंत कठिन है। जो भी दृश्य दिखाई पड़ता है अथवा हम जिस किसी भी दृश्य का स्मरण करते हैं, वह सब भगवान् शिव का ही रूप है, उससे पृथक् कोई वस्तु नहीं है। संपूर्ण चराचर जगत् पर अनुग्रह करने के लिए ही भगवान् शिव ने देवता, असुर, गंधर्व, राक्षस तथा मनुष्यों सहित तीनों लोकों को लिंग के रूप में व्याप्त कर रखा है। संपूर्ण लोकों पर कृपा करने की दृष्टि से ही वे भगवान् महेश्वर तीर्थ में तथा विभिन्न जगहों में भी अनेक प्रकार के लिंग धारण करते हैं। जहाँ-जहाँ जब भी उनके भक्तों ने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनका स्मरण या चिंतन किया, वहीं वे प्रकट होकर विराजमान हो गए। जगत् का कल्याण करने हेतु भगवान् शिव ने स्वयं अपने स्वरूप के अनुकूल लिंग की परिकल्पना की और उसी में वे प्रतिष्ठित हो गए। ऐसे लिंगों की पूजा करके शिवभक्त सब प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। भूमंडल के लिंगों की गणना तो नहीं की जा सकती, किंतु उनमें कुछ प्रमुख शिवलिंग हैं।

शिव पुराण के अनुसार प्रमुख द्वादश ज्योतिर्लिंग इस प्रकार हैं, जिनके नाम श्रवण मात्र से मनुष्य का किया हुआ पाप दूर भाग जाता है—

1. सोमनाथ : प्रथम ज्योतिर्लिंग सौराष्ट्र में अवस्थित सोमनाथ का है। यह स्थान गुजरात प्रांत के काठियावाड़ के प्रभास क्षेत्र में है।

2. मल्लिकार्जुन : आंध्र प्रदेश के कुर्नूल ज़िले में कृष्णा नदी के तट पर श्रीशैलम पर्वत पर श्रीमल्लिकार्जुन विराजमान हैं। इसे दक्षिण का कैलाश कहते हैं।

3. महाकालेश्वर : तृतीय ज्योतिर्लिंग महाकाल या महाकालेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है। यह मध्य प्रदेश के उज्जैन नामक नगर में है, जिसे प्राचीनकाल में अवंतिका पुरी के नाम से भी जाना जाता रहा है।

4. ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग : चतुर्थ ज्योतिर्लिंग का नाम ओंकारेश्वर है। इन्हें ममलेश्वर और अमलेश्वर भी कहा जाता है। यह स्थान भी मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र में ही है। यह प्राकृतिक संपदा से भरपूर नर्मदा नदी के तट पर अवस्थित है।

5. केदारनाथ : पाँचवाँ ज्योतिर्लिंग हिमालय की चोटी पर विराजमान श्री केदारनाथजी का है। श्री केदारनाथ को केदारेश्वर भी कहा जाता है, जो उत्तराखंड में केदार नामक शिखर

पर विराजमान है। इस शिखर से पूरब दिशा में अलकनंदा नदी के किनारे भगवान् श्री बद्री विशाल का मंदिर है।

6. भीमशंकर : छठवें ज्योतिर्लिंग का नाम भीमशंकर है, जो डाकिनी पर अवस्थित है। यह स्थान महाराष्ट्र में मुंबई से पूरब तथा पूना से उत्तर की ओर स्थित है, जो भीमा नदी के किनारे सह्याद्रि पर्वत पर है। भीमा नदी भी इसी पर्वत से निकलती है।

7. विश्वनाथ : काशी (वाराणसी) में विराजमान भूतभावन भगवान् श्री विश्वनाथ को सातवाँ ज्योतिर्लिंग कहा गया है। कहते हैं, काशी तीनों लोकों में न्यारी नगरी है, जो भगवान् शिव के त्रिशूल पर विराजती है।

8. त्र्यबंकेश्वर : आठवें ज्योतिर्लिंग को त्र्यबंक के नाम से भी जाना जाता है। यह नासिक ज़िले में पंचवटी से लगभग अठारह मील की दूरी पर है। यह मंदिर ब्रह्मगिरि के पास गोदावरी नदी के किनारे अवस्थित है।

9. वैद्यनाथ : नवें ज्योतिर्लिंग वैद्यनाथ हैं। यह स्थान झारखंड प्रांत के देवघर जनपद में जसीडीह रेलवे स्टेशन के समीप है। पुराणों में इस जगह को चिताभूमि कहा गया है।

10. नागेश : नागेश नामक ज्योतिर्लिंग दसवें हैं। यह गुजरात के बड़ौदा क्षेत्र में गोमती द्वारका के समीप है। इस स्थान को दारुका वन भी कहा जाता है।

11. रामेश्वर : ग्यारहवें ज्योतिर्लिंग श्रीरामेश्वर हैं। रामेश्वर तीर्थ को ही सेतुबंध तीर्थ कहा जाता है। यह स्थान तमिलनाडु के रामनाथम जनपद में स्थित है। यहाँ समुद्र के किनारे भगवान् श्रीरामेश्वरम् का विशाल मंदिर शोभित है।

12. घुश्मेश्वर : बारहवें ज्योतिर्लिंग का नाम घुश्मेश्वर है। इन्हें कोई घृष्णेश्वर तो कोई घुसृणेश्वर के नाम से पुकारता हैं। यह स्थान महाराष्ट्र क्षेत्र के अंतर्गत दौलताबाद से लगभग अठारह किलोमीटर दूर बेरूलठ गाँव के पास है। इस स्थान को शिवालय भी कहा जाता है।

भारत के चार धाम

भारत के चारों कोनों पर स्थित हिंदू धर्म की चार प्रमुख पीठों को ही चार धाम कहते हैं। चारधाम की स्थापना जगद्गुरु आदि शंकराचार्य ने की थी। इनमें तीन—बद्रीनारायण, द्वारका और पुरी वैष्णव मठ हैं, जबकि एक रामेश्वरम् शैव मठ है। भूगोल की दृष्टि से देखें तो ये चारों धाम मिलकर एक विशुद्ध चतुर्भुज का निर्माण करते हैं। इनमें उत्तर में स्थित बद्रीनारायण और दक्षिण में स्थित रामेश्वरम् एक ही देशांतर पर स्थित हैं, जबकि पूरब पुरी और पश्चिम में द्वारका एक ही अक्षांश पर अवस्थित हैं। इस प्रकार राष्ट्र के चारों कोनों पर स्थित ये मठ भारत की सांस्कृतिक सीमा भी निर्धारित करते हैं। विद्वानों का मत है कि इनकी स्थापना के पीछे आदि शंकराचार्य का उद्देश्य यही रहा होगा कि लोग उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम चारों दिशाओं में स्थित इन धामों की यात्रा कर संपूर्ण भारत की सांस्कृतिक

विरासत को जानें-समझें। संभवत: इसीलिए प्रत्येक हिंदू के लिए चार धाम की यात्रा अनिवार्य कही जाती है।

1. पुरी (गोवर्धन पीठम्) : यह भारत के ओडिशा राज्य में बंगाल की खाड़ी के तट पर स्थित है। यहाँ वैष्णव संप्रदाय का मंदिर है, जो भगवान् विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण को समर्पित है। भगवान् श्रीकृष्ण को ही यहाँ जगन्नाथ के रूप में पूजा जाता है। यह भारत का अकेला मंदिर है, जहाँ भगवान् जगन्नाथ अपने अग्रज बलभद्र और भगिनी सुभद्रा के साथ पूजे जाते हैं। जगन्नाथ शब्द का अर्थ जगत् का स्वामी होता है। इस मंदिर का वार्षिक रथयात्रा उत्सव प्रसिद्ध है। इसमें मंदिर के तीनों मुख्य देवता—भगवान् जगन्नाथ, उनके बड़े भ्राता बलभद्र और भगिनी सुभद्रा, तीन अलग-अलग भव्य और सुसज्जित रथों में विराजमान होकर नगर की यात्रा को निकलते हैं। मध्य-काल से ही यह उत्सव अतीव हर्षोल्लस के साथ मनाया जाता है। इसके साथ ही यह उत्सव भारत के ढेरों वैष्णव कृष्ण मंदिरों में मनाया जाता है तथा यात्रा निकाली जाती है। यह मंदिर वैष्णव परंपराओं और संत रामानंद से जुड़ा हुआ है। यह गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के लिए विशेष महत्त्व रखता है। इस पंथ के संस्थापक श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् की ओर आकर्षित हुए थे और कई वर्षों तक पुरी में रहे भी थे।

2. रामेश्वरम्(शृंगेरीशरदापीठम्) : पवित्र तीर्थ रामेश्वरम् तमिलनाडु के रामनाथपुरम् ज़िले में स्थित है। यह तीर्थ चार धामों में से एक है। यहाँ स्थापित शिवलिंग द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक माना जाता है। भारत के उत्तर में काशी की जो मान्यता है, वही दक्षिण में रामेश्वरम् की है। रामेश्वरम् चेन्नई से लगभग सवा चार सौ मील दक्षिण-पूर्व में है। यह हिंद महासागर और बंगाल की खाड़ी से चारों ओर से घिरा हुआ एक शंख आकार का एक सुंदर द्वीप है। बहुत पहले यह द्वीप भारत की मुख्य भूमि के साथ जुड़ा हुआ था, परंतु बाद में सागर की लहरों ने इस मिलानेवाली कड़ी को काट डाला, जिससे वह चारों ओर पानी से घिरकर टापू बन गया। भगवान् राम ने लंका पर चढ़ाई करने से पूर्व यहाँ पत्थरों के एक सेतु का निर्माण करवाया था, जिस पर चढ़कर वानर सेना लंका पहुँची और विजय पाई। बाद में राम ने विभीषण के अनुरोध पर धनुष कोटि नामक स्थान पर यह सेतु तोड़ दिया था। आज भी इस 48 कि.मी लंबे आदि-सेतु के अवशेष सागर में दिखाई देते हैं। यहाँ के मंदिर के तीसरे प्रकार का गलियारा विश्व का सबसे लंबा गलियारा है।

3. द्वारका (द्वारकापीठम्) : द्वारका गुजरात की देवभूमि द्वारका ज़िले में स्थित एक नगर तथा तीर्थस्थल है। यह चार धामों के साथ-साथ सप्तपुरियों में भी एक है। यह नगरी भारत के पश्चिम में अरब सागर के किनारे बसी है। धर्मग्रंथों के अनुसार इसे श्रीकृष्ण ने बसाया था। यह श्रीकृष्ण की कर्मभूमि है। आधुनिक द्वारका एक शहर है। क़सबे के एक हिस्से के चारों ओर चाहरदीवारी खिंची है, इसके भीतर ही कई भव्य मंदिर हैं। काफ़ी समय से जाने-माने शोधकर्ता पुराणों में वर्णित द्वारका के रहस्य का पता लगाने में लगे हुए

हैं, लेकिन वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित कोई भी अध्ययन कार्य अभी तक पूरा नहीं हो सका है। 2005 में द्वारका के रहस्यों से परदा उठाने के लिए अभियान शुरू किया गया था। इस अभियान में भारतीय नौसेना ने भी मदद की। अभियान के दौरान समुद्र की गहराई में कटे-छँटे पत्थर मिले और यहाँ से लगभग 200 अन्य नमूने भी एकत्र किए, लेकिन आज तक यह तय नहीं हो पाया कि यह वही नगरी है या नहीं, जिसे भगवान् श्रीकृष्ण ने बसाया था। श्रीकृष्ण मथुरा में उत्पन्न हुए, गोकुल में पले, पर राज उन्होंने द्वारका में ही किया। यहाँ श्रीकृष्ण की पूजा रणछोड़जी के रूप में होती है।

4. बदरीनारायण धाम (ज्योतिर्मठपीठम्) : बदरीनारायण धाम जिसे बदरीनाथ मंदिर भी कहते हैं, उत्तराखंड राज्य में अलकनंदा नदी के किनारे स्थित है। यह मंदिर भगवान् विष्णु के रूप बदरीनाथ को समर्पित है। यह चार धाम में से एक है। ऋषिकेश से यह 294 किलोमीटर की दूरी पर उत्तर दिशा में स्थित है।

भारत की सात पवित्र नदियाँ

हिंदुओं द्वारा स्नान एवं धार्मिक कृत्यों के समय यह श्लोक याद किया जाता है :

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

अर्थात् गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु और कावेरी इन सातों नदियों के जल का सद्प्रभाव इस जल में व्याप्त हो।

यह केवल इन सात पवित्र नदियों का धार्मिक महत्त्व ही नहीं, भारत की सीमाओं का विस्तार भी बताता है। इनमें गंगा, यमुना और सरस्वती उत्तर से पूरब तक, गोदावरी, नर्मदा और कावेरी पश्चिम से दक्षिण तथा सिंधु पश्चिम से उत्तर तक भारत की सीमाएँ निर्धारित करती रही हैं।

वेद शब्द संस्कृत भाषा के 'विद्' धातु से बना है 'विद्' का अर्थ है—जानना, ज्ञान इत्यादि। 'वेद' हिंदू धर्म के प्राचीन पवित्र ग्रंथों का नाम है, इससे वैदिक संस्कृति प्रचलित हुई। ऐसी मान्यता है कि इनके मंत्रों को परमेश्वर ने प्राचीन ऋषियों को अप्रत्यक्ष रूप से सुनाया था। इसलिए वेदों को 'श्रुति' भी कहा जाता है। वेद प्राचीन भारत के वैदिक काल की वाचिक परंपरा की अनुपम कृति है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी पिछले चार-पाँच हज़ार वर्षों से चली आ रही है। वेद ही हिंदू धर्म के सर्वोच्च और सर्वोपरि धर्मग्रंथ हैं। वेद के असल मंत्र भाग को संहिता कहते हैं।

'सनातन धर्म' एवं 'भारतीय संस्कृति' का मूल आधार स्तंभ विश्व का अति प्राचीन और सर्वप्रथम वाङ्मय 'वेद' माना गया है। मानव जाति के लौकिक (सांसारिक) तथा पारमार्थिक अभ्युदय हेतु प्राकट्य होने से वेद को अनादि एवं नित्य कहा गया है। अति प्राचीनकालीन महा तपा, पुण्यपुंज ऋषियों के पवित्रतम अंत:करण में वेद के दर्शन हुए थे,

अत: उसका 'वेद' नाम प्राप्त हुआ। ब्रह्म का स्वरूप 'सत-चित-आनंद' होने से ब्रह्म को वेद का पर्यायवाची शब्द कहा गया है। इसीलिए वेद लौकिक एवं अलौकिक ज्ञान का साधन है। 'तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये' तात्पर्य यह कि कल्प के प्रारंभ में आदिकवि ब्रह्मा के हृदय में वेद का प्राकट्य हुआ।

वेद के प्रकार

ऋग्वेद : वेदों में सर्वप्रथम ऋग्वेद का निर्माण हुआ। यह पद्यात्मक है। यजुर्वेद गद्यमय है और सामवेद गीतात्मक है। ऋग्वेद में मंडल 10 हैं,1028 सूक्त हैं और 11 हज़ार मंत्र हैं। इसमें 5 शाखाएँ हैं—शाकल्प, वास्कल, अश्वलायन, शांखायन, मंडूकायन। ऋग्वेद के दशम मंडल में औषधि सूक्त हैं। इसके प्रणेता अर्थशास्त्र ऋषि हैं। इसमें औषधियों की संख्या 125 के लगभग निर्दिष्ट की गई है जो कि 107 स्थानों पर पाई जाती है। औषधि में सोम का विशेष वर्णन है। ऋग्वेद में च्यवन ऋषि को पुन: युवा करने का कथानक भी उद्धृत है और औषधियों से रोगों का नाश करना भी समाविष्ट है। इसमें जल चिकित्सा, वायु चिकित्सा, सौर चिकित्सा, मानस चिकित्सा एवं हवन द्वारा चिकित्सा का समावेश है

सामवेद : चार वेदों में सामवेद का नाम तीसरे क्रम में आता है। पर ऋग्वेद के एक मंत्र में ऋग्वेद से भी पहले सामवेद का नाम आने से कुछ विद्वान वेदों को एक के बाद एक रचना न मानकर प्रत्येक को स्वतंत्र रचना मानते हैं। सामवेद में गेय छंदों की अधिकता है, जिनका गान यज्ञों के समय होता था। 1824 मंत्रों के इस वेद में 75 मंत्रों को छोड़कर शेष सब मंत्र ऋग्वेद से ही संकलित हैं। इस वेद को संगीत शास्त्र का मूल माना जाता है। इसमें सविता, अग्नि और इंद्र देवताओं का प्राधान्य है। इसमें यज्ञ में गाने के लिए संगीतमय मंत्र हैं, यह वेद मुख्यत: गंधर्व लोगो के लिए होता है। इसमें मुख्य 3 शाखाएं हैं, 75 ऋचाएँ हैं विशेषकर संगीतशास्त्र का समावेश किया गया है।

यजुर्वेद : इसमें यज्ञ की असल प्रक्रिया के लिए गद्य मंत्र हैं, यह वेद मुख्यत: क्षत्रियों के लिए होता है। यजुर्वेद के दो भाग हैं—

1. कृष्ण : वैशंपायन ऋषि का संबंध कृष्ण से है। कृष्ण की चार शाखाएँ हैं।

2. शुक्ल : याज्ञवल्क्य ऋषि का संबंध शुक्ल से है। शुक्ल की दो शाखाएँ हैं। इसमें 40 अध्याय हैं। यजुर्वेद के एक मंत्र में 'ब्रीहिधान्यो' का वर्णन प्राप्त होता है। इसके अलावा, दिव्य वैद्य एवं कृषि विज्ञान का भी विषय समाहित है।

अथर्ववेद : इसमें जादू, चमत्कार, आरोग्य, यज्ञ के लिए मंत्र हैं, यह वेद मुख्यत: व्यापारियों के लिए होता है। इसमें 20 कांड हैं। अथर्ववेद में आठ खंड आते हैं, जिनमें भैषज वेद एवं धातु वेद, ये दो नाम स्पष्ट प्राप्त हैं।

छह शास्त्र : मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, योग, सांख्य, वेदांत।

अठारह पुराण : ब्रह्म पुराण, विष्णु पुराण, शिव पुराण, पद्म पुराण, भागवत पुराण,

नारद पुराण, अग्नि पुराण, मार्कंडेय पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, लिंग पुराण, स्कंद पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण, गरुड़ पुराण, ब्रह्मांड पुराण।

अखंडता के प्रतीक भारत के पुण्यक्षेत्र

अष्टविनायक

अष्टविनायक से अभिप्राय है आठ गणपति। यह आठ अति प्राचीन मंदिर भगवान् गणेश के आठ शक्तिपीठ भी कहलाते हैं, जो कि महाराष्ट्र में स्थित हैं। महाराष्ट्र में पुणे के समीप अष्टविनायक के आठ पवित्र मंदिर 20 से 110 किलोमीटर के क्षेत्र में स्थित हैं। इन मंदिरों का पौराणिक महत्त्व और इतिहास है। इनमें विराजित गणेश की प्रतिमाएँ स्वयंभू मानी जाती हैं, यानि यह स्वयं प्रगट हुई हैं। यह मानव निर्मित न होकर प्राकृतिक हैं। 'अष्टविनायक' के ये सभी आठ मंदिर अत्यंत पुराने और प्राचीन हैं। इन सभी का विशेष उल्लेख गणेश और मुद्गल पुराण, जो हिंदू धर्म के पवित्र ग्रंथों का समूह हैं, में किया गया है। इन आठ गणपति धामों की यात्रा अष्टविनायक तीर्थ यात्रा के नाम से जानी जाती है। इन पवित्र प्रतिमाओं के प्राप्त होने के क्रम के अनुसार ही अष्टविनायक की यात्रा भी की जाती है। अष्टविनायक दर्शन की शास्त्रोक्त क्रमबद्धता इस प्रकार है—

1. श्री मयूरेश्वर मंदिर : यह मंदिर पुणे से 80 किलोमीटर दूर स्थित मोरेगाँव में है। मयूरेश्वर मंदिर के चारों कोनों में मीनारें हैं और लंबे पत्थरों की दीवारें हैं। यहाँ चार द्वार हैं। ये चारों दरवाज़े चारों युग सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग के प्रतीक हैं। इस मंदिर के द्वार पर शिवजी के वाहन नंदी बैल की मूर्ति स्थापित है, इसका मुँह भगवान् गणेश की मूर्ति की ओर है। मंदिर में गणेशजी बैठी मुद्रा में विराजमान है तथा उनकी सूँड़ बाएँ हाथ की ओर है तथा उनकी चार भुजाएँ एवं तीन नेत्र हैं। मान्यताओं के अनुसार यहाँ गणेशजी ने मोर पर सवार होकर सिंधुरासुर से युद्ध किया था। इसी कारण यहाँ स्थित गणेशजी को मयूरेश्वर कहा जाता है।

2. सिद्धिविनायक मंदिर : अष्ट विनायक में दूसरे गणेश हैं सिद्धिविनायक। यह मंदिर पुणे से करीब 200 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। समीप ही भीम नदी है। यह क्षेत्र सिद्धटेक गाँव के अंतर्गत आता है। यह पुणे के सबसे पुराने मंदिरों में से एक है। मंदिर करीब 200 साल पुराना है। सिद्धटेक में सिद्धिविनायक मंदिर बहुत ही सिद्ध स्थान है। ऐसा माना जाता है कि यहाँ भगवान् विष्णु ने सिद्धियाँ हासिल की थीं। सिद्धिविनायक मंदिर एक पहाड़ की चोटी पर बना हुआ है। जिसका मुख्य द्वार उत्तर दिशा की ओर है। मंदिर की परिक्रमा के लिए पहाड़ी की यात्रा करनी होती है। यहाँ गणेशजी की मूर्ति 3 फीट ऊँची और ढाई फीट चौड़ी है। मूर्ति का मुख उत्तर दिशा की ओर है। भगवान् गणेश की सूँड़ सीधे हाथ की ओर है।

3. श्रीबल्लालेश्वर मंदिर : अष्टविनायक में अगला मंदिर है श्री बल्लालेश्वर का।

यह महाराष्ट्र के रायगढ़ जनपद अंतर्गत पाली गाँव में है। इस मंदिर का नाम गणेशजी के भक्त बल्लाल के नाम पर पड़ा है। प्राचीन काल में बल्लाल नाम का एक लड़का था, वह गणेशजी का परम भक्त था। एक दिन उसने पाली गाँव में विशेष पूजा का आयोजन किया। पूजन कई दिनों तक चलता रहा। पूजा में शामिल कई बच्चे घर लौटकर नहीं गए और वहीं बैठे रहे। इस कारण उन बच्चों के माता-पिता ने बल्लाल को पीटा और गणेशजी की प्रतिमा के साथ उसे भी जंगल में फेंक दिया। गंभीर हालत में बल्लाल गणेशजी के मंत्रों का जप कर रहा था। इस भक्ति से प्रसन्न होकर गणेश जी ने उसे दर्शन दिए। तब बल्लाल ने गणेशजी से आग्रह किया अब वे इसी स्थान पर निवास करें। गणपति ने आग्रह मान लिया।

4. श्रीवरदविनायक : अष्टविनायक में चौथे गणेश हैं श्रीवरदविनायक। यह मंदिर महाराष्ट्र के रायगढ़ ज़िले के कोल्हापुर क्षेत्र में स्थित है। यहाँ एक सुंदर पर्वतीय गाँव है महाड़। इसी गाँव में है श्री वरदविनायक मंदिर। यहाँ प्रचलित मान्यता के अनुसार वरदविनायक भक्तों की सभी कामनाओं के पूरा होने का वरदान प्रदान करते हैं। इस मंदिर में नंददीप नाम का एक दीपक है, जो कई वर्षों से प्रज्वलित है। वरदविनायक का नाम लेने भात्र से ही सारी कामनाओं के पूरा होने का वरदान प्राप्त होता है।

5. चिंतामणि गणपति : अष्टविनायक में पाँचवें गणेश हैं चिंतामणि गणपति। यह मंदिर पुणे ज़िले के हवेली क्षेत्र में स्थित है। मंदिर के पास ही तीन नदियों का संगम है। ये तीन नदियाँ हैं भीम, मुला और मुथा। यदि किसी भक्त का मन बहुत विचलित है और जीवन में दु:ख ही दु:ख प्राप्त हो रहे हैं तो इस मंदिर में आने पर ये सभी समस्याएँ दूर हो जाती हैं। ऐसी मान्यता है कि स्वयं भगवान् ब्रह्मा ने अपने विचलित मन को वश में करने के लिए इसी स्थान पर तपस्या की थी।

6. श्री गिरजात्मज गणपति : अष्टविनायक में अगले गणपति हैं श्री गिरजात्मज। यह मंदिर पुणे-नासिक राजमार्ग पर पुणे से करीब 90 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। क्षेत्र के नारायण गाँव से इस मंदिर की दूरी 12 किलोमीटर है। गिरजात्मज का अर्थ है गिरिजा यानी माता पार्वती के पुत्र गणेश। यह मंदिर एक पहाड़ पर बौद्ध गुफ़ाओं के स्थान पर बनाया गया है। यहां लेनयादरी पहाड़ पर 18 बौद्ध गुफ़ाएँ हैं और इनमें से 8वीं गुफ़ा में गिरजात्मज विनायक मंदिर है। इन गुफ़ाओं को 'गणेश गुफ़ा' भी कहा जाता है। मंदिर तक पहुँचने के लिए करीब 300 सीढ़ियाँ चढ़नी होती हैं। यह पूरा मंदिर ही एक बड़े पत्थर को काटकर बनाया गया है।

7. विघ्नेश्वर गणपति : अष्टविनायक में सातवें गणेश हैं विघ्नेश्वर गणपति। यह मंदिर पुणे के ओझर ज़िले में जूनर क्षेत्र में स्थित है। यह पुणे-नासिक रोड पर नारायण गाँव से जूनर या ओजर होकर करीब 85 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। प्रचलित कथा के अनुसार विघनासुर नामक एक असुर था, जो संतों को प्रताणित कर रहा था। भगवान् गणेश ने इसी क्षेत्र में उस असुर का वध किया और सभी को कष्टों से मुक्ति दिलवाई।

तभी से यह मंदिर विघ्नेश्वर, विघ्नहर्ता और विघ्नहार के रूप में जाना जाता है।

8. महागणपति : अष्टविनायक मंदिर के आठवें गणेशजी हैं महागणपति। मंदिर पुणे के रांजण गाँव में स्थित है। यह पुणे-अहमदनगर राजमार्ग पर 50 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस मंदिर का इतिहास 9-10वीं सदी के बीच माना जाता है। मंदिर का प्रवेश-द्वार पूर्व दिशा की ओर है जो कि बहुत विशाल और सुंदर है। भगवान् गणपति की मूर्ति को माहोतक नाम से भी जाना जाता है। यहाँ की गणेशजी प्रतिमा अद्भुत है। प्रचलित मान्यता के अनुसार मंदिर की मूल मूर्ति तहख़ाने की छिपी हुई है। पुराने समय में जब विदेशियों ने यहाँ आक्रमण किया था तो उनसे मूर्ति बचाने के लिए उसे तहख़ाने में छिपा दिया गया था।

9. उच्ची पिल्लैयार मंदिर, रॉकफोर्ट : दक्षिण भारत का प्रसिद्ध पहाड़ी क़िला मंदिर तमिलनाडु राज्य के त्रिची शहर के मध्य पहाड़ के शिखर पर स्थित है। चोल राजाओं की ओर से चट्टानों को काटकर इस मंदिर का निर्माण किया गया था। यहाँ भगवान् श्री गणेश का मंदिर है। पहाड़ के शिखर पर विराजमान होने के कारण गणेशजी को 'उच्ची पिल्लैयार' कहते हैं। यहाँ दूर-दूर से दर्शनार्थी दर्शन करने के लिए आते हैं।

10. कनिपक्कनम विनायक मंदिर, चित्तूर : आस्था और चमत्कार की ढेरों कहानियाँ खुद में समेटे कनिपक्कम विनायक का यह मंदिर आंध्र प्रदेश के चित्तूर ज़िले में मौजूद है। इस मंदिर की स्थापना 11वीं सदी में चोल राजा कुलोतुंग चोल प्रथम ने की थी। बाद में इसका विस्तार 1336 में विजयनगर साम्राज्य में किया गया। जितना प्राचीन यह मंदिर है, उतनी ही दिलचस्प इसके निर्माण के पीछे की कहानी भी है। कहते हैं, यहाँ हर दिन गणपति का आकार बढ़ता ही जा रहा है। साथ ही ऐसा भी मानते हैं कि अगर कुछ लोगों के बीच में कोई लड़ाई हो, तो यहाँ प्रार्थना करने से वह लड़ाई ख़त्म हो जाती है।

11. मनाकुला विनायगर मंदिर, पांडिचेरी : भगवान् श्रीगणेश का यह मंदिर पांडिचेरी में स्थित है। पर्यटकों के बीच ये मंदिर आकर्षण का विशेष केंद्र है। प्राचीन काल का होने के कारण इस मंदिर की बड़ी मान्यता है। कहते हैं कि क्षेत्र पर फ्रांस के क़ब्ज़े से पहले का है यह मंदिर। दूर-दराज से भक्त यहाँ भगवान् श्रीगणेश के दर्शन करने आते हैं।

12. मधुर महा गणपति मंदिर, केरल : इस मंदिर से जुड़ी सबसे रोचक बात यह है कि शुरुआत में यह भगवान् शिव का मंदिर हुआ करता था, लेकिन पुरानी कथा के अनुसार पुजारी के बेटे ने यहाँ भगवान् गणेश की प्रतिमा का निर्माण किया। पुजारी का यह बेटा छोटा सा बच्चा था। खेलते-खेलते मंदिर के गर्भगृह की दीवार पर बनाई हुई उसकी प्रतिमा धीरे-धीरे अपना आकार बढ़ाने लगी। वह हर दिन बड़ी और मोटी होती गई। उस समय से यह मंदिर भगवान् गणेश का बेहद खास मंदिर हो गया।

13. गणेश टोक (गंगटोक) सिक्किम : गणेश टोक मंदिर गंगटोक-नाथुला रोड से करीब 7 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह यहाँ करीब 6,500 फीट की ऊँची

पहाड़ी पर स्थित है। इस मंदिर के वैज्ञानिक नजरिए पर गौर करें तो इस मंदिर के बाहर खड़े होकर आप पूरे शहर का नजारा एक साथ ले सकते हैं।

14. मोती डूँगरी गणेश मंदिर, जयपुर : मोती डूँगरी गणेश मंदिर राजस्थान में जयपुर के प्रसिद्ध मंदिरों में से एक है। यह मंदिर भगवान् गणेश को समर्पित है। लोगों की इसमें विशेष आस्था तथा विश्वास है। गणेश चतुर्थी के अवसर पर यहाँ काफ़ी भीड़ रहती है और दूर-दूर से लोग दर्शनों के लिए आते हैं। भगवान् गणेश का यह मंदिर जयपुर वासियों की आस्था का प्रमुख केंद्र है। इतिहासकार बताते हैं कि यहाँ स्थापित गणेश प्रतिमा जयपुर नरेश माधोसिंह प्रथम की पटरानी के पीहर मावली से 1761 में लाई गई थी। मावली में यह प्रतिमा गुजरात से लाई गई थी। उस समय यह पाँच सौ वर्ष पुरानी थी। जयपुर के नगर सेठ पल्लीवाल यह मूर्ति लेकर आए थे और उन्हीं की देखरेख में मोती डूँगरी की तलहटी में गणेश जी का मंदिर बनवाया गया था।

भारत के प्रमुख सूर्य मंदिर

भारत में सूर्योपासना की परंपरा बहुत पुरानी है। वैदिक वाङ्मय में सूर्य को ऊर्जा के अक्षयस्रोत और तेजपुंज के रूप में देखा गया है। वेदों में भगवान् सूर्य को पृथ्वी पर समस्त जीवन का स्रोत तथा संरक्षक कहा गया है और इनकी स्तुति में असंख्य ऋचाएँ हैं। इस तरह देखें तो भारत में सूर्य पूजा की परंपरा सहस्राब्दियों पुरानी है। पुराणों में सूर्योपासना के कई संदर्भ पाए जाते हैं। रामायण में महर्षि अगस्त्य भगवान् राम को सूर्य की उपासना के क्रम में आदित्य हृदय स्तोत्र के पाठ के लिए कहते हैं। सूर्यार्चन का यह क्रम संपूर्ण भारत में हमेशा विद्यमान रहा है, इसका प्रमाण पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में प्रतिष्ठित सूर्य मंदिर हैं। जहाँ तक द्वादश सूर्य मंदिरों की बात है, इस संबंध में जिन मंदिरों का उल्लेख मिलता है, वे हैं—देवार्क, पुण्यार्क, उलार्क, पंडार्क, कोणार्क, अंजार्क, लोलार्क, वेदार्क, मार्कंडेयार्क, दर्शनार्क, बालार्क और चाणार्क। यद्यपि इनमें से अधिकतर के बारे में अब ठीक-ठीक जानकारी उपलब्ध नहीं है। जनश्रुति के अनुसार इन सभी मंदिरों का निर्माण भगवान् श्रीकृष्ण एवं माता जांबवंती के पुत्र सांब ने करवाया था। पौराणिक मान्यता है कि श्री सांब को ऋषि दुर्वासा के शाप से कुष्ठरोग हो गया था। इससे मुक्ति के लिए उन्होंने लंबे समय तक सूर्यनारायण की तपस्या की। इससे प्रसन्न होकर सूर्यनारायण ने उनका रोग हर लिया। तदुपरांत भगवान् सूर्यनारायण के प्रति अपना आभार प्रकट करने के लिए सांब ने तीन स्थानों पर सूर्य मंदिरों का निर्माण कराया। ये स्थान हैं—कोणार्क, कालपी और मुलतान। इनमें कोणार्क में उन्होंने प्रातःकालीन सूर्य की प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई, जबकि कालपी में मध्याह्नकालीन और मुलतान में सायंकालीन। मुलतान में स्वर्ण प्रतिमा वाले भव्य सूर्य मंदिर का वर्णन ह्वेनसांग ने भी किया है। सूर्य के प्रमुख मंदिरों का विवरण इस प्रकार है—

1. कोणार्क : यह सूर्य नारायण का सर्वाधिक प्रसिद्ध मंदिर है। पुरी ज़िले के अंतर्गत एक छोटे से क़सबे में बंगाल की खाड़ी के समुद्रतट पर मौजूद यह मंदिर ओडिशा की राजधानी भुवनेश्वर से केवल 65 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहाँ मूल मंदिर त्रेतायुगीन बताया जाता है, लेकिन वर्तमान निर्माण राजा नरसिंहदेव-प्रथम के समय में हुआ। यह यूनेस्को द्वारा घोषित विश्व धरोहरों में से एक है। यह स्थापत्य कला का एक अद्वितीय नमूना है। यहाँ हर साल कोणार्क नृत्य महोत्सव भी होता है। हालाँकि अब मंदिर के मूल स्थापत्य के केवल भग्नावशेष ही शेष हैं, जिनकी देखरेख भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण द्वारा की जाती है।

2. कालप्रियनाथ : यह मंदिर उत्तर प्रदेश के कालपी नामक क़सबे में है। जालौन ज़िले में स्थित कालपी कानपुर शहर से केवल 65 किलोमीटर की दूरी पर है। यहाँ कालप्रियनाथ के रूप में भगवान् सूर्य नारायण का भव्य मंदिर है। इस मंदिर का निर्माण कब हुआ, इस बारे में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है, लेकिन ऐसा कहा जाता है कि विक्रमादित्य के नवरत्नों में एक रहे महान् गणितज्ञ एवं ज्योतिर्विद् वाराहमिहिर यहीं से नक्षत्रमंडल का अध्ययन किया करते थे।

3. आदित्य सूर्य मंदिर : यह मुलतान (अब पाकिस्तान) में स्थित था। मुलतान का मूलनाम कश्यपपुर था, जो बाद में यहाँ सूर्य मंदिर स्थापित होने के कारण मूल स्थान हो गया और यही बदल मुलतान बन गया। यहाँ सांब ने भगवान् सूर्य की सायंकालीन प्रतिमा स्थापित कराई थी। यूनानी सेनापति स्कायलैक, जो 515 ई.पू. में इधर से गुज़रा था, ने यहाँ अत्यंत भव्य सूर्य मंदिर होने का ज़िक्र किया है। बाद में हेरोडोटस, ह्वेनसांग और अलबरूनी ने भी यहाँ के भव्य सूर्यमंदिर का वर्णन किया है। ह्वेनसांग ने यहाँ भगवान् सूर्य की प्रतिमा प्रतिष्ठित होने तथा साथ ही भगवान् शिव और भगवान् बुद्ध की प्रतिमाएँ होने का भी वर्णन किया है। इस मंदिर को मुसलिम आक्रांता महमूद गज़नवी ने सन् 1026 में नष्ट कर डाला।

4. सूर्य पहाड़ मंदिर : यह असम के ग्वालपाड़ा कसबे के निकट है। यहाँ एक वृत्ताकार प्रस्तर खंड पर सूर्य की 12 छवियाँ स्थापित हैं। पुराणों में सूर्य के 12 रूपों का वर्णन है, जिन्हें द्वादशादित्य कहा जाता है। कालिका पुराण के अनुसार सूर्य पहर आदिकाल से ही सूर्य का स्थान है। यहाँ भगवान् सूर्य के अलावा उनके पिता कश्यप और माता अदिति की भी प्रतिमाएँ स्थापित हैं।

5. सूर्यनार मंदिर : यह तमिलनाडु के कुंभकोणम में स्थित है। इस मंदिर परिसर में काशी विश्वनाथ और विशालाक्षी की प्रतिमाएँ भी हैं। इनके अलावा अन्य आठ ग्रहों—चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु की प्रतिमाएँ भी यहाँ हैं।

6. सूर्य मंदिर, मोढेरा : भगवान् सूर्यनारायण का यह मंदिर गुजरात में है। मेहसाना से 25 किलोमीटर और राज्य की राजधानी अहमदाबाद से 102 किलोमीटर की दूरी पर

स्थित यह मंदिर पुष्पावती नदी के तट पर है। इसका निर्माण सन् 1026 में सोलंकी राजवंश के शासक भीमदेव ने कराया था। इस मंदिर में अभी भी पूजा-पाठ होता है और यह भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की देखरेख में है।

7. कनकादित्य मंदिर : यह महाराष्ट्र के सिंधुदुर्ग ज़िले में कशेली नामक गाँव में है। यहाँ स्थापित सूर्य प्रतिमा गुजरात से लाई गई थी। यहाँ सूर्य मंदिर के अलावा महाकाली, सरस्वती और महालक्ष्मी के मंदिर भी हैं।

8. बेलाउर सूर्य मंदिर : यह मंदिर बिहार के भोजपुर ज़िले के बेलाउर गाँव में अवस्थित है। इसे बेलार्क, उलार्क और उलार सूर्य मंदिर भी कहा जाता है। इस मंदिर का निर्माण राजा सूबा ने करवाया था। बाद में बेलाउर गाँव में कुल 52 पोखरे (तालाब) का निर्माण करानेवाले राजा सूबा को राजा बावन सूब के नाम से पुकारा जाने लगा। राजा द्वारा बनवाए 52 पोखरों में एक पोखर के मध्य में यह सूर्य मंदिर स्थित है।

9. झालरापाटन सूर्य मंदिर : राजस्थान में झालावाड़ का जुड़वाँ शहर है झालरापाटन। शहर के मध्य स्थित सूर्य मंदिर यहाँ का प्रमुख दर्शनीय स्थल है। वास्तुकला की दृष्टि से भी यह मंदिर महत्त्वपूर्ण है। इसका निर्माण 10वीं शताब्दी में मालवा के परमार वंशीय राजाओं ने करवाया था। मंदिर के गर्भगृह में भगवान् विष्णु की प्रतिमा विराजमान है, इसीलिए इसे पद्मनाभ मंदिर भी कहा जाता है।

10. औंगारी सूर्य मंदिर : नालंदा का प्रसिद्ध सूर्यधाम औंगारी और बडगाँव के सूर्य मंदिर देश भर में प्रसिद्ध हैं। ऐसी मान्यता है कि यहाँ के सूर्य तालाब में स्नान कर मंदिर में पूजा करने से कुष्ठ रोग सहित कई असाध्य व्याधियों से मुक्ति मिलती है। ऐसा कहा जाता है कि इस मंदिर का निर्माण भी सांब ने करवाया था। इसे बकोणार्क सूर्य मंदिर भी कहते हैं।

11. ब्रह्मण्य देव मंदिर : यह मध्य प्रदेश के दतिया ज़िले में स्थित गाँव उनाव में है। इस मंदिर में भगवान् सूर्य की पत्थर की मूर्ति है, जो एक ईंट से बने चबूतरे पर स्थित है। जिस पर काले धातु की परत चढ़ी हुई है। साथ ही, साथ 21 कलाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाले सूर्य के 21 त्रिभुजाकार प्रतीक मंदिर पर अवलंबित है।

12. रनकपुर सूर्य मंदिर : राजस्थान के रनकपुर नामक स्थान में अवस्थित यह सूर्य मंदिर, नागर शैली में सफ़ेद संगमरमर से बना है। भारतीय वास्तुकला का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता यह सूर्य मंदिर जैनियों के द्वारा बनवाया गया था, जो उदयपुर से क़रीब 98 किलोमीटर दूर स्थित है।

13. सूर्य मंदिर, राँची : राँची से 39 किलोमीटर की दूरी पर राँची-टाटा रोड पर स्थित यह सूर्य मंदिर बुंडू के समीप है। संगमरमर से निर्मित इस मंदिर का निर्माण 18 पहियों और 7 घोड़ों के रथ पर विद्यमान भगवान् सूर्य के रूप में किया गया है। 25 जनवरी को हर साल यहाँ विशेष मेले का आयोजन होता है।

14. दक्षिणार्क सूर्य मंदिर : यह मंदिर बिहार के गया नामक स्थान पर है। यहाँ सूर्य मंदिर गया के प्रसिद्ध विष्णुपाद मंदिर के निकट स्थित है। पूर्वाभिमुख सूर्य मंदिर के सामने ही सूर्य कुंड है। गर्भगृह के सामने एक विशाल सभा मंडप है, जिसमें बने स्तंभों पर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा और सूर्य की सुंदर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। इसके अलावा यहाँ सूर्य के दो और मंदिर हैं। इनमें एक है उत्तरक मंदिर, जो उत्तर मानस मंदिर के समीप है और दूसरा है गयादित्य मंदिर, जो फल्गु नदी के तट पर अवस्थित है।

15. पुण्यार्क सूर्य मंदिर : यह बिहार में बाढ़ से करीब 13 किलोमीटर की दूरी पर है। कहा जाता है कि यह मंदिर भी सांब द्वारा स्थापित है। देश भर में स्थापित अधिकतर सूर्य मंदिर पोखर और तालाबों के किनारे हैं, जबकि पुण्यार्क सूर्य मंदिर को इकलौते सूर्य मंदिर माना जाता है जो कि गंगा नदी के तट पर अवस्थित है।

16. देव सूर्य मंदिर : यह बिहार के देव (औरंगाबाद ज़िला) में स्थित सूर्य मंदिर है। यह मंदिर पूर्वाभिमुख न होकर पश्चिमाभिमुख है। यह मंदिर अपनी अनूठी शिल्प कला के लिए प्रख्यात है। पत्थरों को तराश कर बनाए गए, इस मंदिर की नक्काशी उत्कृष्ट शिल्प कला का नमूना है। प्रचलित मान्यता के अनुसार इसका निर्माण स्वयं भगवान् विश्वकर्मा ने किया है। इस मंदिर के बाहर संस्कृत में लिखे श्लोक के अनुसार 12 लाख 16 हजार वर्ष त्रेतायुग के गुजर जाने के बाद राजा इलापुत्र पुरूरवा ऐल ने इस सूर्य मंदिर का निर्माण प्रारंभ करवाया था। शिलालेख से पता चलता है कि पूर्व 2007 में इस पौराणिक मंदिर के निर्माणकाल का एक लाख पचास हजार सात वर्ष पूरा हुआ। पुरातत्त्वविद् इस मंदिर का निर्माण काल आठवीं-नौवीं सदी के बीच का मानते हैं। कहा जाता है कि सूर्य मंदिर के पत्थरों में विजय चिह्न व कलश अंकित हैं। विजय चिह्न यह दरशाता है कि शिल्प के कलाकार ने सूर्य मंदिर का निर्माण कर के ही शिल्प कला पर विजय प्राप्त की थी। देव सूर्य मंदिर के स्थापत्य कला के बारे में कई तरह की किंवदंतियाँ हैं। मंदिर के स्थापत्य से प्रतीत होता है कि मंदिर के निर्माण में उड़िया स्वरूप नागर शैली का समायोजन किया गया है। नक्काशीदार पत्थरों को देखकर भारतीय पुरातत्त्व विभाग के लोग मंदिर के निर्माण में नागर एवं द्रविड़ शैली का मिश्रित प्रभाव वाली वेसर शैली का भी समन्वय बताते हैं।

17. कटारमल सूर्य मंदिर : कटारमल सूर्य मंदिर उत्तराखंड में अल्मोड़ा के 'कटारमल' नामक स्थान पर स्थित है। इस कारण इसे 'कटारमल सूर्य मंदिर' कहा जाता है। यह सूर्य मंदिर न सिर्फ़ समूचे कुमाऊँ मंडल का सबसे विशाल, ऊँचा और अनूठा मंदिर है, बल्कि उड़ीसा के 'कोणार्क सूर्य मंदिर' के बाद एकमात्र प्राचीन सूर्य मंदिर भी है। 'भारतीय पुरातत्त्व विभाग' द्वारा इस मंदिर को संरक्षित स्मारक घोषित किया जा चुका है। यह मंदिर नौवीं या ग्यारहवीं शताब्दी में निर्मित हुआ माना जाता है।

18. मार्तंड सूर्य मंदिर : यह जम्मू-कश्मीर में अनंतनाग से 9 किलोमीटर उत्तर-पूर्व दिशा में एक पठार पर स्थित है। ऐसा माना जाता है कि मार्तंड कश्यप ऋषि के तीसरे पुत्र

का जन्मस्थान है। यद्यपि अब इस मंदिर के केवल अवशेष ही हैं, मुख्य मंदिर को मुसलिम आक्रांताओं ने ढहा दिया, लेकिन खँडहर इस बात के साक्षी हैं कि कभी यह बहुत ही भव्य मंदिर रहा होगा। इसका निर्माण 7वीं से 8वीं शताब्दी के बीच सूर्यवंशी राजा ललितादित्य ने कराया था। इसमें 84 स्तंभ हैं, जो नियमित अंतराल पर रखे गए हैं। मंदिर को बनाने के लिए चूने के पत्थर की चौकोर ईंटों का प्रयोग किया गया है। खँडहर हो चुके इस मंदिर की ऊँचाई अब केवल 20 फुट रह गई है। आक्रांता सिकंदर बुतशिकन को इस मंदिर की दीवारें ध्वस्त करने में ही एक साल लग गया था।

19. बिरंचिनारायण मंदिर : बुगुडा-बुगुडा नामक क़सबा ओडीशा के गंजम ज़िले में है। यह ऐतिहासिक क़सबा ओडीशा के प्रमुख शहर बरहामपुर से केवल 70 किलोमीटर दूर है। यहाँ स्थित सूर्य मंदिर का निर्माण राजा श्रीकर भंजदेव ने सन् 1790 में कराया था। लेकिन यहाँ प्रतिष्ठित सूर्य प्रतिमा अत्यंत प्राचीन है। यह प्रतिमा मालतीगढ़ के खँडहरों से प्राप्त की गई थी। यहाँ अर्चन के लिए सूर्य की मुख्य प्रतिमा लकड़ी की बनी हुई है। यह सूर्य मंदिर पश्चिमाभिमुख है।

20. बिरंचिनारायण मंदिर, पलिया : ओडीशा के भद्रक ज़िले में पलिया एक गाँव है। यह भद्रक से 15 किलोमीटर दूर दक्षिण दिशा में है। यहाँ स्थापित सूर्य प्रतिमा के दोनों हाथों में दो कमलपुष्प हैं। स्थापत्य की दृष्टि से यह मंदिर 13वीं शताब्दी का बताया जाता है। इसका पुनरुद्धार 20वीं शताब्दी के आरंभ में के स्थानीय ज़मींदार ने कराया।

21. अरसावल्ली सूर्य मंदिर : अरसावल्ली आंध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम शहर का बाहरी हिस्सा है। इसका मूल नाम हर्षावल्ली है, हर्षावल्ली का अर्थ हर्ष का स्थान होता है। यहाँ स्थापित सूर्य मंदिर 7वीं शताब्दी में कलिंग शासक देवेंद्र वर्मा ने कराया था।

सात पर्वत

1. महेंद्र पर्वत
2. मलय पर्वत (नीलगिरि)
3. सह्याद्रि पर्वत
4. हिमालय पर्वत
5. रेवतक पर्वत (गिरनार)
6. विंध्याचल पर्वत
7. अरावली पर्वत

सात वन

1. दंडकारण्य
2. खंडकारण्य
3. चंपकारण्य
4. वेदारण्य
5. नैमिषारण्य
6. ब्रह्मारण्य
7. धर्मारण्य

पंच सरोवर

1. बिंदु सरोवर
2. नारायण सरोवर
3. पंपा सरोवर
4. पुष्पक झील सरोवर
5. मानसरोवर

सप्त द्वीप

1. जंबूद्वीप
2. प्लक्षद्वीप
3. शाल्मलद्वीप
4. कुशद्वीप
5. क्रौंचद्वीप
6. शाकद्वीप
7. पुष्करद्वीप

सप्त सागर

1. क्षीर सागर
2. दुधी सागर
3. घृत सागर
4. पायान सागर
5. मधु सागर
6. मदिरा सागर
7. लहू सागर

सप्त पाताल

1. अतल
2. वितल
3. नितल
4. गभस्तिमान
5. महातल
6. सुतल
7. पाताल

सप्त लोक

1. भूर्लोक
2. महर्लोक
3. भुवर्लोक
4. जनलोक
5. स्वर्लोक
6. तपोलोक
7. सत्पलोक (ब्रह्मलोक)

सप्त वायु

1. प्रवह
2. आवह
3. उद्वह
4. संवह
5. विवह
6. परिवह
7. परावह

□

संदर्भिका

ऊ

ए

औ

क

ख

य

र

स

ह

□□□

परिचय

भूमिका लेखक

श्री देवेंद्र स्वरूप

मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश) में 30 मार्च, 1926 को जन्म। विख्यात इतिहासकार। पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य। 'पाञ्चजन्य' का संपादन किया। 'अखंड भारत : स्वप्न और यथार्थ', 'गांधीजी : हिंद स्वराज से नेहरू तक', 'यह संविधान हमारा है या अंग्रेजों का' सहित कई पुस्तकें प्रकाशित।

वह काल लेखक

श्री जवाहरलाल कौल

जन्म 26 अगस्त, 1937, कश्मीर। कश्मीर यूनिवर्सिटी से हिंदी में एम.ए.। पत्रकारिता का आरंभ 1964 में 'हिंदुस्तान समाचार' से। अज्ञेय और रघुवीर सहाय के साथ 'दिनमान' में, 'जनसत्ता' से वरिष्ठ सहायक संपादक के तौर पर सेवानिवृत्त। बिड़ला फेलोशिप के अंतर्गत 'हिंदी पत्रकारिता का बाजार भाव' पुस्तक लिखी। 'पद्मश्री' से सम्मानित।

समर्पण परिचय लेखक

श्री अनिर्बाण गांगुली

11 अगस्त, 1976 को कोलकाता में जन्म। श्रीअरबिंदो आश्रम, पांडिचेरी से शिक्षा ग्रहण की। जादवपुर विश्वविद्यालय से शिक्षा नीति पर पी-एच.डी. की उपाधि। प्रमुख कृतियों में 'डिबेटिंग कल्चर : एजूकेशन, फिलॉसफी एंड प्रैक्टिस', 'स्वामी विवेकानंद, बुद्धा एंड बुद्धिज्म' एवं 'द मोदी डॉक्ट्रीन : रीडिफाइनिंग गवर्नेंस'। संप्रति डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी रिसर्च फाउंडेशन के निदेशक।
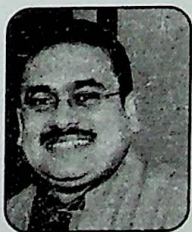
अनुसंधान एवं संपादन सहायक

श्री इष्ट देव सांकृत्यायन

- श्री राजेश राजन
- डॉ. विकास द्विवेदी
- श्रीमती सुमेधा मिश्रा
- श्री देवेश खंडेलवाल
- श्री राम शिरोमणि शुक्ल
- डॉ. अरुण भारद्वाज

टंकण एवं सज्जा

- श्री प्रेम प्रकाश राय
- श्री राकेश शुक्ल
- श्री नरेंद्र कुमार
- श्रीमती दीपा सूद

...शुक्ल ४ शके १८७७ [र. उ. ७।१७, र. अ. ६।२१

જાનેવારી તા. ૧૭ વાર મંગળ પોષ શુદી ૪ સંવત ૨૦૧૨

2.. TUESDAY 17th JANUARY 1956

डॉ. महेश चंद्र शर्मा

जन्म : राजस्थान के चुरू कस्बे में 7 सितंबर, 1948 को।

शिक्षा : बी.ए. ऑनर्स (हिंदी), एम.ए. एवं पी-एच.डी. (राजनीति शास्त्र)।

कृतित्व : 1973 में प्राध्यापक की नौकरी छोड़कर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक बने। आपातकाल में अगस्त 1975 से अप्रैल 1977 तक जयपुर जेल में 'मीसा' बंदी रहे। सन् 1977 से 1983 तक अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् में उत्तरांचल के संगठन मंत्री, 1983 से 1986 तक राजस्थान विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि के लिए 'दीनदयाल उपाध्याय का राजनैतिक जीवन चरित—कर्तृत्व व विचार सरणी' विषय पर शोधकार्य। 1983 से साप्ताहिक 'विश्ववार्ता' व 'अपना देश' स्तंभ नियमित रूप से भारत के प्रमुख समाचार-पत्रों में लिखते रहे।

सन् 1986 में 'दीनदयाल शोध संस्थान' के सचिव बने। शोध पत्रिका 'मंथन' का संपादन। 1986 से वार्षिक 'अखंड भारत स्मरणिका' का संपादन। 1996 से 2002 तक राजस्थान से राज्यसभा सदस्य एवं सदन में भाजपा के मुख्य सचेतक रहे। 2002 से 2004 तक नेहरू युवा केंद्र के उपाध्यक्ष। 2006 से 2008 तक भाजपा राजस्थान के अध्यक्ष। 2008-2009 राजस्थान विकास एवं निवेश बोर्ड के अध्यक्ष। 1999 से एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के अध्यक्ष। पंद्रह खंडों में प्रकाशित 'पं. दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय' के संपादक।
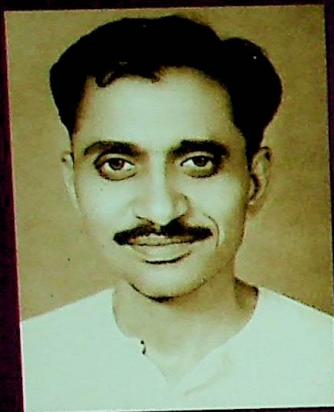
पं. दीनदयाल उपाध्याय का बचपन बहुत ही विकट स्थितियों में बीता, तो भी वे सदैव एक मेधावी छात्र के रूप में रेखांकित हुए। द्वि-राष्ट्रवाद की छाया ने जब भारत की आजादी की लड़ाई को आवृत्त कर लिया था, तब 1942 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माध्यम से उन्होंने अपना सार्वजनिक जीवन प्रारंभ किया। वे उत्तम संगठक, साहित्यकार, पत्रकार एवं वक्ता के नाते संघ-कार्य को बल देते रहे।

1951 में जब डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई, तभी उनका राजनीति में प्रवेश हुआ। देश की अखंडता के लिए कश्मीर आंदोलन, गोवा मुक्ति आंदोलन तथा बेरुबाड़ी के हस्तांतरण के विरुद्ध आंदोलन चलाकर उन्होंने भारत की राजनीति में स्वतंत्रता संग्राम के मुद्दों को जीवित रखा। भारत की अखंडता के लिए उनका पूरा जीवन लगा।

देश के लोकतंत्र को सबल विपक्ष की आवश्यकता थी; प्रथम तीन लोकसभा चुनावों के दौरान भारतीय जनसंघ एक ताकतवर विपक्षी दल के रूप में उभरा। वह विपक्ष कालांतर में विकल्प बन सके, इसकी उन्होंने संपूर्ण तैयारी की।

केवल तंत्र ही नहीं, मंत्र का भी विकल्प आवश्यक था। विदेशी वादों के स्थान पर उन्होंने एकात्म मानववाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एवं भारतीयकरण का आह्वान किया। 1951 से 1967 तक वे भारतीय जनसंघ के महामंत्री रहे। 1968 में उन्हें अध्यक्ष का दायित्व मिला। अचानक उनकी हत्या कर दी गई। उनके द्वारा विकसित किया गया दल 'भारतीय जनता पार्टी' ही देश में राजनैतिक विकल्प बना।